बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान

शोध–कर्ता : नरेन्द्र सिंह राजपूत



प्रकाशक/प्रकाशन
आचार्य ज्ञानासगर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी, सांगानेर (जयपुर)

卐 ॐ नमः सिद्धेभ्यः 卐

संस्कृत काव्य के विकास में–

बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान

डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म. प्र.) की
डॉक्टर. आफ फिलॉसफी' उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोध-कर्ता :
नरेन्द्र सिंह राजपूत
एम. ए. संस्कृत

प्रकाशक/प्रकाशन
आचार्य ज्ञानासगर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी, सांगानेर (जयपुर)

प्रेरक प्रसंग : चारित्र चक्रवर्ती परम् पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के सुशिष्य आध्यात्मिक एवं दार्शनिक संत मुनि श्री सुधासागरजी महाराज एवं क्षु. श्री गंभीरसागरजी महाराज व क्षु. श्री धैर्यसागरजी महाराज के 1996 जयपुर वर्षायोग के सुअवसर पर प्रकाशित ।

प्रूफ रीडिंग : पं. अरूणकुमार शास्त्री, ब्यावर

प्रतियां : 1000

मूल्य : रुपये 50/- मात्र (पुनः प्रकाशन हेतु सुरक्षित)

प्राप्ति :
- ▲ श्री दिगम्बर जैन मंदिर अतिशय क्षेत्र संघीजी सांगानेर-जयपुर (राज.)
- ▲ आचार्य ज्ञानासागर वागर्थ विमर्श केन्द्र ब्यावर (राज.)

मुद्रक : निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्ट्स
पुरानी मण्डी, अजमेर
फोन : 422291



बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान

आशीर्वाद एवं प्रेरणा

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

क्षु. श्री गम्भीरसागरजी महाराज

क्षु. श्री धैर्यसागरजी महाराज

पुण्यार्जक :-

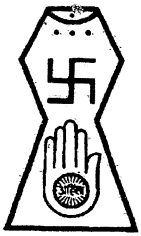
श्रीमती तारिकादेवी पाटनी धर्मपत्नी श्री विमलकुमार जी पाटनी

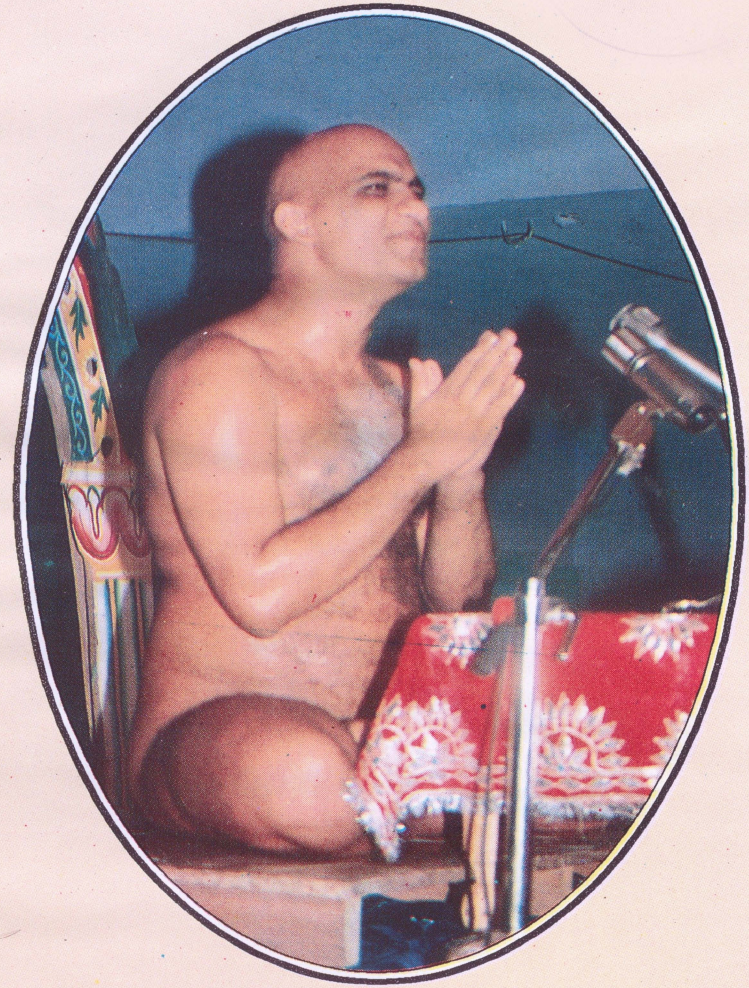
आर. के. मार्बल्स लि. किशनगढ़ (राज.)

प्रकाशक/प्रकाशन

आचार्य ज्ञानासगर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी, सांगानेर (जयपुर)





परम् पूज्य आध्यात्मिक संत मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

प्रकाशकीय समर्पण



आ. श्री विद्यासागर जी

卐

मु. श्री सुधासागर जी



पंचाचार युक्त

महाकवि, दार्शनिक विचारक,

धर्मप्रभाकर, आदर्श चारित्रनायक, कुन्द-कुन्द

की परम्परा के उन्नायक, संत शिरोमणि, समाधि सम्राट,

परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के कर कमलों में

एवं

इनके परम सुयोग्य

शिष्य ज्ञान, ध्यान, तप युक्त

जैन संस्कृति के रक्षक, क्षेत्र जीर्णोद्धारक,

वात्सल्य मूर्ति, समता स्वाभावी, जिनवाणी के यथार्थ

उद्घोषक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक संत मुनि

श्री सुधासागर जी महाराज के कर कमलों में

आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र

ब्यावर (राज.) की ओर से

सादर समर्पित ।

प्रकाशकीय

भारत के सांस्कृतिक विकास की कथा अति प्राचीन है । भारत वसुन्धरा के उद्यान में अनेक धर्म दर्शन और विचारधाराओं के विविधवर्ण-सुमन खिले हैं, जिनकी सुरभि से बेचैन विश्व को त्राण मिला है । तप:पूत आचार्यों/ऋषियों/मनीषियों का समग्र चिन्तन ही भारतीय संस्कृति का आधार है । जैन धर्म प्रवर्त्तक तीर्थङ्करों तथा जैनाचार्यों ने भारतीय संस्कृति के उन्नयन में जो योगदान किया है, वह सदा अविस्मरणीय रहेगा । पुरातत्त्व, वास्तुकला, चित्रकला तथा राजनीति के क्षेत्र में इस धारा के अवदान को भूलकर हम भारतीय संस्कृति की पूर्णता को आत्मसात् कर ही नहीं सकते । साहित्यिक क्षेत्र की प्रत्येक विधा में उनके द्वारा सृजित महनीय ग्रन्थों से सरस्वती भण्डार श्रीवृद्धि हुयी है ।

अद्यावधि उपलब्ध जैनों के प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता है कि जैन साहित्य लेखन की परम्परा कम से कम ढाई सहस्र वर्षों से अजस्र व अविच्छिन्न गति से प्रवाहशील है। इस अन्तराल में जैनाचार्यों ने सिद्धान्त, धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र, पुराण, आचारशास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद, वास्तु-कला, ज्योतिष और राजनीति आदि विषयों पर विविध विधाओं में गम्भीर साहित्य का सर्जन किया है । जैनाचार्यों ने प्राकृत व अपभ्रंश के साथ युग की आवश्यकता के अनुसार किसी भाषा विशेष के बन्धन में न बँधकर सभी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा है ।

कालदोष के कारण, समाज में अर्थ की प्रधानता के बढ़ने से साम्प्रदायिक व दुराग्रही संकीर्णमना राजाओं द्वारा दिगम्बर साधुओं के विचरण पर प्रतिबन्ध लगने से तथा अन्यान्य कारणों से जैन साहित्य-मंदाकिनी की धारा अवरूद्ध सी होने लगी थी । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में महाकवि पं. भूरामल शास्त्री का उदय हुआ, जिन्होंने सिद्धान्त, धर्म दर्शन अध्यात्म के अतिरिक्त संस्कृत व महाकाव्यों का प्रणयन कर साहित्य-भागीरथी का पुन: प्रवाहित कर दिया और तबसे जैन साहित्य रचना को पुनर्जीवन मिला और बीसवी शताब्दी में अनेक सारस्वत आचार्यों / मुनियों / गृहस्थ विद्वानों ने गहन अध्ययन करते हुए महनीय साहित्य की रचना की और अब भी अनेक आचार्यों, मुनियों व विद्वान् गृहस्थों द्वारा यह परम्परा चल रही है ।

ग्रन्थों की सर्जना मात्र से कोई संस्कृति विश्व साहित्य में अपना स्थान नहीं बना पाती। विश्व साहित्य में स्थापित होने के लिये इन ग्रन्थों में छिपे तत्त्वों को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है क्योंकि ये विश्व की युगीन समस्याओं के समाधान करने में सक्षम है । इस दृष्टि से ग्रन्थ प्रकाशन, ग्रन्थालयों की स्थापना के साथ इन पर व्यापक और तुलनात्मक अध्ययन भी अपेक्षित है । हर्ष का विष है कि सन्त शिरोमणि आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज तथा उनके शिष्यों तपोधन मुनिवृन्द की अनुकरणीय ज्ञानाराधना (चारित्राराधना में तो उनका संघ प्रमाणभूत है ही) से समाज में ऐसी प्रेरणा जगी कि जैनाजैन विद्यार्थियों का बड़ा समूह अब विश्वविद्यालयीय शोधोपाधि हेतु जैन विद्या के अंगों को ही विषय बना रहा है, जो कि जैन साहित्य के विकास का सूचक है ।

जैन संस्कृति के धर्मायतनों के सौभाग्य तब और भी ज्यादा बढ़े जब इतिहास निर्माता, महान् ज्योतिपुञ्ज, मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज के चरण राजस्थान की ओर बढ़े। उनके पदार्पण से सांगानेर और अजमेर की संगोष्ठियों की सफलता के पश्चात् ब्यावर में जनवरी, 95 में राष्ट्रीय ज्ञानसागर संगोष्ठी आयोजित की गयी, जहाँ विद्वानों ने आ. ज्ञानसागर वाङ्मय पर महानिबन्ध लेखन कराने, शोधार्थियों के शोध-कार्य में आगत बाधाओं के निराकरणार्थ

उन्हें यथावश्यक सहायता प्रदान करने तथा जैन विद्या के शोध-प्रबन्ध के प्रकाशन करने के सुझाव दिये । अतः विद्वानों के भावनानुसार परमपूज्य मुनिश्री के मंगलमय आशीष से ब्यावर में "आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र" की स्थापना की गयी ।

परमपूज्य मुनिवर श्री की कृपा व सत्प्रेरण से केन्द्र के माध्यम से बरकतउल्लाह खाँ विश्वविद्यालय, भोपाल, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर व रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर से अनेक शोधच्छात्रों ने आ. ज्ञानसागर वाङ्मय को आधार बनाकर Ph. D. उपाधिनिमित्त पंजीकरण कराया / पंजीकरण हेतु आवेदन किया है । केन्द्र माध्यम से इन शोधार्थियों को मुनि श्री के आशीष पूर्वक साहित्य व छात्रवृत्ति उपलब्ध करायी जा रही है तथा अन्य शोधार्थियों को भी पंजीकरणोपरान्त छात्रवृत्ति उपलब्ध करायी जाएगी।

केन्द्र द्वारा मुनिवर के आशीष से ही डेढ़ वर्ष की अल्पावधि में निम्न ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा चुका है -

1. इतिहास के पन्ने
2. हित-सम्पादक
3. तीर्थ प्रवर्तक
4. जैन राजनैतिक चिन्तन धारा
5. अञ्जना पवनञ्जयनाटक
6. जैन दर्शन में रत्नत्रय का स्वरुप
7. बौद्धदर्शन की शास्त्रीय समीक्षा
8. आदि ब्रह्मा ऋषभदेव
9. मानव धर्म (मूल - हिन्दी)
10. मानव धर्म (अंग्रेजी अनुवाद)
11. नीतिवाक्यामृत
12. जयोदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

केन्द्र द्वारा 12 ग्रन्थों के प्रकाशन के बाद अध्यवसायी नवोदित विद्वान् श्री नरेन्द्र सिंह राजपूत द्वारा लिखित "संस्कृत काव्यों के विकास में बीसवीं शताब्दी के मनीषियों का योगदान" नामक यह शोध प्रबन्ध संस्था द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है । यह शोध-प्रबन्ध बीसवीं शताब्दी के जैनाचार्यों / मनीषियों के कृतित्व का समग्र मूल्याङ्कन प्रस्तुत करता है तथा जैन मनीषियों के संस्कृत साहित्य को प्रदत्त अवदान का प्रतिपादन करता है । विद्वान् लेखक ने शोध सामग्री के संचयन में भगीरथ-प्रयत्न किया है, केन्द्र लेखक के श्रम का अभिनन्दन करते हुए आभार व्यक्त करता है तथा आशा करता है कि केन्द्र के साहित्यिक कार्यों में लेखक का सहयोग प्राप्त होगा ।

मैं पुनः अपनी विनयाञ्जलि एवम् श्रद्धा-भक्तिपूर्ण कृतज्ञता अर्पित करता हूँ, परम-प्रभावक व्यक्तित्व के धनी, जैन संस्कृति के सबल संरक्षक एवम् प्रचारक परमपूज्य मुनिपुंगव सुधासागर जी महाराज के चरणों में, जिनकी अहैतुकी कृपा-सुधा के माध्यम से ही केन्द्र द्वारा अल्पावधि में ही समय व श्रम साध्य दुरुह कार्य अनायास ही सम्पन्न हो सके ।

चूँकि पूज्य महाराजश्री का मंगल-आशीष एवम् ध्यान जैनाचार्यों द्वारा विरचित अप्रकाशित, अनुपलब्ध साहित्य के साथ जैन विद्या के अंगों पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में किये शोध कार्यों के प्रकाशन की ओर भी गया है, अतः हमें विश्वास है कि साहित्य उन्नयन एवम् प्रसार के कार्यों में ऐसी गति मिलेगी, मानो सम्राट् खाखेल का समय पुनः प्रत्यावर्तित हो गया हो । एक बार पुनः प्रज्ञा एवम् चारित्र के पुञ्जीभूत देह के पावन कमलों में सादर सश्रद्ध नमोऽस्तु ।

सुधासागर – चरण भ्रमर
अरुणकुमार शास्त्री 'व्याकरणाचार्य'
निदेशक, आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर (राज.)

प्राक्कथन

प्रख्यात जैन सिद्धक्षेत्र ''कुण्डलपुर'' सघन वृक्षों की विरामदायिनी, मनोरम छाँव और नयनाभिराम दृश्यों से परिपूर्ण कुण्डलाकार उत्तुंग श्रृंग पर अवस्थित श्रीधर केवली के पावन चरण चिह्नों का प्रतीक तपोवन है । इसी सिद्ध क्षेत्र के सन्निकट ग्राम मड़िया देवीसींग मेरी जन्मभूमि है । शैशवावस्था से ही देवाधिदेव ''बड़े बाबा'' के पावन दर्शन, तीर्थवन्दन, साधु-समागम और विद्वद्-विनोद के सुयोग जाने-अनजाने में भी मेरे मानस में श्रमण संस्कृति और वाङ्मय के उदात्त रूप का प्रभाव अंकित करते गये । सन् 1981 में दमोह के शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय के नियमित विद्यार्थी के रूप में बी. ए. परीक्षा प्रथम श्रेणी से संस्कृत-साहित्य और सामान्य विषय लेकर उत्तीर्ण करने के उपरान्त सागर विश्वविद्यालय से 1983 ई. में संस्कृत विषय की स्नातकोत्तर परीक्षा, प्रावीण्य-सूची में प्रथम स्थान सहित, प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करते ही मुझे श्रद्धेय गुरुवर डॉ. भागचन्द जी जैन ''भागेन्दु'' के सान्निध्य में अध्यापन का सुअवसर सुलभ हुआ । पूर्व संस्कार और वर्तमान सत्सान्निध्य तथा तीर्थराज कुण्डलपुर पर चातुर्मास के निमित्त से दो-दो वर्षा-योगों में विराजमान दिगम्बर जैन आचार्य विद्यासागर जी मुनि-राज के प्रातिभ व्यक्तित्व से मैंने यह अनुभव किया कि अपनी-आगामी अध्ययन यात्रा के लिये ऐसा विषय चयन करुँ, जो आधुनिक युगीन चिन्तन, साहित्य और संस्कृति को इतिहास की धरा से सम्पृक्त कर सके । मेरी इस अवधारणा को मूर्त्तरूप प्रदान किया शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह के संस्कृत विभागाध्यक्ष माननीय डॉ. भागचन्द जी जैन ''भागेन्दु'' ने । फलतः मैंने उन्हीं के निर्देशन में ''**संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान**''– विषय पर अपनी-''पी. एच. डी.'' उपाधि हेतु अनुसन्धान कार्य का प्रस्ताव विश्व विद्यालय की शोधोपाधि समिति के समक्ष प्रस्तुत किया और समिति ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार भी किया ।

राष्ट्र के ग्रन्थकारों, मनीषियों, प्रकाशकों और जैन अध्ययन केन्द्रों से अनेकशः पत्राचार/सम्पर्क किया । प्रारम्भ में मुझे ऐसा अनुभव सा हुआ कि कदाचित् इस विषय पर पर्याप्त सामग्री सुलभ नहीं हो सकेगी । किन्तु कुछ ही समय में मेरा भ्रम दूर हो गया, प्रचुर सामग्री सुलभ हुई । कार्य आगे बढ़ा । सामग्री सुलभ कराकर प्रोत्साहित करने में परम पूज्य आचार्य विद्यासागर जी मुनि महाराज के संघस्थ शिष्य श्री 105 ऐलक अभय सागर जी महाराज ने भी महनीय भूमिका का निर्वाह किया है । किन्तु कर्मयोग से मेरी आर्थिक विपन्नता ने पंजीकृत विषय को इतः प्राक् सम्पादित करके प्रस्तुत कर देने में नानाविध असहयोग किया ।

''प्रस्तुत शोध प्रबन्ध''– प्रस्तुत शोध प्रबंध को छह अध्यायों तथा एक परिशिष्ट में विभक्त किया है । प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के –

प्रथम अध्याय

में संस्कृतसाहित्य का अन्तः दर्शन विश्लेषित करते हुए इस अध्याय को दो भागों में विभाजित किया है ।

खण्ड (अ) - में संस्कृत साहित्य के आविर्भाव और विकास का संक्षिप्त इतिवृत्त समाविष्ट है । इस अध्याय के -

खण्ड (ब) - में बीसवीं शताब्दी की साहित्यिक पृष्ठभूमि का विवेचन किया है।

द्वितीय अध्याय

में बीसवीं शताब्दी में रचित जैन काव्य साहित्य का अन्त र्विभाजन किया है । इस अध्याय को तीन खण्डों में विभक्त किया है -

खण्ड (अ)- में (मौलिक रचनाएँ) इसमें महाकाव्य, खण्डकाव्य, दूतकाव्य, स्तोत्रकाव्य, शतककाव्य, चम्पू काव्य, श्रावकाचार और नीति विषयक काव्यों और दार्शनिक रचनाओं की सूची समाविष्ट है ।

खण्ड (ब) - में (टीका ग्रन्थ) और

खण्ड (स) - में गद्य कृतियों की जानकारी दी गई है ।

तृतीय अध्याय

में बीसवीं शताब्दी के साधु-साध्वियों द्वारा प्रणीत प्रमुख जैन संस्कृत काव्यों का अनुशीलन किया गया है । इस अध्याय में जैन संस्कृत काव्य और काव्य रचना के मुख्य आधार पर प्रकाश डालने के उपरांत जैन संस्कृत काव्यों की विशेषताएँ स्पष्ट की है। इस शताब्दी के जैन मनीषियों और उनकी काव्य कृतियों का अनुशीलन करते हुए सर्व श्री आचार्य ज्ञानसागर मुनि, आचार्य विद्यासागर मुनि, आचार्य कुन्थुसागर मुनि, आचार्य अजित सागर मुनि, आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी, आर्यिका ज्ञानमती माता जी, आर्यिका विशुद्धमती माता जी और क्षुल्लिका राजमती माता जी के महनीय कृतित्व का सांगोपांग विश्लेषण किया है ।

चतुर्थ अध्याय

में बीसवीं शताब्दी के मनीषियों द्वारा प्रणीत प्रमुख जैन संस्कृत काव्यों का अनुशीलन सन्निविष्ट है । इसके पूर्ववर्ती - तृतीय अध्याय का पूरक ही है यह चतुर्थ अध्याय । वस्तुतः इसे तृतीय अध्याय के तारतम्य में ही पढ़ा जाना चाहिये । किन्तु शोध प्रबंध के अध्याय का आकार बहुत बढ़ा नहीं हो जावे एक तो इस भय से, और दूसरे, रचनाकारों का आश्रम-पार्थक्य तथा उनकी रचना-धर्मिता, लेखनी का निजी वैशिष्ट्य तथा स्वरूप सुस्पष्ट रेखांकित हो सके, इसलिए मैंने तृतीय अध्याय में केवल जैन साधुओं-साध्वियों द्वारा प्रणीत जैन संस्कृत काव्यालोक का अनुशीलन किया है । प्रस्तुत चतुर्थ अध्याय में उन सभी प्रमुख रचनाकारों को सन्दर्भित करके अनुशीलन किया गया है, जिन्होंने जैन विषयों पर संस्कृत में काव्य रचना की है । इस अध्याय में विवेचित अनेक रचनाकार जैन परंपरा में जन्मे हैं और बहुत से रचनाकार जैनेतर परंपरा में । सभी ने समवेत स्वर लहरी में संस्कृत जैन काव्य रचना के प्रमुख आधार - "द्वादशांग वाणी"- में विधिवत् अवगाहन किया है और अपने-अपने प्रशस्त क्षयोपशम के आधार पर भगवती वाग्देवी के अक्षय्य भाण्डार की श्रीवृद्धि की है ।

इस अध्याय के प्रमुख रचनाकारों में अनेक रचनाकार राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त प्रथम श्रेणी के मूर्धन्य मनीषी हैं । इनमें सर्व श्री डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य, पं. मूलचन्द्र जी शास्त्री,पं. जवाहर लाल सिद्धांत शास्त्री, प्रो. राजकुमार साहित्याचार्य, डॉ. भागचन्द्र जैन "भागेन्दु", पं. भुवनेन्द्र कुमार शास्त्री, पं. कमलकुमार न्यायतीर्थ, पं. अमृतलाल शास्त्री साहित्य-दर्शनाचार्य.

पं. आचार्य गोपीलाल ''अमर'', डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य आदि के नाम सविशेष उल्लेखनीय हैं । इस अध्याय में कतिपय ऐसी विदुषी महिलाओं का वर्णन भी उपलब्ध है जिन्होंने जैन-काव्यालोक को सुसमृद्ध किया है । विदुषी महिलाओं में कु. माधुरी शास्त्री एवं श्रीमती मिथिलेश जैन के नाम महत्त्वपूर्ण हैं । जैनेतर रचनाकारों में सर्वश्री डॉ. दामोदर शास्त्री, डॉ. रमानाथ पाठक ''प्रणयी'' पं. सिद्धेश्वर वाजपेयी, श्री ब्रजभूषण मिश्र और पं. बिहारी लाल शर्मा प्रभृति जैनेतर रचनाकारों द्वारा प्रणीत संस्कृत काव्यों का विधिपूर्वक विश्लेषण किया गया है ।

विवेचित रचनाकारों में अनेक रचनाकार महाकवित्व की गरिमा से अभिमंडित हैं । संस्कृत भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है । उनकी रचनाओं में मौलिक भावाभिव्यंजना और प्रस्तुति की अभिरामता पदे-पदे निदर्शित है । इन्हीं तथ्यों को उजागर करना इस शोध प्रबन्ध के तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय की इष्टापूर्ति है ।

पंचम अध्याय

में बीसवीं शताब्दी के जैन काव्यों का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन किया गया है ।

इस अध्याय में साहित्य शास्त्र में निदर्शित काव्य के विविध अंगों रस, छन्द, अलङ्कार, रीति, गुण वाग्वैदग्ध्य एवं भाषा पर यथेष्ट शोध-परक सोदाहरण समीक्षा की है । ऐसा करते समय शोध कर्त्ता को कुछ ऐसे तथ्य भी हस्तगत हुए हैं, जो बीसवीं शताब्दी के सामान्य रचनाकारों में असंभव नहीं, तो कठिनतर अवश्य हैं । जैसे-चित्रालङ्कार के अन्तर्गत विविध प्रकार के बंधों की संयोजना,काव्यशास्त्र में प्रयुक्त वैदर्भी आदि रीतियों के अतिरिक्त व्याख्यात्मक, विवेचनात्मक, उपदेशात्मक एवं संवादात्मक शैलियों का आविर्भाव । इन रचनाकारों ने कतिपय लाक्षणिक प्रयोग भी किये हैं ।

षष्ठ अध्याय

में बीसवीं शताब्दी के जैन काव्यों का वैशिष्ट्य, प्रदेय तथा तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अनुशीलन किया गया है ।

इस अध्याय में निदर्शित कि - जैन रचनाकार इतर रचनाकारों से किन अर्थों में कब और कहाँ-कहाँ वैशिष्ट्य रखते हैं, उनका भारतीय साहित्य, संस्कृति और काव्य शास्त्र को समृद्ध बनाने तथा चरितार्थ करने में किस-किस प्रकार का योगदान है तथा इस शताब्दी की प्रमुख जैन रचनाओं का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अनुशीलन भी किया गया है ।

इस अध्याय के अंत में शोधकर्त्ता के महत्त्वपूर्ण सुझाव भी अंकित हैं । जो विवेच्य शताब्दी के जैन काव्यों के बहु-आयामी स्वरूप का बृहत् स्तर पर प्रचार-प्रसार तथा उनकी सार्वभौम सत्ता प्रतिष्ठापित करने के लिए आवश्यक हैं ।

विवेच्य शोध विषय के समग्रतया अनुशीलन पर शोधकर्त्ता को जैन काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ और भी प्राप्त हुई हैं -

(1) संस्कृत जैन काव्यों की आधार शिला द्वादशांग वाणी है । इस वाणी में आत्म विकास द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है । रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र की साधना द्वारा मानव मात्र चरम सुख को प्राप्त कर सकता है । संस्कृत भाषा में रचित प्रत्येक जैन काव्य उक्त संदेश को ही पुष्पों की सुगन्ध की भांति विकीर्ण करता है ।

(2) जैन संस्कृत काव्यस्मृति अनुमोदित वर्णाश्रम धर्म के पोषक नहीं है । इनमें जातिवाद के प्रति क्रांति निदर्शित है । इनमें आश्रम व्यवस्था भी मान्य नहीं है । समाज-श्रावक और मुनि इन दो वर्णों में विभक्त है- चतुर्विध संघ - मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका को ही समाज माना गया है । इस समाज का विकास श्रावक और मुनि के पारस्परिक सहयोग से होता है ।

तप, त्याग, संयम और अहिंसा की साधना के द्वारा मानव मात्र समान रूप से आत्मोत्थान करने का अधिकारी है । आत्मोत्थान के लिए किसी परोक्ष शक्ति की सहायता अपेक्षित नहीं है । अपने पुरुषार्थ के द्वारा कोई भी व्यक्ति अपना सर्वाङ्गीण विकास कर सकता है।

(3) संस्कृत जैन काव्यों के नायक देव, ऋषि, मुनि नहीं हैं, अपितु राजाओं के साथ सेठ, सार्थवाह, धर्मात्मा व्यक्ति, तीर्थङ्कर, शूरवीर या सामान्य जन आदि हैं ।

नायक अपने चरित्र का विकास इन्द्रिय दमन और संयम पालन द्वारा स्वयं करता है । आरंभ से ही नायक त्यागी नहीं होता, वह अर्थ और काम दोनों पुरुषार्थों का पूर्णतया उपयोग करता हुआ किसी निमित्त विशेष को प्राप्त कर विरक्त होता है और आत्मसाधना में लग जाता है । जिन काव्यों के नायक तीर्थङ्कर या अन्य पौराणिक महापुरुष हैं, उन काव्यों में तीर्थङ्कर आदि पुण्य पुरुषों की सेवा के लिए स्वर्ग से देवी-देवता आते हैं। पर वे महापुरुष भी अपने चरित्र का उत्थान स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा ही करते हैं ।

(4) जैन संस्कृत काव्यों के कथा स्रोत वैदिक पुराणों या अन्य ग्रन्थों से ग्रहण नहीं किये गये हैं, प्रत्युत वे लोक प्रचलित प्राचीन कथाओं एवं जैन परंपरा के पुराणों से संग्रह किये गये हैं । कवियों ने यथावस्तु को जैन धर्म के अनुकूल बनाने के लिए उसे पूर्णतया जैन धर्म के साँचे में ढालने का प्रयास किया है । रामायण महाभारत के कथांश जिन काव्यों के आधार हैं, उनमें भी उक्त कथाएं जैन परम्परा के अनुसार अनुमोदित ही हैं । इनमें बुद्धि-संगत यथार्थवाद द्वारा विकारों का निराकरण करके मानवता की प्रतिष्ठा की गई है ।

(5) संस्कृत जैन काव्यों के नायक जीवन-मूल्यों, धार्मिक निर्देशों और जीवन तत्त्वों की व्यवस्था तथा प्रसार के लिये "मीडियम" का कार्य करते हैं । वे संसार के दु:खों एवं जन्म-मरण के कष्टों से मुक्त होने के लिए रत्नत्रय का अवलम्बन ग्रहण करते है । संस्कृत काव्यों के "दुष्ट-निग्रह" और "शिष्ट-अनुग्रह" आदर्श के स्थान पर दु:ख निवृत्ति ही नायक का लक्ष्य होता है । स्वयं की दु:ख-निवृत्ति के आदर्श से समाज को दु:ख-निवृत्ति का संकेत कराया जाता है । व्यक्ति हित और समाज हित का इतना एकीकरण होता है कि वैयक्तिक जीवन मूल्य ही सामाजिक जीवन मूल्य के रूप में प्रकट होते हैं । संस्कृत जैन काव्यों के इस आंतरिक रचना तन्त्र को रत्नत्रय के त्रिपार्श्व सम त्रिभुज द्वारा प्रकट होना माना जा सकता है । इस जीवन त्रिभुज की तीनों भुजाएँ समान होती हैं और कोण भी त्याग, संयम एवं तप के अनुपात से निर्मित होते हैं ।

(6) जैन संस्कृत काव्यों के रचना तंत्र में चरित्र का विकास प्राय: लम्बमान (वरटीकल) रूप में नहीं होता, जबकि अन्य संस्कृत काव्यों में ऐसा ही होता है ।

(7) संस्कृत के जैन काव्यों में चरित्र का विकास प्राय: अनेक जन्मों के बीच में हुआ है । जैन कवियों ने एक ही व्यक्ति के चरित्र को रचनाक्रम से विकसित रूप में प्रदर्शित करते हुए वर्तमान जन्म में मोक्ष निर्वाण तक पहुँचाया है । प्राय: प्रत्येक काव्य के आधे

से अधिक सर्गों में कई जन्मों की परिस्थितियों और वातावरणों के बीच जीवन की विभिन्न घटनाएँ अंकित होती हैं । काव्यों के उत्तरार्द्ध में घटनाएँ इतनी जल्दी आगे बढ़ती हैं - जिससे आख्यान में क्रमशः क्षीणता आती-जाती है । पूर्वार्ध में पाठक को काव्यानन्द प्राप्त होता है जबकि उत्तरार्द्ध में आध्यात्मिकता और सदाचार ही उसे प्राप्त होते हैं । इसका कारण यह भी हो सकता है कि शान्त रस प्रधान काव्यों में निर्वेद की स्थिति का उत्तरोत्तर विकास होने से अंतिम उपलब्धि अध्यात्म तत्त्व के रूप में ही संभव होती है । चूंकि संस्कृत जैन काव्यों की कथावस्तु अनेक जन्मों से सम्बन्धित होती है अतः चरित्र का विकास अनुप्रस्थ (हारी-जेन्टल) रूप में ही घटित हुआ है। जीवन के विभिन्न पक्ष, विभिन्न जन्मों की विविध घटनाओं से समाहित हैं ।

(8) संस्कृत जैन काव्यों में आत्मा की अमरता और जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों की अनिवार्यता दिखलाने के लिए पूर्व जन्म के आख्यानों का संयोजन किया गया है। प्रसंगवश चार्वाक आदि नास्तिकवादों का निरसन कर इनमें आत्मा की अमरता और कर्म संस्कार की विशेषता का विवेचन किया गया है । पूर्व जन्म के सभी आख्यान नायकों के जीवन में कलात्मक शैली में गुम्फित हुए हैं । दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन से यत्र-तत्र काव्य रस में न्यूनता आ गई है । पर कवियों ने आख्यानों को सरस बनाकर इस न्यूनता को संभाल भी लिया है ।

(9) संस्कृत के जैन कवियों की रचनाएँ श्रमण संस्कृति के प्रमुख आदर्श-स्याद्वाद विचार समन्वय और अहिंसा के पाथेय को अपना सम्बल बनाते हैं । इन काव्यों का अंतिम लक्ष्य प्रायः मोक्ष-प्राप्ति है । इसलिए आत्मा के उत्थान और चरित्र-विकास की विभिन्न कार्य-भूमिकाएँ स्पष्ट होती हैं ।

(10) व्यक्तियों की पूर्ण-समानता का आदर्श निरुपित करने और मनुष्य-मनुष्य के बीच जातिगत भेद को दूर करने के लिए काव्य के रसभाव मिश्रित परिप्रेक्ष्य में कर्मकाण्ड, पुरोहितवाद एवं कर्तृत्ववाद का निरसन किया गया है । वैभव के मद में निमग्न अशांत संसार को वास्तविक शान्ति प्राप्त करने का उपचार परिग्रह-त्याग एवं इच्छा नियंत्रण निरूपित करके काव्य शैली में प्रतिपादन किया है ।

(11) मानव सन्मार्ग से भटक न जाये, इसलिए मिथ्यात्व का विश्लेषण करके सदाचार परक तत्त्वों का वर्णन करना भी संस्कृत जैन कवियों का अभीष्ट है । यह सब उन्होंने काव्य की मधुर शैली में ही प्रस्तुत किया है ।

(12) जैन संस्कृत कवियों की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि वे किसी भी नगर का वर्णन करते समय उसके द्वीप, क्षेत्र एवं देश आदि का निर्देश अवश्य करेंगे।

(13) कलापक्ष और भावपक्ष में जैन काव्य और अन्य संस्कृत काव्यों के रचनातंत्र में कोई विशेष अंतर नहीं है पर कुछ ऐसी बातें भी हैं जिनके कारण अंतर माना जा सकता है । काव्य का लक्ष्य केवल मनोरंजन कराना ही नहीं है प्रत्युत किसी आदर्श को प्राप्त कराना है । जीवन का यह आदर्श ही काव्य का अंतिम लक्ष्य होता है । इस अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति काव्य में जिस प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होती है । वह प्रक्रिया ही काव्य की ''टेकनीक'' है।

श्री कालिदास, भारवि, माघ आदि संस्कृत के कवियों की रचनाओं में चारों ओर से घटना, चरित्र और संवेदन संगठित होते हैं तथा यह संगठन वृत्ताकार पुष्प की तरह पूर्ण

विकसित होकर प्रस्फुटित होता है और सम्प्रेणषीयता केन्द्रीय प्रभाव को विकीर्ण कर देती है । इस प्रकार अनुभूति द्वारा रस का संचार होने से काव्यानन्द प्राप्त होता है और अंतिम साध्य रूप जीवन आदर्श तक पाठक पहुँचने का प्रयास करता है । इसलिए कालिदास आदि का रचना तंत्र वृत्ताकार है । पर जैन संस्कृत कवियों का रचना तंत्र हाथी दांत के नुकीले शंकु के समान मसृण और ठोस होता है । चरित्र, संवेदन और घटनाएँ वृत्त के रूप में संगठित होकर भी सूची रूप को धारण कर लेती हैं तथा रसानुभूति कराती हुई तीर की तरह पाठक को अंतिम लक्ष्य पर पहुँचा देती हैं ।

(14) जैन काव्यों में इन्द्रियों के विषयों पर सत्ता रहने पर भी आध्यात्मिक अनुभव की संभावनाएँ अधिकाधिक रूप में वर्तमान रहती हैं । इन्द्रियों के माध्यम से सांसारिक रूपों की अभिज्ञता के साथ काव्य प्रक्रिया द्वारा मोक्ष तत्त्व की अनुभूति भी विश्लेषित की जाती है । भौतिक ऐश्वर्य, सौन्दर्य परक अभिरुचियाँ शिष्ट एवं परिष्कृत संस्कृति के विश्लेषण के साथ आत्मोत्थान की भूमिकाएँ भी वर्णित रहती हैं ।

''परिशिष्ट प्रथम''

विवेच्य शोध विषय के निमित्त प्रयुक्त सन्दर्भ-ग्रन्थों की सूची समाविष्ट है ।

निर्दिष्ट विषय पर सम्पूर्ण बीसवीं शताब्दी को और बीसवीं शताब्दी के रचना संसार को समक्ष रखकर मैंने प्रथम बार यह महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान कार्य संपन्न किया है । इसके पूर्व इस शताब्दी के कुछ एक ग्रन्थों या रचनाकारों पर अध्ययन-अनुशीलन भले ही हुआ हो किन्तु ऐसी समग्रता इसके पूर्व अन्यत्र नहीं मिलती । जैन वाङ्मय अखिल भारतीय वाङ्मय का एक समृद्ध और सुसंस्कृत भाण्डागार है । एक तो आधुनिक युगीन संस्कृत साहित्य पर ही अध्ययन-अनुशीलन नगण्य जैसा है फिर जैन काव्य-साहित्य के अध्ययन अनुशीलन की स्थिति और भी चिन्तनीय ही कही जायेगी । मुझे यह कार्य सम्पन्न करते समय अनेक प्रकार की असुविधाओं के झंझावातों में यात्रा करना पड़ी है । यह कार्य संपन्न करते समय मैंने अत्यन्त मनोयोग पूर्वक सभी प्रतिनिधि, रचनाकारों और उनकी रचनाओं का आद्योपांत अध्ययन किया है । उनके प्रतिपाद्य को हृदयंगम किया है और प्राप्त निष्कर्षों को शोध निकष पर तराशा है । तराशने में जैन रचनाकारों और उनकी रचनाओं की आभा से सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय सुवासित हो उठा है । इस शताब्दी के इतने समृद्ध रचनाकारों और उनकी रचनाओं से साहित्य-जगत् मेरे इस शोध प्रबन्ध के द्वारा प्रथम बार सुपरिचित हो सकेगा । इस शताब्दी के जैन-रचनाकारों में केवल जन्मना जैनावलम्बी ही नहीं हैं प्रत्युत जैनेतर वर्गों में उत्पन्न होकर जैन विषय पर रचना करने वाले बहुत से जैनेतर मनीषी भी सम्मिलित हैं । इस शोध प्रबन्ध के पाठक देखेंगे कि जैन काव्य की समृद्धि में केवल गृहस्थ-मनीषियों का योगदान नहीं है प्रत्युत निर्ग्रन्थ आचार्यों, मुनियों और साध्विय का प्रशस्त योगदान भी समाविष्ट है।

ये रचनाएँ काव्य-शास्त्र के निकष पर प्रथम बार ही तराशी गयी है और इन्हें तराशने से यह स्पष्ट हुआ है कि भावपक्ष तथा कलापक्ष की दृष्टि से महाकवि कालिदास, अश्वघोष, शूद्रक, भारवि, माघ, भवभूति, राजशेखर, श्रीहर्ष सदृश प्रतिभायें जैन-जगत् और जैन काव्य के क्षेत्र में बीसवीं शती में भी विद्यमान हैं । मेरा यह अध्ययन सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय के परिप्रेक्ष्य में अब तक उपेक्षित/अज्ञात/या कम पढ़े गये संस्कृत काव्यों को जो जैन विषयों पर प्रणीत है - को विश्लेषित करने का विनम्र प्रयत्न है । मुझे यह विश्वास है कि मेरे इस अध्ययन से भगवती सरस्वती देवी और अमर भारती के अनेक देदीप्यमान रत्नों की

आभा से संस्कृत का आधुनिक युगीन काव्य और उसका इतिहास पूर्णता प्राप्त कर सकेगा ।

''कृतज्ञता प्रकाश''

मेरे मन में प्रस्तुत विषय पर शोध-कार्य सम्पन्न करने के लक्ष्य निर्धारण का श्रेय मेरे प्रथम प्रेरणा स्त्रोत, परम पूज्य प्रातः स्मरणीय गुरुवर डॉ. भागचन्द्र जी जैन, ''भागेन्दु'' को है । जिनकी बहुआयामी, सर्वगुण सम्पन्न, प्रभामयी प्रतिभा, अध्यापनशैली और सौम्यता से मैं बहुत पहले ही प्रभावित हो गया था - उन्हीं के समर्थन, सहयोग, प्रेरणा और आशीर्वाद से स्नातकोत्तर परीक्षा में विश्वविद्यालयीन प्रावीण्य सूची में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया और अपने गुरुवर के सान्निध्य में रहकर ही शोध पथ पर अग्रसर होने का संकल्प पूर्ण किया। मेरी इस शोध-यात्रा में श्रद्धेय डॉ. सा. एवं उनके सम्पूर्ण परिवार का विशेषतया मातृतुल्य स्नेह प्रदात्री माननीया सौ. सरोज सांघेलीय का हार्दिक आभारी हूँ ।

मेरे संकल्प को छिन्न-भिन्न करने के लिए परिस्थितियों ने अनेक दाव-पेंच दिखाये और विचलित होने का वातावरण दिखने लगा । किन्तु परम पूज्य दि. जैनाचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज से सुप्रसिद्ध क्षेत्र पपौरा जी की पावन भूमि में प्राप्त शुभाशीर्वाद और उनके संघस्थ पूज्य श्री 105 ऐलक अभय सागर जी महाराज के निर्देशन से दिशा बोध हुआ। एतदर्थ शोध-कर्त्ता उक्त आचार्य प्रवर एवं सन्तों के श्री चरणों में श्रद्धावनत है ।

विद्वद्त्वर न्यायाचार्य डॉ. दरबारी लाल कोठिया महोदय द्वारा प्रदत्त विशेष सहयोग और दिशा दर्शन से अनेकशः कृतार्थ हुआ हूँ । अतः उनके प्रति सादर नमन और हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । सर्व श्री पं. जगमोहन लाल जी सिद्धांत-शास्त्री, कटनी के चरणकमलों में अनुरक्त भ्रमर की भांति अपने मन को एकाग्रता के साथ प्रस्तुत करता हूँ जिनसे मैंने अपने समीपस्थ सिद्ध क्षेत्र कुण्डलपुर में सम्पर्क करके इस शोध विषय के परिप्रेक्ष्य में उपयोगी सामग्री प्राप्त की है ।

एक शोध-छात्र होने के कारण अनेकानेक साधु-साध्वियों, मनीषियों, कवियों, विशेषज्ञों से निकटतः परिचित हुआ हूँ । पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य और पं. दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त किया और सहायता भी प्राप्त की।

डॉ. हरिसिंह गौर विश्व विद्यालय, सागर (म.प्र.) के संस्कृत विभागाध्यक्ष श्रद्धेयगुरुवर डॉ. राधावल्लभ जी त्रिपाठी की अनुकम्पा और डॉ. बाल शास्त्री जी की शुभकामना का सम्बल पाकर शोध कार्य के प्रति उत्साहित होता रहा हूँ । अतः उक्त मनीषिद्वय के चरण कमलों में सदैव श्रद्धावनत हूँ ।

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह मेरी कर्मभूमि ही है, जहाँ अध्ययन, अध्यापन और अनुसंधान के कार्य संपन्न किये । मेरी शोध-यात्रा को सफलता प्रदान करने में इस महाविद्यालय के तत्कालीन प्राचार्य श्रद्धेय प्रो. चन्द्रभानुधर द्विवेदी की महती भूमिका है । जिनकी आत्मीयता और सहयोगी प्रवृत्ति के कारण शोधकर्त्ता को कभी कोई असुविधा नहीं हुई-अतः उनका चिरकृतज्ञ हूँ ।

शोध-यात्रा में जब कभी मेरे कदम लड़खड़ाने की स्थिति निर्मित हुई तभी मुझे कर्त्तव्यबोध और परिस्थितियों पर विजय पाने हेतु डॉ. कस्तूर चन्द्र जी सुमन, शोध सहायक जैन विद्या

संस्थान श्री महावीर जी ने साहस और धैर्य धारण कराया । मेरे शोध कार्य को सम्पूर्णता प्रदान करने में उनका योगदान अविस्मरणीय है । अत: उनका चिर आभारी हूँ ।

वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट वाराणसी, जैन विद्या शोध संस्थान महावीरजी, सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर जी एवं शासकीय महाविद्यालय पुस्तकालय, दमोह आदि स्थानों से बहुविध सहयोग और सामग्री पाकर प्रोत्साहित होता रहा हूँ । अत: उक्त संस्थाओं के संचालकों का हृदय से कृतज्ञ हूँ । शोध विषय को सम्पूर्णता देने में निजी पुस्तकालयों में गुरुवर डॉ. भागचन्द्र जी जैन ''भागेन्दु'' दमोह एवं श्री वीरेन्द्र कुमार जी इटोरया, दमोह के निजी पुस्तकालयों का भरपूर उपयोग किया है । अत: महानुभावों के प्रति विनयावनत हूँ ।

शोधार्थी के चिंतन को मूर्त्तरूप प्रदान करने में अपने साथी शोधार्थियों का विशेष योगदान भी उल्लेखनीय है । इस क्रम में सर्वप्रथम परमादरणीया, विदुषी डॉ. सुषमा जैन के भगिनीवत् स्नेह और शोध-सामग्री सुलभ कराने जैसे सहयोग के लिये उनके प्रति आभारी और कृतज्ञ हूँ ।

मेरे शोध मार्ग के हम सफर श्री प्रो. मुन्नालाल जी जैन शास्त्री ने अपनी मधुर मुस्कान, विनम्रता और सहयोग से मुझे सदैव प्रभावित किया और कार्य को सरलतर किया है । अत: उनके प्रति श्रद्धाभाव समन्वित सादर नमन समर्पित है । मेरी इस यात्रा में अनन्य मित्र, शोधार्थी श्री अनिलकुमार जैन के अविस्मरणीय योगदान को समाविष्ट करना मेरा परम कर्त्तव्य है। जिन्होंने वर्षाकाल में मेरे गाँव ''मड़िया देवीसींग'' जाकर मुझे उत्साहित करते हुए शोध कार्य में आये शैथिल्य को दूर किया । शोध कार्य को प्रगति देने के लिये उनके प्रति आभारी हूँ ।

मेरे मन में सुसंस्कारों का बीजारोपण करने वाले मेरे (जीवन के) प्रथम शिक्षा गुरु परम श्रद्धेय पं. श्री अमृत लाल परौहा जी की असीम अनुकम्पा, निरन्तर प्रेरणा और परम आदरणीय पं. श्री सीताराम राजोरिया जी की शुभाकाँक्षा और सहयोग के फलस्वरूप यह महनीय कार्य संपन्न कर सका हूँ । अत: इनके श्री चरणों में सविनय नतमस्तक हूँ । मेरे जीवन संघर्ष की सफलता में सहभागी सम्माननीय श्री वेद प्रकाश मिश्र जी (विदिशा) के प्रति चिर कृतज्ञ हूँ ।

परम पूज्य प्रात: स्मरणीय, चिरवंदनीय पिता श्री परसाद सिंह जी का स्थायी प्रभाव मेरे जीवन दर्शन और चिंतन पर अंकित है । मेरा जीवन उनकी आशाओं, विश्वासों की आधार शिला है । मानवीय गुणों और उच्चादर्शों से मुझे सुसंस्कृत करने वाले अपने पिता श्री का मैं आजीवन ऋणी रहूँगा । परमपूज्या माता श्री रामकली बाई जी की ममतामयी गोद में खेलने का सौभाग्य पाकर धन्य हो गया हूँ ।

इस शोध महायज्ञ को पूर्ण करने में परम पूज्य पिता श्री परसाद सिंह जी, माता श्री रामकली बाई जी, बहनोई श्री भगवान सिंह तोमर, बहिन सौ. शकुन्तला तोमर, अनुजद्वय श्री राजेन्द्र सिंह- श्री रवेन्द्र सिंह और मेरी धर्मपत्नी सौ. कमला देवी का योगदान विशेष स्मरणीय है । जिन्होंने (पारिवारिक असुविधाओं के बावजूद) तन, मन, धन से सहयोग देकर मेरे शोध सफर को सुगम बना दिया । अपने पारिवारिक सहयोग के परिणाम स्वरूप ही यह शोध कार्य प्रबन्ध का रूप ले सका है । अत: परिवार जनों के प्रति हृदय से आभारी हूँ ।

शासकीय हाई स्कूल बहादुरपुर (जिला गुना) में पदस्थ अपने समस्त अध्यापक साथियों एवं मित्रों का हृदय से आभारी हूँ जिनकी शुभाकाँक्षा और रहनुमाई में यह प्रबंध पूर्ण हो सका ।

आज मुझे अपार हर्ष है कि जैन धर्म एवं संस्कृति के सबल संवाहक अनेक ऐतिहासिक सारस्वत यज्ञों के प्रेरक तीर्थ निर्माता परम् पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज की सत्प्रेरणा से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, आप संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के सुशिष्य है, मैं मुनिवर के पावन चरणों में परोक्ष प्रणतियाँ निवेदित करता हूँ । प्रकाशन संस्था आ. ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र के पदाधिकारियों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने मेरे ग्रन्थ को सुन्दर रूप में प्रकाशित किया ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ''संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान'' यदि विद्वज्जनों, श्रद्धालुओं, पाठकों, अनुसंधाताओं और साहित्य-संस्कृति प्रेमियों को कुछ भी लाभान्वित कर सका, तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा ।

दिनांक: 24.3.1991

विदुषामनुचर

नरेन्द्र सिंह राजपूत

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय
संस्कृत साहित्य का अन्तःदर्शन 1-29

द्वितीय अध्याय
"बीसवीं शताब्दी में रचित जैन काव्य साहित्य"
एक अन्तर्विभाजन 30-39

तृतीयः अध्याय
बीसवीं शताब्दी के साधु-साध्वियों द्वारा प्रणीत प्रमुख जैन काव्यों का अनुशीलन 40-113

चतुर्थ अध्याय
बीसवीं शताब्दी के मनीषियों द्वारा प्रणीत प्रमुख जैन काव्यों का अनुशीलन 114-194

पञ्चम अध्याय
बीसवीं शताब्दी के जैन काव्यों का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन 195-281

षष्ठ अध्याय
बीसवीं शताब्दी के संस्कृत जैन काव्यों का वैशिष्ट्य प्रदेय तथा तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अनुशीलन 282-298

परिशिष्ट एक
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 298-304

प्रथम अध्याय

संस्कृत साहित्य का अन्तःदर्शन

(अ) संस्कृत साहित्य का आविर्भाव तथा विकासः संक्षिप्त इतिवृत्त

संस्कृत शब्द की निष्पत्ति और उसका अर्थ :

संस्कृत शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्त प्रत्यय जोड़ने पर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है - परिष्कृत, मांज कर चमकाया हुआ आवर्धित, सुरचित, सुसम्पादित, सुधारा गया।[1] सम्प्रति इस शब्द से आर्यों की साहित्यिक भाषा का बोध होता है। यह भाषा प्राचीन काल में आर्य पण्डितों की बोली तो थी ही और इसी के द्वारा चिरकाल तक आर्य विद्वानों का परस्पर व्यवहार होता था। तत्कालीन संस्कृति, इतिहास और महाभाष्य आदि सुप्रसिद्ध ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि जन सामान्य में भी इसी भाषा में वार्तालाप होता था।[2] किन्तु उन दिनों इसे केवल "भाषा" शब्द से संकेतित किया जाता था।

"संस्कृत" के लिए "भाषा" शब्द का प्रयोग :

भाषा के अर्थ में संस्कृत का प्रयोग वाल्मीकीय रामायण में पहले पहल मिलता है। सुन्दरकाण्ड में सीता जी से किस भाषा में बातचीत की जाये इसका विचार करते हुए हनुमान जी ने कहा है कि यदि द्विज के समान में संस्कृत वाणी बोलूंगा तो सीता मुझे रावण समझकर डर जायेंगी।[3]

यास्क[4] और पाणिनी[5] के ग्रंथों में लोकव्यवहार में आने वाली बोली का नाम केवल भाषा है। "संस्कृत" शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं मिलता जब "भाषा" का सर्वसाधारण में प्रचार कम होने लगा और प्राकृत भाषाएं बोलचाल की भाषाएँ बन गई तब जान पड़ता है कि विद्वानों ने प्राकृत भाषा से भेद दिखलाने के लिए इसका नाम "संस्कृत" भाषा दे दिया। हमारी इस मान्यता की पुष्टि सातवीं शताब्दी के साहित्यकार और साहित्य शास्त्री दण्डी के इस कथन से होती है -

"संस्कृतं नाम दैवीवागन्वाख्याता महर्षिभिः।[6]

जनता जनार्दन की व्यवहार भाषा : प्राकृत भी :

"भाषा" के साथ-साथ सर्व सामान्य में व्यवहार हेतु प्राकृत-भाषाओं का विविध रूपों में प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। प्राकृतों का अस्तित्व निश्चित रूप से वैदिक बोलियों के साथ-साथ वर्तमान था। इन्हीं प्राकृतों से परवर्ती, साहित्यिक प्राकृतों का विकास हुआ।[7]

संस्कृत का महत्त्व : सुदूर प्राचीन काल से अद्यपर्यन्तः

संस्कृत भाषा सर्वातिशायिनी भाषा है। सुदूर प्राचीन काल से अद्य पर्यन्त उसका महत्त्व यथावत् अक्षुण्ण है। आर्य संस्कृति के प्रतिपादक अधिकांश ग्रन्थरत्न इसी भाषा में विरचित हैं और इस भाषा के ज्ञान से ही उस संस्कृति और जीवन दर्शन तक पहुँच संभव है।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि यह भारतीयता की प्राणभूत भाषा है ।

संस्कृत में भारतीयों का मनन, चिन्तन और अनुभूति सन्निविष्ट है । यह हमारी प्राणभूत भाषा है । इस देश में सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक और साहित्यिक लक्ष्यों की पूर्ति हेतु संस्कृत का विशेष महत्त्व है । इसे देवभाषा, देववाणी अथवा अमर भारती भी कहते हैं ।

वाङ्मय प्रणयन का आधार : संस्कृत :

संस्कृत भारतीय संस्कृति, दार्शनिक चिन्तन, संस्कार, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति कराती है । वेद, धर्मग्रन्थ, पुराण, उपनिषद्, महाकाव्य, स्मृतिग्रन्थ, दर्शन, अर्थ-शास्त्र, काव्य, नाटक, गद्यकाव्य, गीतिकाव्य, आख्यान साहित्य, व्याकरण, काव्यशास्त्र, गणित, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, वास्तुकला, इतिहास, छन्दःशास्त्र एवं कोश ग्रन्थ भी संस्कृत भाषा में ही निबद्ध हैं ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ज्ञान-विज्ञान के सभी अंगों पर विशाल साहित्य संस्कृत भाषा में विद्यमान होना हमारे ऋषियों, कवियों, मनीषियों की संस्कृत प्रियता का परिचायक है । इस भाषा का माधुर्य, लालित्य, संगीतात्मकता और ध्वन्यात्मकता ही उसके प्रति सहज आकर्षण के लिए पर्याप्त है । संस्कृत साहित्य के महत्त्व के सम्बन्ध में डॉ. एम. विंटरनित्स का कथन उपयुक्त ही है-"लिटरेचर" अपने व्यापक अर्थ में जो कुछ भी सूचित करता है, वह सब संस्कृत में विद्यमान है ।"[7]

संस्कृत साहित्य का उद्भव :

संस्कृत भाषा में उपनिबद्ध ऋग्वेद सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम लिखित ग्रन्थ है। वेदों के द्वारा संस्कृत साहित्य का उद्भव स्वीकार किया गया है । वेदों में काव्य के सभी तत्त्व विद्यमान हैं । संस्कृत वाङ्मय का आदि स्रोत "ऋग्वेद" ही है । क्योंकि विश्व वाङ्मय में ऋग्वेद ही सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है । इसके आख्यान सूक्तों में श्रेष्ठ काव्य का स्वरूप प्रतिपादित हुआ है । इसके पश्चात् कृष्ण यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में भी आख्यानों का बृहद् रूप मिलता है ।

संस्कृत साहित्य के दो रूप

परवर्ती युग में भारतीय साहित्य मनीषियों ने संस्कृत साहित्य का दो रूपों में विभाजन किया -

(1) दृश्य और (2) श्रव्य ।

इनमें से श्रव्य काव्य को तीन भागों में विभक्त किया गया -

(1) गद्य (2) पद्य और (3) चम्पू ।

साहित्य के प्रमुख भेदों का संक्षिप्त विश्लेषण निम्न प्रकार है :

1. दृश्य काव्य :

दृश्य काव्य के अन्तर्गत रूपक साहित्य नाटक आदि का विवेचन होता है । श्रीभरत मुनि द्वारा विरचित "नाट्यशास्त्र" में नाटक की उत्पत्ति, प्रयोजन, महत्त्व, स्वरूप, भेद आदि पर सर्वप्रथम प्रमाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसे "पंचमवेद" के रूप में मान्यता प्राप्त हुई । वेदों में नाटक के प्रधान तत्त्व-संवाद, संगीत, नृत्य एवं अभिनय विद्यमान थे,

उन्हीं को ग्रहण करके नाट्यवेद की रचना की गई । इस प्रकार मैं असंदिग्ध रूप से कह सकता हूँ कि वेदों में नाटक के मूल तत्त्व विद्यमान हैं । उन्हीं से हम संस्कृत नाटकों का उद्भव मान सकते हैं । इसके विपरीत संस्कृत नाट्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विदेशी विद्वानों ने अपने-अपने अलग-अलग विचार प्रस्तुत किये हैं ।.

भरत मुनि ने रूपक के 10 भेदों और 18 उपभेदों का विश्लेषण भी किया है ।

2. अन्य काव्य :

इसके अन्तर्गत गद्य, पद्य और चम्पू साहित्य की उत्पत्ति भी विचारणीय है ।

(अ) ''गद्य'' शब्द गद् धातु से यत् (य) प्रत्यय जोड़ने पर बनता है । यह लय प्रधान पद्यबन्ध से भिन्न है । गद्यकाव्य में भाव, भाषा और रस का समुचित परिपाक होता है । वेदों में ही गद्य का अंश प्राप्त होता है । कृष्ण यजुर्वेद में गद्य का उत्कृष्ट निदर्शन है । इसके साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, में भी वैदिक गद्य उपलब्ध होता है । सूत्र ग्रन्थ एवं पुराणों में गद्य की अभिराम छटा के दर्शन सहज ही होते हैं ।

(ब) पद्य-साहित्य के अन्तर्गत लय बन्ध, छन्दों में निबद्ध श्लोकों का अध्ययन किया जाता है । वेदों में उपलब्ध मन्त्र (सामवेद के) और संगीतात्मक पद्य ही पद्य साहित्य का आदिरूप कहे जा सकते हैं ।

(स) चम्पू : गद्य एवं पद्य से मिश्रित रचना 'चम्पू' काव्य कही जाती है । इसमें वर्णनात्मक अंश गद्य में और अर्थ गौरव युक्त अंश पद्य में निबद्ध होता है । अथर्ववेद के अतिरिक्त कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक संहिताओं में इस गद्य-पद्य मिश्रित शैली के दर्शन होते हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों तथा पुराणों में चम्पू पद्धति का प्रारम्भिक स्वरूप सुरक्षित है ।

पद्य साहित्य के अन्तर्गत परवर्ती युग में महाकाव्य, खण्डकाव्य, स्तोत्रकाव्य आदि का विवेचन हुआ है । इस प्रकार काव्य का मुख्य स्रोत वेद ही हैं । इसके साथ ही छन्दः शास्त्र, निरुक्त, काव्यशास्त्र, व्याकरण और कथा साहित्य की मूल सामग्री वेदों में प्राप्त होती है । हम कह सकते हैं कि संस्कृत साहित्य का उद्भव विश्ववाङ्मय के प्राचीन प्रतिनिधि के ऋग्वेद से हुआ है ।

संस्कृत साहित्य का विकास :

संस्कृत साहित्य वेदों से उद्भूत है । इसके पश्चात् इस साहित्य की विकास प्रक्रिया प्रस्तुत करना हमारा लक्ष्य है । अतः संस्कृत साहित्य की प्रमुख विधाओं पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है -

संस्कृत भाषा का साहित्य दो खण्डों में विभाजित है - वैदिक संस्कृत साहित्य और लौकिकसंस्कृत साहित्य ।

(अ) वैदिक संस्कृत साहित्य :

संस्कृत भाषा का आदिसाहित्य ''वैदिक संस्कृत साहित्य'' कहलाता है । इस साहित्य में प्रयुक्त भाषा भी वैदिक संस्कृत कहलाती है । वैदिक साहित्य में वेद - संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् एवं सूत्रग्रन्थों का समावेश किया जाता है। वैदिक साहित्य की सुविधा के लिए चार भागों में विभाजित करते हैं -

1. संहिता या मन्त्रभाग – इसमें चारों वेदों का मन्त्रसमूह सम्मिलित है ।

(1) ऋग्वेद के मन्त्र 'ऋचा' कहलाते हैं । देवताओं की प्रार्थना, यज्ञ विज्ञान से सम्बन्धित तथा दार्शनिक विचारावली से सम्बद्ध मन्त्रों की ऋग्वेद में अधिकता है । ऋग्वेद में 10 मण्डल हैं तथा मन्त्रों की संख्या 10,552 है । ऋग्वेद की शाखल संहिता उपलब्ध है । इसके मन्त्रों का उच्चारण करने वाले को "होता" कहते हैं । यह विश्वसाहित्य का प्राचीन और विशालकाय ग्रन्थ है ।

(2) यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं - कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद ।

कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाओं की चार संहिताएं (तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक, कपिष्ठल) मिलती हैं । शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाओं की दो संहिताएं - (वाजसनेयी एवं काठव संहिता) उपब्ध हैं । (इस वेद पर ऋग्वेद का प्रभाव है । यह कर्मकाण्ड से सम्बन्धित वेद है । यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करने वाले को "अध्वर्यु" कहते हैं ।

(3) सामवेद में अत्यधिक मन्त्र ऋग्वेद के हैं । ऋग्वेद के मन्त्र विशिष्ट पद्धति से गाये जाने पर अपने नाम 'सामन्' को सार्थक करते हैं, इन मन्त्रों को मधुर स्वर से गाने वाले को "उद्गाता" कहा गया है । सामवेद की राणायनीन कौथुभीय, जैमिनीय शाखाएँ प्राप्त हैं । सामवेद 1875 मन्त्र हैं । इस वेद में उपासना की महत्ता प्रतिपादित हुई है ।

(4) अथर्ववेद में रक्षात्मक मन्त्रों की प्रचुरता है । इसमें रोगों की शान्ति, अन्न समृद्धि, अध्यात्मिक आदि विषयों से सम्बद्ध मन्त्र विद्यमान हैं । अथर्ववेद की शौनक एवं पैप्पलाद नामक ये दो संहिताएं ही उपलब्ध हैं । यज्ञ के अवसर पर इस वेद के मन्त्रों का उच्चारण करने वाले पुरोहित को "ब्रह्मा" कहा गया है । अथर्ववेद में 20 काण्ड, 34 पाठक 111 अनवाक 731 सूक्त तथा 5849 मन्त्र हैं ।

2. ब्राह्मण ग्रन्थ – ब्राह्मण ग्रन्थों का सम्बन्ध यज्ञ से है । मन्त्रों की व्याख्या, कर्म काण्ड के प्रश्नों पर विचार करना ब्राह्मण ग्रन्थों का अभिप्रेत्य है । चारों वेदों के अलग-अलग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं - ऋग्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ-ऐतरेय और कौषातकि । यजुर्वेद के तैत्तिरीय और शतपथ ब्राह्मण, सामवेद के दाण्डय, षड्विंश, छांदोग्य, वंश । अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण। इनमें प्रार्थनाएँ, वैदिक ज्ञान, जन-कथाएँ, जादू मन्त्र, सृष्टि का स्वरूप आदि का विवेचन है ।

3. आरण्यक ग्रन्थ – जो अरण्य में पढ़ा जाये या पढ़ाया जाये उसे "आरण्यक" कहते हैं ।[10] भावार्थ यह है कि वेदों की जो विधियाँ वानप्रस्थ को उपयोगी हैं तथा जो वन में रहकर स्वाध्याय, चिन्तन, जप-तप, आदि कार्यों में व्यस्त होते थे उनसे सम्बन्धित ग्रन्थों को आरण्यक कहा है । ये उपनिषदों के पूर्वरूप माने गये हैं । प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् आरण्यक ग्रन्थ हैं - ऐतरेयारण्यक, शांखायन आरण्यक ऋग्वेद के हैं । तैत्तिरीय, मैत्रायणीय आरण्यक कृष्ण यजुर्वेद के हैं । तलवकार, छान्दोग्य आरण्यक सामवेद से सम्बद्ध हैं । अथर्ववेद से सम्बद्ध कोई आरण्यक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता ।

4. उपनिषद – उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ है - "तत्त्वज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु के पास सविनय बैठना" । "अध्यात्म या ब्रह्म विद्या भी इसका अर्थ है । उपनिषदों की संख्या 108 मानी गयी है किन्तु मुख्य ग्यारह उपनिषदें ही उपलब्ध हैं - ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वेतर। इनकी प्रामाणिकता

का परीक्षण करने के पश्चात् ही शंकराचार्य ने भाष्य लिखा है । इनमें से अधिकांश किसी न किसी वेद से सम्बद्ध हैं ।

उपनिषदों में जीवात्मा, परमात्मा, जगत् आदि दार्शनिक सिद्धान्तों की उपस्थिति है। उपनिषद् वैदिक साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश है । वे ज्ञान के वास्तविक प्रतिनिधि हैं और भौतिकवाद से विमुख करने के माध्यम हैं ।

वेदाङ्ग

वेदों के वास्तविक अर्थ को समझाने के लिए जो सक्षम हैं उन्हें ''वेदाङ्ग'' कहते हैं । उनके द्वारा मन्त्रों के अर्थ, व्याख्या और यज्ञादि में सहयोग आदि के कारण इनका अपना महत्व है । वेदाङ्ग छः हैं - ये सभी वेदाङ्ग सूत्र शैली में निबद्ध हैं - शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प ।

पुराण

''पुराण'' का अर्थ है - प्राचीन (पुराना) । इन ग्रन्थों में प्राचीन कथानक, वंशावलि, इतिहास, भूगोल ज्ञान विज्ञान आदि का समावेश है । पुराण ज्ञान के कोश माने गये हैं। इनमें आचार-विचार, व्यवहार तथा जीवन से सम्बद्ध समग्र उपयोगी तथ्य मिलते हैं तथा ये प्राचीन इतिहास और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं । पुराणों की संख्या 18 है- मत्स्य, मार्कण्डेय, भविष्य, भागवत, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म, वामन, वराह, विष्णु, वायु, (शिव), अग्नि, नारद, पद्म, लिङ्ग, गरुड, कूर्म, और स्कन्द पुराण । सभी पुराणों की श्लोक संख्या लगभग चार लाख हैं ।[11] उपपुराणों की संख्या भी 18 ही है । इनके नाम इस प्रकार हैं - सनत्कुमार, नारसिंह, स्कान्द, शिवधर्म, आश्चर्य, नारदीय, कपिल, वामन, औशनस, ब्रह्माण्ड, वारुण, कालिका, माहेश्वर, साम्ब, और पाराशर, मारीच, भार्गव। संस्कृत भाषा में निबद्ध जैन और बौद्ध धर्म के भी अनेक पुराण मिलते हैं ।

जैन पुराण :

प्रमुख रूप से जैन तीर्थङ्करों तथा शलाका पुरुषों के चरित्र विश्लेषित हुए हैं । जैन पुराणों में आचार्य जिनसेन का आदि पुराण, गुणभद्र का उत्तर पुराण, जिनसेन (द्वितीय) का हरिवंश पुराण, रविषेण का पद्मपुराण, हेमचन्द्र का त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित आदि विशेष प्रसिद्ध हैं ।[12] जैन पुराण वैदिक पञ्चलक्षणी न होकर ''पुरातनं पुराणं स्यात्तत् महन् महदाश्रयात्'' लक्षण का अनुसरण करते हैं ।

बौद्ध पुराण :

बौद्ध पुराणों में आख्यान, इतिहास, बौद्धों के वृत्तादि और प्रधान-प्रधान तथागतों की जीवनी वर्णित है । बौद्ध धर्म से सम्बन्धित पुराणों की संख्या नौ है । नेपाली बौद्ध नौ के अतिरिक्त दो और पुराण मानते हैं ।[13]

संस्कृत में निबद्ध धर्म साहित्य : ''धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः'' - मनु के अनुसार स्मृति साहित्य के अन्तर्गत धर्मशास्त्र का अध्ययन होता है । इस प्रकार स्मृति एवं उप-स्मृति ग्रन्थों की संख्या लगभग 100 है । किन्तु इस साहित्य में महामानव मनु द्वारा विरचित ग्रन्थ ''मनु स्मृति'' सर्वश्रेष्ठ रचना है । यह 12 अध्यायों में विभाजित 2694 श्लोकों में निबद्ध कृति है । इसकी शैली सरस और सरल है । ''याज्ञवल्क्य स्मृति'' में 1010 श्लोक हैं यह तीन

भागों में विभक्त है । तत्पश्चात् कलियुग की सर्वोत्तम स्मृति ''पराशर स्मृति'' का महत्त्व अप्रतिम ही है । धर्मशास्त्र से सम्बद्ध अन्य टीका ग्रन्थ और निबन्ध ग्रन्थ भी लिखे गये इस प्रकार धर्मशास्त्र भी उन्नत अवस्था में रहा है ।

दर्शन : भारतीय दर्शन शास्त्र का मूलरूप वेदों में सन्निहित है । उपनिषद्, पुराण, आरण्यक आदि ग्रन्थों में भी पर्याप्त दार्शनिक सामग्री प्राप्त होती हैं । भारतीय दर्शन के दो भेद हैं - वैदिक और अवैदिक । वैदिक दर्शन की छः शाखाएँ हैं - न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त । अवैदिक दर्शन की चार्वाक, बौद्ध और जैन ये तीन शाखाएँ हैं ।

इसके अतिरिक्त ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, भौतिक विज्ञान, रसायन, वनस्पति, प्राणिशास्त्र, यन्त्र विज्ञान, विमान विज्ञान, भाषा विज्ञान, राजधर्म, नागरिक शास्त्र, कामशास्त्र विषयक साहित्य के सहस्त्रों ग्रन्थ हमारे ऋषियों, मनीषियों के सुदीर्धकालीन अनुभव और ज्ञान के प्रतीक हैं । ये सभी संस्कृत भाषा में लिखित हमारे विपुल साहित्य को गरिमामण्डित किये हुए हैं । भारत अपनी प्राचीन साहित्य सम्पदा की सम्पन्नता के कारण विश्व का गुरु रहा है। क्योंकि विदेशी विद्वानों ने प्राथमिक शिक्षा भारतीय मनीषियों के सान्निध्य में ही प्राप्त की थी ।

(ब) लौकिक संस्कृत साहित्य :

लौकिक संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य, गद्यकाव्य, नाटक, चम्पू आदि का विवेचन होता है ।

रामायण - लौकिक संस्कृत का प्रथम ग्रन्थ ''रामायण'' है । इसीलिए इसे आदिकाव्य कहते हैं और इसके रचयिता वाल्मीकि को आदि कवि । रामायण सात काण्डों में विभक्त है जिनमें 24 हजार श्लोक समाविष्ट हैं । यह एक धार्मिक ग्रंथ तथा आचार संहिता है और आद्योपान्त रामकथा विद्यमान है । यह परवर्ती साहित्यकारों का आधार ग्रन्थ है। इसमें नैतिक आदर्शों की विपुलता है । विभिन्न मतों का अवलोकन करने पश्चात् रामायण का समय (रचनाकाल) 500 ई.पू. मानना युक्ति संगत है ।

महाभारत - महाभारत भारतीय साहित्य का आकर ग्रन्थ है । इसमें कौरव पाण्डवों के युद्ध की कथा के अतिरिक्त अनेक आख्यान, धार्मिक उपदेश एवं शिक्षाएँ प्रतिपादित हैं, यह विश्वकोष माना गया है । महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास हैं । यह ग्रन्थ 18 पर्वों में आबद्ध कौरव पाण्डवों से सम्बद्ध इतिहास है । इसे ''पञ्चमवेद'' भी कहा गया है । भारतम् पञ्चमोवेदः । इसके 18 पर्वों के नाम अधोलिखित हैं - आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य सौप्तिक, स्त्री, शांति, अनुशासन आवश्मेधिक आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहण । इस प्रकार महाभारत में 1 लाख श्लोक हैं । इस ग्रंथ की महत्ता लोकोत्तर/सर्वोपरि है । विभिन्न मतों का अध्ययन करने के पश्चात् इसकी समय सीमा लगभग 500 ई. पू. या प्रथम शताब्दी निर्धारित की गयी है । इस ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण भाग श्रीमद्भगवद् गीता है । इसमें 18 अध्याय है । जिनमें श्री कृष्ण अर्जुन को प्रेरणाप्रद उपदेशों का निदर्शन है ।

महाकाव्यों का विकास :

रामायण और महाभारत ग्रन्थों के पश्चात् पाणिनी ने ''पातालविजय'' (जाम्बवती जय) महाकाव्य 18 सर्गों में लिखा, इसके साथ ही वररुचि ने भी ''स्वर्गारोहण'' काव्य बनाया

तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि द्वारा ''महानन्द'' काव्य लिखा गया । इसके पश्चात् संस्कृत काव्याकाश में तेजस्वी दिनमणि के समान कालिदास का उदय हुआ । उन्होंने 17 सर्गों में ''कुमार सम्भव'' की रचना की । इसमें शिव-पार्वती के विवाह की रोचक कथा निबद्ध है । कालिदास कृत ''रघुवंश महाकाव्य'' भी 19 सर्गों में आबद्ध रामायण के कथानक पर आधारित कृति है । इनके परवर्ती अश्वघोष ने प्रथम शताब्दी में ही सौन्दरनन्द और बुद्धचरित नामक महाकाव्यों की रचना की । सौन्दरनन्द के 18 सर्गों में गौतम बुद्ध द्वारा अपने सौतेले भाई नन्द को उसके पत्नी सुन्दरी के मोहपाश से विरक्त करने की मनोहर कथा प्रस्तुत हुई है । बुद्धचरित के 28 सर्गों में गौतम बुद्ध के सम्पूर्ण जीवन चरित्र को अङ्कित किया गया है । इन कृतियों में दर्शन एवं कवित्व का समन्वय विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है । अश्वघोष के पश्चात् 3 शताब्दियों तक किसी श्रेष्ठ महाकाव्य का प्रणयन नहीं हुआ । श्री लंका के राजा कुमारदास ने 520 ई. के लगभग '' जानकी हरण'' नामक महाकाव्य लिखा । इसमें 20 सर्ग हैं और दशरथ के राज्यवर्णन से रामविजय तक की कथा वर्णित है ।[14] महाकाव्य परम्परा की श्रेष्ठ रचना 7वीं शती में भारवि द्वारा विरचित 18 सर्गों में निबद्ध ''किरातार्जुनीयम्'' महाकाव्य है । इसमें कौरवों को पराजित करने के लिए अर्जुन द्वारा तपस्या पूर्वक शिवजी से ''पाशुपत अस्त्र'' प्राप्त करने का मनोहर वर्णन हुआ है । इसमें कलापक्ष की प्रधानता है और अर्थ गौरव के लिए भारवि विख्यात हैं । संस्कृत महाकाव्यों में भट्टी कृत ''रावणबध'' अपना विशिष्ट गौरव रखता हैं । इसे ''भट्टी काव्य'' भी कहते हैं । इसमें 22 सर्ग हैं और रामकथा का विश्लेषण हुआ है । इसमें व्याकरण के नियमों का काव्यमयी भाषा में विवेचन है । 7वीं शती में महाकवि माघ ने 20 सर्गों में निबद्ध ''शिशुपालवध'' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया । इसमें महा अत्याचारी शिशुपाल का वध श्री कृष्ण द्वारा किये जाने का वर्णन है । इसमें माघ की प्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन है यह काव्य अर्थ गौरव, पदलालित्य आदि के लिए विख्यात है ।

इसके पश्चात् 8वीं शती में महाकवि रत्नाकर ने 50 सर्गों में सर्वाधिक विशालकाय ''हरविजय'' महाकाव्य की रचना की । इसमें कुल 4321 पद्य हैं । शिव द्वारा अंधकासुर के वध का कथानक प्रस्तुत हुआ है । इसमें कथा प्रवाह में गतिहीनता है और अन्य प्रसङ्गों को अनावश्यक विस्तार मिला है । 9वीं शताब्दी में अभिनंद कवि ने ''रामचरित''[15] तथा ''कादम्बरी कथासार''[16] महाकाव्य लिखे हैं । 11वीं शती में महाकवि क्षेमेन्द्र ने ''दशावतार चरित, भारत मञ्जरी, रामायण मञ्जरी ग्रन्थों की रचना की । काश्मीर के ही मंख कवि ने 12 शती में 25 सर्गों में आबद्ध ''श्रीकण्ठचरित'' महाकाव्य का प्रणयन किया । 12वीं शती के उत्तरार्द्ध में कन्नौज महाराज के आश्रित कवि श्रीहर्ष अप्रतिम प्रतिभा के धनी महाकाव्यकार हुए । उनका 22 सर्गों में प्रस्तुत ''नैषधीय चरित'' महाकाव्य नल और दमयन्ती की प्रणय कथा का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है । यह कवि अपने पाण्डित्य, वैदुष्य और कल्पनाशक्ति के कारण विश्रुत है । इस महाकाव्य में उनकी विलक्षणता प्रतिबिम्बित हुई है । इसी शती में कविकर्णपूर ने ''पारिजातहरण'' महाकाव्य[17] की रचना की । कुछ अन्य महाकाव्यों की रचना भी हुई । तत्पश्चात् 16वीं शती में साहित्यसुधा, रघुनाथयूप विजय आदि महाकाव्य मिलते हैं । राजचूडामणि दीक्षित कृत ''रुक्मिणी कल्याण'' 10 सर्गों में है और'' शङ्कराभ्युदय[18] शङ्कराचार्य के जीवन पर आधारित (6 सर्गों में) महाकाव्य है । सत्रहवीं शती में नीलकण्ठ कृत ''शिवलीलार्णव'' 22 सर्गों में निबद्ध शिव की 64 लीलाओं से ओतप्रोत महाकाव्य है । इनकी दूसरी रचना ''गङ्गावतरण'' 8 सर्गों में आबद्ध रचना है ।[19] इसी शती में रामचन्द्रोदय,

नाटेशविजय, भूराहविजय, मुकुन्दविलास आदि महाकाव्य लिखे गये । अठारहवीं शती की कृतियों में प्रमुख रूप से घनश्याम कृत भगवत्पाद चरित, वेंकटेश चरित, रामपणिवाद द्वारा विरचित विष्णु विलास, (8 सर्गों) राघवीय काव्य (20 सर्ग) केरलवर्मा कृत विशाखराज, लक्ष्मण सूरिकृत ''कृष्ण लीलामृत एवं परमेश्वर शिवद्विज कृत ''श्रीरामवर्ममहराज चरित'' (8सर्ग) उल्लेखनीय कृतियाँ हैं ।

19वीं शती में विधुशेखर भट्टाचार्य का उमापरिणय, हरिश्चन्द्र चरित, नारायण शास्त्री कृत सौन्दरविजय (24 सर्ग), बंगाल के हेमचन्द्र राय द्वारा विरचित सत्यभामापरिग्रह, हैहयराज, पाण्डव विजय, परशुराम चरित महाकाव्य कृतियाँ विशेष महत्त्व रखती हैं । 20वीं शती में रचित महाकाव्यों में प्राचीन एवं नवीन परम्पराओं का भाव और शैली की दृष्टि से समन्वय हुआ है । वटुकनाथ शर्मा का सीता स्वयंवर, शिवकुमार शास्त्री का ''यतीन्द्र जीवन चरित'', नागराज कृत (1940 के पहले) सीता स्वयंवर[20] (16 सर्गों में) के अतिरिक्त भगवदाचार्य ने (3 भागों में) ''भारत पारिजात'' के प्रथम भाग में (25 सर्गों में) महात्मा गांधी का चरित लिखा । दूसरे भाग ''पारिजातापहार (29 सर्गों में) 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन तक की घटनाओं का सङ्कलन है और तीसरे भाग ''पारिजात सौरभ'' के 21 सर्गों में स्वतंत्र भारत का सजीव मूल्याङ्कन किया गया है[21] इसके पश्चात् उमापतिशर्माकृत ''पारिजातहरण''[22] भी उत्कृष्ट महाकाव्य है । रामसनेही दास का 108 अध्यायों में विरचित जानकी चरितामृतम्[23] राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण महाकाव्य हैं । द्विजेन्द्रनाथ का 18 सर्गों में निबद्ध ''स्वराज्यविजय'' भारतीय जनजीवन और आजादी के संघर्ष का विवेचन करता है । इसके साथ ही अन्य अनेक महाकाव्य वर्तमान समय में लिखे जा रहे हैं काश्मीरी कवियों जैन तथा बौद्ध कवियों ने भी अपना अमूल्य योगदान करके महाकाव्य परम्परा को समुन्नत एवं पल्लवित किया है।

ऐतिहासिक काव्य :

ऐतिहासिक काव्यों की दिशा में विशेष रुचि हमारे साहित्यकारों की प्रायः नहीं रही। काव्य के रूप में बुद्धचरित, प्रथम ऐतिहासिक काव्य है । बाणभट्ट का हर्षचरित ऐतिहासिक सामग्री युक्त (हर्ष के जीवन चरित पर आधारित) काव्य है । वाक्पतिराज महाराष्ट्री प्राकृत में गउडवहो (गौड़ बध) में कन्नौज के राजा यशोवर्मा की पराजय और उसके वध का वर्णन किया गया है । पद्मगुप्त परिमल ने 11वीं शती में अठारह सर्गों में निबद्ध ''नवसाहसाङ्क चरित'' लिखा । इसमें मालवा के राजा नवसाहसाङ्क द्वारा राजकुमारी शशिप्रभा को वरण करने का वर्णन किया गया है ।[24] इसी समय बिल्हण ने अपने आश्रय दाता विक्रमादित्य षष्ठ के जीवन चरित पर 18 सर्गों में ''विक्रमाङ्कदेव चरित'' महाकाव्य लिखा इनके पश्चात् संस्कृत साहित्य के प्राख्यात इतिहासकार कल्हण ने 8 तरङ्गों की ''राजतरङ्गिणी'' में काश्मीर के राजाओं का वर्णन किया है । इसमें 7826 पद्य हैं । कल्हण ने 12वीं शती में अपने आश्रयदाता सोमपाल के वृत्तान्त का संग्रह ''सोमपाल विलास'' नामक काव्य में किया है । कवि हेमचन्द्राचार्य ने ''कुमारपाल[25] चरित की रचना की । कवि जयानक का पृथ्वीराज विजय[26] भी अन्यतम कृति है । इसमें पृथ्वीराज को राम का अवतार माना गया है । 13वीं शती में 13 सर्गों में निबद्ध ''सुकृत सङ्कीर्तन''[27] अरिसिंह की रचना है । सर्वानन्द ने जैनगृहस्थ जगडूशाह के परोपकार पूर्ण कार्यों का निदर्शन ''जगदूचरित'' काव्य के 7 सर्गों में प्रस्तुत किया है । मेरुतुङ्गाचार्य की ''प्रबन्ध चिन्तामणि में जैन कवियों एवं जैन महापुरुषों की आत्म कथाएँ चित्रित हुई हैं । वामन भट्ट वाण कृत वेमभूपाल चरित उत्कृष्ट ऐतिहासिक काव्य है । अब्दुल्लाह मन्त्री

का चरित "अब्दुल्लाह चरित[28] काव्य में लक्ष्मीधर कवि ने उपस्थित किया है। इसमें मुगल कालीन संस्कृति का परिचय मिलता है । "भारत वर्णन" काव्य में गणपति शास्त्री ने देश का स्वरूप अङ्कित किया है । इसी प्रकार 20 वीं शती में कवि विजय राघवाचार्य ने गांधी माहात्म्य, तिलक वैदग्ध, नेहरु विजय नामक काव्यों के माध्यम से उपर्युक्त नेताओं की राष्ट्रभक्ति का मूल्याङ्कन किया है । जैन एवं बौद्ध कवियों ने भी अनेक ऐतिहासिक काव्यों का सृजन किया है ।

चम्पूकाव्य :

जिस काव्य में गद्य-पद्य का संयुक्त प्रयोग किया जाता है उसे "चम्पू काव्य" कहते हैं - "गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।"[29]

चम्पू काव्य परम्परा का प्रारम्भ वैदिक साहित्य से - (अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, कृष्ण यजुर्वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के उपाख्यानों में) होता है । महाभारत, विष्णु पुराण, भागवतपुराण बौद्ध जातक कथाओं में चम्पू शैली के दर्शन किये जा सकते हैं । तदनन्तर चतुर्थ शती के पश्चात् परवर्ती शिलालेखों जैसे हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति आदि में चम्पू पद्धति का अनुसरण किया गया है । परन्तु अब तक उपलब्ध साहित्य के आधार पर काव्य के सम्पूर्ण लक्षणों से समन्वित चम्पू पद्धति का प्रवर्तक (त्रिविक्रमभट्ट कृत) "नलचम्पू" ही माना गया है। इसमें गद्य और पद्य का समान भावात्मक काव्यमय उत्कर्ष सर्वप्रथम दिखाई देता है । अतः हम 10 शती में लिखित "नलचम्पू"[30] को चम्पू शैली का प्रथम ग्रन्थ कह सकते हैं । इसमें नल और दमयन्ती के प्रणय की कथा 7 उच्छ्वासों में मिलती है, किन्तु ग्रन्थ अधूरा ही है । मदालसा चम्पू लेखक की दूसरी रचना है।

उसी युग में दिगम्बर जैन सोमदेव सूरि ने "यशस्तिलक चम्पू" आठ आश्वासों में निबद्ध किया है ।[31] जैन संस्कृति में प्रसिद्ध यशोधर इसके चरित नायक हैं । जैन धर्म के सिद्धान्तों अहिंसा आदि का प्रचार करना एवं पुनर्जन्म की रहस्यमयी प्रवृत्तियों को समझाना कथानक का प्रमुख लक्ष्य है । यह ग्रन्थ कादम्बरी के आदर्शों पर निर्मित हुआ है । "यशस्तिलक चम्पू" के अन्तिम 3 आश्वासों में जैन धर्म के उपदेशात्मक सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है । जैन मुनि जीवन्धर का जीवन चरित कवि हरिचंद्र के "जीवनधर चम्पू" में (ग्यारह लम्बकों में) अङ्कित हुआ है ।[32] यह ग्रन्थ गुणभद्र के उत्तरपुराण" पर आधारित है ।

पुराण, कथा रामायणादि ग्रन्थो पर आश्रित विविध चम्पू काव्यों का सृजन हुआ है। धारा के प्रसिद्ध राजा भोज ने वाल्मीकि रामायण का आश्रय लेकर "रामायण चम्पू" या चम्पू रामायण[33] किष्किन्धा काण्ड तक लिखी, लक्ष्मण कवि ने "युद्धकाण्ड" और वेंकटराज ने "उत्तरकाण्ड" लिखकर ग्रन्थ की पूर्ति की है । वैदर्भीरीति में लिखित एवं आलङ्कारिक सौन्दर्य से समन्वित "रामायण चम्पू" उत्कृष्ट रचना है ।

अभिनव कालिदास ने 11वीं शताब्दी में 6 अध्यायों की परिधि के अन्तर्गत भागवत कथा अपने "भागवत चम्पू" के माध्यम से प्रस्तुत की है । इसी समय अनन्त भट्ट ने महाभारत की कथा (12 स्तबकों में विरचित) भारत चम्पू[34] में प्राञ्जलता तथा सरसता के साथ उपस्थित की है । भारत चम्पू में कल्पना की नवीनता, कविप्रतिभा एवं वैदर्भी की छटा सर्वत्र परिलक्षित होती है । सोड्ढल की "उदयसुन्दरी कथा" भी गद्य-पद्यात्मक होने से चम्पू काव्यों में समाविष्ट है । इसके 8 उच्छ्वासों में नागराजकुमारी उदय सुन्दरी और राजा मलयवाहन के विवाह की हृदयस्पर्शी कथा निबद्ध है ।

सोलहवीं शती के प्रारम्भ में रानी तिरुमलाम्बा कृत वरदाम्बिका परिणय चम्पू[35] अन्यतम रचना है । इसमें लेखिका ने वरदाम्बिका नाम से अपने ही परिणय का मनोरम वर्णन प्रौढ़ शैली में किया है । ये अच्युतराय की पत्नी थीं । ''इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि डा. लक्ष्मण स्वरूप ओरियण्टल कालेज लाहौर के प्रधानाचार्य को, 1924 ई. में प्राप्त हुई । (तंजौर लायब्रेरी से) डा. लक्ष्मण स्वरूप एवं हरिदत्त शास्त्री के सम्पादकीय में 1932 ई. में वरदाम्बिका परिणय'' चम्पू प्रकाशित हुआ ।[36] विविध कलाओं की मर्मज्ञ लेखिका ने इसमें कवित्व और पाण्डित्य का वैभव उपस्थित किया है । 13वीं शती में दिगम्बर जैन पं. आशाधर सूरि ने जैन तीर्थङ्कर आदिनाथ के पुत्र भरत का जीवन चरित ''भरतेश्वराभ्युदय-चम्पू'' में उद्घाटित किया है।

अर्हदास ने जैन तीर्थङ्कर आदिनाथ पर आधारित पुरुदेव चम्पू का प्रणयन किया। इस ग्रन्थ की ललित, अलङ्कृत भाषा सहज ही पाठकों को आकृष्ट कर लेती है । दिवाकर ने वाल्मीकि रामायण की सार सामग्री लेकर ''अमोघ-राघव चम्पू की रचना की हैं । 14वीं शती में अहोबल सूरि ने यतिराज-विजय'' चम्पू के 16 उल्लासों में रामानुजाचार्य की जीवन लीला अङ्कित की हैं और अपने दूसरे चम्पूकाव्य ''विरुपाक्ष वसन्तोत्सव'' में वसन्तोत्सव की विपुलता प्रस्तुत की है । अहोबल सूरि की रचनाएँ ऐतिहासिक हैं उनमें आद्योपान्त कवित्व का निदर्शन है ।

हरिवंश और भागवत पुराणों में वर्णित रुक्मिणी-विवाह के वृत्तान्त से प्रभावित होकर अमराचार्य (अम्मल) ने ''रुक्मिणी परिणय चम्पू) का प्रणयन किया । तत्पश्चात् 15 वीं शताब्दी में कवितार्किक सिंह ने रामानुजीसन्त वेदान्तदेशिक के जीवन चरित पर आधारित ''आचार्य विजय चम्पू'' की रचना की । हमें उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में चम्पू काव्यों में विशिष्टता दिखाई पड़ती है । आन्ध्र एवं द्रविड़ कवियों ने विविध वर्णनों का आधार चम्पू शैली को बनाया ।

समरपुङ्गव दीक्षित ने ''यात्रा प्रबन्ध चम्पू[37] में दक्षिण भारत के तीर्थों में की गई अपनी यात्रा का रोचक वर्णन किया है विषय की नवीनता होते हुए भी प्राकृतिक प्राचीन परम्परा का अनुकरण इस ग्रन्थ में किया गया है । 16वीं शती में कवि कर्णपूर ने भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर 22 स्तबकों में ''आनन्द वृन्दावन'' चम्पू[38] का प्रणयन किया । इसमें कृष्ण जन्म से लेकर यौवनावस्था तक की ललित लीलाओं का चित्रण मिलता है । वल्ली सहाय कवि द्वारा प्रणीत ''आचार्य दिग्विजय चम्पू'' शङ्कराचार्य के विराड् व्यक्तित्व का श्रेष्ठ निदर्शन है । यह प्रसाद गुणयुक्त शैली में शङ्कराचार्य की दिग्विजय का सम्यक् निरुपण करता है । ''काकुस्थ विजय चम्पू'' वल्लीसहाय की दूसरी चम्पू रचना है । चिदम्बर ने 16वीं शती में ''भागवत चम्पू'' और ''पञ्चकल्याण चम्पू'' इन दो चम्पू ग्रन्थों का सृजन किया। ''भागवत चम्पू'' में भागवत की प्रसिद्ध कथा ३ स्तबकों में निबद्ध है और ''पञ्चकल्याण चम्पू'' में श्लेष पद्धति पर आधारित राम, कृष्ण, विष्णु शिव, सुब्रह्मण्य के विवाह की कथा को एक साथ उपस्थित किया गया है । 16वीं शती के चम्पू काव्यों में शेषकृष्ण कृत 5 अध्यायों में सम्पन्न ''पारिजात हरण[39] चम्पू अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है । इसमें सपत्नी द्वेष का अनोखा प्रसङ्ग वर्णित है । दैवज्ञ सूर्य कृत ''नृसिंह चम्पू[40] पाँच उच्छवासों में नरसिंहावतार की कथा का साकार स्वरूप प्रस्तुत करता है । कवि केशव भट्ट ने भी नृसिंह चम्पू[41] 6 स्तबकों में सुगुम्फि किया और ''नृसिंह चम्पू'' (चार उल्लासों में) संघर्षण ने भी लिखा है । ये तीनों चम्पू ग्रन्थ प्रह्लाद चरित पर आधारित है जिससे हमें उसकी लोक प्रियता

का आभास हो जाता है । 16वीं शती में ही कृष्ण कवि ने ''मन्दारमरन्द चम्पू'' का सृजन किया । इसमें गन्धर्व दम्पती की कथा का आश्रय लेकर नायक, गुण, दोष, अलङ्कार, छन्दों आदि के लक्षण और उदाहरण निदर्शित हैं अत: यह एक लक्षण ग्रन्थ ही है । पद्मनाम मिश्र के वीरभद्रदेव चम्पू'' में तत्कालीन रीवा राज्य का सजीव चित्रंण विश्लेषित है । कवि नारायण भट्ट ने लगभग 15 चम्पू कृतियाँ संस्कृत साहित्य को प्रदान की हैं जिनमें ''स्वाहा सुधाकर'' चम्पू और 'मत्स्यावतार' प्रबन्ध चम्पू अत्यन्त विख्यात हैं ।

17वीं शताब्दी में जीव गोस्वामी का गोपाल चम्पू[42] श्रीकृष्ण के समग्र लोकरञ्जक चरित्र का मार्मिक विवरण प्रकट करता है । ओरछा निवासी कवि मित्र मिश्र ने अपने ''आनन्द कन्द चम्पू[43] में श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का अत्यन्त सजीव और ओजस्वी वर्णन किया है । महाप्रभु चैतन्य के शिष्य रघुनाथ दास का ''मुक्ता चरित्र'' भी कृष्ण की लीलाओं से सम्बद्ध चम्पूकाव्य है । इसमें सत्य भामा की अपेक्षा राधा के प्रति कृष्ण के स्वतन्त्र प्रेम की उत्कृष्टता निरुपित की गयी है । नीलकण्ठ दीक्षित कृत ''नीलकण्ठ विजय चम्पू'' 5 आश्वासों में सम्पन्न समुद्र मन्थन और शिव द्वारा विषपान से सम्बद्ध वर्ण्य विषय पर विरचित है । इस ग्रन्थ में वक्रोक्ति अलङ्कार के माध्यम से विलासी जीवन पर कठोरव्यङ्ग्य किया गया है एवं भावों की सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्ति हुई है । चक्रकवि ने महाभारत के आदि पर्व की कथा पर आश्रित ''द्रौपदी परिणय चम्पू''' की रचना की है । इनकी अन्य चम्पू कोटि की रचनाएँ भी हैं । परवर्ती युग में हमें ''उत्तर चम्पू'' ग्रन्थों की बहुलता दिखाई पड़ती है । उत्तर राम चरित के कथानक से सम्बद्ध यतिराज, शङ्कराचार्य, हरिहरानन्द, वेंकटाध्वरि आदि कवियों ने ''उत्तर चम्पू'' ग्रन्थों का प्रतिपादन किया है ।

वेङ्कटाध्वरि की सर्वश्रेष्ठ कृति 'विश्वगुणादर्श चम्पू'[44] है । इसमें दो गन्धर्वों द्वारा अपने-अपने विमानों में चढ़कर भारत के विभिन्न तीर्थ स्थलों का भ्रमण करना और वहां के गुण दोषों का क्रमश: वर्णन करना - प्रस्तुत किया गया है । अत: भारत की भौगोलिक झांकी कवि ने नवीन शैली के माध्यम से उपस्थित की है ।

इनके दूसरे चम्पू काव्य श्री निवास चम्पू के 10 अध्यायों में तिरुमलाइ में विद्यमान देवता की प्रशस्ति है । ''वरदाभ्युदय चम्पू'' में कांजीवरम् मन्दिर का महत्त्व वर्णित है। 18वीं शती में कवि शङ्कर ने शङ्कर चेतोविलास चम्पू'' काशी नरेश चेतसिंह की प्रशंसा में लिखा है । ''गङ्गावतरण'' कवि शङ्कर का 7 उच्छ्वासों में निबद्ध दूसरा चम्पू ग्रन्थ है । वाणेश्वर विद्यालंकार ने ''चित्र चम्पू''[45] में वैष्णव भावों की अभिव्यक्ति की है। यह ग्रन्थ बर्दवान के महाराज चित्रसेन के आदेश पर लिखा गया है । विश्वनाथ सिंह ने 8 परिच्छेदों में ''रामचन्द्र चम्पू का सृजन किया है । राजा सुदर्शन की विख्यात कथा कृष्णानन्द कवीन्द्र के सुदर्शन चम्पू काव्यम् में आबद्ध[46] सदाशिव शास्त्री मुसलगांव कर ने सिंधिया नरेशों की प्रशंसा ''शिन्दे विजय विलास चम्पू'' का प्रणयन किया । यह ऐतिहासिक ग्रन्थ है ।

संस्कृत साहित्य में चम्पू शैली पर निर्मित काव्यों की विपुलता है । 19वीं शताब्दी के पश्चात् की बहुत सी चम्पू कृतियाँ अप्रकाशित ही है । रामायण महाभारत एवं पुराणों के कथानकों को आधार बनाकर अगणित चम्पू लिखे गये हैं ।

संस्कृत पत्र–पत्रिकाएं :

संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रचार और प्रसार में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रमुख योगदान रहा है । कतिपय पत्र-पत्रिकाएँ आज भी अपना पूर्ण वर्चस्व बनाये हैं ।साप्ताहिक,

पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, षाण्मासिक एवं वार्षिक इन विभिन्न रूपों में संस्कृत भाषा में लिखित पत्र-पत्रिकाएँ उसके साहित्यिक विकास को सार्थक बनाती हैं।

(क) अप्राप्य प्राचीन पत्र और पत्रिकाएँ :

1. सुनृतवादिनी (मैसूर), 2. संस्कृत चन्द्रिका (कोल्हापुर), 3. मित्रगोष्ठी (काशी), 4. विद्योदय (लाहौर), 5. उद्योत (लाहौर), 6. शारदा (प्रयाग), 7. कालिन्दी (आगरा), 8. वैदिक-मनोहरा (कांजीवरम), 9. सुरभारती (बम्बई), 10. आन्ध्र-संस्कृत साहित्य-पत्रिका (आन्ध्र), 11. श्री (काश्मीर), 12. श्री शारदा (मैसूर), 13.आर्यप्रभा (कलकत्ता), 14. भारती (पूना), 15. अमरवाणी (राजस्थान), 16. मधुरवाणी (गद्ग-कर्नाटक), 17. अमर भारती (काशी), 18. वल्लरी (काशी), 19. उच्छृंखल (वाराणसी), 20. आर्य विद्या सुधाकर (काशी) 21. ज्योतिष्मती (काशी), 22. संस्कृत प्रभा (मेरठ), 23. संस्कृत-मञ्जूषा (कलकत्ता), 24. प्रणय-पारिजात (कलकत्ता), 25. साधना (बडौदा), 26. मनोरमा (उत्कल), 27. कौमुदी (सिन्ध, हैदराबाद), 28. अमृत भारती (कोचीन), 29. साहित्य सुधा (पटना), 30. काव्य कादम्बिनी (लश्कर), 31. संस्कृत-साहित्य-परिषद् (कलकत्ता)

(ख) वर्तमान पत्र–पत्रिकाएँ :

(1) साप्ताहिक - भवितव्यम् (नागपुर), संस्कृतम् (अयोध्या), गाण्डीवम् (वाराणसी), भाषा (गुन्तूर), पण्डित-पत्रिका (काशी) ।

(2) पाक्षिक - भारतवाणी (पूना), शारदा (पूना), संस्कृत-साकेत (अयोध्या)।

(3) मासिक - संस्कृत मञ्जूषा (कलकत्ता), उद्यान-पत्रिका (तिरुवैयक तंजौर), सूर्योदय (काशी), आनन्दकल्प तरु (कोयम्बटूर), अर्वाचीन संस्कृतम् (दिल्ली), गुरुकुल-पत्रिका (गुरुकुल-कांगडी, हरिद्वार), जयतु संस्कृतम् (काठमाण्डू), दिव्य ज्योतिः (शिमला), बाल संस्कृतम् (बम्बई), भारती (जयपुर), भारती-विद्या (बम्बई), मालव-मयूर (मन्दसौर), संस्कृत-रत्नाकर (दिल्ली), सरस्वती सौरभ (बड़ौदा), संस्कृत-सञ्जीवनम् (पटना), साहित्य-वाटिका (दिल्ली), भारतोदयः (गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार), सर्वगन्धा (लक्ष्मणपुरम्) विज्ञान ज्योतिः (खुर्जा)।

(4) त्रैमासिक- सङ्गमनी (प्रयाग)-कामेश्वर सिंह-संस्कृत विश्वविद्यालय पत्रिका (दरभंगा), ब्रह्मविद्या (अड्यार मद्रास), सारस्वती-सुषमा (संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी), सागरिका (डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर) विश्वसंस्कृतम् (होशियारपुर), महाराज संस्कृत पत्रिका (मैसूर) परमार्थ सुधा रांची (बिहार) विश्वम्भरा (बीकानेर) सम्विद (बम्बई) गुञ्जाखः (अहमदनगर)

(5) षाण्मासिक - पुराणम् (वाराणसी), संस्कृत प्रतिभा (नई दिल्ली), विद्वत्कला (गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर)

(6) वार्षिक - अमृतवाणी (बंगलौर)[47]

गीतिकाव्य - शास्त्रीय दृष्टि से गीतिकाव्य को खण्डकाव्य कहते हैं ।[48] इसमें जीवन का एकदेशीय चित्रण होता है और काव्यत्व के सत्य संगीतात्मकता का प्राधान्य होता है। ऋग्वेद के उषा, इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि की स्तुतियों में भावों की सुकुमार एवं सहज अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य का मूलतत्त्व है । इसके पश्चात् बौद्ध ग्रन्थों उपनिषदों, रामायण महाभारत में गीतिकाव्य की अभिव्यक्ति पुष्पित होती गई । किन्तु कालिदास ही संस्कृत गीतिकाव्य

के प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध हैं । ऋतुसंहार और मेघदूत उनके द्वारा विरचित श्रेष्ठ गीतिकाव्य हैं । ऋतुसंहार के 6 सर्गों में ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर एवं वसन्त इन 6 ऋतुओं का अत्यन्त आकर्षक वर्णन है । मेघदूत - दो भागों में विभक्त 115 पद्यों में निबद्ध रचना है । मेघदूत की 50 से अधिक टीकाएँ हैं किन्तु मल्लिनाथ की टीका सर्वाधिक प्रामाणिक मानी गयी है । मेघदूत में कुबेर द्वारा अपने किङ्कर (दास) एक यक्ष को किसी अपराध के आरोप में एक वर्ष तक मृत्यु लोक में रहने के शाप का वर्णन है । अपनी प्रियतमा से वियुक्त होने पर तीव्र वेदना से आहत वह यक्ष मेघ को दूत बनाकर सन्देश भेजता है । यह एक विरहगीत है । इस काव्य से प्रभावित होकर परवर्ती कवियों ने दूतकाव्य की परम्परा ही स्थापित कर दी, जिन्हें सन्देश काव्य भी कहते हैं[49] इस परम्परा की रचनाओं में धोयी कवि का पवनदूत, जम्बूकवि का चन्द्रदूत[50] विक्रमकवि कृत नेमिदूत[51] वामन भट्ट बाण कृत हंससन्देश, विष्णुत्राता कृत कोश सन्देश एवं रूपगोस्वामी का हंसदूत[52] अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दूत काव्य है । हमारे साहित्य में उद्धवदूत, मनोदूत, इन्दुदूत, पदाङ्कदूत आदि रचनाएँ भी इसी शैली एवं भाव पर विरचित हैं ।

इसके पश्चात् भर्तृहरि के तीन शतक गीतिकाव्य के अद्वितीय ग्रंथ हैं-नीतिशतक, शृङ्गारशतक, वैराग्य-शतक । प्रत्येक रचना में जीवन के विविध पक्षों का गहन अनुशीलन मिलता है । नीतिशतक में विद्या, साहस, उदारता, परोपकार जैसी उदार वृत्तियों सुकुमार पदावली में प्रस्तुत हैं, शृङ्गार शतक में नारी दृश्य के मर्मज्ञ भर्तृहरि ने नारी सौन्दर्य, भोग विलास, नखशिख सौन्दर्य तथा नारी स्वभाव का विवेचन किया है । वैराग्य शतक में निरासक्ति एवं वैराग्य की उपयोगिता निदर्शित की है । इसके पश्चात् ''अमलक शतक'' की रचना 7वीं शती में हुई । इस ग्रन्थ के भिन्न-भिन्न संस्करणों में 90 से 115 श्लोक मिलते हैं । इसमें भाव और रस का मनोहर विवेचन हुआ । यह शृङ्गार रस प्रधान रचना है । भल्लट भी संस्कृत गीतिकाव्य के प्रसिद्ध कवि है । ''भल्लटशतक[53] मुक्तकपद्यों का संग्रह इनकी अन्योक्ति प्रधान रचना है । बिल्हण ने 11वीं शताब्दी में ''चौरपञ्चाशिका'' नामक लघु गीतिकाव्य 50 पद्यों में निबद्ध किया । इसमें कवि के राजकुमारी से प्रणय और परिणय का काव्य रूप में वर्णन किया गया है । मेघदूत के अनुकरण पर धोयी कवि कृत ''पवन दूत'' में 104 पद्य हैं । इसमें राजा लक्ष्मण सेन द्वारा अपनी प्रेमिका कुवलयमती के पास पवन द्वारा सन्देश भेजा गया है । घटकर्पर विक्रमादित्य के नवरत्नों में प्रतिष्ठित थे - आपने ''घटकर्पट'' नामक लघुकाव्य 22 पद्यों में निबद्ध किया । इसमें यमकालङ्कार का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है । तथा एक विरहिणी द्वारा अपने दूरस्थ पति के पास प्रणय सन्देश भेजने का भी वर्णन हुआ है । ''हाल'' कवि द्वारा विरचित गाथासप्तशती प्राकृत में गीतियुक्त पद्यों की अनुपम कृति है । इसमें सात सौ गाथाओं (आर्याछन्दों) का सङ्कलन है । ये शृङ्गार से सनी अत्यन्त सुन्दर और रस, भाव पेशल है ।[54] यह रचना ग्राम्य जीवन, प्राकृतिक सौन्दर्य, दाम्पत्य जीवन एवं प्रणयात्मक भावों से ओत-प्रोत है । इसी आदर्श पर गोवर्धनाचार्य ने ''आर्यासप्तशती'' की रचना की । इसमें आर्याछन्दोबद्ध 700 पद्य शृङ्गार रस से परिपूर्ण हैं । ये 12वीं शती में जयदेव के समकालीन हुए[55] गोवर्धनाचार्य शृङ्गार रस के आचार्य माने जाते हैं । जयदेव ने भी 12 सर्गों में ''गीतगोविन्द'' काव्य का प्रणयन किया । इसमें श्रीकृष्ण की ललित क्रीड़ाओं एवं राधा-कृष्ण के प्रणय का मार्मिक विवेचन हुआ है - संयोग एवं वियोग के अनेक चित्र अङ्कित हैं यह रचना पद लालित्य, संगीतात्मकता वाद सौन्दर्य एवं कोमल कान्त पदावली के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । गीतगोविन्द के अनुकरण पर अभिनव गीतगोविन्द, गीत राघव,

गीतगङ्गाधर, गीतगोपाल प्रभृति अनेक काव्य लिखे गये । पण्डित राज जगन्नाथ ने व्याकरण एवं साहित्य से सम्बद्ध 13 रचनाएँ प्रस्तुत की हैं - इनमें पाँच लघु गीतिकाव्य हैं -

सुधालहरी (30पद्य), अमृतलहरी (11पद्य), करुण लहरी (60 पद्य) लक्ष्मी लहरी (41 पद्य) तथा गंगालहरी । इनके भामिनी विलास में मुक्तक गीतात्मक पद्यों का संग्रह है - इसमें (4) चार विलास हैं - प्रास्ताविक विलास, शृङ्गार विलास, करुण विलास और शान्त विलास, । इस रचना में पण्डितराज ने अपनी अनुभूतियों को कोमल कान्तपदावली से सुसज्जित किया है ।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य गीतिकाव्य भी कवियों-विशेषकर जैन एवं बौद्ध कवियों ने लिखकर इस परम्परा को समुन्नत किया है ।

स्तोत्रकाव्य - स्तुति परक साहित्य का उद्गम वेद हैं । ऋग्वेद के पश्चात् गीता पुराण, अध्यात्म रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में भक्तिपूर्वक की गई स्तुतियों से स्तोत्रकाव्य की परम्परा पुष्ट होती गयी । पुष्पदत्त आचार्य ने शिवमहिम्न स्तोत्र'' शिखरिणी छन्दों में निबद्ध कियां । मयूर भट्ट ने सूर्य की स्तुति में ''सूर्यशतक'' बनाकर कुष्ठ रोग से निवृत्ति प्राप्त की । इसी समय बाणभट्ट ने ''चण्डी शतक'' स्तोत्र'' द्वारा दुर्गा की आराधना स्रग्धरा छंदों में की । शंकराचार्य ने उपास्य देवों शिव, गणपति, विष्णु, हनुमान, शक्ति आदि की मनोहर स्तुतियाँ विरचित की हैं सौन्दर्य लहरी, श्रीकृष्णाष्टक, आनन्द लहरी इनके ग्रन्थ हैं । कुलशेखर ने ''मुकुन्दमाला स्तोत्र'' में विष्णु की स्तुति 34 पक्षों में की है । यामुनाचार्य कृत ''आलबन्दार स्तोत्र'' 65 पद्यों में आबद्ध है । तत्पश्चात् लीलाशक ने ''कृष्ण कर्णामृत'' स्तोत्र काव्य के 310 पद्यों में श्री कृष्ण की स्तुति की है । श्री रूप गोस्वामी ने अपने अनेक स्तुतिपद्यों को ''स्तवमाला[56] में सङ्कलित किया है । कुछ अन्य स्तोत्र काव्यों के अतिरिक्त 17वीं शती में वेंकटाध्वरि ने ''लक्ष्मी सहस्र'' नामक स्तोत्रग्रंथ एक हजार पद्यों में विरचित किया । इसमें लक्ष्मी की स्तुति की गई है । कुछ विद्वान इस ग्रन्थ को एक ही रात में बनायी गई रचना मानते हैं[57] मधुसूदन सरस्वती माँ ने विष्णु के स्वरूप की अभिव्यञ्जना ''आनन्द मन्दाकिनी[58] स्तोत्र में की है । इसमें 102 पद्य हैं। पण्डितराज जगन्नाथ के करुणा, गङ्गा, अमृत, लक्ष्मी, सुधा लहरी आदि ग्रन्थ स्तोत्र काव्य के श्रेष्ठ ग्रन्थ है । शैव स्तोत्रों की रचना भी भक्ति भाव पर आधारित पद्यों के द्वारा की गई एवं 9वीं शती में उत्पाद् देव ने ''शिवस्तोत्रावली[59] में 21 स्तोत्रों का संग्रह किया है । जगद्धवर भट्ट ने ''स्तुति कुसुमाञ्जलि[60] की रचना 14वीं शती में की । इसमें 38 स्तोत्र हैं तथा पद्यों की संख्या 1425 है । गोकुलनाथ, लक्ष्मणाचार्य, शिवदास व्यास, नारायण पण्डित, पृथ्वीपति सूरि, डॉ. पुत्तुलाल शुक्ल आदि साहित्यकारों ने भगवान् शिव की आराधना को ही अपने-अपने स्तोत्र के काव्यों का मूलाधार बनाया। जैन स्तोत्रों की विपुलता से संस्कृत साहित्य उपकृत हुआ है । काव्यमाला के सप्तम गुच्छक में 23 जैन स्तोत्रों का सङ्कलन है, जिनमें मानतुङ्गाचार्य कृत ''भक्तामर स्तोत्र'' महत्त्वपूर्ण है । इसमें तीर्थङ्कर ऋषभदेव की स्तुति की गई है । सिद्धसेन दिवाकर का ''कल्याणमन्दिर स्तोत्र'' 44 पद्यों में निबद्ध है । श्री वादिराज का ''एकीभाव स्तोत्र'' भी अन्यतम ग्रन्थ है। श्री जम्बू कवि के ''जिनशतक'' में 100 पद्य हैं । पं. जवाहर शास्त्री कृत ''पद्यप्रभस्तवनम्'' 25 पद्यों में निबद्ध षष्ठ तीर्थङ्कर की स्तुति प्रस्तुत करता है । स्तुतिपरक ग्रन्थों की रचना वर्तमान काल में निरन्तर हो रही है - आचार्य विद्यासागर जी महाराज तथा अन्य साहित्यकारों की रचनाएँ इसी दिशा की ओर किया गया प्रयास है ।

बौद्ध स्तोत्रों में नागार्जुन के भक्तिपूरित चार स्तोत्र ''चतु:स्तवन'' नाम से विख्यात है । 7वीं में सम्राट् हर्षवर्धन कृत ''अष्महा श्री चैत्यस्तोत्र'' एवं ''सुप्रभात् स्तोत्र'' अत्यन्त प्रसिद्ध है । बौद्ध देवी तारा की स्तुति सर्वज्ञमित्र के ''स्रग्धरा स्तोत्र'' में व्याप्त है । कालिदास के नाम से ''काली स्तोत्र'', ''गङ्गाष्टक स्तोत्र विख्यात हैं'' शृङ्गारिक विषयों पर ''पुष्पवाणतिलक'', और ''राक्षस काव्य'' इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं । मूककवि की ''मूकपञ्चशती'' में 500 पद्यों में कामाक्षी स्तुति वर्णित है ।

इस प्रकार गीति काव्य शैली पर अनेक स्तोत्र काव्य लिखे गये तथा नीति पूर्ण शैली पर अनेक काव्य ग्रंथ विरचित हुए, जिनसे यह संस्कृत साहित्य पुष्पित एवं पल्लवित होता रहा है ।

गद्यकाव्य – संस्कृत साहित्य में गद्य का प्रयोग अनेक रूपों में प्राप्त होता है। वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों आरण्यकों, उपनिषदों में विद्यमान गद्य ''वैदिक गद्य'' है । भारतीय षड्दर्शन, व्याकरण, अष्टाध्यायी में प्रयुक्त सूत्र शैली तथा इन ग्रन्थों की दुर्बोधता दूर करने के लिए भाष्य ग्रन्थों, निरुक्त, न्याय मञ्जरी की रचना सरस गद्य शैली में की गई तथा अर्थ शास्त्र, वैद्यक ग्रन्थ आदि सभी ग्रंथ शास्त्रीय गद्य में निबद्ध हैं । पौराणिक गद्य में इन दोनों गद्य शैलियों को साथ मिलाने का प्रशस्त प्रयास किया गया है । इसके बाद के सभी ग्रन्थ साहित्यिक गद्य में आबद्ध हैं ।

गद्य काव्यों में दण्डी कृत ''दशकुमार चरित'' श्रेष्ठ ग्रन्थ है । इसमें 5 उच्छ्वासों में पूर्व पीठिका तदुपरान्त 8 उच्छ्वासों में मूलकथा है । इसमें पुष्पपुरी (पटना) के राजा राजहंस के शासन सञ्चालक तीन मन्त्रियों के पुत्रों पर आधारित कहानी को कवि ने अत्यन्त कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है । इसके पश्चात् सुबन्धु कृत ''वासवदत्ता'' में कन्दर्प केतु और राजकुमारी वासवदत्ता के प्रणय और परिणय का हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है । यह ग्रन्थ प्रौढ पाण्डित्य की कसौटी ही है ।[61] इनके समकालीन महाकवि बाणभट्ट ने ''हर्षचरित'' ऐतिहासिक वृत्त पर आधारित ''आख्यायिक्का'' की रचना की। इसमें आठ उच्छ्वास हैं प्रथम तीन में कवि की आत्मकथा तथा शेष पाँच उच्छ्वासों में हर्षवर्धन के जीवनवृत्त, दिग्विजय तथा बौद्ध धर्म स्वीकार करने के समग्र घटनाक्रम का विवेचन किया गया है । इनकी दूसरी रचना ''कादम्बरी'' गद्य काव्य का भेद ''कथा'' है । इसमें पुनर्जन्म की कहानी चित्रित हुई है । अंत में प्रेमी अपनी प्रेमिकाओं से मिलते हैं, इस प्रकार तपस्यामूलक प्रेम की सफलता और मानव की उदात्त भावनाओं का विवेचन भी हुआ है । 18वीं शती में विश्वेश्वर पाण्डेय ने ''मन्दारमञ्जरी गद्य काव्य[62] की रचना की । इसमें चन्द्रकेतु और मन्दार मञ्जरी के प्रणय एवं परिणय का सजीव चित्र अङ्कित है । इसमें व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन, पाण्डित्य का समन्वय हुआ है । पं. अम्बिका दत्त व्यास ने (12 निश्वासों/अध्यायों में) शिवाजी का जीवन चरित ''शिवराज विजय[63] नामक ऐतिहासिक उपन्यास में प्रस्तुत किया है । इस ग्रन्थ में प्रगतिवाद की प्रेरणा, स्वतन्त्रता की पुकार, आदर्श, यथार्थ, इतिहास एवं कल्पना का मणिकाञ्चन समन्वय मिलता है। ऋषिकेश भट्टाचार्य की ''प्रबन्ध मञ्जरी'' ग्यारह निबंधों का संग्रह ग्रंथ है- इनमें उद्भिज्ज परिषद, महारण्य पर्यवेक्षणम्, उदर दर्शनम् एवं संस्कृत भाषाया वैशिष्टयम् प्रमुख हैं । यह ग्रन्थ रोचक, व्यंग्यात्मक दृश्यों से ओत-प्रोत है । धनपाल कृत तिलक मञ्जरी 10वीं शती में लिखी गई श्रेष्ठ गद्य रचना है । इसमें तत्कालीन भारत के सांस्कृतिक जन-जीवन का चित्रण हुआ है । 12वीं शती में वादीभसिंह ने कादम्बरी के अनुकरण पर ''गद्यचिन्तामणि''

का प्रणयन किया । इसमें जीवन्धर कथा ग्यारह लम्बकों में पूरी की गयी है । 14वीं शती में अगम्य कृत ''कृष्ण चरित'' भी विशेष महत्त्व का ग्रन्थ है । 15वीं शती में विद्यापति ने ''भूपरिक्रमा'' नामक गद्यकाव्य की रचना की । इसमें बलराम द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा किये जाने का मनोहर वर्णन किया गया है एवं भौगोलिक वातावरण की दिव्यता प्रदर्शित हुई है । 16वीं शती में वामनभट्ट वाण ने ''वेमभूपाल चरित[64] की रचना की इसमें ऐतिहासिक सामग्री बिखरी हुई है । यह रचना हर्ष चरित के समान मानी गई है । देव विजयगणी ने इसी शती में ''रामचरित'' की रचना की, इसमें हेमचन्द्र कृत रामायण का प्रभाव परिलक्षित होता है । 17वीं शती में प्रमुख रूप से वरदेशिक की ''गद्य रामायण'', अहोबल नृसिंह की ''अभिनव कादम्बरी'', कवीन्द्राचार्य कृत ''कवीन्द्र चन्द्रोदय'' एवं ''कवीन्द्र कल्पद्रुम'', महेश ठाकुर कृत ''सर्व देश वृत्तान्त सङ्ग्रह'' हरकवि कृत ''शुंभुराजचरित'' इत्यादि श्रेष्ठ गद्य रचनाएँ हैं । शैल दीक्षित ने ''भारती विलास'', ''कावेरी गद्य'', ''श्री कृष्णभ्युदय'' ग्रन्थों का प्रणयन किया है । कृष्णामाचार्य की संस्कृत रचनाएँ ''सहृदय'' पत्र में प्रकाशित होती रहीं है । उनकेगद्य काव्य ''पातिव्रत्य'', पात्रिग्रहण, ''वररुचि'' उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। इनका सुशीला उपन्यास अत्यन्त लोकप्रिय हुआ । चक्रवर्ती राजगोपाल ने ''शैवालिनी'', ''कुमुदिनी'', ''विलासकुमारी'', ''सङ्गर'' आदि गद्य कृतियों की रचना की तथा संस्कृत का आलोचनात्मक इतिहास भी लिखा है । ''कनक लता'', ''मन्दारवती'', ''जयन्तिका'', ''मेनका'', ''सौदामिनी'', ''कुमुदिनीचन्द्र'' आदि श्रेष्ठ उपन्यास कृतियाँ भी गद्य काव्य का जीवन्त चित्र प्रस्तुत करती हैं । श्रीवामन कृष्ण चित्तले ने ''लोकमान्य तिलक चरित[65] 18सर्गों में निबद्ध गद्य काव्य लिखा । आधुनिक संस्कृत गद्यकारों में पंडित क्षमाराव, डॉ. रामशरण त्रिपाठी आदि ने उत्कृष्ट गद्य रचनाएँ की हैं ।

अन्य ग्रन्थ - संस्कृत साहित्य में सूक्तिग्रन्थ निबन्ध युक्त रचनाएँ एवं संस्कृत भाषा के ऐतिहासिक अनुशीलन युक्त प्रकीर्ण ग्रन्थों का प्रणयन भी समय-समय पर साहित्यकारों ने किया और इस साहित्य-को श्री समृद्धि प्रदान की । भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर भी संस्कृत में रचनाएँ की गई । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ज्ञान-विज्ञान की समस्त धाराओं पर संस्कृत भाषा में साहित्य उपलब्ध होता है ।

कथा ग्रन्थ - विश्व साहित्य में भारतीय कथा साहित्य का अत्यन्त गौरवशाली स्थान है । भारतीय कथा साहित्य का उद्‌गम वेदों से माना गया है । ऋग्वेद के संवाद सूक्तों में कहानी के तत्त्व विद्यमान है [66] इनका विकसित रूप ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में मिलता है । महाभारत के आदिपर्व शान्तिपर्व, वनपर्व में उपयोगी कहानियाँ उपलब्ध होती हैं[67] विदुर के मुँह से अनेक नीति कथाएँ कहलायी गयी हैं । रामायण में नीतिपूर्ण कथाओं का संक्षिप्त विवेचन हुआ है । तृतीय शताब्दी के भरत हुत स्तूप पर पशु कथाओं का नाम उत्कीर्ण हुआ है [68] पंतजलि के महाभाष्य[69] में अनेक लोकोक्तिपूर्ण पशु कथाओं का उल्लेख हुआ है । बौद्धों का ''जातक'' कथा संग्रह 380ई. पू. के लगभग विद्यमान था । आर्यशूर की ''जातकमाला'' भी संस्कृत भाषा में निबद्ध नीतिकथा विषयक ग्रन्थ है । जैन तीर्थङ्करों के पूर्वजन्म का वर्णन जैनों के जातक ग्रन्थों में किया गया । इसके पश्चात् 668 ई. के एक चीनी विश्वकोष में 200 बौद्ध ग्रन्थों से संगृहीत अनेक भारतीय कथाओं का अनुवाद मिलता है[70] इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि ईस्वी सन् के पूर्व भी भारत में नीति कथाओं का पर्याप्त प्रचार था।

सामान्य रूप से संस्कृत कथा साहित्य दो वर्गों में विभाजित किया गया है - नीतिकथा और लोककथा ।

नीतिकथा उपदेशात्मक एवं जन्तु प्रधान व बालकोपयोगी होती हैं। इसमें अनेक उपकथाएँ भी समाविष्ट की जाती हैं, किन्तु लोककथा मानव जीवन से सम्बद्ध एवं मनोरञ्जन प्रधान होती है ।

(1) नीतिकथा - पञ्चतन्त्र नीति कथाओं का कलात्मक सङ्कलन है । इसके लेखक विष्णु शर्म। हैं, वे महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति के तीन मूर्ख पुत्रों को 6 माह में ही नीतिज्ञ, कलाकार एवं राजनीतिज्ञ बनाकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं । इस ग्रन्थ में 5 तन्त्र (भाग) हैं-मित्रभेद, मित्र सम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षित कारक। प्रत्येक तन्त्र एक मुख्य कथा है जिसकी पुष्टि के लिए अनेक उपकथाएँ हैं । पञ्चतन्त्र का 50 से अधिक भाषाओं में अनुवाद हो गया है । और इसके 200 से अधिक संस्करण मिलते हैं । 14वीं शती में लिखित ''हितोपदेश'' पञ्चतन्त्र पर आधारित नीति कथा ग्रन्थ है । इसके रचयिता नारायण पण्डित हैं । इसमें 43 में से 17 नई कथाएँ हैं, शेष कथाएँ पञ्चतन्त्र से की गई हैं । यह ग्रन्थ 4 खण्डों में लिखित है-मित्र लाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि ।

(2) लोककथा - गुणाढ्य की ''बृहत्कथा'' लोककथा का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है किन्तु यह अपने मूल रूप में अप्राप्त है । इससे संबंधित अधोलिखित कथा ग्रन्थ हैं (1) बृहत्कथा मञ्जरी - इसके 19 अध्यायों में 7500 श्लोक हैं । 11वीं शती में इसकी रचना क्षेमेन्द्र ने की । (2) ''बृहत्कथाश्लोक संग्रह'' यह ग्रन्थ बुधस्वामी ने 28 सर्गों में लिखा है । इसमें 4539 पद्य हैं । इसमें नरवाहन दत्त के 26 विवाहों में से केवल दो की साहस पूर्ण कहानियाँ हैं । यह ग्रन्थ अपूर्ण उपलब्ध हुआ है । इसमें प्राकृत के प्रयोग भी हैं। **कथासरित्सागर :** सोमदेव कृत यह ग्रन्थ 11वीं शती का है । यह 18 खण्डों में विभक्त है । इसमें खंडों को ''लम्बक'' और उपखण्डों को ''तरङ्ग'' नाम दिया गया है । इसमें 124 तरङ्ग भी हैं तथा सम्पूर्ण ग्रन्थ में 21388 पद्य हैं । मानवता का सन्देश सम्पूर्ण रचना में प्राप्त होता है । इनके अतिरिक्त बृहत्कथा के दो तमिल संस्करण भी मिलते हैं।[71] बृहत्कथा पैशाची भाषा में निबद्ध नरवाहन दत्त के कथानक पर पराक्रमों, वैचित्यवृत्तों एवं परिहासपूर्ण घटनाओं का रमणीय महावन (7लाख पद्य) हैं, सात वाहन द्वारा अस्वीकृत किये जाने पर गुडाष्यन अग्निकुण्ड में प्रत्येक पन्ना पढ़कर जला दिया, केवल 1 लाख पद्य बचा दिये गये थे।[72] परवर्ती साहित्यकार इस ग्रन्थ से अत्यधिक प्रभावित हुए एवं परवर्ती कथा साहित्य पर बृहत्कथा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । ''बेतालपञ्चविंशतिका'' अत्यन्त रोचक, पच्चीस कहानियों का संग्रह ग्रन्थ है । इसके दो संस्करण मिलते हैं एक शिवदास[73] रचित एवं दूसरा जम्भलदत्त[74] कृत। इस कथा संग्रह का अनुवाद भारत की अधिकांश भाषाओं में हो गया है ।''वेतालपञ्चविशंतिका'' में एक वेताल द्वारा प्रकथित उज्जैन के राजा त्रिविक्रमसेन से बुद्धिवर्धक, प्रासङ्गिक पहेलीयुक्त 25 कहानियों के मार्मिक प्रश्नोत्तर उपस्थित हुए हैं ।

इसके पश्चात् ''सिंहासनहात्रिंशिका[75] कथा संग्रह भी विक्रमादित्य के पराक्रम, न्याय, उदारता आदि गुणों से ओत-प्रोत है । इस कथा संग्रह की कहानियों के लेखक का नाम और समय अज्ञात है । इसके तीन संस्करण मिलते हैं । इस कथा संग्रह का अब भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । ''शुकसप्तति[76] भी अतीव रोचक कहानी संग्रह है । इसमें सत्तर कथाएँ हैं, जो एक तोता द्वारा मदनसेन की पत्नी को व्याभिचारिणी होने से रोकने के लिए कही गयी हैं - इसमें स्त्री चरित्र, कपटाचरण, परपुरुषगमन आदि का विवेचन है । इस ग्रन्थ के दो संस्करण उपलब्ध हैं-विस्तृत संस्करण चिन्तामणि द्वारा विरचित तथा संक्षिप्त संस्करण श्वेताम्बर जैन लेखक द्वारा विरचित ।

शिवदास के ''कथार्णव'' में मूर्खों एवं तस्करों से सम्बद्ध 35 कथाएँ निबद्ध हैं। ब्राह्मण संस्कृति की हीनता '' भरटक द्वात्रिंशिका'' में प्रतिपादित है, यह लोक भाषा में सम्गुफित कृति है । 14वीं शती में विद्यापति ने ''पुरुष परीक्षा'' की रचना की । इसमें 44 कथाएँ नैतिक एवं राजनीति पूर्ण हैं । 16वीं शती में बल्लालसेन द्वारा विरचित ''भोजप्रबन्ध'' अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है । इसमें भोज सम्बन्ध उदात्तवृत एवं संस्कृत महाकवियों से सम्बद्ध है दंतकथाएँ प्राप्त होती है.। इसके साथ ही जैन विद्वानों की नैतिक एवं शिक्षा प्रद कहानियाँ इस काल की सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ मानी गयी हैं - ''कथा रत्नाकर'' हेमविजयगणि का 256 लघु कथाओं से सुसज्जित कथा संग्रह है । यह 17वीं शती की रचना है । जैन साधुओं से सम्बद्ध कहानियाँ हेमचन्द्र के ''परिशिष्ट पर्व'' में विद्यमान हैं । प्रबन्ध साहित्य में विख्यात ''प्रबन्ध चिन्तामणि [77] और प्रबन्धकोश [78] जैन संस्कृति के अभिन्न अङ्ग हैं । प्रबन्ध चिन्तामणि'' की रचना मेरुतुङ्गचार्य ने 5 प्रकाशों (खण्डों) में की है, इसमें ऐतिहासिक एवं अर्द्ध ऐतिहासिक पुरुषों का जीवन चित्र अंकित है । ''प्रबन्ध कोश'' में राजशेखर ने 24 प्रसिद्ध पुरुषों के जीवन चरित का विवेचन किया है । अत: इसे ''चतुर्विंशति प्रबन्ध'' भी कहते हैं । जिनकीर्ति ने 15 वीं शती में ''चम्पक श्रेष्ठ कथानक'' एवं ''बालगोपाल कथानक'' नामक दो रोचक कथा ग्रन्थों का प्रणयन किया । इस प्रकार और भी कतिपय कथाग्रन्थ लिखे गये । जैन कवियों के समान बौद्ध विद्वानों ने भी अपने ''अवदान'' ग्रन्थों के द्वारा कथासाहित्य को परिपक्वता प्रदान की। ''अवदान'' का अर्थ है -''महनीय कार्य की कहानी[79] अवदान ग्रन्थों में जातक ग्रन्थों के समान बुद्ध के पूर्वजन्मों के विशिष्ट गुणों का प्रतिपादन हुआ है ।''अवदान शतक[80] में बौद्ध विचारों पर आधारित 100 वीरगाथाओं का सङ्कलन है । यह 2री शती की रचना मानी गई है ।''दिव्यावदान'' में विनयपिटक की शिक्षाओं को कहानियों के माध्यम से समझाया गया है- इसके दो भाग हैं- प्रथम भाग में महायान सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की व्याख्या है तथा दूसरे भाग में हीनयान सम्प्रदाय के सिद्धान्त दिये गये हैं ।आर्यशूर का ''जातकमाला भी 500 कथाओं का सङ्ग्रह ग्रन्थ है ।''सूत्रालङ्कार'' कुमार की कृति है ।''अवदान कल्पलता'' क्षेमेन्द्र कृत प्रौढ़ कथा संग्रह है । इसमें अनेक रोचक आख्यान मिलते हैं ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृत कथा कहानियों का संसार में इतना अत्यधिक प्रचार, प्रसार हुआ है कि विश्वसाहित्य का एक अभिन्न अंग बन गयी हैं।

नाटक - संस्कृत साहित्य के श्रव्य काव्यों का अनुशीलन करने के उपरान्त दृश्य काव्य[61] का अध्ययन भी अभीष्ट है । संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत दिये गये तथा आधुनिक विद्वानों ने वैज्ञानिक विकासवाद एवं अनुसन्धान के आधार पर नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक विचार धाराएँ प्रस्तुत की है ।[62] वैदिक साहित्य की समीक्षा करने से यह ज्ञात होता है कि नाटक के प्रधान अंगों का अस्तित्व वैदिककाल में किसी न किसी में था । इन्हीं से हम संस्कृत नाटकों का उद्भव मानते हैं[63] रामायण, महाभारत युग में नाटक साहित्य विकसित हुआ । इन ग्रन्थों में नाट्य सामग्री एवं कतिपय नाटकों के अभिनय किये जाने का विवरण मिलता है । इस प्रकार वैदिकोत्तरयुग में नाटक हैं जनसामान्य के मनोरञ्जन का उत्कृष्ट साधन था । पाणिनि ने ''जाम्बती जय'' नाटक लिखा था । पतञ्जलि ने महाभाष्य में कंसवध एवं बलिबन्ध नाटकों के अभिनय किये जाने का विवेचन किया है । भरतमुनि ने भी अमृत मन्थन, त्रिपुरदाह आदि नाटकों का विशेष उल्लेख किया है । इस प्रकार ईसा पू. 200 में नाटक रङ्गमञ्च पर अभिनीत होने लगे थे, इसकी प्रमाण स्वरूप

नागपुर की पहाड़ियों में प्राप्त नाट्य शाला है ।[84] इसी प्रकार बौद्ध ग्रन्थों जैन ग्रन्थों, कामसूत्र, अर्थशास्त्र आदि में भी नाटकों में प्रदर्शित किये जाने का विवेचन हुआ है । अत: हम कह सकते हैं कि संस्कृत नाटकों का निरन्तर विकास शताब्दियों तक होता रहा और परवर्ती नाटक कारों की कृतियों में प्रतिफलित हुआ है। संस्कृत नाटकों के विकास क्रम का संक्षिप्त में अध्ययन प्रस्तुत है -

महाकवि भास ने 13 नाटकों की रचना के उनकी नाट्यकृतियाँ अधोलिखित हैं- प्रतिमा नाटक, अभिषेकनाटक, बाल चरित, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम, पंचरात्र, भंग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णधार, मध्यम व्यायोग, अविमारक और चारुदत्त । इनमें भारतीय संस्कृति, कला, आदर्श संस्कृति आदि का मणिकाञ्चन समन्वय दृष्टिगोचर होता है । ये सभी नाटक 1909 में ई. के लगभग महामहोपाध्याय श्री टी. गणपति शास्त्री ने त्रावनकोर राज्य से प्राप्त किये थे । इसके पश्चात् शूद्रक कृत ''मृच्छकटिक'' भी चरित्र-चित्रण प्रधान प्रकरण की अनुपम रचना है इसमें 10 अङ्क हैं । उज्जयिनी की प्रसिद्ध गणिका बसन्तसेना और दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त की प्रणय कथा वर्णित है । इसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक स्थिति का यथार्थ मूल्याङ्कन हुआ है । इसे षष्ठ शताब्दी की रचना माना गया है । विश्व साहित्य के गौरव शाली कवि कालिदास ने तीन नाटक ग्रन्थ भी विरचित किये - मालविक्राग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञान शाकुन्तल। मालविक्राग्निमित्र के 5 अङ्कों में राजा अग्निमित्र तथा मालविका के प्रेम का चित्रण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में, कमनीयता के साथ अंकित हुआ है । ''विक्रमोर्वशीय'' 5 अङ्कों में निबद्ध ''त्रोटक'' नामक उपरूपक है । इसमें राज पुरुरवा और उर्वशी अप्सरा की प्रणय-कथा वर्णित है । कालिदास की तीसरी नाटक ''अभिज्ञानशाकुन्तल विश्व साहित्य का अमूल्य रत्न है । इसके 7 अङ्कों में हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त और निसर्गकन्या शकुन्तला के प्रेम, वियोग तथा पुनर्मिलन का अत्यन्त मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है । इस नाटक ने पाश्चात्य साहित्यकारों को भारतीय वाङ्मय की ओर आकृष्ट किया। यह कालिदास की प्रतिभा, आदर्श, जीवनदर्शन एवं भावाभिव्यक्ति का सच्चा प्रतिनिधि ग्रन्थ है । कालिदास का स्थिति काल प्रथम शताब्दी[85] ही मानना युक्तिसङ्गत है । अश्वघोष ने (प्रथम शती में) तीन नाटकों का प्रणयन किया[86] ''शरिपुत्र प्रकरण'' । दो अन्य कृतियाँ अपूर्ण हैं, जिनके नाम भी ज्ञात हैं ।

शरिपुत्र प्रकरण में 9 अ[illegible] हैं । इसमें गौतम बुद्ध द्वारा शरिपुत्र तथा मौद्गलायन नामक दो युवकों को बौद्धधर्म में दीक्षित करने की कथा का रोचक वर्णन है । इसके भरत वाक्य में नवीनता मिलती है । दूसरा नाटक जीर्णावस्था में उपलब्ध हुआ, यह रूप काव्यक नाटक है बुद्धि, कीर्ति, धृति आदि भावों का मानवीकरण करके उनमें परस्पर संवाद कराये गये हैं और पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है । तीसरा नाटक गणिका विषयक है । अश्वघोष की कृतियों में बौद्धधर्म का व्यापक प्रभाव प्रतिबिम्बित है । सम्राट् हर्षवर्धन नाटककार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं । इन्होंने तीन नाटक ग्रन्थों का प्रणयन किया - प्रियदर्शिका, नागानन्द, रत्नावली । ''प्रियदर्शिका'' 4 अङ्कों की नाटिका है, इसमें राजा उदयन एवं सिंहलदेश की राजकुमारी रत्नावली, जो सागरिका के नाम से उदयन के महल में रहती है, के प्रणय और परिणय की मनोहर कथा विश्लेषित हुई हैं । यह रचना शास्त्रीय एवं रङ्गमञ्च की दृष्टि से अत्यन्त सफल मानी गयी है।

विशाखदत्त ने ''मुद्राराक्षस'' तथा देवी चन्द्रगुप्त[87] इन दो नाटकों की रचना की। विशाखदत्त 5वीं एवं 6वीं शती के नाटककार माने गये हैं ।[88] मुद्राराक्षस 7 अंकों का राजनीति विषयक

नाटक है । इसमें नन्दवंश के सम्राट को चाणक्य द्वारा कूटनीतिपूर्वक पदच्युत करने तथा उसके स्थान पर चन्द्रगुप्त को सम्राट बनाने का लक्ष्य ही कथानक का केन्द्र बिन्दु है । इसमें एक जासूसी उपन्यास के समान आद्योपरान्त रहस्यात्मकता व्याप्त हैं । इसमें विदूषक और नायिका का अभाव होते हुए भी नवीनता मौलिकता एवं प्रगतिशील नाट्यकला के दर्शन होते हैं ।[89]

भट्टनारायण ने ''वेणीसंहार'' नाटक की रचना 7वीं 8वीं शती के मध्यकाल में की। यह महाभारत की घटना पर आधारित वीर रस प्रधान कलाकृति है । कौरवों के द्वारा किये गये अपमान का बदला लेने के लिए द्रौपदी प्रतिज्ञा करती है । कि वह दु:शासन आदि से बदला लिये बिना वेणी बन्धन नहीं करेगी । नाटक के अन्त में भीम दुर्योधन तथा दु:शासन के खून से सने हाथों द्वारा उसकी वेणी को संवारते हैं । यह रचना सभी नाटकीय तत्त्वों से परिपूर्ण है । महाकवि भवभूति ने संस्कृत नाट्य साहित्य को अपनी तीन कृतियों से उपकृत किया - मालती माधव यह 10 अंकों में निबद्ध प्रकरण है । इसमें मालती-माधव तथा मकरन्द - मदयन्तिका की प्रणय एवं परिणय प्रधान कथा वर्णित हैं । ''महावीर चरित'' के 7 अङ्कों में राम विवाह से राज्याभिषेक तक की रामायण में आबद्ध कथा प्रतिपादित है । ''उत्तररामचरित'' में रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा को प्रसङ्गानुकूल मौलिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है । यह रचना 7 अङ्कों की है तथा भवभूति की प्रतिभा, प्रकृति प्रेम, संवेदना और नाट्य कला सर्वोत्तम निदर्शन है। भवभूति का समय (650 ई. से 750 ई.) 8वीं शताब्दी माना गया है ।[90] इसके पश्चात् उदयन और वासवदत्ता की प्रणय कहानी पर आधारित अनङ्गहर्षकृत ''तापस वत्सराज''[91] सुप्रसिद्ध रचना है । इसका नायक उदयन अपनी प्रेयसी वासवदत्ता के वियोग में तपस्वी होने को तत्पर रहता है। इस नाटक में ''वेदनामयी घटनाओं की सजीव अभिव्यक्ति है । 8वीं शती में मुरारि ने ''अनर्घराघव'' 6 अंकों में निबद्ध किया । इसमें रामकथा अभिनव रूप में (नवीन घटनाओं के साथ) प्रस्तुत की गई है । शक्तिभद्र ने 9वीं शती में ''आश्चर्य चूड़ामणि''[92] के 7 अङ्कों में रामकथा का विवेचन किया है । यह अद्‌भुत रस प्रधान कृति है । दामोदर मिश्रकृत ''हनुमन्नाटक'' दो संस्करणों में उपलब्ध हैं । प्राचीन संस्करण दामोदर मिश्रकृत 14 अङ्कों में है । नवीन संस्करण मधुसूदनदास कृत 9 अङ्कों में उपलब्ध होता है । यह रामकथा विषयक नाटक है । इसके पश्चात् 10वीं शती में राजशेखर ने चार नाटकों की रचना की - बालरामायण[93] यह 10 अङ्कों का महानाटक है, इसमें कुल 741 पद्य हैं, जिसमें रामकथा आद्योपरान्त चित्रित हुई है । बालभारत - (प्रचण्डपाण्डव) इसके दो अङ्कों ही उपलब्ध हैं, जिनमें द्रोपदी स्वयंवर, द्यूतक्रीडा एवं चीरहरण तक की कथा मिलती है । विद्धशाल पञ्जिका - इस नाटिका के 4 अङ्कों में राजकीय प्रणय क्रीड़ा वर्णित है। कपूरमञ्जरी - यह 4 अङ्कों का ''सट्टक'' नामक रूपक है । इसमें चण्डपाल एवं कर्पूर मञ्जरी के विवाह तथा भैरवानन्द की दिव्य शक्ति का विवेचन है। इसके साथ ही दिङ्नाग कृत ''कुन्दमाला''[94] भी रामकथा की मार्मिक अभिव्यक्ति ही है । इसमें 6 अङ्क हैं ।

प्रतीक नाटक - कृष्ण मिश्रद्वारा ''प्रबोधचन्द्रोदय'' एक लाक्षणिक या रूपकात्मक नाटक है । इसमें 6 अङ्क हैं जिसमें अमूर्त भावों की स्त्री-पुरुष पात्रों का प्रतिनिधि बनाकर चित्रित किया है । परवर्ती कवियाँ ने इसका अनुकरण करते हुए अनेक, प्रतीक्षात्मक नाटकों की रचना की । यश:पाल कृत ''मोहराजपराजय''[95] (5 अङ्कों) वेदान्तदेशिक कृत ''संकल्प

सूर्योदय'' परमानन्द दास कृत चैमन्यचन्द्रोदय (10 अङ्क), भूदेवशुक्ल कृत धर्मविजय (5 अङ्क)[96] आनन्दराय मङ्खी कृत ''विद्यापरिणयन[97] (7 अङ्क) एवं जीवानन्द (7 अङ्क)[98] आदि सभी प्रसिद्ध प्रतीक नाटक हैं। इसके पश्चात् 17वीं शती में ''गोकुलनाथ कृत अमृतोदय'' प्रतीक नाटक की रचना की (नल्लादीक्षित ने कुल 5 नाटकों की रचना की जिनमें ''जीवन्मुक्ति कल्याण[99] एवं चित्तवृत्तिकल्याण'' प्रतीकात्मक नाटक हैं। ''शृङ्गारसर्वस्व[100] भाण है तथा सभद्रापरिणय के 5 अङ्कों में अर्जुन के सुभद्रा से विवाह का वर्णन है। इस प्रकार प्रतीकात्मक नाटकों में दार्शनिक, धार्मिक तत्त्वों का समावेश भी मिलता है। प्रतीकात्मक नाटकों के पश्चात् हम कतिपय अन्य नाट्य कृतियों का विवेचन करते हैं। जयदेव ने 7 नाटकों में रामकथा का विवेचन ''प्रसन्नराघव'' ग्रन्थ में किया। इनके कवित्व से महाकवि तुलसी भी प्रभावित हुए[101] 12वीं शती में वत्सराज ने 6 नाट्य कृतियों का प्रणयन किया - ''किरातार्जुनीय व्यायोग'' कर्पूरचरित (भाण), हास्य चूडामणि (प्रहसन) रुक्मिणी हरण (ईहामृग) त्रिपुरदाह (डिम) और समुद्रमन्थन (समवकार)[102] इस प्रकार नाटकों के अतिरिक्त प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम ईहामृग, प्रहसन, वीथि आदि पर भी विपुल साहित्य उपलब्ध होता है - जैन कवि रामचन्द्र ने 12वीं शती में नल विलास, राघवाभ्युदय, यादवाभ्युदव, निर्भयभीम, सत्यहरिश्चन्द्र कौमुदी मित्रानन्द आदि अनेक नाट्य कृतियों की रचना की। इसी समय यशचन्द्र ने ''मुद्रित कुमुदचन्द्र'' प्रकरण की रचना की शङ्खधर कविराज का ''लटकमेलक'' प्रहसन अत्यन्त प्रसिद्ध है। विल्हण ने ''कर्णसुन्दरी,[103] नाटिका और मथुरा दास ने ''वृषभानुजा[104] नाटिका में प्रणय कथाओं को प्रस्तुत किया। ये 11वीं शती की कृतियाँ हैं। रम्भामञ्जरी, विलासवती चन्द्रलेखा[105] शृङ्गारमञ्जरी[106]

आनन्द सुन्दरी सट्टक कोटि की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं

17वीं शती में उद्दण्डकवि ने ''मल्लिकामाकत''[107] प्रकरण की रचना की है। इसके पश्चात् श्रेष्ठ प्रकरण ग्रन्थों में कौमुदी मित्रानय[108] प्रबुद्धरोहिणेय, मुद्रितकुमुदचन्द्र आदि[109] की गणना की जाती है। प्राचीनकाल में विरचित भाण ''चतुर्भाणी[110] नाम से प्रकाशित हुए। उभयाभि सारिका, पद्यप्राभृतक, धूर्तविट् संवाद, पादताडितक क्रमशः वररुचि, ईश्वरदत्त, श्यामनिक, शूद्रक द्वारा विरचित श्रेष्ठ भाण ग्रन्थ हैं। वामनभट्ट वाणकृत, शृङ्गारभूषण'' रामभद्रदीक्षित कृत ''शृङ्गारतिलक'' युवराजकृत '' ''रससदन'' भाण कोटि के उत्कृष्ट रूपक हैं। प्रहसन का भी हमारे साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान है। महेन्द्रविक्रमवर्मा का ''मत्तविलास[111] कवीराज शङ्खधर का लेटमेलक[112], जगदीश्वर कविशेखर का ''धूर्त्तसमागम'', गोपालनाथ चक्रवर्ती का ''कौतुकसर्वस्व'' कवि तार्किक का ''धूर्त्तरत्नाकार'' श्रेष्ठ प्रहसन हैं, जिनमें दुराचारमग्न एवं कामिनी लोलुप धर्मावलम्बियों का रोचकता के साथ पर्दापाश हुआ है। ''डिम'' कोटि की कृतियों में त्रिपुरदाह, कृष्णविजय, मन्मथोमन्थन, वीरभद्र विजय आदि मुख्य हैं। समुद्रमन्थन, पञ्चरात्र प्रभृति उत्कृष्ट समवकार ग्रन्थ हैं। वीथि में माधवीवकुल, इन्द्रलेखा आदि की गणना होती है। भास के कुछ ग्रन्थ-ऊरुभङ्ग, कर्णभार, दूतघटोत्कच अंक के अन्तर्गत हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण, रुक्मिणी हरण ईहामृग के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

छायानाटक - इसमें रङ्गमञ्च पर पुतलियों की छाया चलती - फिरती दृष्टि गोचर होती है, पात्र सशरीर उपस्थित नहीं होता। ऐसे ग्रन्थों में (सुभटकवि ने 12 वीं शती में) ''दूताङ्गद'' प्रथम कृति है। 15वीं शती में सुभद्रापरिणय, रामाभ्युदय, पाण्डवाभ्युदय नामक छायानाटक शमदेवव्यास द्वारा लिखे गये हैं।

रेडियो नाटक - यह संस्कृत नाटक की नीवन विद्या है । श्री मि. वेलणकर के दो रेडियो रूपक ''प्राणाहुति''[113] नाम से प्रकाशित हैं । इस संग्रह में ''हुतात्मदधीचि एवं रानी दुर्गावती रूपक समाविष्ट''[114] है ।

संवादमाला - इस नवीनविद्या के विकसित करने का श्रेय श्री आनन्दवर्धन रामचन्द्र रत्नपारखी को है । इनकी ''संवादमाला'' रचना 1957 में निबद्ध हुई, जिसमें 13 संवाद हैं ।[115]

अनूदितनाटक - किसी दूसरी भाषाओं से संस्कृत भाषा में अनुवाद किये नाटक इस श्रेणी में सम्मलित हैं । अनन्त त्रिपाठी ने शैक्सपियर के ''ट्वैल्थ्थनाईट'' का अनुवाद ''द्वादशी रात्रि'' नाम से किया, जो 1965 में प्रकाशित हुआ । इनके पास ''मर्चेण्ट ऑफ वेनिस'' के संस्कृत अनुवाद ''वेणीशसार्थवाह'' की पाण्डुलिपि भी विद्यमान है । त्रिपाठी जी ने ही ''एज यू लाइकइट'' का ''यथा रोचते तथा'' नाम से अनुवाद मनोरमा पत्रिका में प्रकाशित कराया । आर. कृष्णमाचारी ने शैक्सपि के ''मिड समर नाईट्स ड्रीम'' नाटक का अनुवाद ''वासन्तिक स्वप्नाभिधान'' नाम से किया है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपरिकथित विभिन्न विद्याओं के माध्यम से संस्कृत नाटकों की परम्परा समृद्ध हुई ।

इनके अतिरिक्त 13वीं शती से 20वीं शती तक की कालावधि में प्रणीत अनेक नाट्य कृतियाँ उपलब्ध होती हैं - इनमें प्रतिनिधि रचनाओं के साथ उनकी कृतियों का नामोल्लेख करना समीचीन होगा । विद्यानाथ कृत ''प्रतापरुद्री कल्याण'', विरुपाक्ष कृत ''उन्मत्तराघव'', विश्वनाथकृत ''सौगन्धिकाहरण'', वामनभट्ट वाण कृत पार्वती परिणय, कनकलेखा कल्याण श्रृंगारभूषण । रूपगौस्वामी कृत विदग्धमाधव, ललित माधव, दानकोष कौमुदी । कृष्णदेवराज कृत ऊषापरिणय[116] जाम्बवती कल्याण[117] स्फुलिंग कृत सत्यभामापरिणय, गोकुल नाट्यकृत मुदित मदालसा अमृतोदय, विख्यातविजय । यज्ञनारायण दीक्षित कृत ''रघुनाथ विलास,[118] नीलकण्ठ दीक्षित कृत नल चरित[119] महादेव कृत अद्‌भुत दर्पण,[120] राजचूड़मणि कृत कमलिनी-कलदंस[121] लोक नाथ भट्ट कृत कृष्णाभ्युदय[122] नृसिंह मिश्र कृत शिवनारायण-भञ्ज महोदय[123] वैद्यनाथ वाचस्पति कृत चित्रयज्ञ[124] पं. मथुरा प्रसाद दीक्षित कृत वीर प्रताप, शङ्करविजय, पृथ्वी राज, भक्तसुदर्शन, भारत विजय ।[125]

यतीन्द्र विमल चौधरी कृत नाटकों की संख्या 12 हैं - जिनमें महिमामय भारतम्, भारत हृदयारविंदम्, भारत भास्करम् बहुत प्रसिद्ध हैं ।

उपर्युक्त समस्त नाटकों से सम्पन्न संस्कृत का नाटक साहित्य विपुलता धारण किये हुए हैं । इस बीसवीं शताब्दी में भी निरन्तर नाटकों एवं अनेक भेदों पर भी रचनाएँ प्रतीत की जा रही हैं ।[126]

विषय स्पष्टीकरण हेतु मैंने केवल प्रतिनिधि नाटकों का सिंहावलोकन प्रस्तुत किया है जिससे, कि इस अध्याय में संक्षिप्त इतिवृत्त समाहित हो सके और अध्याय का कलेवर संक्षिप्त रखने के कारण ही प्रत्येक रचना का परिचय सम्भव नहीं हो सका है ।

(ब) बीसवीं शताब्दी की साहित्यिक पृष्ठ भूमि

इस अध्याय के "अ" खण्ड पूर्वपृष्ठों में संस्कृत साहित्य का आविभवि तथा विकास संक्षिप्त इतिवृत्त विश्लेषित हैं । उक्त विवेचन में युग-युगीन साहित्यकारों की सम सामायिक रचना-प्रवणता और लोक-रुचि वैभिन्नय का साङ्गोपाङ्ग निदर्शन हुआ है। इससे यह प्रतिबिम्बित हुआ है कि संस्कृत साहित्य का प्रारंभिक काल आर्ष परम्परा के उन्नायकों और मनीषियों के उदात्त चिन्तन तथा अभिव्यक्ति का प्राबल्य प्रकट करने वाला समय था । इस परम्परा में वैदिक, जैन और बौद्ध मनीषियों ने समान भाव से प्रशस्त योगदान किया । यह ऋजुता पौराणिक साहित्य, रामायण, महाभारत और कालिदास, अश्वघोष समन्तभद्र आदि की रचनाओं में यथेष्ट मात्रा में निदर्शित है । किन्तु किरातार्जुनीय का रचनाकार संस्कृत साहित्य में वाममार्ग को प्रविष्ट कराने का आधार बना, जिसने कथ्य कम और पाण्डित्य प्रदर्शन की वृत्ति अधिक का श्री गणेश किया । इस वृत्ति को शिशुपालवध के रचनाकार ने तरुणाई प्रदान की और नैषध में यह सब सिर चढ़कर बोलती दिखाई पड़ती है ।

हमें यह निष्कर्ष अभिव्यक्त करते हुए प्रसन्नता होती है कि बीसवीं शती में साहित्य रचना का मूलाधार या भावभूमि अत्यन्त विशाल और उदात्त है । इस शताब्दी का साहित्यकार पाण्डित्य प्रदर्शन को प्रायः प्रसन्द नहीं करता ।

2. बीसवीं शताब्दी में स्थूल शृङ्गारिकता की प्रायः उपेक्षा हुई है ।

3. बीसवीं शताब्दी में नये सन्दर्भों और नये आयामों को दृष्टिपथ में रखकर राष्ट्रीयता का उन्मेष हुआ है । इस शताब्दी में इस प्रकार की अनेक रचनाएँ हुई हैं । जिनमें राष्ट्र राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय चरित्रों को पर्याप्त महत्त्व देकर सजाया, संवारा और उभारा गया है । इस दृष्टि से आचार्य ज्ञानसागर विरचित जयोदय महाकाव्य की रचना सर्वोपरि उल्लेखनीय है ।

4. इस शताब्दी में आध्यात्मिक, - दार्शनिक वातावरण का शङ्खनाद हुआ है । जिसके प्रतिनिधि रचनाकार आचार्य ज्ञानसागर, आचार्य, विद्यासागर, साहित्याचार्य डॉ. पन्नालालजी, मुनि नथमल, आचार्य, घासीलाल, आचार्य कुन्थसागर आर्यिका सुपार्श्वमती, आर्यिका विशुद्धमती प्रभृति मनीषिगण हैं ।

5. इस शताब्दी में धार्मिकता का अभिनव सन्निवेष हुआ है । इस दृष्टि से डॉ. रामजी उपाध्याय, आचार्य विद्यासागरजी, साहित्याचार्य डॉ. पन्नालालजी प्रभृति मनीषियों की रचनाएँ नितराम् भव्य और स्पृहणीय हैं ।

बीसवीं शताब्दी की साहित्यिक पृष्ठ भूमि में संस्कृत की आर्य परम्परा प्राकृत और अपभ्रंश की जनमन मोहनी अभिरामता और देशी-विदेशी रचना शैली की ओजस्विता का सुस्पष्ट निदर्शन होता है । समीक्षाओं और समीक्षात्मक अध्ययनों की सुचिंतित प्रस्तुतियों ने इस शताब्दी के साहित्यकार को विराट भावभूमि से सम्पृक्त किया । यह कार्य सम्पन्न करने में अग्रण्य मनीषी हैं - सर्वश्री डॉ. एम. विन्टरनिट्ज डॉ. आर. जी. भाण्डारकर, सन्त गणेश प्रसाद वर्णी डॉ. हीरालाल जैन, डॉ. ए. एन. उपाध्ये, पं. नाथूराम प्रेमी, पं. जुगलकिशोर मुख्तार, डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, श्री अगरचन्द्र नाहटा, पं. परमेष्ठी दास न्यायतीर्थ, पं. अमृतलाल दर्शनाचार्य, डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, डॉ. रामजी उपाध्याय, डॉ. नेमीचन्द्र ज्योतिषाचार्य, पं. फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री, पं. बंशीधर जी व्याकरणाचार्य, डॉ.

दरबारीलाल कोठिया, डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. गोकुल चन्द्र जैन, पं. दयाचन्द्र साहित्याचार्य, पं. जगन्मोहनलाल सिद्धान्त शास्त्री आदि-आदि ।

इन सभी मनीषियों, समीक्षकों और साहित्यकारों की विविध प्रवृत्तियों से बीसवीं शताब्दी में साहित्यक पृष्ठभूमि जैन दिशा में पल्लवित, पुष्पित और फलीभूत हुई, जिसकी सुरभि ने अनेक रचनाकारों को अपना रचनाकौशल प्रदर्शित करने का सुअवसर प्रदान किया ।

उपसंहार

प्रस्तुत शोध विषय ''संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान'' के प्रथम अध्याय में संस्कृत साहित्य का अन्त र्दशन विश्लेषित है । विवेच्य विषय को दो खण्डों में विभाजित किया है - खण्ड ''अ'' में संस्कृत साहित्य का आविर्भाव तथा विकास प्रतिपादित करते हुए इसके संक्षिप्त इतिवृत्त को रूपायित करने का विनम्र प्रयत्न इसलिए किया है - जिससे कि ''संस्कृत'' की प्राचीनतम विकास यात्रा से वर्तमान शताब्दी की निरन्तरता और समृद्धि का परिज्ञान हो सके । ऐसा करते समय संस्कृत साहित्य की सभी विधाओं और सांस्कृतिक धाराओं को दृष्टिपथ में रखा गया है ।

इस अध्याय के खण्ड ''ब'' में बीसवीं शताब्दी की साहित्यक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है । वस्तुत: बीसवीं-शताब्दी भारतीय समाज, संस्कृत और साहित्य के लिए एक संक्रमण काल के रूप में विद्यमान है । क्योंकि इस शताब्दी के पूर्वार्ध का जनमानस वैदेशिक शासन तंत्र से प्रभावित था । किन्तु संस्कृत की समृद्ध परम्परा में राष्ट्र, राष्ट्रीयता और पारतन्य उन्मूलन हेतु चिन्तापरता की सशक्त स्वर-लहरी भी गूञ्ज उठी थी । इस स्वर का पूरी शक्ति से दमन करने का पूरा प्रयास आङ्ग्ल-शासकों ने किया, किन्तु वह शान्त नहीं हो सकता। भारतीय समाज में अशिक्षा, अज्ञान और साधन-हीनता का प्राय: बाहुल्य था । देश में छोटी-बड़ी अनेक रियासतें थीं । जिनके अधिकांश प्रशासक अंग्रेजों से भयभीत थे, किन्तु अनेक साहसी और शूरवीर राजा महाराजा तथा जन नायक राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक, आचार्य विनोबा भावे, सन्त गणेशप्रसाद वर्णी प्रभृति राष्ट्र उन्नायकों की दूरदर्शिता, जन कल्याणी दृष्टि और सर्वोपरि राष्ट्रहित की उदात्त भावना ने जनता-जनार्दन के मनोबल को समुन्नत बनाया । संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन-अनुशीलन और प्रणयन की प्राच्य परम्परा इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सुरक्षित और विकसित होती रही ।

बींसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध नयी उमङ्ग, नया उत्साह और नये आयाम ले करके प्रस्तुत हुआ । शताब्दी के इस भाग में प्राच्य जीवन-दर्शन के मूल्य सुरक्षित तो थे किन्तु भौतिक चकाचौंध और स्पष्ट शिक्षा नीति के प्राय: अभाव में संस्कृत को क्रमश: अनेक कठिनाईयों और अवमाननाओं का सामना करना पड़ा । शोधकर्त्ता को यह लिखने में तनिक भी सङ्कोच नहीं होता कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में संस्कृत की जितनी और जैसी दुरवस्था भारत राष्ट्र में है उतनी न तो इसके पहले यहाँ कभी रही है और न ही देश के बाहर अन्यत्र कहीं है पुनर्रपि संस्कृत की गतिशीलता और सञ्जीवनी-शक्ति ने त्याग, तपस्या, बलिदान, राष्ट्र-प्रेम, परोपकार को प्रोत्साहित करने तथा विदेशी संस्कृति के कुसंस्कारों को दूर करने का पूरा प्रयत्न किया ।

बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों, (जिनमें जैन परम्परा में जन्मे तथा जैनेतर परम्परा में जन्म लेकर भी जैन चिन्तन पर लेखनी चलाने वाले भी सम्मिलित हैं) ने भी समान भाव

से अहिंसा, अनेकान्तवाद और अपरिग्रह वाद के उच्च आदर्शों को संस्कृत काव्य की मुख्य धारा से सम्पृक्त किया । उनका यह प्रयत्न पर्याप्त पल्लवित और फलीभूत भी हुआ । इसी का लेखा-जोखा प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के आगे के अध्यायों में निदर्शित है ।

फुट नोट

1. संस्कृत शब्द के अन्य विशिष्ट प्रयोगों के अर्थ ज्ञान के लिए द्रष्टव्य वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी-कोश प्र. मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 1977 ई. पृ. 1051
2. जन सामान्य में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी . इसके विस्तृत विश्लेषण के लिए- डॉ. बलदेव उपाध्याय: संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ, 21-25
3. यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
   रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति । सुन्दरकाण्ड5/14
4. निरुक्त 1/4
5. अष्टाध्यायी-3/2/108
6. काव्यादर्श 1/33
7. विस्तृत विवेचन के लिए द्रष्टव्य (1) एन इंट्रोडक्शन टू कम्परेटिव फिलालॉजी डॉ. पी. डी. गुणे, 1950 पृ, 163 (2) डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलो. इतिहास पृ. 7

7अ. द्रष्टव्य-संस्कृत साहित्य का इतिहास : लेखक डॉ. जर्नार्दन स्वरूप अग्रवाल, प्रका. स्टुडेंट्स स्टोर्स बरेली 1971 के पृ. 4 पर उद्धृत डॉ. एम. विंटरनित्स का मत ।

8. इसके विशेष ज्ञान के लिए द्रष्टव्य डॉ. रामजी उपाध्याय: संस्कृत साहित्य का आलो. इति (इलाहाबाद, 2018 वि. सं. पृ. 3-21.)
9. विस्तार के लिए दे. भरत मुनि: नाट्य शास्त्र
10. द्रष्टव्य: सायण का तैत्तिरीय आरण्यक भाष्य, श्लोक 6.
11. द्रष्टव्य: संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, ले. डॉ. रामजी उपाध्याय, प्रकाशक-रामनारायण बेनीमाधव, इलाहाबाद, पृ. 325 ।
12. जैन पुराणों के विस्तृत परिचय के लिए द्रष्टव्य; डॉ. भागचन्द्र जैन ''भागेन्दु'' द्वारा सम्पादित साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन अभिनन्दन, ग्रन्थ, सागर, 1990 तृतीय खण्ड।
13. विस्तार के लिए दे. रामदास गौड़ लिखित हिन्दुत्व, प्र. शिव प्रसाद गुप्त काशी, 1995 वि. पृ. 445-46 ।
14. यह भारत में अनेक स्थानों से प्रकाशित हुआ है । मद्रास में सम्पूर्ण ग्रन्थ के हस्तलेख उपलब्ध हुए । इसके 10 सर्ग बम्बई से 1907 ई. में नन्दरगीकर के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुए ।
15. रामचरित गायकवाड़, ओरियण्टल सीरीज में प्रकाशित, संख्या 46. 1930 ई.
16. काव्यमाला (संख्या 11) में प्रकाशित ।
17. मिथिला विद्यापीठ द्वारा 1956 ई. में प्रकाशित ।
18. सहृदय संस्कृत जर्नल के 17-18 भाग में प्रकाशित ।
19. काव्य माला सीरीज में 76वाँ प्रकाशन ।
20. मैसूर से प्रकाशित हुआ है ।

21. तीनों भागों का प्रकाशन, रावजी भाई मेघजी भाई, मोम्बागकेन्या, ईस्ट अफ्रीका से हुआ है ।
22. इसका प्रथम प्रकाशन विक्रमाब्द 2014 तद्नुसार 1928 ई. में हुआ ।
23. इसका प्रथम प्रकाशन 1957 में फैजाबाद से हुआ ।
24. डॉ. रामजी उपाध्याय इसे प्रथम ऐतिहासिक काव्य मानते हैं में द्रष्टव्य- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास 1976, पृष्ठ 84 ।
25. बाम्बे संस्कृत सीरीज में प्रकाशित संख्या - 60,69,76, ।
26. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा द्वारा प्रकाशित. अजमेर ।
27. प्रकाशक श्री जैन आत्मानन्द सभा भाव नगर, 1917 ।
28. इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन 1948 में प्राच्यवाणी मंदिर, कलकत्ता से हुआ है।
29. साहित्य दर्पण आचार्य विश्वनाथ, 6-334 ।
30. विषय पद प्रकाश टीका के साथ निर्णय सागर से प्रकाशित 1931 ई.
31. श्रुत सागर सूरि की टीका के साथ निर्णयसागर प्रेस में प्रकाशित, बम्बई 1916 ई.।
32. सरस्वती विलास सीरीज, तञ्जौर से प्रकाशित 1905 ई. ।
33. निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित, बम्बई 1918 ई. ।
34. बम्बई से प्रकाशित 1916 ई. ।
35. यह चम्पू 1932 में प्रकाशित हुआ ।
36. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास ले. कपिलदेव द्विवेदी, शांति निकेतन, ज्ञानपुर (वाराणसी) द्वितीय संस्करण 1979, पृष्ठ 612 ।
37. निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1908 ई ।
38. देवकीनन्दन प्रेस, वृन्दावन से दो खंडो में प्रकाशित 1904 ई. वीरचन्द्र की टीका के साथ कलकत्ते से बंगान्तर में भी 1908-13 ।
39. बालमनोरमा प्रेस, मद्रास से 1924 ई.
40. निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1900 ई ।
41. हरि प्रसाद भागवत सम्पादित, बम्बई 1909 ई. ।
42. काशी के पण्डित में प्रकाशित । विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका के साथ बङ्गाक्षरों में हुगली के खण्डशः प्रकाशित 1918 ई. (अपूर्ण)
43. सरस्वती भवन ट्रेक्ट सं. 37, काशी से प्रकाशित 1931 ई. ।
44. निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1923 पञ्चम संस्करण ।
45. चित्रचम्पू पं. रामचरण चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित काशी, 1940 ई.
46. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, ले. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी पृ. 616.।
47. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृ. 617-618.।
48. साहित्य दर्पण 6-239
49. इण्डियन हिस्टारिकल कार्टरली, कलकत्ता जिब्द-4)
50. डॉ. यतीन्द्र विमल चौधरी के सम्पादकत्व में कलकत्ता से 1941 में प्रकाशित किया गया है ।
51. जैन प्रेस कोटा (राजस्थान) के गुणविनय की संस्कृत टीका तथा हिन्दी पद्यानुवाद के साथ प्रकाशित सं. 2005 में ।
52. जीवानन्द विद्यासागर द्वारा काव्य संगह में प्रकाशित कलकत्ता से ।

53. काव्य माला के गुच्छक 2 में प्रकाशित (निर्णय सागर प्रेस)
54. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा पाण्डेय एवं व्यास कृत पृ. 340 प्रकाशन-साहित्य कला, निकेतन, कानपुर 1954 ।
55. गीत गोविन्द्र 1-4 ।
56. सं. काव्यमाला ग्रन्थ संख्या 84., बम्बई 1930 ।
57. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ 355 डॉ. बलदेव उपाध्याय कृत
58. काव्य माला गुच्छक 2 में प्रकाशित
59. चौखम्बा संस्कृत सीरीज काशी से प्रकाशित, संवत् 1959 ।
60. काव्य माला में रजानक रत्न कं. की टीका के साथ प्रकाशित सं. 1975.
61. ट्र वासवदत्ता, भूमिका श्लोक 13.
62. मन्दारमञ्जरी का पूर्वभाग पर्वतीय प्रकाशन मंडल वाराणसी ने 1925 ई. में प्रकाशित किया ।
63. काशी से 1901 में प्रकाशित हुआ है ।
64. श्री वाणी विलास प्रेस श्री रंगम् से प्रकाशित ।
65. यह रचना तिलक जन्मशताब्दी के अवसर पर 1956 में - संस्कृत लोकमान्य तिलक चरित प्रकाशन से प्रकाशित हुई है।
66. ऋग्वेद 7 वाँ मण्डल सूक्त 103 एवं 11वां मंडल सूक्त 108 ।
67. महाभारत-4-88
68. मैकडॉनेल इण्डियाज पास्ट-पृष्ठ 117
69. महाभाष्य पाणिनि के सूत्र 2-1-3. 2-4 - 9. 5-3-106 आदि ।
70. मैकडॉनेलः संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ-369
71. सोमसुन्दर "देसिकर" का कृष्ण स्वामी आयंगर-स्मृतिग्रन्थ में लेख ।
72. वृहत्कथा-प्रस्तावना ।
73. जर्मन विद्वान हाइनरिशउले सम्पादित, लाइपजिश, 1884,
74. डॉ. एमेनाउ द्वारा रोमन अक्षरों में अंग्रजी अनुवाद के साथ प्रकाशित, अमेरिकन, ओरियण्टल सोसाइटी, 1934
75. एडगर्टन द्वारा रोमन अक्षरों में अंग्रेजी अनुवाद के साथ दो भागों में सम्पादित हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज 1926 ।
76. डॉ. स्मिथ ने विवरणों का जर्मन अनुवादों के साथ लाइफजिग से प्रकाशित किया। संक्षिप्त संस्करण संवत् 1893 में विस्तृत संस्करण सं. 1898-99 में ।
77. सिन्धी जैन ग्रन्थमाला (ग्रन्थाङ्क 1) में प्रकाशित, शान्तिनिकेतन 1989 विक्रमी इसका डॉ. टॉनीकृत अंग्रेजी अनुवाद भी कलकत्ता से 1901 में प्रकाशित । गुजरती एवं हिन्दी में भी अनुवाद हुआ है ।
78. संस्कृत सिन्धी ग्रन्थमाला (ग्रन्थांक 6) शान्ति निकेतन 1935 ई. सम्पादक मुनि जिनविजयजी ।
79. संस्कृत साहित्य का इतिहास लेखक डॉ. बलदेव उपाध्याय, पृ. 445
80. डॉ. कावेल तथा नील द्वारा सम्पादित कैम्ब्रिज 1886 में ।
81. (विस्तार के लिए) साहित्य दर्पण 6-1, 6-3 ।
82. कीथ : संस्कृत ड्रामा पृ. 12-77

83. नाट्य शास्त्र, भरतमुनिकृत 1-17 ।
84. संस्कृत नाट्य साहित्य, लेखक डॉ. जयकिशन, प्रसाद खण्डेलवाल, पृष्ठ 5 प्रकाशक-विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1976 ।
85. विस्तार के लिए-संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, कपिलदेव द्विवेदी पृ. 138 से 148 तथा संस्कृत नाट्य साहित्य, खण्डेलवाल कृत पृ. 104 से 107.
86. प्रो. ल्युडर्स को 1910 में मध्य एशिया के तुर्फान स्थान से प्राप्त हुए थे ।
87. श्री के. एच. ध्रुव, पूना प्राच्य मैगजिन 1926 पृ. 42
88. संस्कृत नाट्य साहित्य-लेखक जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल पृ. 24.
89. समीक्षा के लिए द्रष्टव्य-डॉ. देवस्थली-इन्ट्रोडक्सन टू दी स्टडी ऑफ मुद्राराक्षस बम्बई, 1948 पृ. 51 से 84.
90. विशेष विवरण, भवभूति का परिचय एवं समय के लिए द्रष्टव्य-कपिलदेव द्विवेदी द्वारा सम्पादित उत्तर रामचरित, भूमिका, पृ. 11 से 48 तक.
91. इसकी केवल एक अधूरी प्रति बर्लिन के राजपुस्तकालय में विद्यमान है और उसी के आधार पर इसका एक संस्करण यदुगिरिस्वामी के सम्पादकत्व में मैसूर से 1929 में प्रकाशित हुआ है ।
92. म. म. कप्पूस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित श्री बाल मनोरमा सीरीज (नं. 9) में प्रकाशित 1926 ।
93. गोविन्द देवशास्त्री द्वारा मूलमात्र सम्पादित काशी से प्रकाशित सन् 1869।
94. मद्रास से 1923 में प्रकाशित ।
95. गायकवाड ओरियण्टल सीरीज (ग्रन्थाक 8) में प्रकाशित, बड़ौदा 1930ई.।
96. काशी से सरस्वती भवन ट्रेक्ट 35 में 1930 ई. में प्रकाशित हुआ।
97. चौखम्बा संस्कृत सीरीज 1967 ई. में प्रकाशित ।
98. काव्यमाला में प्रकाशित । अद्यार से 1950 ई. में तथा हिन्दी अनुवाद के साथ काशी से 1955 ई. में प्रकाशित ।
99. प्रकाशक श्री शङ्करगुरुकुल, श्रीरङ्गम 1944 ई. ।
100. इसका प्रकाशन काव्य माला संख्या 78 में हो चुका ।
101. तुलसी ग्रन्थावली भाग 3 पृष्ठ 163 से 174 ।
102. गायकवाड ओरियण्ट सीरीज संख्या 8, बड़ौदा 1918 ई. ।
103. काव्य माला नं. 7 में प्रकाशित है ।
104. काव्य माला नं. 46 में प्रकाशित हुई है ।
105. भारतीय विद्या ग्रन्थावली (ग्रन्थकार 6) में डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये के सम्पादकत्व में प्रकाशित, बम्बई 1945 ।
106. बाबूलाल शुक्ल ने वाराणसी से प्रकाशित किया ।
107. जीवानन्द विद्यासागर द्वारा प्रकाशित ।
108. भावनगर से 1917 में प्रकाशित ।
109. काशी से प्रकाशित वीर नि. सं. 2432 में ।
110. शिवपुरी (मद्रास) से 1922 में प्रकाशित ।
111. अनन्त शयन संस्कृत ग्रन्थावली (नं. 55) में 1917 में प्रकाशित ।
112. काव्य माला (संख्या 20) में प्रकाशित, बम्बई 1889 ई. ।

113. दिल्ली से प्रकाशित-प्रथम नाटक 1963 ई. में और द्वितीय नाटक 1964 ई. में।
114. प्राणाहुति, गीवाणासुधा-प्रकाशन बम्बई से 1965 ई. में ।
115. विस्तृत अध्ययन हेतु द्रष्टव्य-संस्कृत नाटक साहित्य: लेखक डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल-पृष्ठ 63.
116. उषापरिणय की हस्तलिखित प्रति हैदराबाद में वनपर्ती के ग्रन्थालय में विद्यमान है।
117. जाम्बती कल्याण (तंजौर) के भाण्डागार में 4366-7 हस्तलिखित हैं ।
118. सरस्वती महल तञ्जौर से प्रकाशित हुआ है ।
119. इसकी हस्तलिखित प्रति डॉ. हरिसिंह गौर वि. वि. सागर के ग्रन्थालय में सुरक्षित है ।
120. इसका प्रकाशन काव्यमाला सं. 55 में हुआ है ।
121. इसका प्रकाशन केरल विश्वविद्यालय से संख्या 196 में हुआ है ।
122. जबलपुर से 1964 ई. में प्रकाशित ।
123. इसकी हस्तलिखित प्रति उड़ीसा में दामोदरपुर के निवासी श्री गोपी नाथ मिश्र के पास है ।
124. इसकी अप्रकाशित कृति संस्कृत कॉलेज कलकत्ता में है ।
125. इसका मुद्रण 1945 ई. में हुआ ।
126. विस्तृत परिचय हेतु-देखिये - आधुनिक संस्कृत नाटक: डॉ. एम. जी. उपाध्याय, प्रकाशक, विद्याविलास प्रेस, चौखम्बा वाराणसी ।



द्वितीय अध्याय

"बीसवीं शताब्दी में रचित जैन काव्य साहित्य" एक अन्तर्विभाजन

जीवन के बदलते सन्दर्भों और आवश्यकताओं के अनुरूप बीसवीं - शताब्दी में संस्कृत भाषा में जैन विषयों पर बहु-आयामी चिन्तन परम्परा से समृद्ध काव्य - साहित्य का सृजन हुआ । इस शताब्दी के साहित्य को तीन खण्डों में विभक्त कर सकते हैं-

1. मौलिक रचनाएँ
2. टीका ग्रन्थ
3. अन्य ग्रन्थ

मौलिक रचनाओं के अन्तर्गत इस काल खण्ड में विरचित महाकाव्य, खण्डकाव्य, दूतकाव्य, स्तोत्रकाव्य और शतक ग्रन्थ सम्मिलित हैं । इसके अन्तर्गत चम्पूकाव्य, श्रावकाचार तथा नीति विषयक रचनाओं के साथ ही स्फुट रचनाओं का भी समावेश किया गया है । टीका ग्रन्थों के खण्ड में ऐसी रचनाओं का विवेचन है - जो इस शताब्दी में टीका ग्रन्थ के रूप में प्रणीत हैं । जो रचनाएँ उपर्युक्त विश्लेषण क्रम में स्थान नहीं पा सकती थीं, उन्हें अन्य ग्रन्थों के शीर्षक के अन्तर्गत विश्लेषित किया गया है ।

विवेच्य कालखण्ड में विरचित जैन संस्कृत काव्यों की सूची निम्न प्रकार है -

महाकाव्य –

जयोदय महाकाव्यम्	-	आचार्य ज्ञानसागर
वीरोदय महाकाव्यम्	-	आचार्य ज्ञानसागर
श्रीभिक्षु महाकाव्यम्	-	मुनि नथमल
पुण्यश्री चरित महाकाव्यम्	-	पं. नित्यानन्द शास्त्री
क्षमा कल्याण चरितम्	-	पं. नित्यानन्द शास्त्री
शान्ति-सिन्धु महाकाव्यम्	-	आचार्य घासीलाल
लोकाशाह महाकाव्यम्	-	आचार्य घासीलाल
श्री तुलसी महाकाव्यम्	-	पं. रघुनन्दन शर्मा
स्वर्णाचल महाकाव्यम्	-	बालचन्द्र जैन
बाहुबली महाकाव्यम् (प्राकृत)	-	डा. उदयचन्द्र जैन
लोकाशाह महाकाव्यम्	-	पं. मूलचन्द शास्त्री

काव्य :

सुदर्शनोदय	-	आचार्य ज्ञानसागर
भद्रोदय	-	आचार्य ज्ञानसागर
शान्तिसुधासिन्धु	-	आचार्य कुन्थुसागर

प्रभव-प्रबोध काव्यम्	-	चन्दन मुनि
पञ्चतीर्थी	-	चन्दन मुनि
आर्जुन-मालाकारम्	-	चन्दन मुनि
संवर सुधा	-	चन्दन मुनि
अश्रु वीणा	-	मुनि नथमल
रत्नपाल चरितम्	-	मुनि नथमल
माथेरान सुषमा	-	मुनि नगराज
धर्मकुसुमोद्यानम्	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
विद्वद् अभिनन्दनम्	-	पं. लाल बहादुर शास्त्री
पाण्डव - विजयः	-	मुनि डूंगरमल
रोहिणेयः	-	बुद्धमल्ल
गीतिसन्दोहः	-	मुनि दुलीचन्द्र "दिनकर"
संस्कृत गीतमाला	-	साध्वी संघमित्रा
गीतिगुच्छः	-	साध्वी संघमित्रा
गीतिगुम्फः	-	साध्वी कमल श्री
गीति सन्दोह	-	साध्वी मंजुला
भाव-भास्कर काव्यम्	-	धनराज द्वितीय
कर्कर - काव्यम्	-	मोहनलाल "शार्दूल"
कुरल काव्यम्	-	पं. गोविन्द राय शास्त्री
बुन्देलखण्ड गौरव काव्यम्	-	पं. गोविन्द राय शास्त्री
भुजबली चरितम्	-	पं. के. भुजबली शास्त्री
शान्ति शृङ्गार विलास	-	पं. के. भुजबली शास्त्री
जय-पराजयम्	-	डॉ. उदयचन्द्र जैन
बङ्कचल चरितम्	-	कन्हैयालाल

दूतकाव्य :

वचनदूतम्	-	पं. मूलचन्द्र जी शास्त्री

स्तोत्र/स्तुति :

श्रीगुरो शिवसागरस्य स्तवः	-	आचार्य ज्ञानसागर
शारदास्तुतिः	-	आचार्य विद्यासागर
महावीर स्तवनम्	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
महावीर स्तोत्रम्	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
सामयिक पाठः	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
बाहुबल्यष्टकम्	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
विद्यासागराष्टकम्	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
आचार्य शान्तिसागरवन्दना	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
तं धर्मसिन्धुर्प्रणमामि नित्यम्	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
आचार्य धर्मसागर महाराजं प्रति	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
तं देशभूषणमहर्षिमहं समीडे	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य

साधु-वन्दना	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
विनयाञ्जलयः	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
वृत्तहारः	-	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
आचार्यप्रवर श्रीशांतिसागर स्तुतिः	-	आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी
श्री शिवसागराचार्य - स्तुतिः	-	आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी
श्री महावीरकीर्त्याचार्य स्तुतिः	-	आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी
श्री धर्मसागराष्टकम्	-	आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी
देवगुरु स्तोत्रम्	-	मुनि सोहनलाल
मातृकीर्तनम्	-	मुनि सोहनलाल
भगवत्स्तुतिः	-	मुनि सोहनलाल
आचार्य शिवसागर स्तोत्रम्	-	आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी
अष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्रम्	-	आर्यिका विशुद्धमती माता जी
जम्बू जिनाष्टकम्	-	पं. दरबारी लाल जी कोठिया
वीराष्टकम्	-	पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य
श्री तुलसी स्तोत्रम्	-	मुनि पूनमचन्द्र
वीतराग स्तुतिः	-	चन्दनमुनि
तेरापन्थी स्तोत्रम्	-	मुनि नथमल
तुलसी स्तोत्रम्	-	मुनि नथमल
जिन चतुर्विंशतिका	-	मुनि नथमल
चतुर्विंशति स्तवनम्	-	आचार्य तुलसी
वर्धमान स्तोत्रम्	-	आचार्य घासीलाल
श्री तुलसी स्तोत्रम्	-	मुनि बुद्धमल्ल
शिवाष्टक स्तोत्रम्	-	आर्यिका जिनमती जी
गुरु-गौरवम्	-	मुनि डूंगरमल
पद्मप्रभस्तवनम्	-	पं. जवाहर लाल शास्त्री
श्री आचार्य ज्ञानसागर संस्तुति	-	पं. मूलचन्द्र शास्त्री
अभिनव स्तोत्रम्	-	पं. मूलचन्द्र शास्त्री
गणेश स्तुतिः	-	पं. मूलचन्द्र शास्त्री
आचार्य शिवसागर स्तुति	-	पं. मूलचन्द्र शास्त्री
भक्तामर रहस्यम्	-	पं. कमलकुमार शास्त्री
शुद्धात्म स्तवनम्	-	ब्र. पं. सच्चिदानंद वर्णी
श्रीमद् वर्णि गणेशाष्टकम्	-	पं. ठाकुरदास शास्त्री
पौराष्टकम्	-	पं. ठाकुरदास शास्त्री
वर्णी-सूर्यः	-	पं. अमृतलाल दर्शनाचार्य
हरिभक्तामर	-	कवीन्द्र सागर सूरि
नेमिनाथं प्रतिः	-	मुनि मोहनलाल 'शार्दूल'
देवगुरु-धर्म-द्वात्रिंशिका	-	मुनि धनराज (प्रथम)
देवगुरु द्वात्रिंशिका	-	मुनि छत्रमल
भिक्षु द्वात्रिंशिका	-	मुनि छत्रमल

तुलसी द्वात्रिंशिका	–	मुनि छत्रमल
नम्यते मुनिवरप्रमुखाय तस्मै	–	डा. दामोदर शास्त्री
पूज्यार्यिकां रत्नमतीं नमामि	–	डा. दामोदर शास्त्री
गणेशाष्टकम्	–	आचार्य गोपीलाल 'अमर'
अहारतीर्थ स्तोत्रम्	–	पं. गोविन्द्र दास 'कोठिया'
गोपाल अट्ठगं	–	डा. नेमीचन्द्र 'ज्योतिषाचार्य'
चन्दाट्ठगं/चन्द्राष्टकम्	–	रज्जन सूरि देव
श्री चन्द्रसागर स्तुतिः	–	पं. इन्द्रलाल शास्त्री
श्री रत्नमतीमातुः स्तुतिः	–	कु. माधुरी शास्त्री
विद्यासागर स्तवनम्	–	पं. भुवनेन्द्रकुमार जैन, खुरई
सरस्वती वन्दनाष्टकम्	–	पं. दयाचंद साहित्याचार्य
अहारतीर्थ स्तवनम्	–	पं. बारेलाल जैन 'राजवैद्य'

समस्या पूर्ति स्तोत्र काव्य :

कल्याण मन्दिर स्तोत्र की पाद	–	
पूर्ति 'कालू मन्दिर स्तोत्र' के नाम से-	–	मुनि नथमल
कल्याण मंदिर के पृथक्-पृथक् चरण लेकर कल्याण मंदिर स्तोत्रों की रचनाएं की	–	आचार्य तुलसी, मुनिधनराज(प्रथम) चन्दन मुनि
भक्तामर स्तोत्र की पादपूर्ति 'काल भक्तामर' के नाम से	–	मुनि कानमल
कल्याण मन्दिर और भक्तामर की पादपूर्ति	–	मुनि सोहनलाल
कल्याण मन्दिर की पादपूर्ति (कालू कल्याण मन्दिर स्तोत्र)	–	पं. गिरधर शर्मा
भक्तामर स्तोत्र की पादपूर्ति 'कालू भक्तामर' के नाम से	–	पं. गिरधर शर्मा

शतककाव्य :

मुनिमनोरञ्जन-शतकम्	–	आचार्य ज्ञानसागर
सम्यक्त्वसार-शतकम्	–	आचार्य ज्ञानसागर
निजानुभवशतकम्	–	आचार्य विद्यासागर
श्रमण-शतकम्	–	आचार्य विद्यासागर
निरञ्जन-शतकम्	–	आचार्य विद्यासागर
भावना-शतकम्	–	आचार्य विद्यासागर
सुनीति-शतकम्	–	आचार्य विद्यासागर
परीषह-जयशतकम्	–	आचार्य विद्यासागर
मुक्तक-शतकम्	–	आचार्य विद्यासागर
तीर्थ-शतकम्	–	आचार्य विद्यासागर

समस्या-शतकम्	–	मुनि मधुकर
भिक्षु-शतकम्	–	मुनि नगराज
भिक्षु-शतकम्	–	मुनि नथमल
तुलसी-शतकम्	–	मुनि दुलीचन्द्र 'दिनकर'
नेशं-द्विशतकम्	–	मुनि राकेशकुमार
प्रास्ताविक-श्लोक-शतकम्	–	चन्दन मुनि
अनुभूति-शतकम्	–	चन्दन मुनि
पृथ्वी-शतकम्	–	साध्वी कनक श्री
आषाढ़भूति-शतकम्	–	मुनि मिट्ठा लाल
हरिश्चन्द्र कालिकं द्विशतकम्	–	साध्वी फूलकुमारी
श्लोक-शतकम्	–	साध्वी मोहनकुमारी
अणुव्रत-शतकम्	–	मुनि चम्पालाल
धर्मशतकम्	–	मुनि छत्रसाल
महावीर-शतकम्	–	मुनि छत्रसाल
भिक्षु-शतकम्	–	मुनि छत्रसाल
कृष्णशतकम्	–	मुनि छत्रसाल
जयाचार्य-शतकम्	–	मुनि छत्रसाल
काल-शतकम्	–	मुनि छत्रसाल
तुलसी-शतकम्	–	मुनि छत्रसाल
तेरापन्थ-शतकम्	–	मुनि छत्रसाल
जिनोपदेश	–	पं. जवाहर लाल शास्त्री

चम्पूकाव्य :

दयोदय-चम्पू :	–	आचार्य ज्ञानसागर
वर्धमान-चम्पू :	–	पं. मूलचन्द्र शास्त्री

'श्रावकाचार तथा नीतिविषयक काव्य' :

श्रावकाचार :

श्रावक धर्म प्रदीप	–	आचार्य कुन्थसागर

नीतिविषयक काव्य :

सुवर्ण-सूत्रम्	–	आचार्य कुन्थसागर
पञ्चसूत्रम्	–	आचार्य तुलसी
शिक्षा-षण्णवति :	–	आचार्य तुलसी
कर्त्तव्यषट्त्रिंशिका	–	आचार्य तुलसी
उपदेशामृतम्	–	चन्दनमुनि
प्रास्ताविक-श्लोक-जय	–	मुनि धनराज (प्रथम)
चतुरायामः	–	मुनि वत्सराज

स्फुट रचनाएं :

सूरिं प्रवन्दे शिवसागरं तं	–	मुनि अजितसागर

सः जयतु गुरूवर्यः	–	आर्यिका ज्ञानमती माता जी
आचार्य चरणेषु श्रद्धांजलिः	–	आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी
श्रद्धाञ्जलि :	–	आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी
वन्देऽहं इन्दुमातरम्	–	आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी
जैनादर्शः	–	पं. जुगल किशोर मुख्तार
आचार्य शान्तिसागरम् प्रति शुभाशंसनम् / श्री गणेश प्रसाद	–	पं. खूबचन्द्र शास्त्री
वर्णीमहोदयानां-	–	पं. पन्नालाल साहित्याचार्य
तुला - अतुला	–	मुनि नथमल
कैलाशचन्द्रो जयतात्सुधीन्द्रः	–	पं. कमलकुमार जैन 'कलकत्ता'
दीपावली वर्णनम्	–	डा. दयाचन्द्र साहित्याचार्य
भाडतुला भारतस्य	–	डा. दयाचन्द्र साहित्याचार्य
विपत्तिरेवाऽभ्युदस्य मूलम्	–	डा. दयाचन्द्र साहित्याचार्य
नक्तन्दिनं दहति चित्तमिदं जनानाम्	–	डा. दयाचंद्र साहित्याचार्य
सोऽयं श्री दरबारीलाल इह	–	
भोः स्थेयाच्चिरं भूतले	–	पं. मूलचन्द्र शास्त्री
गोपालदासो गुरुरेक एव	–	पं. अमृतलाल दर्शनाचार्य
श्रद्धाप्रसूनाञ्जलिः	–	पं. अमृतलाल दर्शनाचार्य
तावच्चन्दाबाई भारतवर्ष	–	
विभूषयतु	–	पं. अमृतलाल दर्शनाचार्य
बुन्देलखण्डं सद्गुरू श्री वर्णी च	–	पं. गोविन्द राय शास्त्री
पन्नालाल बुधोत्तमो विजयतां	–	पं. भुवनेन्द्र कुमार शास्त्री(खुरई)
जयतु सच्चिदानन्द-सच्चिदानन्दमूर्तिः	–	सिद्धेश्वर वाजपेयी
जयतु गुरू गोपालदासः	–	प्रो. रामनाथ पाठक 'प्रणयी'
जयतु काऽपि देवी मां चन्दा	–	प्रो. रामनाथ पाठक 'प्रणयी'
सद्ब्रह्मचारिणी सेयं 'चन्दा'-	–	
चन्द्रकरोज्ज्वलाः	–	हरनाथ द्विवेदी
धर्मदिवाकरं नमामि यतिनायकम्	–	क्षुल्लिका राजमती माता जी
नमो नमः	–	पं. जवाहर लाल सिद्धान्त शास्त्री
गोपालदासेतिवृत्तम्	–	राजधर लाल शास्त्री 'व्याकरणाचार्य'
प्रणामाः	–	ब्रजभूषण मिश्रा
श्रद्धाञ्जलिः	–	रामसकल उपाध्याय
आचार्य शिवसागराणां श्रद्धांजलिः	–	पं. महेन्द्रकुमार शास्त्री 'महेश'
वर्णिगाथा	–	पं. कमलकुमार जैन 'कलकत्ता'
समर्पणम्	–	पं. कमलकुमार जैन 'कलकत्ता'
वर्णिवाणी	–	डा. राजकुमार 'साहित्याचार्य'
श्री रत्नमतीमातुः जीवनवृत्तम्	–	कु. माधुरी शास्त्री
शब्दप्रसूनम्	–	डा. नरेन्द्र 'विद्यार्थी'

गुरोश्चरणयोः श्रद्धाञ्जलिः	-	पञ्चराम जैन
श्रद्धाञ्जलिः	-	डा. नेमीचन्द्र जैन 'खुरई'

पूजाव्रतोद्यापन काव्य :

रविव्रतोद्यापनम्	-	डा. पन्नालाल साहित्याचार्य
त्रैलोक्यतिलक व्रतोद्यापनम्	-	डा. पन्नालाल साहित्याचार्य
अशोकरोहिणी व्रतोद्यापनम्	-	डा. पन्नालाल साहित्याचार्य
सहस्र नामांकित जिनपूजा	-	डा. पन्नालाल साहित्याचार्य
सहस्र नाम विधान	-	डा. पन्नालाल साहित्याचार्य
दधिघृत व्रतोद्यापनम्	-	डा. पन्नालाल साहित्याचार्य
वृषभ जिनेन्द्र पूजा	-	डा. पन्नालाल साहित्याचार्य
आचार्य अजितसागर पूजा	-	आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी

दार्शनिक रचनाएँ :

सम्यक्त्व चिन्तामणि	-	पं. पन्नालाल साहित्याचार्य
सज्ज्ञान चन्द्रिका	-	पं. पन्नालाल साहित्याचार्य
सम्यग्चारित्र चिन्तामणि	-	पं. पन्नालाल साहित्याचार्य
जैनप्रमाणमीमांसाया स्वरुपम्	-	पं. दरबारी लाल कोठिया
जैनदर्शने करुणायाः स्वरुपम्	-	पं. दरबारी लाल कोठिया
आत्मा अस्ति न वा	-	पं. दरबारी लाल कोठिया
विश्वतत्त्व प्रकाशकः स्याद्वाद	-	पं. दयाचंद्र साहित्याचार्य
जैन समणाचारे समितिः-विमर्श	-	डा. ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार'
कषायजय भावना	-	नेमिचन्द्र जैन 'खुरई'
साध्वी व्याख्यान निर्णय	-	जिनमणि सागरसूरि
कल्याणक परामर्श	-	बुद्धिमनि गणि
पर्युषणा परामर्श	-	बुद्धिमनि गणि

(ब) टीका ग्रन्थ :

समयसार टीका	-	क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी
पुरुषार्थ सिद्धि उपाय	-	पं. नाथूराम 'प्रेमी'
प्रद्युम्न-चरित	-	पं. नाथूराम 'प्रेमी'
पुण्याश्रव-कथाकोश	-	पं. नाथूराम 'प्रेमी'
न्यायकुमुदचन्द्र	-	पं. महेन्द्रकुमार 'न्यायाचार्य'
अकलङ्कग्रन्थत्रयी	-	पं. महेन्द्रकुमार 'न्यायाचार्य'
प्रमेयकमलमार्तण्ड	-	पं. महेन्द्रकुमार 'न्यायाचार्य'
प्रवचनसार	-	डा. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये
परमात्मप्रकाश	-	डा. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये
धर्मपरीक्षा	-	डा. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये
कार्तिकेयानुप्रेक्षा	-	डा. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये
पार्श्वाभ्युदय	-	डा. राजकुमार 'साहित्याचार्य'

मदन पराजय	–	डा. राजकुमार 'साहित्याचार्य'
बृहत्-कथा-कोश	–	डा. राजकुमार 'साहित्याचार्य'
प्रशम रति प्रकरण	–	डा. राजकुमार 'साहित्याचार्य'
इष्टोपदेश	–	पं. परमानन्द शास्त्री
समाधितन्त्र	–	पं. परमानन्द शास्त्री
जैनग्रन्थप्रशस्ति संग्रह	–	पं परमानन्द शास्त्री
पुरुषार्थसिद्धियुपाय	–	पं. मुन्नालाल रांधेलीय
प्रमाणप्रमेयकलिका	–	डा. दरबारी लाल कोठिया
अध्यात्मकमलमार्तण्ड	–	डा. दरबारी लाल कोठिया
प्रमाण परीक्षा	–	डा. दरबारी लाल कोठिया
शासन चतुस्त्रिंशिका	–	डा. दरबारी लाल कोठिया
न्यायदीपिका	–	डॉ. दरबारीलाल कोठिया
स्याद्वादसिद्धिः	–	डॉ. दरबारीलाल कोठिया
प्राकृतपद्यानुक्रमणिका	–	डॉ. दरबारीलाल कोठिया
द्रव्यसंग्रह	–	डॉ. दरबारीलाल कोठिया
आप्तपरीक्षा	–	डॉ. दरबारीलाल कोठिया
पार्श्वनाथ स्तोत्रस्य संस्कृतटीका	–	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
मरुद्देवस्वप्नावली	–	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
गद्य चिन्तामणि	–	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
पुरुदेवचम्पूः	–	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
जीवन्धरचम्पूः	–	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
धर्मशर्माभ्युदय	–	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
विक्रान्त कौरव नाटकम्	–	डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
सत्यशासनपरीक्षा	–	डॉ. गोकुलचन्द्र जैन
कर्मप्रकृति	–	डॉ. गोकुलचन्द्र जैन
प्रमेयकण्ठिका	–	डॉ. गोकुलचन्द्र जैन
प्रमेयरत्नमाला	–	पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री
वसुनन्दीश्रावकाचार	–	पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री
श्रावकाचार संग्रह (तीन भाग)	–	पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री
जयधवला	–	पं. फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री
षोडशक प्रकरण	–	पं. मूलचन्द्र शास्त्री
विजयहर्षसूरि प्रबन्ध	–	पं. मूलचन्द्र शास्त्री
मुनिसुव्रतमहाकाव्य	–	पं. के. भुजबली शास्त्री
चित्रसेन-पद्मावती चरितम्	–	पं. के. भुजबली शास्त्री
पद्मनन्दि-पञ्चविंशतिका	–	पं. बालचन्द्र ''सिद्धान्तशास्त्री''
आत्मानुशासन	–	पं. बालचन्द्र ''सिद्धान्तशास्त्री''
पुण्यास्त्रव कथा कोष	–	पं. बालचन्द्र ''सिद्धान्तशास्त्री''
तिलोयपण्णत्ति	–	पं. बालचन्द्र ''सिद्धान्तशास्त्री''
वरांग चरितम्	–	प्रो. खुशाल चन्द्र ''गोरावाला''

द्विसन्धानमहाकाव्यम्	-	प्रो. खुशालचन्द्र ''गोरावाला''
पद्मनन्दि श्रावकाचार	-	परमेष्ठी दास ''न्यायतीर्थ''
संस्कृत निबंधावलि	-	डॉ. भागचन्द्र जैन ''भागेन्दु''
भावना-द्वात्रिंशतिका	-	डॉ. भागचन्द्र जैन ''भागेन्दु''
गोम्मटेश स्तुतिः	-	डॉ. भागचन्द्र जैन ''भागेन्दु''
निजामृतपान	-	डॉ. भागचन्द्र जैन, ''भागेन्दु''
''नियमसारपाहुड सुत्तस्य समीक्षात्मक अध्ययनम्''	-	डॉ. ऋषभचंद्र जैन ''फौजदार''
अचूरिजुदो दव्वसंगहो	-	डॉ, ऋषभचन्द्र जैन ''फौजदार''
नियमसार टीका	-	डॉ. उदयचन्द्र जैन
तत्त्वार्थसूत्रम्	-	डॉ. उदयचन्द्र जैन
सागारधर्मामृतम्	-	पं. मोहनलाल शास्त्री
मोक्षशास्त्रम्	-	पं. मोहनलाल शास्त्री
परीक्षामुखम्	-	पं. मोहनलाल शास्त्री
क्षत्रचूड़ामणि	-	पं. मोहनलाल शास्त्री
अणत्थमिडकहा	-	पं. कमलकुमार शास्त्री
पद्मावती स्तोत्रम्	-	पं. कमलकुमार शास्त्री
भैरवाष्टकम् स्तोत्रम्	-	पं. कमलकुमार शास्त्री
कल्याणमंदिर स्तोत्रम्	-	पं. कमलकुमार शास्त्री
विषापहार स्तोत्रम्	-	पं. कमलकुमार शास्त्री
चन्द्रप्रभचरितम्	-	पं. अमृतलाल ''दर्शनाचार्य''
तत्त्वसंसिद्धि	-	पं. अमृतलाल ''दर्शनाचार्य''
आप्तमीमांसा		
तत्त्वदीपिका	-	प्रो. उदयचन्द्र जैन
रयणसागर	-	डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन
वड्ढमाण चरित	-	डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन
भविष्यदत्त कथा	-	डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन
प्रमेयकमलमार्तण्ड	-	पं. नरेन्द्रकुमार ''न्यायतीर्थ''
पञ्चाध्यायी	-	पं. नरेन्द्रकुमार ''न्यायतीर्थ''
मध्यप्रदेश के प्राचीन अभिलेख	-	डॉ. कस्तूरचन्द्र ''सुमन''
संस्कृत-रचनादर्श	-	डॉ. कस्तूरचन्द्र ''सुमन''
नीतिसारः	-	डॉ. कस्तूरचन्द्र ''सुमन''

अन्य ग्रन्थ

गद्य कृतियाँ :

मङ्गलायतनम्	–	पं. बिहारीलाल शर्मा

उपसंहार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में ''बीसवीं-शताब्दी में रचित जैन काव्य साहित्य एक अन्तर्विभाजन विश्लेषित है ।

इस अध्याय को तीन खण्डों में विभाजित किया है ।

(अ) मौलिक रचनाएँ

(ब) टीका ग्रन्थ

(स) अन्य ग्रन्थ

शोध-कर्त्ता की ही भांति अन्य अनेक मनीषियों को प्रारम्भ में (मेरे पी-एच. डी.) पञ्जीयन के समय यह आशङ्का थी कि कदाचित् बीसवीं-शताब्दी में जैन विषयों पर प्रणीत संस्कृत साहित्य इतना अधिक उपलब्ध नहीं होगा । किन्तु कार्य प्रारम्भ करने पर मुझे प्रचुर मात्रा में साहित्य सुलभ हुआ । इस शताब्दी में रचित प्रतिनिधि जैन रचनाओं की संख्या निम्नलिखित हैं –

मौलिक रचनाएँ

1.	महाकाव्य	11
2.	काव्यग्रन्थ	27
3.	दूतकाव्य	01
4.	स्तोत्र/स्तुति	70
5.	शतककाव्य	31
6.	चम्पूकाव्य	02
7.	श्रावकाचार	01
8.	नीतिविषयक काव्य	07
9.	स्फुट रचनाएं	37
10.	पूजाव्रतोद्यापन	08
11.	दार्शनिक रचनाएँ	12

टीका ग्रन्थ :

टीका ग्रन्थ	82

अन्य ग्रन्थ

गद्य कृतियाँ	01

इस अध्याय में उक्त रचनाओं एवं उनके रचनाकारों के नामोल्लेख मात्र किये गये हैं । इनका परिचयात्मक विश्लेषण अगले अध्याय में किया गया है ।



तृतीयः अध्याय

बीसवीं शताब्दी के साधु–साध्वियों द्वारा प्रणीत प्रमुख जैन काव्यों का अनुशीलन

प्रास्ताविक :

''काव्य'' शान्ति से ओत-प्रोत क्षणों में लिखित कोमल शब्दों, मधुर कल्पनाओं एवं उद्रेकमयी भावनाओं की मर्मस्पृग् भाषा है । यह सहज रूप में तरङ्गित भावों का मधुर प्रकाशन है । वस्तुतः काव्य-भाषा के माध्यम से अनुभूति और कल्पना द्वारा जीवन का परिष्करण है । मानव जीवन काव्य का पाथेय ग्रहण कर सांस्कृतिक सन्तरण की क्षमता अर्जित करता है । राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और जातीय भावनाएँ काव्य में सुरक्षित रहती हैं । संस्कृत काव्य भारत वर्ष के गर्वोन्नत भाल की दीप्ति से सङ्क्रान्त जीवन का चित्र है ।

संस्कृत काव्य का प्रादुर्भाव भारतीय संस्कृति के उषःकाल में ही हुआ । इसके आविर्भाव और विकास की सोपान श्रृङ्खला इस शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में निदर्शित है । संस्कृत काव्य अपनी रूपमाधुरी द्वारा वैदिक काल से ही प्रभावित करता आया है।

जैन संस्कृत काव्य :

जैनाचार्य और जैनमनीषी प्रारम्भ में प्राकृत भाषा में ही ग्रन्थ रचना करते थे प्राकृत जन सामान्य की भाषा थी, अतः लोक परक सुधारवादी रचनाओं का प्रणयन जैनाचार्यों ने प्राकृत भाषा में ही प्रारम्भ किया । भारतीय वाङ्मय के विकास में जैनाचार्यों के द्वारा विहित योगदान की प्रशंसा डॉ. विन्टरनित्स् ने बहुत अधिक की है ।[1]

प्रसिद्ध जैन-ग्रन्थ ''अनुयोगद्वार सूत्र'' में प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं को ऋषि-भाषित कहकर समान रूप से सम्मान प्रदर्शित किया गया है[2] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं में साहित्य सृजन करने की स्वीकृति जैनाचार्यों द्वारा प्रदान की गई है ।

ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं कि ईस्वी सन् की आरम्भिक शताब्दियों में संस्कृत भाषा तार्किकों के तीक्ष्ण तर्क बाणों के लिए तूणीर बन चुकी थी । इसलिए संस्कृत भाषा का अध्ययन, मनन न करने वालों के लिए विचारों की सुरक्षा खतरे में थी । भारत के समस्त दार्शनिकों ने दर्शन शास्त्र के गम्भीर ग्रन्थों का प्रणयन संस्कृत भाषा में प्रारम्भ किया । जैन कवि और दार्शनिक भी इस दौड़ में पीछे नहीं रहे । उन्होंने प्राकृत के समान ही संस्कृत पर अपना अधिकार कर लिया और काव्य तथा दर्शन के क्षेत्र को अपनी महत्त्वपूर्ण रचननाओं के द्वारा समृद्ध बनाया ।

जैन काव्य रचना का मुख्य आधार : द्वादशाङ्ग वाणी :

जिस प्रकार वैदिक धर्म में वेद सर्वोपरि है और बौद्ध धर्म में त्रिपिटक, उसी प्रकार जैन धर्म में द्वादशाङ्ग वाणी को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है । इस द्वादशाङ्ग वाङ्मय में चौदह

पूर्व नामक वाङ्मय भी सम्मिलित है । भगवान् महावीर के पहले से जो ज्ञान परम्परा चली आ रही थी, उसे ही उत्तरवर्ती साहित्य रचना के समय ''पूर्व'' कहा गया है । सामान्य व्यक्ति इन पूर्वों को समझने में असमर्थ थे । इसलिए गणधरों ने तीर्थङ्कर महावीर की दिव्यध्वनि के आधार पर प्राकृत में द्वादशाङ्ग वाणी को निबद्ध किया इस विवेचन से स्पष्ट है कि जैन रचनाकारों की मूलभाषा प्राकृत थी । संस्कृत के प्रचार युग में जैनाचार्य और मनीषी भी काव्य और दर्शन सम्बन्धी रचनाओं का प्रणयन इसी भाषा में करने लगे ।

काव्य सृजन की दृष्टि से सबसे पहला संस्कृत का जैन कवि आचार्य समन्तभद्र है। इनका समय दूसरी शताब्दी ईस्वी है । संस्कृत भाषा में जैनकाव्य की परम्परा द्वितीय शताब्दी से आरम्भ होकर अद्यावधि (20वीं शताब्दी तक) अनवरत प्रवर्तमान है ।

संस्कृत काव्य के विकास काल में जितने काव्य ग्रन्थ जैन आचार्यों और मनीषियों ने लिखे हैं, उनसे कई गुने अधिक ह्रासोन्मुख काल में भी जैनों ने लिखे हैं । इसीलिए जैन संस्कृत काव्य ग्रन्थों में संस्कृत के विकास और ह्रासोन्मुख काल की सभी प्रवृत्तियों का समवाय प्राप्त होता है ।

जैन संस्कृत काव्यों के क्रमिक विकास की परम्परा का इतिहास विश्लेषित करने के पूर्व इनकी उन विशेषताओं पर विचार करना आवश्यक है, जो वैदिक कवियों के संस्कृत काव्यों की अपेक्षा भिन्न हैं । वैदिक कवियों के और जैन कवियों के संस्कृत काव्य रचना में बाह्य दृष्टि से अनेक समानताओं के रखने पर भी अन्तरंग दृष्टि से बहुत सी भिन्नताएँ भी हैं। क्योंकि काव्य का सृजन किसी विशेष सिद्धान्त को सम्मुख रखकर होता है । अत: स्थापत्य, वस्तु गठन आदि की समानता होने पर भी सिद्धान्त की अपेक्षा काव्यात्मा में अन्तर आ ही जाता है । इतने से अन्तर के कारण उच्चकोटि के काव्यों की अवहेलना साम्प्रदायिकता के नाम पर नहीं की जा सकती है । जीवन प्रक्रिया एवं रसोद्बोधन की क्षमता सभी काव्यों में स्पष्ट है कि संस्कृत जैन काव्यों की आधारशिला द्वादशाङ्ग वाणी है । इस वाणी में आत्मविकास द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है ।

रत्नत्रय - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की साधना द्वारा मानव मात्र चरमसुख को प्राप्त कर सकता है । संस्कृत भाषा में रचित प्रत्येक जैन काव्य उक्त संदेश को ही पुष्पों की सुगन्ध की भांति विकीर्ण करता है ।

2. जैन संस्कृत काव्य स्मृति अनुमोदित वर्णाश्रम धर्म के पोषक नहीं हैं । इनमें जातिवाद के प्रति क्रांति निदर्शित है । इनमें आश्रम व्यवस्था भी मान्य नहीं है । समाज श्रावक और मुनि इन दो वर्गों में विभक्त है। चतुर्विध संघ - मुनि, आर्यिका श्रावक, श्राविका को ही समाज माना गया है । इस समाज का विकास श्रावक और मुनि के पारस्परिक सहयोग से होता है ।

तप, त्याग संयम एवं अहिंसा की साधना के द्वारा मानव मात्र समान रूप से आत्मोत्थान करने का अधिकार है । आत्मोत्थान के लिए किसी परोक्ष शक्ति की सहायता अपेक्षित नहीं है । अपने पुरुषार्थ के द्वारा कोई भी व्यक्ति अपना सर्वाङ्गीण विकास कर सकता है ।

3. संस्कृत जैन काव्यों के नायक देव, ऋषि, मुनि नहीं है । अपितु राजाओं के साथ सेठ, सार्थवाह, धर्मात्मा जन आदि हैं ।

नायक अपने चरित्र का विकास इन्द्रियदमन और संयम पालन द्वारा स्वयं करता है। आरम्भ से ही नायक त्यागी नहीं होता वह अर्थ और काम दोनों पुरुषार्थों का पूर्णतया उपयोग

करता हुआ किसी निमित्त विशेष को प्राप्त कर विरक्त होता है और आत्मसाधना में लग जाता है । जिन काव्यों के नायक तीर्थंकर या अन्य पौराणिक महापुरुष हैं, उन काव्यों में तीर्थङ्कर आदि पुण्य पुरुषों की सेवा के लिए स्वर्ग से देवी-देवता आते हैं। पर वे महापुरुष भी अपने चरित्र का उत्थान स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा ही करते हैं ।

4. जैन संस्कृत काव्यों के कथा स्रोत वैदिक पुराणों या अन्य ग्रन्थों से ग्रहण नहीं किये गये हैं, प्रत्युत से लोक प्रचलित प्राचीन कथाओं एवं जैन परम्परा के पुराणों से संग्रह किये गये हैं । कवियों ने कथा वस्तु को जैन धर्म के अनुकूल बनाने के लिए उसे पूर्णतया जैन धर्म के सांचे में ढालने का प्रयास किया है । रामायण या महाभारत के कथांश जिन काव्यों के आधार हैं, उनमें भी उक्त कथाएँ जैन परम्परा के अनुसार अनुमोदित ही हैं । इनमें बुद्धि-सङ्गत यथार्थवाद द्वारा विकारों का निराकरण करके मानवता की प्रतिष्ठा की गई है ।

5. संस्कृत जैन काव्यों के नायक जीवन-मूल्यों, धार्मिक निर्देशों और जीवन तत्त्वों की व्यवस्था तथा प्रसार के लिए "मीडियम" का कार्य करते हैं । वे संसार के दु:खों एवं जन्म मरण के कष्टों से मुक्त होने के लिए रत्नत्रय का अवलम्बन ग्रहण करते हैं । संस्कृत काव्यों के "दुष्ट निग्रह" और "शिष्ट-अनुग्रह" आदर्श के स्थान पर दु:ख निवृत्ति की नायक का लक्ष्य होता है स्वयं की दु:ख निवृत्ति के आदर्श से समाज को दु: ख निवृत्ति का संकेत कराया जाता है । व्यक्तिहित और समाजहित का इतना एकीकरण होता है कि वैयक्तिक जीवन मूल्य की सामाजिक जीवन मूल्य के रूप में प्रकट होते हैं । संस्कृत जैन काव्यों के इस आन्तरिक रचना तन्त्र को रत्नत्रय के त्रिपार्श्व समत्रिभुज द्वारा प्रकट होना माना जा सकता है । इस जीवन त्रिभुज की तीनों भुजाएँ समान होती हैं और कोण भी त्याग, संयम एवं तप के अनुपात से निर्मित होते हैं ।

6. जैन संस्कृत काव्यों के रचना-तंत्र में चरित्र का विकास प्राय: लम्बमान (वरटीकल) रूप में नहीं होता जबकि अन्य संस्कृत काव्यों में ऐसा ही होता है ।

7. संस्कृत के जैन काव्यों में चरित्र का विकास प्राय: अनेक जन्मों के बीच में हुआ है । जैन कवियों ने एक ही व्यक्ति के चरित्र को रचनाक्रम से विकसित रूप में प्रदर्शित करते हुए वर्तमान जन्म में निर्वाण तक पहुँचाया है । प्राय: प्रत्येक काव्य के आधे से अधिक सर्गों में कई जन्मों की परिस्थितियों और वातावरणों के बीच जीवन की विभिन्न घटनाएँ अङ्कित होती हैं । काव्यों के उत्तरार्द्ध में घटनाएँ इतनी जल्दी आगे बढ़ती हैं । जिससे आख्यान में क्रमश: क्षीणता आती-जाती हैं । पूर्वार्थ में पाठक को काव्यानन्द प्राप्त होता है जबकि उत्तरार्द्ध में आध्यात्मिकता और सदाचार ही उसे प्राप्त होते हैं। इसका कारण यह भी हो सकता है कि शान्तरस प्रधान काव्यों में निर्वेद की स्थिति का उत्तरोत्तर विकास होने से अन्तिम उपलब्धि अध्यात्म तत्त्व के रूप में ही सम्भव होती है । चूँकि संस्कृत जैन काव्यों की कथावस्तु अनेक जन्मों से सम्बन्धित होती है अत: चरित्र का विकास अनुप्रस्थ (हारीजेन्टल) रूप में ही घटित हुआ है । जीवन के विभिन्न पक्ष, विभिन्न जन्मों की विविध घटनाओं में समाहित है ।

8. संस्कृत जैन काव्यों में आत्मा की अमरता और जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों की अनिवार्यता दिखलाने के लिए पूर्व जन्म के आश्यानों का संयोजन किया गया है। प्रसङ्ग वश चार्वाक आदि नास्तिक वादों का निरसन कर आत्मा की अमरता और कर्म संस्कार की विशेषता

का विवेचन किया गया है । पूर्व जन्म के सभी आख्यान नायकों के जीवन में कलात्मक शैली में गुम्फित हुए हैं । दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन से यत्र-तत्र काव्य रस में न्यूनता आ गई है । पर कवियों ने आख्यानों को सरस बनाकर इस न्यूनता को सम्भाल भी लिया है ।

9. संस्कृत के जैन कवियों की रचनाएँ श्रमण संस्कृति के प्रमुख आदर्श स्याद्वाद विचार समन्वय और अहिंसा के पाथेय को अपना सम्बल बनाते हैं । इन काव्यों का अन्तिम लक्ष्य प्रायः मोक्ष प्राप्ति है । इसलिए आत्मा के उत्थान और चरित्र विकास की विभिन्न कार्य भूमिकाएँ स्पष्ट होती हैं ।

10. व्यक्तियों की पूर्णसमानता का आदर्श निरूपित करने और मनुष्य-मनुष्य के बीच जातिगत भेद को दूर करने के लिए काव्य के रस-भाव मिश्रित परिप्रेक्ष्य में कर्मकाण्ड, पुरोहितवाद एवं कर्तृत्ववाद का निरसन किया गया है । वैभव के मद में निमग्न अशान्त संसार को वास्तविक शान्ति प्राप्त करने का उपचार परिग्रह त्याग एवं इच्छा नियन्त्रण निरूपित करके मनोहर काव्य शैली में प्रतिपादन किया है ।

11. मानव सन्मार्ग से भटक न जाये इसलिये मिथ्यात्व का विश्लेषण करके सदाचार परक तत्त्वों का वर्णन करना भी संस्कृत जैन कवियों का अभीष्ट है । यह सब उन्होंने काव्य की मधुर शैली में ही प्रस्तुत किया है ।

12. जैन संस्कृत कवियों की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि वे किसी भी नगर का वर्णन करते समय उसके द्वीप क्षेत्र एवं देश आदि का निर्देश अवश्य करेंगे।

13. कलापक्ष और भावपक्ष में जैन काव्य और अन्य संस्कृत काव्यों के रचनातंत्र में कोई विशेष अन्तर नहीं है पर कुछ ऐसी बातें भी है जिनके कारण अन्तर माना जा सकता है । काव्य का लक्ष्य केवल मनोरञ्जन कराना ही नहीं है प्रत्युत किसी आदर्श को प्राप्त कराना है । जीवन का यह आदर्श ही काव्य का अंतिम लक्ष्य होता है । इस अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति काव्य में जिस प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होती है । वह प्रक्रिया ही काव्य की टेक्नीक है ।

कालिदास, भारवि, माघ आदि संस्कृत कवियों की रचनाओं में चारों ओर से घटना, चरित्र और सम्वेदन संगठित होते हैं तथा यह संगठन वृत्ताकार पुष्प की तरह पूर्ण विकसित हो प्रस्फुटित होता है और सम्प्रेषणीयता केन्द्रीय प्रभाव को विकीर्ण कर देती है । इस प्रकार अनुभूति द्वारा रस का सञ्चार होने से काव्यनन्द प्राप्त होता है और अन्तिम साध्य रूप जीवन आदर्श तक पाठक पहुँचने का प्रयास करता है । इसलिए कालिदास आदि का रचनातन्त्र वृत्ताकार है । पर जैन संस्कृत कवियों का रचनातन्त्र हाथी दाँत के नुकीले शङ्कु के समान मसृण और ठोस होता है । चरित्र, संवेदन और घटनाएँ वृत्त के रूप में सङ्गठित होकर भी सूची रूप को धारण कर लेती हैं तथा रसानुभूति कराती हुई तीर की तरह पाठक को अन्तिम लक्ष्य पर पहुँचा देती हैं ।

14. जैन काव्यों में इन्द्रियों के विषयों की सत्ता रहने पर भी आध्यात्मिक अनुभव की संभावनाएँ अधिकाधिक रूप में वर्तमान रहती हैं । इन्द्रियों के माध्यम से सांसारिक रूपों की अभिज्ञता के साथ काव्य प्रक्रिया द्वारा मोक्ष तत्त्व अनुभूति भी विश्लेषित की जाती है। भौतिक ऐश्वर्य, सौन्दर्य परक अभिरुचियाँ, शिष्ट एवं परिष्कृत संस्कृति के विश्लेषण के साथ आत्मोत्थान की भूमिकाएँ भी वर्णित रहती हैं ।

बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषी और उनकी काव्य कृतियाँ

इस शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों द्वारा प्रणीत काव्य कृतियों को साहित्य की विविध विधाओं के अन्तर्गत विश्लेषित करके प्रस्तुत किया गया है । इस शताब्दी की प्राय: सभी काव्य कृतियों में इस अध्याय के प्रारम्भ से उल्लिखित (उपर्युक्त सभी) विशेषताएँ प्राप्त होती हैं ।

द्वितीय अध्याय में उल्लिखित जैन मनीषियों की रचनाएं इतनी अधिक हैं कि उन सबका इस शोध प्रबन्ध के सीमित पृष्ठों में एक तो अध्ययन सम्भव नहीं है दूसरे वैसा करना आवश्यक भी नहीं है । इसलिए इस सम्पूर्ण शताब्दी के प्रमुख रचनाकारों की प्रतिनिधि रचनाओं को ही अपने अध्ययन की परिधि में समाविष्ट किया है । प्रयत्न करने पर भी कुछ रचनाएँ सुलभ नहीं हुई किन्तु जो भी रचनाएँ सुलभ हुई है वे संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों के योगदान को रूपायित करने में पूर्णत: समर्थ हैं ।

प्राप्त सामग्री को दो अध्यायों में विभाजित किया है । इस शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में बीसवीं शताब्दी के जैन साधुओं और साध्वियों द्वारा प्रणीत रचनाओं का अध्ययन-अनुशीलन किया गया है तथा चतुर्थ अध्याय में बीसवीं शताब्दी के शेष सभी जैन मनीषियों की रचनाओं का अध्ययन-अनुशीलन समाविष्ट है ।

इन दोनों अध्यायों में रचनाओं का अध्ययन-अनुशीलन करते समय पहले रचनाकार का परिचय, वैदुष्य और कृतियों की जानकारी देने का विनम्र प्रयत्न किया है । तदनन्तर उनकी प्रतिनिधि रचनाओं का अनुशीलन विवेचित है ।

आचार्य ज्ञानसागर मुनि महाराज

परिचय :

अचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज बीसवीं शती के मूर्धन्य साहित्यकार और वे जैन धर्म के महनीय दि. जैन मुनि-आचार्य थे । आपका जन्म 1892 ईस्वी में राजस्थान प्रदेश के सीकर जिले के अन्तर्गत राणोली ग्राम में हुआ । इनके पिता चतुर्भुज एवं माता धृतवरी देवी थी। आप बचपन में ''भूरामल'' नाम से विख्यात रहे । बालक भूरामल को 10 वर्ष की अल्पायु में ही पितृ-स्नेह से वंचित होना पड़ा । इस महाविपत्ति एवं पारिवारिक आर्थिक स्थिति के कारण इन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़े[3] । इसी क्रम में भ्रमण करते हुए वाराणसी पहुँचे, वहाँ स्याद्वाद महाविद्यालय से संस्कृत साहित्य एवं जैन दर्शन की उच्च शिक्षा प्राप्त की । आपने क्वीन्स कॉलेज काशी से शास्त्री की उपाधि प्राप्त की । तत्पश्चात् आपने जैन साहित्य के प्रणयन प्रचार एवं प्रसार के लिए आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रण किया । आपकी उत्कृष्ट कवित्व शक्ति, प्रतिभा एवं काव्य साधना निम्नलिखित कृतियों में अंकित है ।

अ. संस्कृत काव्य – (1) वीरोदय (2) जयोदय (3) सुदर्शनोदय (4) श्री समुद्रदत्तचरित्र (5) दयोदय (6) मुनिमनोरञ्जन शतक (7) प्रवचनसार (8) सम्यक्त्वसार शतक

ब. हिन्दी ग्रन्थ - (1) ऋषभावतार (2) गुणसुन्दर वृत्तान्त (3) भाग्योदय (4) जैन वि. विधि (5) कर्तव्यपथ प्रदर्शन (6) सचित्त विवेचन (7) तत्त्वार्थसूत्र टीका (8) विवेकोदय (9) नियमसार का पद्यानुवाद (10) देवागमस्तोत्र का पद्यानुवाद (11) मानवजीवन (12) अवटपाहुड़ का पद्यानुवाद (13) समयसार (14) स्वामी कुन्दकुन्द

और सनातन जैन धर्म इसके साथ ही वि. सं. 2021 (1955 ई.) में क्षुल्लक दीक्षा मनसुरपुर (रेनवाल) में तथा 2016 वि. सं. (1959 ई.) में (जयपुर में) दिगम्बर मुनि दीक्षा ग्रहण की, इसी समय ''ज्ञानसागर'' नाम रखा गया । जैन धर्म एवं साहित्य की उन्नति के लिए भारतवर्ष के अनेक स्थलों का परिभ्रमण किया तथा अपने प्रवचनों से जैनधर्म के अनुयायियों को निरन्तर प्रभावित किया, अनेक स्थानों पर चातुर्मास योग किये और इस प्रकार उनके अनेक शिष्य बन गये - जिनमें कुछ प्रतिष्ठित शिष्य निम्नाङ्कित हैं- मुनि श्री विद्यासागर, क्षुल्लक स्वरूपानन्द, मुनि श्री विवेकसागर, मुनि श्री विजय सागर, ऐलक श्री 105 सन्मतिसागर, क्षुल्लक सुखसागर एवं क्षुल्लक संभवसागर जी।

आपको आचार्य पद की प्राप्ति 7 फरवरी 1969 ई. में हुई । जैन समाज ने 1972 में चरित्र चक्रवर्ती पद से सुशोभित किया । किन्तु शारीरिक दुर्बलता के कारण आपने अपने परमशिष्य मुनि श्री 108 विद्यासागर जी को 21 नवम्बर 1972 ई. को ''आचार्य पद'' सौप दिया । आपने 7 जून 1973 को 10 बजकर 50 मिनट (दिन में) नसीराबाद में समाधि मरण द्वारा अपना शरीर त्याग दिया ।

इस प्रकार आचार्य श्री का जीवन वृत्त तपस्या और त्याग के लिए समर्पित रहा। उनकी लोकोत्तर प्रतिभा, चिन्तन, काव्य साधना का परिशीलन उनकी कृतियों में सन्निविष्ट है ।

आचार्य ज्ञानसागर कृत - संस्कृत काव्यों का अनुशीलन -

वीरोदय - यह एक महाकाव्य है ।

आकार - यह ग्रन्थ 22 सर्गों में निबद्ध है । सम्पूर्ण ग्रन्थ में 989 पद्य हैं ।

नामकरण - इसमें जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर नायक के रूप में चित्रित हैं, इसीलिए नायक के नाम पर ''वीरोदय इस रचना का नाम सर्वथा उपयुक्त है । सम्पूर्ण कथाक्रम महावीर पर केन्द्रित किया गया है ।

उद्देश्य - वीरोदयकार ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में एवं अन्त में अपने उद्देश्य को स्पष्ट किया है । कवि ने संसार के कल्याण, जैन धर्म के प्रचार-प्रसार, सामाजिक बुराईयों के पलायन और मानवता की स्थापना से प्रेरित होकर ही यह कृति रचित की है ।

विषय वस्तु - इस कृति के प्रारम्भ में विस्तृत प्रस्तावना तथा आमुख के माध्यम से सम्पूर्ण ग्रन्थ का सार और समीक्षा प्रस्तुत की गई है । विवेच्य ग्रन्थ की विषयवस्तु निम्नांकित है ।

प्रथम सर्ग - महावीर के जन्म से पूर्व पृथ्वी पर हिंसा, पाप, स्वार्थलिप्सा, अहंकार, द्वेष कुटिलता आदि के चरमोत्कर्ष पर रहने का वर्णन है ।

द्वितीय सर्ग - इसमें जम्बूद्वीप का काव्यमय चित्रण किया है जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र हैं, जिनमें से एक धनधान्य सम्पन्न देश भारत दक्षिण दिशा की ओर है इसमें स्वर्गोपम कुण्डनपुर नगर अत्यन्त रमणीय है । जिसकी आलङ्कारिक विवेचन इस सर्ग में विश्लेषित है ।

तृतीय सर्ग - कुण्डनपुर नामक नगर में धीर-वीर-गम्भीर, प्रतापी, उदार, धर्मप्रिय राजा सिद्धार्थ का शासन था । उसनें अपने प्रताप, शक्ति एवं गुणों से अनेक राजाओं एवं शत्रुओं को अपने अधीनस्थ कर लिया था । राजा की प्रियकारिणी रानी, सूर्य की छाया विधि की माया के समान अपने पति का अनुगमन करने वाली, आदर्श चरित्र से मण्डित थी । वह

उदार, सुशीला, जल्लाशीला, पतिव्रत एवं अत्यन्त लावण्यमयी थी। राजा-रानी परस्पर अत्यन्त प्रेम करते थे ।

चतुर्थ सर्ग - वर्षा ऋतु रमणीय वातावरण में आषाढ़ मास की षष्ठी तिथि में प्रियकारिणी के गर्भवती होने का विवेचन है । वर्षाकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त नयनाभिराम होता है । रात्रि के अन्तिम प्रहर में प्रियकारिणी ने 16 स्वप्न देखे जिन्हें वह प्रातःकाल होने पर अपनी सहेलियों के साथ अपने पति सिद्धार्थ के पास जाकर क्रमशः बखान करती है । इन स्वप्नों का फल सिद्धार्थ स्पष्ट करते हैं -

पहला स्वप्न - रानी को ऐरावत हाथी दिखाई दिया - इसका तात्पर्य है कि गर्भस्थ पुत्र मदस्रावीगज के समान महादानी होगा ।

दूसरा स्वप्न - वृषभ देखा - आशय यह कि गर्भस्थ पुत्र धर्म की धुरी को धारण करेगा ।

तीसरा स्वप्न - केसरी देखा - इसका अर्थ है कि गर्भस्थ शिशु दुराग्रह-पीड़ितों एवं मूर्खों के गर्व को नष्ट करेगा ।

चौथा स्वप्न - गजलक्ष्मी देखी - इसका मतलब है - गर्भस्थ बालक इन्द्रादि देवताओं द्वारा सुमेरु शिखर पर अभिषिक्त होगा ।

पाँचवा स्वप्न - भ्रमरों से गुञ्जन करती हुई दो मालाएँ देखी - इससे यह आभास होता है कि गर्भस्थ पुत्र अपनी यश सुरभि से सर्वत्र प्रसिद्ध और सम्मानित होगा ।

छठवाँ स्वप्न - चन्द्रमा देखा - इससे प्रतिभासित होता है कि उदरस्थ बालक सर्वगुण सम्पन्न एवं निष्णात होगा ।

सातवाँ स्वप्न - सूर्य का दर्शन हुआ । यह स्वप्न इस ओर संकेत करता है कि गर्भस्थ पुत्र अज्ञानरूप अन्धकार को नष्ट करके ज्ञानरूप प्रकाश एवं प्रताप को दीप्त करेगा।

आठवाँ स्वप्न - जलपूर्ण दो कलश देखे - परिणामतः उदरस्थ पुत्र, परम् कल्याण करने वाला तथा मानवमात्र को तृप्त करेगा ।

नौवाँ स्वप्न - जल क्रीड़ा करती हुई दो मछलियाँ देखीं - फलतः यह पुत्र अपनी आनन्द क्रीडाओं से प्रसन्न रहकर जनजीवन को भी प्रभावित करेगा ।

दसवाँ स्वप्न - कमलमय सरोवर देखा - यह स्वप्न सूचित करता है कि गर्भस्थ शिशु उत्तम लक्षणों को धारण करेगा तथा मनुष्यों के दुःख सन्ताप नष्ट करेगा ।

ग्यारहवाँ स्वप्न - समुद्र देखा - इसका तात्पर्य यह है कि यह बालक अत्यन्त गम्भीर प्रकृति का तथा सभी सिद्धियों का स्वामी होगा ।

बारहवाँ स्वप्न - सुन्दर सिंहासन देखा - इसका भावार्थ है कि यह पुत्र उत्तम स्थान का अधिकारी होगा तथा उत्तम कान्तियुक्त, कल्याणकारी पद प्राप्त करेगा ।

तेरहवाँ स्वप्न - देवसेवित विमान देखा - आशय स्पष्ट है कि यह पुत्र मोक्षपथ का अनुसरण करेगा तथा सत्पथ की ओर प्रेरित करेगा ।

चौदहवाँ स्वप्न - धवल नागमन्दिर देखा - अर्थात् उज्ज्वल यश के कारण देवस्थान का आनन्द प्राप्त करेगा ।

पन्द्रहवाँ स्वप्न - निर्मल रत्नों की राशि देखी - फलतः गर्भस्थ बालक अनन्त गुणों की राशि से अलङ्कृत होगा ।

सौलहवाँ स्वप्न - धूमरहित अग्नि समूह देखा - यह स्वप्न इस बात का सूचक है - गर्भस्थ शिशु चिरकालीन आत्म स्वरूप शान्ति, ज्ञान प्राप्त करेगा ।

इस प्रकार उपर्युक्त समस्त स्वप्नों के अनुकूल फलों से युक्त आत्मवान पुत्र होगा।

पञ्चम सर्ग - इस सर्ग में प्रियकारिणी की सेवा में उपस्थित श्री, ह्री आदि कुमारिका देवियों द्वारा अनेक प्रकार से शुश्रूषा करने एवं मनोरञ्जन करने का आकर्षक चित्रण हुआ है । वे अनेक प्रसङ्ग उपस्थित करके मनोविनोद करती हैं ।

षष्ठ सर्ग - इस सर्ग में गर्भ वृद्धि का चमत्कारिक विवेचन है । ऋतुराज बसन्त के आगमन से प्रकृति में नवस्फूर्ति एवं उल्लास व्याप्त हो गया, इसी सुखद समय में चैत्रमास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को रानी प्रियकारिणी के गर्भ से पुत्र (भगवान महावीर) का जन्म हुआ सर्वत्र प्रसन्नता हुई ।

सप्तम सर्ग - जिस समय भगवान् का जन्म हुआ दशोदिशाओं में हर्षातिरेक हो गया महावीर स्वामी के जन्म का समाचार अवधिज्ञान के द्वारा इन्द्रादि देवताओं ने जान लिया और कुण्डनपुर आकर अनेक स्तुतियाँ कीं । वे भगवान् महावीर को सुमेरु पर्वत पर प्रतिष्ठित करके उनका क्षीरसागर के जल से अभिषेक भी करते हैं । तत्पश्चात् उनके शरीर को पौंछकर इन्द्राणी उन्हें आभूषण पहनाती हैं । इस प्रकार जन्मोत्सव मनाकर देवता आनंदित होकर अपने-अपने स्थान को चले गये ।

अष्टम सर्ग - राजा सिद्धार्थ ने भी अत्यन्त प्रसन्न प्रतिक्षण उनके शारीरिक सौन्दर्य की वृद्धि को दृष्टिगोचर करते हुए उन प्रभु का "श्री वर्धमान" नाम रखा ।

श्रिया सम्वर्धमानन्तमनुक्षणमपि प्रभुम् ।
श्री वर्धमाननामाऽयं तस्य चक्रे विशाम्पतिः ॥[5]

बालक वर्धमान ने निरन्तर बाल्यक्रीड़ाओं से युक्त स्वस्थ देह से युवावस्था में प्रवेश किया । इसी समय पिताश्री सिद्धार्थ ने विवाह प्रस्ताव रखा किन्तु अत्यन्त विनम्रता के साथ पिता के विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार करके ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने का निश्चय किया। उन्होंने पिता के बार-बार के आग्रह से भी सहमत ने होते हुए ब्रह्मचर्य व्रत का निष्ठा के साथ साधना की । महावीर के तर्कों से प्रभावित पिता सिद्धार्थ ने भी सहर्ष उनके इस निश्चय का समर्थन किया ।

नवमसर्ग - भगवान् ने संसार की चिन्तनीय दशा पर विचार किया - सर्वत्र स्वार्थसिद्धि, हिंसा, व्यभिचार अधर्म, पापाचार अपनी चरम सीमा पर हैं । ऐसे समय में भगवान् आत्म चिन्तन करते हैं -

दुर्मोचमोहस्य हृति कृतस्तथा केनाप्युपायेन विदूरताऽपथात् ।
परस्परप्रेमपुनीतभावना भवेदमीषामिति मेऽस्ति चेता ॥[6]

मानवता को सत्पथ की ओर प्रेरित करने के लिए महावीर विचारमग्न हैं । उसी समय धरा पर शीतकाल का आगमन होता है ।

दशम सर्ग - भगवान् संसार की नश्वरता की प्राकृतिक दृश्यों से शिक्षा लेकर वैराग्य भावना में लीन हो गये । उनके वैराग्य का समर्थन लौकान्तिक देवों ने भी किया और दीक्षा

ग्रहण की । तत्पश्चात् महावीर ने मगसिर (मार्गशीर्ष) मास के कृष्ण पक्ष की दशमी तिथि को दैगम्बरी दीक्षा ले ली और मौन धारण करते हुए सत्याग्रही, आत्मजयी बनने का संकल्प लिया तत्पश्चात् सिंहवृत्ति से पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे । अपने वीर नाम को सार्थक करने के लिए तपश्चरण करते हुए अनेक विपत्तियों पर विजय प्राप्त की ।

एकादशम सर्ग - प्रस्तुत सर्ग में अवधि ज्ञान द्वारा भगवान् महावीर को अपने पूर्ववृत्तन्तों को आन पर स्मरण होने का विश्लेषण किया गया है । महावीर सबसे पहले पुरुखा नामक भील थे । तत्पश्चात् आदि तीर्थंकर ऋषभ देव के पौत्र मरीचि के रूप में अवतरित हुआ। फिर ब्राह्मण के रूप में जन्म लिया । वह ब्राह्मण अनेक कुयोनियों में जन्म लेने पश्चात् शाण्डिल्य ब्राह्मण और उसकी पाराशरिका नामकी स्त्री का पुत्र "स्थावर" हुआ । तत्पख्यात् विश्वभूति का पुत्र विश्वनन्दी हुआ । वह विश्वनन्दी तपस्या के कारण स्वर्ग गया, वहाँ से विश्वनन्दी मोदनपुर के राजाप्रजापति का पुत्र "त्रिपृष्ठ" हुआ । इसके बाद विश्वनन्दी रौरव नरक गया और उसे सिंह योनि प्राप्त हुई, वह सिंह मरकर नरक गया और पुनः सिंह हुआ। इस हिंसायुक्त सिंह को किसी मुनि ने उसके पूर्वजन्मों के वृत्तान्त सुना दिये। इसके बाद वह सिंहयोनि से "मृतभोजी" देव हुआ और इसने मनकपुर के राजा कनक के पुत्र रूप में जन्म लिया। मुनिवेष धारण करने के पश्चात् वह मृतभोजी लान्तव स्वर्ग में पहुँचा । इसके बाद इस देव ने साकेत में वज्रषेण राजा के पुत्र के रूप में जन्म लिया और अन्त में तप के प्रभाव से महाशुक्र स्वर्ग को पहुँचा। फिर पुष्कर देश की पुष्करिणी पुरी के सुमित्र राजा का प्रियमित्र नामक राजकुमार हुआ और तपस्या करके सहस्रार स्वर्ग में जन्म लिया, पुनः पुष्कल देश की छत्रपुरी नगरी के राजा अभिनन्दन का नन्द नामक पुत्र हुआ और इसी समय दैगम्बरी दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग का इन्द्र बन गया, उसी इन्द्र ने अब इस कुण्डनपुर के राजा सिद्धार्थ के राजकुमार वर्धमान के रूप में जन्म लिया है । इस प्रकार महावीर ने पूर्ववृत्तान्तों को स्मरण कर उन्हें अपने पापों का परिणाम निरूपित किया है ।

द्वादशम सर्ग - प्रस्तुत सर्ग में ग्रीष्म के साथ ही महावीर के उग्र तप और कैवल्य प्राप्ति का वर्णन हुआ है । भगवान् महावीर प्रचण्ड ग्रीष्म में आत्मपद की प्राप्ति के लिए समस्त परीषहों, उपसर्गों को सहकर चिन्तन करते हैं - आत्मा शाश्वत है, उसे कष्टों से भयभीत नहीं होना चाहिये । इस प्रकार आत्मतत्त्व का विशेष ज्ञान प्राप्त कर तप की समस्त अवस्थाओं को पारकर स्नातक दशा को पहुँचे और पाप पङ्क से संसार की रक्षा तथा सुख शान्ति का संदेश प्रसारित करने के लिए वैशाख मास की शुक्ला दशमी तिथि को भगवान् ने "केवलज्ञान" प्राप्त किया । उनके कर्ममल दूर हो गये वसुन्धरा हर्षित हो गयी इसी समय इन्द्र ने "समवसरण" सभामण्डप का निर्माण किया, जिसमें भगवान् ने मुक्तिमार्ग का उपदेश दिया ।

त्रयोदशम सर्ग - समवसरण सभा के सिंहासन पर विराजमान भगवान् महावीर का मुखमण्डल अत्यन्त तेजस्वी था, उनके सदाचार युक्त व्यवहार से प्रभावित उनके जीवजन्तु वहाँ के अतिथि होते थे । समवसरण में भगवान् की दिव्यध्वनि अखण्डरूप से सांसारिक जीवों को पीयूष वर्षा के समान आनन्दित करती थी । एक दिन भगवान् के दिव्य व्यक्तित्व एवं पाण्डित्य से प्रभावित होकर वेदवेदाङ्ग का ज्ञाता इन्द्रभूति ब्राह्मण भी नतमस्तक होता है और उनसे ज्ञान का उपदेश प्राप्त करने की याचना करता है । भगवान् ने आषाढ़ की गुरुपूर्णिमा के दिन उसे सत्य, अहिंसा और त्याग का उपदेश दिया ।

चतुर्दशम सर्ग – भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर हुए हैं – जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं – गौतम, इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, आर्यव्यक्त सुधर्म, मण्डिल मौर्यपुत्र, अकम्पितवीर, अचल परमकान्ति (मेतार्य उपान्त्यश्रेष्ठ) प्रभास । ये सभी गणधर आचार्यत्व को प्राप्त हुए । इन सभी ने भगवान् महावीर के सन्देश का प्रचार किया । भगवान् ने सभी को आत्मतत्त्व एवं ब्राह्मणत्व का ज्ञान कराया जिससे गौतम इन्द्रभूति के मन के सन्देह जाते रहे और वह अत्यन्त प्रभावित हुआ । वहाँ सभी गणधरों ने उनकी दीक्षा ले ली ।

पञ्चदशम सर्ग – भगवान् के उपदेशों से सम्पूर्ण समाज प्रभावित हो गया । भगवान् की दिव्यवाणी को गौतमगण भूति जैसे विशेषज्ञ ही समझ सकते थे अतः उनकी वाणी को सर्वजनग्राह्य बनाने के लिए गणधर अनुवाद करते थे । उनके उपदेशों का प्रचार और प्रसार करने के लिए विभिन्न धर्मावलम्बी भी जैन धर्मानुनायी हो गये अनेक राजाओं एवं विशिष्ट पुरुषों ने भगवान् का शिष्यत्व स्वीकार किया और जिनालयों, जिनाश्रमों का निर्माण कराया फलस्वरूप जैनधर्म का उद्घोष सम्पूर्ण विश्व में हो गया ।

षोडशम सर्ग – प्रस्तुत सर्ग में भगवान् के सैद्धान्तिक विचारों को अभिव्यक्त किया गया है अहिंसा, विश्वबन्धुत्व, परोपकार, ममता, दया, आत्मकल्याण आदि भावों के प्रचार के लिए तथा नैतिक चरित्र को सर्वोपरि रखने की भगवान् महावीर ने शिक्षा दी है ।

सप्तदशम सर्ग – महावीर स्वामी का उपदेश है – इस पृथ्वी पर सबको समान अधिकार है – छोटे बड़े नीच-उच्च की कल्पना निराधार है । यह संसार परिवर्तनशील है । जिस वस्तु का स्वरूप आज जैसा है उसमें दूसरे समय परिवर्तन हो जाता है । इसलिए मानवमात्र का आदर करके आत्मोन्नति करनी चाहिए अपने ज्ञान, धन, शरीर पर अहंकार न करते हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह विकारों से सर्वथा दूर रहना चाहिये और दूसरों की निन्दा नहीं करना चाहिये । समाज में वर्गभेद कर्मानुसार होना चाहिये । इस प्रकार इस सर्ग में सारगर्भित प्रवचन दिये गये हैं ।

अष्टादशम सर्ग – भगवान् महावीर ने संसार चक्र का नियन्ता समय को माना है। समय के प्रभाव से राजा भी रङ्क और रङ्क भी राजा हो जाता है । इसी सन्दर्भ में नाभिराज मनु के पुत्र ऋषभदेव के लोकोपकारी कार्यों का उल्लेख भी किया है – उन्होंने लोगों को जीव और पुद्गल के सम्बन्ध और संसार की स्थिति से अवगत कराया । ऋषभदेव के पश्चात् अजितनाथ आदि तेईस तीर्थंकर और भी हुए, जिन्होंने ऋषभदेव के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया ।

एकोनविंशतितम सर्ग – इस सर्ग में स्याद्वाद, सप्तभङ्ग तथा वस्तु की नित्य-अनित्य रूप अनेक धर्मात्मिकता की अभिव्यक्ति है । भगवान् महावीर का चिन्तन है कि प्रत्येक पदार्थ सत्स्वरूप है । वह उत्पन्न या नष्ट नहीं होता अपितु उसमें परिवर्तन अवश्य होता है। रूप-रङ्ग परिवर्तित हो जाता है। द्रव्य की अपेक्षा वस्तु नित्य है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है, प्रत्येक पदार्थ के अनेक धर्म हैं । इसी अनेक - धर्मात्मकता का दूसरा नाम "अनेकान्त" है । "अनेकान्त" हमेशा विजयी होता है । इसी प्रकार सत्कार्यवाद की पुष्टि भी करते हैं।

विंशतितम सर्ग – प्रस्तुत सर्ग में भगवान् महावीर द्वारा तत्त्वों की प्रत्यक्ष परोक्ष स्थूल-सूक्ष्म, भूत-भविष्य-वर्तमान की व्यापक व्याख्या की गई है और सर्वज्ञता को सिद्ध किया है । आशय यह भी कि महावीर ने स्वयं सर्वज्ञता प्राप्त कर ली थी और उन्होंने "स्याद्वाद"

मार्ग प्रशस्त किया अतएव सर्वज्ञता प्राप्त करने के लिए मनुष्यों को इस स्याद्वाद का अनुसरण करना चाहिये।

एकविंशम सर्ग – इस सर्ग में शरतकालीन प्राकृतिक वातावरण का प्रभावशाली वर्णन है, इसी समय भगवान् महावीर ने कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि को एकान्तवास किया और रात्रि के अन्तिम समय पावानगरी के उपवन में उन्होंने अपना पार्थिव शरीर त्यागकर मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त किया। उनके निर्वाणोपरान्त उनके शिष्य इन्द्रभूति को उनका स्थान प्राप्त हुआ।

द्वाविंशम सर्ग – भगवान् महावीर के मोक्ष प्राप्त करने के पश्चात् जैनधर्म की दो धाराएँ (दिगम्बर और श्वेताम्बर) हो गयी। मौर्य राजाओं एवं विक्रमादित्य के पश्चात् जैनधर्म में दुराग्रह पनपने लगा और यह धर्म साम्प्रदायिक विभाजन का शिकार हो गया। कहने का आशय यह कि महावीर के पश्चात् जैनधर्म की अवनति हुई।

जयोदय' – यह एक महाकाव्य है।

आकार – यह ग्रन्थ 28 सर्गों में निबद्ध है। जिनकी श्लोक संख्या 3079 है।

नामकरण – इस ग्रन्थ में हस्तिनापुर के अधिपति जयकुमार का जीवन वृत्त नायक के रूप में रेखांकित है। अत: नायक के नाम पर ग्रन्थ का नाम ''जयोदय'' रखा गया है। जयकुमार वास्तव में अपने पराक्रम, प्रताप, वैभव एवं गुणों से सर्वोत्तम (पुरुषोत्तम) के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ''जयोदय'' नाम प्रसङ्गानुकूल है।

रचना का उद्देश्य – जयोदय के प्रथम पद्य से यह आभास मिलता है कि कवि ने आत्म कल्याण के लिए उक्त महाकाव्य का प्रणयन किया है।

विषयवस्तु – उक्त ग्रन्थ के 28 सर्गों में जयकुमार और उसकी धर्मपत्नी सुलोचना की कथा का विवेचन कर अपरिग्रह व्रत का माहात्म्य निरूपित है। प्रत्येक सर्ग की कथा का क्रमबद्ध सारांश अधोलिखित है।

प्रथम सर्ग – प्राचीनकाल में हस्तिनापुर में जयकुमार राजा पराक्रमी, नीतिज्ञ, गुणवान, रूप-सौन्दर्य से मण्डित था। उसकी कीर्ति सुनकर काशीनरेश अकम्पन की पुत्री सुलोचना ने उसके साथ अपने विवाह का निश्चय किया। जयकुमार भी सुलोचना के लावण्य एवं गुणों को सुनकर प्रभावित हुआ। एक दिन उसके उद्यान में किसी महर्षि ने आकर श्रद्धावनत राजा को मार्मिक उपदेश दिये।

द्वितीय सर्ग – तपस्वी के द्वारा गृहस्थधर्म एवं राजा के लिए कर्तव्यपथ प्रदर्शक उपदेशों को जयकुमार के साथ ही किसी सर्पिणी ने भी सुना था। मुनि के पाण्डित्यपूर्ण, आदर्श एवं समयोचित प्रवचनों से रोमाञ्चित राजा ने जब गुरु की आज्ञा से घर की ओर प्रस्थान किया तभी सर्पिणी को किसी अन्य सर्प से रतिक्रीड़ा में संलग्न देखकर अपने कर में स्थित कमल से प्रहार किया लेकिन राजा के साथियों ने सर्पिणी को आहत करके मार डाला। उसने अपने पति के पास देवाङ्गना के रूप में पहुँचकर जयकुमार से ईर्ष्याभाव के कारण सम्पूर्ण शिकायत एवं अपनी मनोव्यथा व्यक्त की। तदनन्तर अपनी पत्नी पर विश्वास करके सर्प क्रोधित होकर जयकुमार पर आक्रमण करने के लिए उसके समीप पहुँचा। उस समय राजा अपनी रानियों को वही वृत्तान्त सुना रहा था। राजा के वक्तव्य को सुनकर नागकुमार का अज्ञान

दूर हो गया और स्त्री कुटिलता पर विचार किया तत्पश्चात् वह सर्प जयकुमार के पास जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हुए उनका भक्त बन गया ।

तृतीय सर्ग - एक दिन काशी नरेश अकम्पन का दूत जयकुमार के पास आता है और उन्हें काशी नरेश का पत्र देता है, जिसमें अकम्पन ने अपनी पुत्री सुलोचना के स्वयंवर में जयकुमार को आमन्त्रित किया था । वह दूत सुलोचना के रूप सौन्दर्य एवं गुणों का भावपूर्ण बखान करता है । तत्पश्चात् स्वयंवर मण्डप के भव्य और आकर्षक प्रसंग को उपस्थित करता है और अपने वक्तव्य के अन्त में निवेदन करता है कि सुलोचना आपके प्रताप, गुण एवं सौन्दर्य से प्रभावित हैं क्योंकि मेरे यहाँ (हस्तिनापुर) प्रस्थान करते समय वह आशान्वित हो उठी थी, इसलिए मेरा अनुमान है वह आपको ही वरण करेगी । इस प्रकार सन्देशवाहक द्वारा उत्कण्ठित जयकुमार पुलकित हो गया और ससैन्य काशी को प्रस्थित हुआ । वहाँ पहुँचने पर अकम्पन ने जयकुमार का भव्य (गर्मजोशी से) स्वागत किया ।

चतुर्थ सर्ग - सुलोचना के स्वयंवर का समाचार अयोध्या के अधिपति भरत को ज्ञात हुआ । उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अर्ककीर्ति को इस समाचार से अवगत कराया, जिससे सुलोचना-स्वयंवर में पहुँचने का निश्चय भी किया किन्तु सुमति मन्त्री बिना निमन्त्रण वहाँ पहुँचना उचित नहीं समझता इसके विपरीत दुर्मति मंत्री स्वयंवर में सम्मिलित होने के पक्ष में तर्क देता है। तत्पश्चात् अर्ककीर्ति अपने साथियों सहित काशी पहुँचे । वहाँ महाराज अकम्पन ने नम्रता पूर्वक स्वागत किया । कवि ने सर्ग के अन्तिम पद्यों में शरद ऋतु का भावपूर्ण वर्णन भी किया है ।

पंचम सर्ग - सुलोचना स्वयंवर में अनेक राजाओं, राजकुमारों और दिक्पालों ने उपस्थित होकर समारोह को भव्य और आकर्षक बना दिया। वहाँ रूपसौन्दर्य, तेजस्विता एवं प्रतिभा के धनी जयकुमार के पहुँचने से आश्चर्यमिश्रित प्रतिक्रिया हुई । तत्पश्चात् कवि ने विद्यादेवी को उत्कृष्ट गुणों एवं नखशिख सौन्दर्य की प्रतिकृति निरूपित किया है । वह सुलोचना को विविध राजाओं के कुल, शील, वैभव आदि का परिचय कराने के लिए नियुक्त की गई। यहाँ सुलोचना को भी काम के नृत्य की रङ्गभूमि, चन्द्रमा की निर्मल कला, अमृतनदी आदि शब्दों से अलङ्कृत किया गया है । कवि की कल्पनानुसार- विधाता ने तीन लोक का सार ग्रहण करके सुलोचना की सृष्टि की है । इस प्रकार उक्त संज्ञा प्राप्त वह कञ्चुकी द्वारा निर्दिष्ट पथ से अपनी सहेलियों के साथ जिनेन्द्र पूजन करके सभा मण्डल में उपस्थित हुई।

षष्ठ सर्ग - सुलोचना को विद्यादेवी द्वारा सर्वप्रथम विद्याधरों, नागकुमारों का परिचय दिया गया । इसके पश्चात् उसने अर्ककीर्ति, कलिंग, कामरूप, कांची, काविलराज, अंग, बंग, सिन्धु, काश्मीर, कुरुदेश, कर्णाटक, मालव, कैरव आदि देशों से आये हुए राजाओं का क्रमशः बल-विक्रम, वैभव, लावण्य, प्रभाव और प्रतिष्ठा आदि का सविस्तार बखान किया । तदुपरान्त जब सुलोचना जयकुमार के समीप पहुँची और तभी विद्यादेवी (उसका चित्त अनुकूल देखकर जयकुमार को वरण करने के लिए) उसके रूप सौन्दर्य, पराक्रम वंश, यश, प्रभाव आदि का बहुविध विश्लेषण करने लगी । इस प्रकार विद्यादेवी द्वारा प्रेरित की गई तथा जयकुमार में पहले से ही अनुरक्त सुलोचना उसे वरण कर लेती है । जिससे वहाँ उन दोनों की जय-जयकार हुई और हर्ष व्याप्त हो गया ।

सप्तम सर्ग - अर्ककीर्ति के सेवक दुर्मषण ने स्वयंवर समारोह को पक्षपातपूर्ण निरूपित करते हुए स्वयंवर के विरूद्ध उसे उत्तेजित किया जिससे अर्ककीर्ति क्रोधित होकर काशी

नरेश अकम्पन और जयकुमार को मारने के लिए तैयार हो गया, परन्तु सुमति नामक मन्त्री ने एक शुभचिन्तक की भाँति बहुत समझाया -

यासि सोमात्मजस्येष्टाकर्मकीर्तिश्च शर्वरी
हन्ताऽप्यनुचरस्य त्वं क्षत्रियाणां शिरोमणिः ॥[8]

वह मन्त्री जयकुमार को भरत का सेवक और काशीनरेश अकम्पन को पितवत् निरूपित करते हुए कहता है - इनसे युद्ध करना उचित नहीं। किन्तु अर्ककीर्ति पर सुमति के वक्तव्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । जब युद्ध न करने के सभी प्रयास विफल हो गये और अर्ककीर्ति नहीं माना तब जयकुमार भी अकम्पन सहित ससैन्य युद्धार्थ तैयार हो गया ।

अष्टम सर्ग - इस सर्ग में जयकुमार और अर्ककीर्ति के ससैन्य बहुविध युद्ध करने का चित्रण है । यहाँ सेनाओं की मोर्चेबन्दी और परस्पर प्रतिपक्षियों को समाप्त करने की दृढ़ता का विश्लेषण भी अङ्कित है । जयकुमार के रणकौशल के समक्ष साहस, बल, यश आदि में अर्ककीर्ति कमजोर पड़ गया । तदनन्तर रतिप्रभदेव द्वारा प्रदत्त नागपाश एवं अर्द्धचन्द्र नामक बाणों से अर्ककीर्ति बाँध दिया गया । इस प्रकार जयकुमार विजयी हुआ । विजयोपरान्त सभी ने जिनेन्द्रदेव की पूजा की ।

नवम सर्ग - जयकुमार के विजयी होने पर भी काशी नरेश अकम्पन चिन्तित होकर अर्ककीर्ति के पास गये और जयकुमार को क्षमा करने तथा अपनी द्वितीय पुत्री अक्षमाला को वरण करने का प्रस्ताव किया, जिसे वह स्वीकार कर लेता है । इस प्रकार अकम्पन की दूरदर्शिता और सूझबूझ से अर्ककीर्ति - जयकुमार का मिलन हो गया और उनमें मित्रवत् एकता हो गयी इसके पश्चात् सुमुख नामक दूत को काशी नरेश ने चक्रवर्ती भरत के पास भेजा इस सन्देशवाहक ने भरत को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया और उनका आशीर्वाद एवं अनुशंसा लेकर पुनः काशी आ गया ।

दशम सर्ग - इस सर्ग में जयकुमार एवं सुलोचना के वैवाहिक कार्यक्रम का विश्लेषण हुआ है । महाराज अकम्पन ने इस अवसर पर सम्पूर्ण नगरी राजप्रासाद आदि को अलङ्कृत करवाया । वहाँ मोतियों की मालाएँ तोरणद्वार, वाद्ययन्त्र एवं पुष्प समृद्धि आदि आकर्षण के प्रमुख केन्द्र थे । भेरी, वीणा, झांझ, वेणु आदि ने सभी को प्रभावित किया । सुलोचना ने भी स्नान करने के पश्चात् बहुमूल्य वस्त्रालङ्कार धारण किये । जयकुमार भी बारात सहित राजद्वार पहुँचे । काशीवासियों ने उनका भव्य स्वागत किया, तत्पश्चात् मण्डप में पहुँचने पर पाणिग्रहण का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ ।

एकादशम सर्ग - जयकुमार ने सुलोचना के नखशिख सौन्दर्य का अवलोकन किया उसी का सांगोपांग वर्णन किया गया है । मुख, स्तन, त्रिवली, नाभि, नितम्ब, चरणकमल आदि का रोचक विवेचन हुआ है ।

द्वादशम सर्ग - काशी नरेश ने पुराहित के कथन से अपनी पुत्री का हाथ जयकुमार को सौंपते हुए विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की -

अहहाग्रह हाव भाव धात्री मम च प्रेमनिबन्धनैक पात्री ।
भवतां भुवि लब्धशुद्धजन्मां वर आहेति समे तु मामतन्माम् ॥[9]

उन्होंने अपनी पुत्री जयकुमार को सौंपा और वर-वधू को शुभाशीष एवं विपुल दहेज से ओत-प्रोत किया । वर-वधू ने अनेक माङ्गलिक पाठों, हवनकुण्डों, मन्त्रोच्चारणों के मध्य

अग्नि प्रदक्षिणा करके एक नया जीवन प्रारम्भ किया । यहाँ बारातियों के खान-पान का हास-परिहास से युक्त रोचक वर्णन हुआ है ।

त्रयोदशम सर्ग - जयकुमार द्वारा अपने नगर की ओर प्रस्थान करने का सातिशय विवेचन हुआ है । सुलोचना के माता-पिता, बन्धु आदि ने उन दोनों को अश्रुपूर्ण विदाई दी । जयकुमार ससैन्य प्रयाण करता है । मार्गस्थ (वन, गङ्गा) प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य भी प्रतिपादित किया गया है । गङ्गानदी की प्राकृतिक सुकुमार वन श्री एवं सुखद छाया से प्रभावित जयकुमार ने वहीं विश्राम किया ।

चतुर्दशम सर्ग - जयकुमार एवं सुलोचना द्वारा वनक्रीड़ा जयक्रीड़ा आदि से मनोरंजन किया गया । उन्होंने अत्यन्त पावन सुरसरि में अवगाहन करने के उपरान्त सूर्यास्त के समय नवीन वस्त्रों को धारण किया ।

पञ्चदशम सर्ग - सूर्यास्त के पश्चात्, सन्ध्या सुन्दरी के लावण्य ने सभी को प्रभावित किया, तदनन्तर तिमिर समूह ने प्रगाढ़ रूप धारण कर लिया किन्तु कुछ ही समय पश्चात् उसे विनष्ट करने वाले क्षमानाथ ने अपनी सुखद एवं शीतल चाँदनी बिखेर दी । इस मधुर बेला में स्त्री पुरुष आनन्दपूर्वक बिहार करने लगे ।

षोडषम सर्ग - इस सर्ग में स्त्री पुरुषों की विलासपूर्ण चेष्टाओं का निरूपण हुआ है । रात्रि के समय में मद्यपान एवं हास-परिहास करते हुए नर-नारी परस्पर नयननिक्षेप तथा प्रेम में दत्तचित्त हो गये ।

सप्तदशम सर्ग - स्त्री-पुरुष पृथक्-पृथक् एकान्त प्रदेशों में पहुँचे कर रतिक्रीड़ाएँ करने लगे । जयकुमार-सुलोचना भी सुरतक्रीड़ा करते हुए भावविभोर हो उठे । रात्रि के मध्य प्रहर में वे सभी निद्रासुख में मग्न हो गये ।

अष्टादशम सर्ग - प्रभात होने पर दिनमणि भगवान् का उदय हुआ, सभी जन निद्रामुक्त होकर अपने दैनिक कार्य में संलग्न हो गये ।

एकोनविंशतितम सर्ग - जयकुमार भी स्नानादि क्रिया से निवृत होकर जिनेन्द्रदेव की पूजा एवं स्तुति में लग गये ।

विंशतितम सर्ग - इस सर्ग में अयोध्या के सम्राट भरत और जयकुमार के मिलन का निरूपण है । जयकुमार ने महाराज भरत से नम्रतापूर्व प्रमाण किया और तत्पश्चात् सुलोचना स्वयंवर का समग्र विश्लेषण किया । जयकुमार के वचनों से आश्वस्त होकर महाराज भरत ने काशी नरेश अकम्पन द्वारा अर्ककीर्ति के साथ अक्षमाला के विवाह कार्य सम्पन्न किये जाने की सराहना की । तदनन्तर जयकुमार भी महाराज भरत से सम्मानित होकर तथा उनकी ही अनुमति से हाथी पर आरूढ होकर अपनी सेना की ओर आता है- गङ्गा नदी में जयकुमार का अपहरण करने के लिए एक मछली उसके हाथी को पकड़ती है, जिससे जयकुमार अत्यन्त व्याकुल हो गया ।

इधर पति की प्रतीक्षारत सुलोचना भी यह समाचार सुनकर रोमाञ्चित हो गई और पति की रक्षार्थ जल में उतर कर सच्चे मन से प्रार्थना की उसके पति प्रेम के कारण गङ्गा का वेग कम हो गया और मछली ने भी जयकुमार को छोड़ दिया । यह दृश्य देखकर नदी के तट पर उपस्थित गङ्गा नाम की एक देवी ने सुलोचना का स्तुति की। तत्पश्चात् उसने

जयकुमार से कहा कि मैं आपके पूर्वजन्म की दासी हूँ और सर्पिणी के काटने से देवी हुई। उसने बताया कि यह मछली पूर्वजन्म में सर्पिणी हुई, फिर काली देवी हुई । इसने पूर्वजन्म के क्रोध के कारण इनका मार्ग रोका। इस प्रकार की कथा सुनकर जयकुमार ने गङ्गादेवी को विदा किया ।

एकविंशतितम सर्ग – हस्तिनापुर जाते हुए जयकुमार सुलोचना द्वारा मार्गस्थ प्राकृतिक दृश्यों का निरीक्षण किया गया । वन में उनका भीलों ने भव्य स्वागत किया । गोप-गोपियों ने दूध, दही एवं कुशल क्षेम के वचनों द्वारा उन्हें प्रभावित कर लिया । इन सबसे से विदा लेकर हस्तिनापुर की ओर चले वहाँ पहुँचने पर जयकुमार और सुलोचना का नागरिक अभिनन्दन किया गया । नगरवासियों, मन्त्रियों ने शुभोत्सव मनाया और सुलोचना को ''प्रधान महिषी'' के पद पर प्रतिष्ठित किया । काशी नरेश के सेवक जो जयकुमार के साथ हस्तिनापुर पहुँचे थे, जब वापिस आये तो काशीपति अकम्पन को वहाँ की सुख समृद्धि ऐश्वर्य आदि का सारा वृत्तान्त सुनाया।

द्वादविंशतितम सर्ग – इस सर्ग में जयकुमार और सुलोचना के विलासपूर्ण आनन्दमय एवं सुखद जीवन की झाँकी अङ्कित की गई है ।

त्रयोविंशतितम सर्ग – जयकुमार ने अपने अनुज विजय को राज्यपद पर स्थापित किया। जयकुमार एक दिन नभचारी विमान को देखकर अपने पूर्वजन्म की प्रिया ''प्रभावती'' की याद करते हुए मूर्च्छित हो गया । सुलोचना भी एक कपोत युगल को देखकर अपने पूर्वजन्म के प्रेमी रतिवर को स्मरण करती हुई मूर्च्छित हो गयी । दोनों की मूर्च्छा उपचार से दूर की गई – तत्पश्चात् जयकुमार के पूँछने पर सुलोचना अपने पूर्व जन्मों का वृत्तान्त सुनाने लगी – वह अधोलिखित है – पुण्डरीकिणी नगरी में कुबेरप्रिय सेठ के यहाँ एक रतिवर कबूतर और रतिषेणा कबूतरी रहती थी । एक दिन सेठ के घर आये दो मुनियों को देखकर उस कपोत दम्पत्ति को अपने पूर्वजन्मों का स्मरण हुआ । जिससे उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। तत्पश्चात् रतिवर आदित्यगति एवं हिरण्यवर्मा नाम से उत्पन्न हुआ और रतिषेणा भी प्रभावती के रूप में अवतरित हुई । इस जन्म में भी ये दोनों पति-पत्नी हुए । तदनन्तर पूर्वजन्मों की स्मृति हो जाने से हिरण्यवर्मा ने तपस्या की और प्रभावती भी आर्यिका बन गई ।

एक दिन तपस्या में संलग्न उन दोनों को उनके पूर्वजन्म के शत्रु विद्युच्चोर ने क्रोधित कर दिया वे दोनों स्वर्ग गये । वहाँ भ्रमण करते हुए एक सर्प सरोवर के पास भीम नामक मुनि को तपस्या करते देखा मुनि ने बताया कि जब हिरण्यवर्मा सुकान्तरूप में था तब मैं उसका भवदेव नामक शत्रु था और कपोत के जन्म के समय भी में विलाव के रूप में उनका शत्रु था और हिरण्यवर्मा के समय भी मैं ही विद्युच्चोर शत्रु था और अब भीम के रूप में प्रकट हुए हैं । इसके बाद सुलोचना स्पष्ट सूचित करती है – जयकुमार ही सुकान्त, रतिवर कबूर, हिरण्यवर्मा तथा स्वर्ग के देव के रूप में रहे हैं। यह प्रसङ्ग सुनकर जयकुमार हर्षित हुआ और उन दोनों को दिव्यज्ञान की भी उपलब्धि हो गयी ।

चतुर्विंशतितम सर्ग – जयकुमार और सुलोचना अनेक पर्वतों एवं तीर्थों का भ्रमण करते हुए हिमालय पर आये वहाँ एक मन्दिर में जिनेन्द्रदेव की पूजा की । तदनन्तर विहार करते हुए वे दोनों दूर हो गये । उसी समय सौधर्म इन्द्र की सभा में जयकुमार के शील

की प्रशंसा सुनकर रविप्रभ नामक देव परीक्षा लेना चाहता है । इसलिए उसने अपनी पत्नी काञ्चना को भेजा, वह जयकुमार के रूप-सौन्दर्य की सराहना करती हुई विलासपूर्ण चेष्टाओं से उसे आकर्षित करने का प्रयत्न करती है किन्तु जयकुमार उसे हाव-भाव एवं वचनों से प्रभावित नहीं हुआ तथा उसके दुराचरण की निन्दा की । जिससे काञ्चना ने क्रोधित होकर जयकुमार का अपहरण कर लिया । उसी समय सुलोचना ने वहाँ पहुँचकर उसकी निन्दा की । काञ्चना सुलोचना के चारित्र एवं वचनों से प्रभावित हुई और जयकुमार को छोड़ दिया इसके पश्चात् अपनी पत्नी काञ्चना से जयकुमार के शील का माहात्म्य जानकर रविप्रभ उसकी भी स्तुति करने लगा । इसके पश्चात् जयकुमार सपत्नीक अपने नगर में आकर सुखपूर्वक रहने लगा ।

पञ्चविंशतितम सर्ग - जयकुमार के मन में संसार की नश्वरता एवं भोग-विलासों के प्रति उदासीनता का भाव उत्पन्न हुआ और आत्मचिन्तन करते हुए उसने वन में रहने की अभिलाषा की ।

षड्विंशतितम सर्ग - अपने पुत्र जनन्तवीर्य को राजपद पर अभिषिक्त करके जयकुमार ने वनगमन किया - वन में जाकर भगवान् ऋषभदेव की शरण ग्रहण की और उनके प्रकार से भगवान् स्तुति करके निर्वाण पथ विषयक प्रश्न पूंछे ।

सप्तविंशतितम सर्ग - भगवान् ऋषभदेव द्वारा धर्म के स्वरूप की व्याख्या की गई है । इसे सुनकर जयकुमार दृढ़संकल्प के साथ आत्मचिन्तनपूर्वक मुक्ति मार्ग की ओर अग्रसर हुआ ।

अष्टाविंशतितम सर्ग - जयकुमार ने बाह्यपरिग्रहों का परित्याग करते हुए घोर तपस्या प्रारम्भ की और इस प्रकार मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त कर लिया तथा दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण की और अन्ततोगत्वा सर्वोच्चपद प्राप्त किया ।

यहाँ सुलोचना ने भी सम्राट् भरत की महिषी सुभद्रा से प्रेरित होकर दीक्षा ग्रहण की और वह भी अच्युतेन्द्र के रूप में स्वर्ग को प्राप्त हुई।

सुदर्शनोदय[10]

आकार - इस महाकाव्य में 9 (नौ) सर्ग हैं । जिनमें कुल 412 पद्य सम्मिलित हैं।

ग्रन्थ का नाम-करण - इस ग्रन्थ का नामकरण नायक के नाम पर किया गया है। क्योंकि चम्पापुर के सेठ सुदर्शन का जीवनवृत्त एवं मोक्ष प्राप्ति का चित्र अङ्कित है; इसीलिए "सुदर्शनोदय" यह नाम अत्यन्त सार्थक है ।

उद्देश्य - सेठ सुदर्शन के माध्यम से ब्रह्मचर्य व्रत का माहात्म्य और शील की सर्वोच्चता दिखाना ही ग्रन्थकार का प्रमुख लक्ष्य है । इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर "सुदर्शनोदय" की रचना की है ।

विषय वस्तु - सुदर्शनोदय का संक्षिप्त कथानक निम्नलिखित है -

इस रचना के प्रारम्भ में आमुख शीर्षक में श्री स्याद्वादमहाविद्यालय काशी के साहित्याध्यापक श्री गोविन्द नरहरि वैजापुरकर ने समीक्षा प्रस्तुत की है तथा वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय के दर्शनाध्यापक पं. श्री अमृतलाल जैन ने "काव्य कसौटी" शीर्षक के द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ की मीमांसा की है । ग्रन्थारम्भ में कविवर आचार्य श्री ने प्रस्तावना में कथावस्तु के अदिस्रोत और सुदर्शन के जीवनवृत्त की पृष्ठभूमि उपस्थित की है ।

प्रथम सर्ग - भारतवर्ष में अङ्गदेश अत्यन्त सम्पन्न, पुण्यमय और विश्रुत है वहाँ की वृक्ष सम्पदा, नदियाँ, जलपूर्ण सरोवर, रहन-सहन, कृषि, पशुपालन, राजनीति, आर्थिक स्थिति, आचार-विचार आदि आकर्षक के केन्द्र हैं । इस देश में ''चम्पापुरी'' नगरी बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य स्वामी की निर्वाण भूमि है । इसमें भगवान् महावीर के समकालीन अत्यन्त तेजस्वी, प्रजापालक, ''धात्रीवाहन'' नामक राजा राज्य करता था उसकी ''अभयवती'' नामक रानी अत्यधिक रूपवती और विशिष्ट गुणों से सम्पन्न थी।

द्वितीय सर्ग - चम्पापुरी में उसी समय अत्यन्त बुद्धिमान, दानी, उदार, वृषभदास सेठ रहता था उसकी पत्नी ''जिनमति'' भी नारीजनोचित गुणों से युक्त एवं अत्यन्त सुन्दरी थी, उसे सेठ के हृदय की राजहंसी कहा गया है -

मालेव या शीलसुगन्धयुक्ता शालेव सम्यक् सुकृतस्य सूक्ता
श्री श्रेष्ठिनो मानसराजहंसीव शुद्धभावा खलु वाचि वंशी ॥[11]

ऐसी ''जिनमती'' ने एक समय रात्रि के अन्तिम प्रहर में पाँच स्वप्न देखे - जिन्हें उसने प्रातःकाल ही अपने पति के समक्ष सुना दिया - वह कहती है - कि मैंने प्रथम स्वप्न में सुमेरू पर्वत, द्वितीय स्वप्न में मैं विशाल कल्पवृक्ष, तृतीय स्वप्न में अपार एवं प्रशान्त समुद्र, चतुर्थ स्वप्न में निर्धूम अग्नि तथा पञ्चम स्वप्न में नभचारी विमान के दर्शन किये हैं ।

तत्पश्चात् सेठ सेठानी उपर्युक्त स्वप्नों का अभिप्राय जानने के लिए जिनालय में जाकर योगिराज के समक्ष पहुँचे उन्हें ''नमोऽस्तु'' कहकर आशीर्वाद प्राप्त किया - इसके पश्चात् उपरिकथित पाँच स्वप्नों का फल पूँछा और मुनि ने स्वप्नों का अभिप्राय प्रकट करते हुए कहा -

अहोमहाभाग तवेयभार्या पूम्पूतसन्तानमयेक कार्या ।
भविष्यतीत्येव भविष्यते वा क्रमः क्रमात्तद्गुणधर्म सेवाः ॥[12]

आशय यह कि तुम्हारी पत्नी सुयोग्य पुत्र की माँ होगी । ये पाँच स्वप्न सद्गुणों के परिचायक हैं - तुम्हारा पुत्र (सुमेरूपर्वत के समान) धैर्य, (कल्पवृक्ष) दानशील, (समुद्र) रत्नों का स्वामी, (निर्धूम अग्नि) कर्मों का नाशक, विमान (देवताओं का प्रियपात्र होगा। मुनि द्वारा उक्त स्वप्नों का अभिप्राय स्पष्ट किये जाने से सेठ-सेठानी आनन्दित हो उठे । इसके उपरान्त जिनमती गर्भवती हुई जिससे उसका शारीरिक सौन्दर्य भी निरन्तर परिष्कृत होने लगा । अपनी पत्नी को इस अवस्था में देखकर सेठ भी अत्यधिक प्रसन्न हुआ ।

तृतीय सर्ग - जिनमती ने शुभमुहूर्त में पुत्र को जन्म दिया । इस अवसर पर वृषभदास ने आनन्दोत्सव मानते हुए जिनेन्द्रदेव की पूजा की और प्रजा को दान देकर सम्मान प्राप्त किया । अपने पुत्र को जिनदेव के दर्शन की कृपा का पल मानकर उसका नाम ''सुदर्शन'' रखा -

सुतदर्शनतः पुराऽसकौ जिनदेवस्य ययौ सुदर्शनम् ।
इत चकार तस्य सुन्दरं सुतरां नाम तदा सुदर्शनम् ॥[13]

इसके पश्चात् माता-पिता को अपनी बालक्रीड़ाओं से पुलिकित करते हुए सुदर्शन शैशवकाल के उपरान्त विद्याध्ययन के लिए गुरु के पास भेजा गया । वहाँ अपनी प्रभामयी प्रतिभा एवं कुशलता के आधार पर वह समस्त विद्याओं में पारङ्गत हो गया । चम्पापुरी के

ही सागरदत्त सेठ की अत्यन्त लावण्यमयी ''मनोरमा'' नामक पुत्री से उसे प्रेम हो गया, वह भी सुदर्शन पर आसक्त हो गयी । सुदर्शन का मित्र कपिल उसकी मनोदशा से अवगत हो गया । येन-केन-प्रकारेण सेठ सागरदत्त स्वयं अपनी पुत्री मनोरमा के विवाह का प्रस्ताव लेकर वृषभदास के घर आये और अपनी पुत्री को सोंपने की प्रार्थना करने लगे -

श्री मत्पुत्रायास्मदङ्गोद्भवा स्यान्नोचेद्धानिः सा पुनीताम्बुजास्या । वृषभदास ने भी उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और इस प्रकार शुभलग्न मुहूर्त में सुदर्शन और मनोरमा का विवाहोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ ।

चतुर्थ सर्ग - एक बार चम्पापुरी के उपवन में उपस्थित मुनि का नागरिक अभिनन्दन किया गया । सेठ वृषभदास मुनि के दर्शनार्थ सपरिवार पहुँचे । उन्हें प्रणाम करके उनसे धर्म का स्वरूप जानना चाहा । मुनि के द्वारा धर्म एवं अधर्म की विस्तृत व्याख्या सुनकर वृषभदास का मोहभङ्ग हो गया । उसे कर्म की प्रधानता संयोग वियोग की स्थिति, सच्चिदानन्द का मर्म, संसार की नश्वरता और जीव की मुक्ति आदि को यथार्थता का ज्ञान हो गया तथा उसने दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण करके मुनि जीवन अपनाया । अपने पिता को मुनिरूप में देखकर तथा मुनिवर के वचनों से प्रभावित सुदर्शन ने भी मुनि बनने का निश्चय कर लिया । सुदर्शन ने मुनि होने का निश्चय प्रकट करते हुए मनोरमा के प्रति प्रगाढ़ प्रीति का स्पष्टीकरण भी किया । मुनि श्री उन दोनों की अगाध प्रीति का कारण पूर्वजन्म के संस्कार को मानते हुए उनके पूर्वभवों का विवेचन करते हैं - ऋषि ने कहा - पहले जन्म में तुम दोनों भील-भीलनी थे, वह भील जीवहिंसा के कारण कुत्ता हुआ और एक जिनालय के पास मरण होने से वह कुत्ता किसी ग्वाले के यहाँ पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ । किसी सरोवर में उस बालक ने सहस्रदल कमल तोड़ते हुए यह आकाशवाणी सुनी - कि यह सहस्रदल कमल किसी महापुरुष को समर्पित करना । तब उसने वृषभदास के पास आकर सम्पूर्ण जानकारी दी, तत्पश्चात् वृषभदास उस बालक को राजा के पास ले गये अन्ततोगत्वा वे सभी जिनमन्दिर में गये और वह कमल बालक के हाथ से जिनेन्द्र भगवान् को समारोहपूर्वक समर्पित कराया गया । इसके बाद वह गोपकुमार वृषभदास का सेवक बन गया ।

एक दिन जङ्गल में लकड़ी काटकर लाते हुए उस बालक ने एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ साधु को देखा और विचार किया कि वह ठण्ड से कांप रहे हैं अतः उसने उनके समक्ष आग जलाई और स्वयं बैठ गया। प्रातःकाल होने पर साधु ने समाधि से उठकर उसे ''नमोऽर्हते'' मंत्र दिया और कहा कि कोई भी कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व इस मन्त्र का स्मरण कर लेना। तदनुसार घर आकर वह बालक अपना जीवन यापन करने लगा - एक दिन गाय-भैसों को चराने के लिए वन की ओर गया । एक सरोवर में घुसी हुई भैंस को निकालने के लिए उस मन्त्र का स्मरण करता है तत्पश्चात् सरोवर में कूदा और तीक्ष्ण काष्ठ के प्रहार से उसकी मृत्यु हो गयी जिससे वह उस महामन्त्र के प्रभाव से वृषभदास के यहाँ अब पुत्र सुदर्शन के रूप में उत्पन्न हुआ है तथा और तुम इसी भव से मोक्ष प्राप्त करोगे ।[14]

वह भीलनी भी मरणोपरान्त भैंस हुई और भैंस भी मृत्यु के पश्चात् धोबिन बनी। वह आर्यिकाओं के सङ्घ के सम्पर्क में आकर क्षुल्लिका बन गई और सभी को वन्दनीय हो गई । वह क्षमा, दया, शील, सन्तोष, सदाचार आहद के कारण मरकर आपकी पत्नी मनोरमा हुई है । अब तुम दोनों धर्मानुकूल आचरण करके अपना जीवन व्यतीत करो। इस

प्रकार मुनि के वक्तव्य से अपने पूर्वजन्मों का वृतान्त सुनकर सुदर्शन-मनोरमा आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे ।

पञ्चम सर्ग – एक दिन अर्हन्तदेव की पूजा करने के उपरान्त घर की ओर जाते हुए सुदर्शन को देखकर कपिला ब्राह्मणी उस पर आसक्त हो गयी और अपनी दासी के द्वारा छलपूर्वक बुलाती है । वह दासी सुदर्शन को उसके मित्र की अस्वस्थता का विवेचन करती है । जिससे सुदर्शन कपिला ब्राह्मणी के घर पहुँचा, वहाँ शय्या पर लेटी हुई कपिला को अपना मित्र समझ कर हाथ फैलाता है किन्तु कपिला की रतिचेष्टा एवं कामपीड़ा के हाव-भाव देखकर भयभीत हो उठता है और अपने को पुरुषार्थहीन (नपुंसक) निरूपित करके असमर्थता प्रकट की –

हे सुबुद्धे न नाहं तु करत्राणां विनामवाक् ।
त्वदादेशविधिं कर्तुं कातरोऽस्मीति वस्तुतः ॥[15]

इस प्रकार सुदर्शन कपिला ब्राह्मणी के चुङ्गल से निकल कर घर लौटा।

षष्ठ सर्ग – बसन्त ऋतु का आगमन हुआ । प्राकृतिक छटा मनमोहने और आनन्दानुभूति कराने लगी, चम्पापुरी के नरनारी वनविहार के लिए उद्यान में पहुँचे । वहाँ सुदर्शन की पत्नी मनोरमा को पुत्र सहित रानी अभयमती ने देखा और कपिला ब्राह्मणी भी वहीं उपस्थित थी अतः कपिला ब्राह्मणी ने रानी अभयमती से उसका परिचय जानना चाहा- रानी ने उन्हें सुदर्शन की पत्नी और पुत्र होने की सूचना दी, जिससे वह ब्राह्मणी सुदर्शन के नपुंसक इन दोनों में वार्तालाप होता है और इस प्रकार कपिला ब्राह्मणी की रसमयी वाणी सुनकर रानी के मन में भी सुदर्शन के साथ समागम करने की इच्छा जागृत हो गयी रानी अभयवती सुदर्शन को प्राप्त करने के लिए सन्तृप्त और उत्तेजित हो उठी और अपनी दासी के द्वारा अनेक बार समझाये जाने पर भी विरहजन्य पीड़ा से मुक्त न हो सकी । अपनी दासी द्वारा निरूपित पतिव्रतधर्म के महत्त्व की उपेक्षा कर देती है और अनेकान्त का आश्रय लेती है – वह कहती है कि स्त्री भोग्या है, उसे अवसर पाते ही बलिष्ठ पुरुष से रमण करना चाहिये । इस प्रकार अनेक तर्कों से दासी को निरुत्तर करती है । वह दासी भी विचार करती है कि स्वामी की आज्ञा का पालन करना सेवक की भलाई और सुख का कारण है । अतः मुझे भी अपने कर्तव्य का निर्वाह करना चाहिये ।

सप्तम सर्ग – रानी अभयवती की दासी मिट्टी का एक पुतला बनाती है और उसे चादर से ढ़ककर तथा पीठ कर रखकर अन्तःपुर में प्रवेश करने का प्रयास द्वारपाल से निवेदन करने लगी – कि रानी से पुतलाव्रत धारण किया है इसलिए पुतले की पूजा के बिना वह पारणा नहीं करेगी । किन्तु द्वारपाल द्वारा रोके जाने से वह पुतला गिरकर टूट गया जिससे वह बिलख-बिलख कर रोने लगी, द्वारपाल भी रानी के भय से भयभीत होकर क्षमा याचना करने लगा वह प्रतिज्ञा करता है कि मैं कभी ऐसा निन्दनीय कार्य नहीं करुँगा और वह दासी प्रतिदिन पुतला लाने लगी, कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में सुदर्शन प्रतिमायोग से श्मशान में ध्यानस्थ बैठा था, उसे एकान्त में पाकर दासी अत्यधिक हर्षित हुई और रानी अभयमती की आसक्ति का शृंगारिक वर्णन करने लगी, जब सुदर्शन के मन में विकारभाव जागृत नहीं हुए तो वह उसको पीठ पर लादकर अन्तःपुर में ले गई और रानी के पलङ्ग पर बैठा दिया। रानी ने सुदर्शन को कामचेष्टाओं से आकृष्ट करने का बहुत प्रयास किया और अपनी वासना की पूर्ति के लिये कुलीनता का परित्याग कर दिया । कामान्ध रानी अपने प्रयास में असफल

होने पर ''त्रिया चरित्र'' का प्रयोग करती है और सुदर्शन को द्वारपालों से पकड़वा कर उसे अपराधी कहकर राजा द्वारा मृत्यु दण्ड करवा देती है ।

अष्टम सर्ग - जब यह घटना नगरवासियों ने सुनी तो लोक-रीति के अनुसार अपने-अपने विचार व्यक्त करने लगे । जब राजा के आदेशानुसार चाण्डाल ने सुदर्शन के गले पर तलवार से प्रहार किया तब प्रहार गले का हार बन गया, सभी को आश्चर्य हुआ किन्तु राजा ने स्वयं सुदर्शन पर प्रहार करने का निश्चय किया । जैसे ही राजा ने तलवार उठाई, तभी यह आकाशवाणी हुई -

''जितेन्द्रिय महानेष स्वदारेष्वस्ति तोषवान् ।
राजन्निरीक्ष्यतामित्थं गृहच्छिद्रं परीक्ष्यताम् ॥[16]

हे राजन् । यह अपनी पत्नी से ही सन्तुष्ट, जितेन्द्रिय एवं निर्दोष है, दोष तुम्हारा ही है अपने घर का निरीक्षण करो । राजा का अज्ञान, अभिमान नष्ट हो गया और उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई जिससे वह क्षमा याचना पूर्वक सुदर्शन की स्तुति करने लगा- सुदर्शन ने कहा - हे राजन्, इसमें आपका दोष नहीं है, यह मेरे पूर्व जन्म के कर्मों का प्रतिफल है, मैं किसी को शत्रु या मित्र नहीं समझता[17] । प्रत्येक मनुष्य को भी मद, मात्सर्य आदि दुर्भावों का परित्याग कर मोक्ष प्राप्ति करना चाहिये । प्रत्येक प्राणी को कर्मों के अनुसार ही सुख या दुःख की प्राप्ति होती है इसलिये विद्वान सुख-दुःख, हर्ष-शोक, सम्पत्ति-विपत्ति में समानता धारण करते हैं । इसके उपरान्त सुदर्शन ने वैराग्य धारण करने का निश्चय किया और घर आकर अपनी पत्नी मनोरमा को इस निश्चय से अवगत कराया - इस अवसर पर वे माया को मोक्ष विरोधिनी, विकार बढ़ाने वाली एवं व्याकुलता की जननी सिद्ध करते हैं। मनोरमा भी सुदर्शन के विचारों से सहमत होकर आर्यिका बनने का संकल्प किया और वे दोनों जिनालय में जाकर जिनेन्द्र देव का स्तवन करने लगे । वहाँ आत्म साधना में लीन विमल-वाहन नामक योगी के दर्शन किये और उनके चरण कमलों में नतमस्तक होकर दिगम्बरत्व स्वीकार किया तथा मनोरमा ने भी आर्यिका व्रत अङ्गीकार किया । रानी अभयमती ने भी सम्पूर्ण रहस्य प्रकट हो जाने के कारण आत्मघात कर लिया और मरणोपरान्त पाटलिपुत्र नगर में व्यन्तरी देवी के रूप में प्रकट हुई । उसकी वह दासी भी चम्पापुरी से भाग कर वैश्या देवदत्ता की सेविका बनी और सम्पूर्ण कथा सुनाकर वैश्या से सुदर्शन को पथभ्रष्ट करने की योजना बनाई ।

नवम सर्ग - सुदर्शन दिगम्बर के रूप में पाटलिपुत्र पहुँचे वहाँ दासी द्वारा प्रेरित देवदत्ता वैश्या ने सुदर्शन को घर बुलाया और अपने रूप-सौन्दर्य एवं वाक्चातुर्य से आकर्षित करने का प्रयास किया किन्तु तीन दिन तक अपनी काम चेष्टाओं से सुदर्शन को आकृष्ट करने में देवदत्ता सफल नहीं हो सकी, सुदर्शन ने उसे पंचतत्त्व से निर्मित शरीर की नश्वरता का रहस्य समझाया और भौतिक सुखों के प्रति विरक्ति का सन्देश दिया । सुदर्शन को अपनी चेष्टाओं से विचलित करने में असफल होकर वह देवदत्ता उनकी स्तुति करने लगी और क्षमा प्रार्थना करती हुई जितेन्द्रियत्व की सराहना करने लगी - सुदर्शन भी उसे उपदेश देते हैं - बाह्य वस्तुओं का उपभोग दुःखप्रद है । इस दुःख की उत्पत्ति रोकने के लिये साधना अनिवार्य है । सदाचार, सन्ध्या बन्दन, उपवास, एकाशन, आत्मचिन्तन, संयम, विरक्ति आदि से सम्बद्ध उपदेशपरक एकादश प्रतिमाओं का आश्रय लेने को कहते हैं और आत्मा की बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ये तीन अवस्थाएँ भी अभिव्यञ्जित करते हैं ।

इस प्रकार सुदर्शन के उपदेशों से प्रभावित उसने उन्हीं से आर्यिका की दीक्षा ग्रहण कर ली । देवदत्ता को उपदिष्ट करके सुदर्शन श्मशान में जाकर आत्मचिन्तन में लीन हो गये । एक दिन आकाश मार्ग से विमान पर आरूढ़ व्यन्तरी देवी (अर्थात् रानी अभयमती) ने उन्हें देखा और पूर्व जन्म के वैर के कारण क्रोधित होकर विघ्न उपस्थित करने लगी किन्तु बाधाओं की चिन्ता न करते हुए सुदर्शन अपने आत्म चिन्तवन में दत्तचित्त थे इसलिये राग-द्वेष भी समाप्त हो गये और उन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ -

न दीपो गुणरत्नानां जगतामेक दीपकः ।
स्तुतांजनतयाऽधीतः स निरञ्जनतामवाप ॥[18]

दयोदय चम्पू[19]

यह एक चम्पू काव्य रचना है ।

आकार - यह सात लम्बों (अध्यायों) में विभक्त है जिनमें 166 पद्य हैं । इसमें पद्य के साथ गद्य भी प्रयुक्त हैं ।

नामकरण - इस ग्रन्थ में एक हिंसक धीवर के हृदय में दया का उदय और विकास वर्णित हुआ है । अतः इस कृति का नाम ''दयोदय'' रखा गया है जो सर्वथा उपयुक्त है।

रचना का उद्देश्य - इस कृति की रचना का मुख्य लक्ष्य है - अहिंसा के माहात्म्य का प्रतिपादन करना है, जिससे दयाभाव विकसित हो तथा सुख शान्ति भी स्थापित हो।

विषय वस्तु - ''दयोदय'' ग्रन्थ के प्रारम्भ में आचार्य श्री ने प्रस्तावना के द्वारा अहिंसा के स्वरूप एवं महत्त्व की अभिव्यञ्जना की है । तत्पश्चात सात लम्बों में अधोलिखित कथानक निबद्ध किया है -

प्रथमलम्ब - जम्बूद्वीप में स्थित भारतवर्ष अपनी महिमा, श्रीसम्पन्नता, रहन-सहन एवं आचार-विचार के लिए विख्यात है । वहाँ उज्जयिनी नामक नगरी में एक समय वृषभदत्त राजा हुआ । वृषभदत्ता उसकी रानी थी । राजा वृषभदत्त ने समय में ही गुणपाल सेठ और गुण श्री सेठानी उज्जयिनी में रहते थे । सेठ सेठानी की विषा नामक पुत्री थी । एक दिन गुणपाल सेठ के द्वार पर जूँठे बर्तनों में पड़ी हुई जूँठन को खाकर एक बालक अपनी क्षुधा शान्त करने लगा। उसी समय एक मुनि ने अपने शिष्य के साथ जाते हुए उसे देखा और यह कहा कि यह बालक गुणपाल का जमाता होगा'' मुनि ने यह भी कहा कि यह इसी नगरी के सार्थवाह श्रीदत्त का पुत्र है किन्तु पूर्वजन्म के पापों के कारण मातृपितृ से विहिन हो गया है । शिष्य ने उस बालक के पूर्ववृत्तान्त सुनाने की प्रार्थना की तब मुनि ने स्पष्ट किया -

अवन्ती प्रदेश में शिप्रानदी के तट पर ''शिंशपा - नामक ग्राम में मृगसेन धीवर रहता था, उसकी पत्नी का नाम ''घण्टा'' था । धीवर मछलियाँ पकड़कर अपनी जीविका चलाता था । उसने एक दिन पार्श्वनाथ के मन्दिर में विशाल जनसभा के साथ दिगम्बर साधु के प्रवचनों को सुना -

जीवितेच्छा यथाऽस्माकं कीटादीनां च सा तथा ।
जिजीविषुरतो मर्त्यः परानपि न मारयेत् ॥[20]

मुनि श्री के अहिंसात्मक व्याख्यान से प्रभावित होकर उनके समक्ष अपनी हिंसक जीवन-वृत्ति और अपनी मजबूरी दर्शाता है । उसे समझाते हुए मुनि कहते हैं, यद्यपि तू इस

स्थिति में हिंसा से सर्वथा दूर नहीं हो सकता फिर भी तेरे जाल में जो जीव पहले आवे उसे छोड़ देना, मुनि के मन्तव्य से सहमत होकर उसने पहले आये हुए जीव को नहीं मारने की प्रतिज्ञा की ।

द्वितीय लम्ब - यह धीवर शिप्रा नदी के तट पर पहुँचकर नदी के जल में जाल बिछाया । उसके जाल में ''रोहित'' नामक मछली फंस गयी धीवर ने उसे अपनी प्रतिज्ञानुसार विशेष चिह्न से चिह्नित करके छोड़ दिया। इसके पश्चात् क्रमशः चार बार वही मछली जाल में आती गयी और वह प्रत्येक बार उसे नियमपूर्वक छोड़ता रहा । सांयकाल निष्फल होकर घर लौटा । उसकी पत्नी (घण्टा) ने खाली हाथ घर लौटने का कारण पूछा। मृगसेन ने अपनी पत्नी को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया और अपने दृढ़ निश्चय को भी स्पष्ट किया धीवर ने जैन साधु के प्रभाव में रहने के लिए पति को दोषी ठहराया मृगसेन धीवर ने वेद, उपनिषद, पुराण आदि के दृष्टान्तों से भी धीवरी समझाने का बहुत प्रयास किया किन्तु धीवरी ने उसके सभी तर्कों को अस्वीकार कर दिया । और अपने गृह संसार का अवसान समझकर क्रोधपूर्वक पति को घर से निष्कासित कर दिया । पत्नी के इस व्यवहार से रुष्ट मृगसेन परिवार के प्रति उदासीन हो गया और उसके मन में यह विचार उठे -

येषां कृते नित्यमनर्थकर्तुरद्येव किञ्चद्विपरीतभर्तुः ।
जनैरुपादायि विरुद्धभाव इवाशु वंशैर्विपिनेऽपि दावः ॥[21]

इस प्रकार अपमानित मृगसेन एक वृक्ष में नीचे जाकर विश्राम करने लगा तथा उसे अत्यन्त थकावट के कारण नींद आ गयी । तदनन्तर किसी भयङ्कर सर्प ने उसे डस लिया । जिससे उसकी मृत्यु हो गयी । अब वह (इस बालक के रूप में) धनपाल का पुत्र सोमदत्त है'' ।

अपने पति मगृसे·· को घर से निष्कासित करने के पश्चात् घण्टा नामक धीवरी पश्चाताप करने लगी और अपने पति को खोजने निकली। कुछ देर पश्चात् मृगसेन को वृक्ष के नीचे मृतावस्था में देखकर विलाप करने लगी । शोकाकुल धीवरी ने अहिंसा व्रत के पालन का निश्चय किया। पति के शव पर अवनत उसको भी उसी सर्प ने डस लिया जिससे धीवरी भी मर गई और मरणोपरान्त वह भी उज्जयिनी में सेठ गुणपाल की पुत्री ''विषा'' के रूप में अवतरित हुई दोनों के पूर्वभव के संयोग होने से इस भव में भी संयोग सुनिश्चित है।

तृतीय लम्ब - इस सर्ग में प्रारम्भिक कथासूत्र को पुनः व्यवस्थित किया है । उन दो मुनियों के वार्तालाप को सेठ गुणपाल ने सुन लिया जिससे वह अत्यधिक चिन्तित होकर अपनी पुत्री ''विषा'' के जीवन (भविष्य) पर लगे प्रश्नचिह्न से व्यथित हुआ और उस ''सोमदत्त'' नामक बालक को मरवाने का प्रयत्न करने लगा उसने चाण्डाल को बुलाकर धन का प्रलोभन दिया तथा उस चाण्डाल ने भी सेठ के समक्ष ''सोमदत्त'' को मारने की प्रतिज्ञा की और सेठ से पर्याप्त धन ले लिया किन्तु चाण्डाल ने रात्रि में गाँव के बाहर नदी के तट पर जामुन के वृक्ष के नीचे उस बालक को छोड़ दिया। चाण्डाल उस निर्दोष एवं उदार सोमदत्त की हत्या नहीं कर सका । प्रातःकाल गोविन्द नामक ग्वाल गायों के साथ आया और वह विपन्नावस्था में पड़े हुए बालक को प्रसन्नतापूर्वक अपने घर ले गया । निःसन्तान ग्वाल दम्पत्ति सस्नेह सोमदत्त का पालन पोषण करने लगे, वह भी उन्हें अपना माता-पिता समझने लगा ।

चतुर्थ लम्ब - इस सर्ग में कथाक्रम की नाटकीय गतिशीलता दर्शनीय है । एक दिन गुणपाल सेठ किसी कार्यवश ग्वालों के गाँव आया । उसने सोमदत्त को जीवित देखकर

उसके सम्बन्ध में सम्पूर्ण विवरण प्राप्त किया । उसने गोविन्द से मित्रता कर ली और इस प्रकार सोमदत्त को पुनः मारने की योजना बनायी, अपने षड्यन्त्र की सफलता के लिए उसने गोविन्द और सोमदत्त का विश्वास प्राप्त कर लिया - गोविन्द ने भी सोमदत्त को सेठ की सेवा में तत्पर कर दिया ।

एक दिन अवसर पाकर सोमदत्त को एक पत्र के साथ अपने घर उज्जैन भेजा। रास्ते में सोमदत्त एक वृक्ष की शीतल, सुखद छाया में लेट गया और थकावट के कारण नींद भी आ गयी । उसी समय वहाँ वसन्तसेना नामक वेश्या पुष्पसञ्चयन के लिए आयी और उस सुन्दर युवक के गले में बन्धे हुए पत्र को खोलकर पढ़ने लगी - उसमें सेठ गुणपाल ने अपने घर वालों से पत्रवाहक (सोमदत्त) को विष देने का आदेश दिया था। लेकिन बसन्तसेना ने विचार किया कि सेठ गुणपाल ऐसा घृणित कार्य नहीं कर सकता, निश्चय ही पत्र लिखने में भूल हो गयी है । ऐसा सोचकर उसने ''विषं सन्दातव्यम्'' के स्थान पर ''विषा सन्दात्व्या'' लिख कर पत्र को पूर्ववत बाँध दिया और वहाँ से अन्यत्र चली गई - सोमदत्त उठा और वहाँ पहुँचकर वह पत्र उसके पुत्र को दे दिया। तदनुसार माता से परामर्श करके सोमदत्त और विषा का विवाह सम्पन्न कर दिया गया। नगर में सर्वत्र उनकी प्रशंसा होने लगी ।

पञ्चम लम्ब - विषा-सोमदत्त के परिणय के समाचार को सुनकर सेठ गुणपाल हताश और विचलित हो गया और घर आकर पत्र देखने के उपरान्त पत्र विषयक भूल का पश्चाताप करने लगा । किन्तु परिवारजनों के समक्ष उसने इस विवाह को उचित ठहराया । गुणपाल सेठ यह जानकर भी नृशंस षडयंत्र रचने लगा - कि उसकी पुत्री विधवा हो जायेगी, उसने दुराग्रहपूर्वक सोमदत्त को खत्म करने की नयी योजना बना ली और नागपञ्चमी के दिन सोमदत्त को पूजा सामग्री लेकर पूजा करने के लिए नागमन्दिर भेज दिया तथा दूसरी और चाण्डाल को प्रचुर धन देकर कह दिया कि आज नागमन्दिर में जो व्यक्ति पूजा सामग्री लेकर आवे, उसे तुम तुरन्त मार डालना । जब सोमदत्त पूजा सामग्री लेकर नाममन्दिर की और जा रहा था । उसी समय मार्ग में उसका साला महाबल गेंद खेलते हुए मिला। महाबल ने सोमदत्त से पूजा सामग्री लेकर अपने स्थान पर सोमदत्त को गेंद खेलने में नियुक्त कर दिया और स्वयं पूजा सामग्री लेकर नागमन्दिर की ओर गया वहाँ षड्यन्त्र के अनुसार ही चाण्डाल ने उसका वध कर दिया । गुणपाल सेठ को जब सोमदत्त के जीवित रहने और महाबल की मृत्यु का समाचार मिला तब वह अत्यधिक निराश और व्याकुल हो उठा ।

षष्ठ लम्ब - अपने पुत्र महाबल की मृत्यु से गुणपाल सेठ अत्यन्त खिन्न और हताश था । उसकी पत्नी ने जब चिन्ता का कारण पूँछा तो उसने रहस्य को स्पष्ट नहीं किया किन्तु पत्नी के बार-बार आग्रह करने पर उसने सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया और कहने लगा कि सोमदत्त को मारे बिना मुझे चैन नहीं मिल सकता । अतः उसे शीघ्र ही नष्ट करने का उपाय करो । उसकी पत्नी गुणश्री भी अपने पति के निर्णय से सहमत हो गयी और एक दिन उसने सबके खाने के लिए खिचड़ी बनायी किन्तु सोमदत्त को खाने के लिए विष मिलाकर चार लड्डू तैयार किये । इसके पश्चात् अपनी पुत्री को रसोई कार्य में लगाकर गुणश्री स्वयं शौच के लिए जङ्गल चली गयी । इसी समय गुणपाल सेठ रसोई में आकर पुत्री विषा से कहने लगा - मुझे राजकार्य से शीघ्र ही जाना है भूख भी लगी, यदि खाना तैयार नहीं हुआ है तो जो कुछ भी हो, उसे खाकर ही चला जाऊंगा । पुत्री ने भी उसे उन लड्डूओं में से दो लड्डू खाने के लिये दे दिये - सेठ ने जैसे ही वे विषयुक्त लड्डू खाये वैसे ही वह बेहोश

होकर गिर पड़ा और कुछ ही क्षणों में उसकी मृत्यु हो गई । गुण श्री दीर्घ शङ्का से निवृत्त होकर मृतपाय पति के समक्ष विलाप करने लगी और पश्चाताप करती हुई सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाने लगी जिससे उपस्थिति जनसमूह को वास्तविकता का ज्ञान हो गया । गुणश्री ने भी अवशिष्ट विषयुक्त दो लड्डू खाकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर ली और पति अनुसरण किया ।

सप्तम लम्ब - गुणपाल सेठ के सम्बन्ध में राजा वृषभदत्त को मन्त्री के द्वारा सम्पूर्ण समाचार प्राप्त हो गये और उन्होंने सोमदत्त को दर्शनार्थ अपने पास आमंत्रित किया । सोमदत्त से कुशल क्षेम का समाचार पूँछा। उसने अपने सास-सुसर की असामायिक मृत्यु पर संवेदना व्यक्त की । राजा भी सोमदत्त के प्रति सहानुभूति रखने हुए उसके असाधारण रूप-सौन्दर्य एवं शिष्टाचार से प्रभावित हुए और उन्होंने अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव किया - सोमदत्त भी उनके प्रस्ताव से सहमत हो गया और उनका अनुमोदन करते हुए उसने उनकी कन्या को स्वीकार कर लिया । इसी प्रकार सोमदत्त और राजकुमारी का विवाह सम्पन्न हुआ । इसी समय विषा भी वहाँ आ गयी और उसने राजा को प्रणाम करते हुए उनके निर्णय का स्वागत किया । राजा ने सोमदत्त को आधा राज्य दे दिया। सोमदत्त, विषा एवं राजुकमारी के साथ सुखपूर्वक रहने लगा ।

एक दिन सोमदत्त के घर एक मुनि आये । सोमदत्त, राजुकमारी एवं विषा ने उनकी संस्तुति करके आहारादि के द्वारा सत्कार किया । मुनिवर ने रत्नत्रय को अपनाने का उपदेश दिया और मानव जन्म की सार्थकता, त्याग की महत्ता, ऐश्वर्य की नश्वरता आदि का सजीव एवं रोचक निरूपण किया । जिससे इन उपदेशों को श्रवण करके सोमदत्त एवं उसकी दोनों पत्नियों को वैराग्य हो गया । सोमदत्त ने मुनिदीक्षा तथा राजकुमारी एवं विषा ने "आर्यिका" की दीक्षाएँ ग्रहण की । बसन्तसेना वेश्या ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली और अपने-अपने तप के अनुसार वे सभी स्वर्ग को गये।

श्री समुद्रदत्त चरित्र[२२]

आकार - यह एक खण्डकाव्य है । इसमें 9 सर्ग हैं । जिनके समस्त श्लोकों की संख्या 345 है ।

नामकरण - इसमें भद्रमित्र (समुद्रदत्त) नामक व्यापारी के जीवन चरित्र और उसकी सत्यप्रियता का विवेचन होने से ही "श्री समुद्रदत्त चरित्र" यह ग्रन्थ का नाम रखा गया है । इसे "भद्रोदय" भी कहते हैं, क्योंकि भद्रमित्र (समुद्रदत्त) ही कथानक का केन्द्र है। यह नाम नायक के नाम पर होने से सर्वथा उपयुक्त और सार्थक है ।

प्रयोजन - कवि ने अपनी क्षुल्लकावस्था में ही यह खण्डकाव्य भ्रष्टाचार के बढ़ते प्रभाव से चिन्तित होकर निबद्ध किया। अर्थात् सत्य की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रूप से स्थापित करने के लिए ही भद्रमित्र का आश्रय लेकर लिखा है । इसमें सत्य की विजय का प्रतिपादन है ।

विषयवस्तु - इसमें भद्रमित्र के व्यापारिक जीवन और सत्य की परीक्षा लिये जाने का व्यापक वर्णन है । इसकी संक्षिप्त कथावस्तु सर्गानुसार प्रस्तुत है ।

प्रथम सर्ग - श्री पद्मखण्ड भरतक्षेत्र का एक नगर है वहाँ "सुदत्त" नामक वैश्य अपनी "सुमित्रा" नामकी पत्नी सहित निवास करता था । उन दोनों का शुद्ध सरल "भद्रमित्र"

नामक एक पुत्र हुआ । एक समय उसके मित्रों ने उसे अपने जीवनयापन के लिए धनार्जन करने को प्रेरित किया और व्यवसाय के लिए रत्नद्वीप जाने का निश्चय किया । इस सम्बन्ध में मित्रमंडली में से एक मित्र ने पुरानी कथा भी सुनाई जो अधोलिखित है ।

द्वितीय सर्ग – भारत वर्ष में विजयार्द्ध नामक श्रेष्ठ पर्वत है । इस उच्चशिखरों वाले पर्वत के उत्तर में अलका नामक नगरी है । किसी समय वहाँ महाकच्छ नामक प्रतापी राजा हुआ उसकी "दामिनी" नामक रानी थी और इनकी पुत्री "प्रियङ्गुश्री" थी, जो अत्यन्त सुन्दर और समयानुसार विवाह के योग्य हुई । एक ज्योतिषी ने उसके पिता को बताया कि आपकी इस सुशीला कन्या का विवाह स्वकगुच्छ के अधिपति ऐरावण के साथ होगा ।

इस भविष्यवाणी के अनुकूल महाकच्छ ने भी महाराज ऐरावण की परीक्षा ली और उन्हें योग्य समझकर अपनी पुत्री को स्वीकार करने का आग्रह किया । महाराज ऐरावण ने स्वीकृति दी और प्रियङ्गुश्री को लाने को कहा ।

आलकापुरी से स्तवकगुच्छ ले जाते हुए मार्ग में प्रियङ्गुश्री से विवाह करने के अच्छुक वज्रसेन से महाकच्छ का सङ्घर्ष हुआ । वहाँ समय पर आकर ऐरावण ने वज्रसेन को पराजित किया और प्रियङ्गुश्री से सानन्द विवाह किया ।

वज्रसेन ने विरक्त होकर जिनदीक्षा ले ली और ऊपरी मन से तपस्या करने लगा। तपश्चरण काल में ही वह एक बार स्तबकगुच्छ पहुँचा वहाँ क्रोधित लोगों ने उसे लाठियों से पीटा जिससे वज्रसेन ने भी बांये कन्धे से तैजस पुतले से सम्पूर्ण नगर को जला दिया और स्वयं भी जलकर भस्म हो गया और नरक गया । इसलिए वज्रसेन के समान दूसरे की अमानत पर अधिकार नहीं जमाना चाहिये अपितु स्वयं अपने परिश्रम से व्यवसाय करना चाहिये ।

तृतीय सर्ग – इस कथा से प्रभावित होकर भद्रमित्र ने अपने पिता से परदेश जाने की अनुमति मांगी । पिता ने कहा तुम्हें विदेश जाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि मेरी आय बहुत और तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो अत: तुम्हारा घर से बाहर रहना हमारे लिए कष्टप्रद होगा । किन्तु भद्रमित्र के बहुत आग्रह करने पर उसके पिता ने स्वीकृति दे दी और माता को भी उसके दृढ़ निश्चय के समक्ष विवश होकर उसे विदेश जाने की अनुमति देनी पड़ी। इस प्रकार अपने माता-पिता से अनुमति लेकर भद्रमित्र अपने साथियों सहित रत्नद्वीप पहुँचा, वहाँ उसने सात रत्न प्राप्त किये । एक दिन भद्रमित्र राजासिंहसेन के नगर सिंहपुर पहुँचा। सिंहसेन की रानी का नाम रामदत्ता था । "श्रीभूति" नामक मंत्री अपनी झूठी सत्यवादिता का प्रचार किये था, उसने जनता को भ्रमित करते हुए एक छुरी गले में पहन रखी थी कि यदि मुझसे कभी झूँठ बोल गया तो मैं आत्महत्या कर लूँगा । इसी कारण राजा ने उसे "सत्यघोष" नाम दिया ।

सिंहपुर में जाकर भद्रमित्र ने सत्यघोष को पुरस्कार स्वरूप धन सम्पत्ति देकर अपने माता-पिता को भी इसी नगर में बसने की अनुमति मांगी । सत्यघोष की अनुमति मिलने पर वह अपने सातों रत्न उसी के पास रखकर माता-पिता को लेने चला गया। तत्पश्चात् भद्रमित्र ने लौटकर सत्यघोष से अपने रत्न मांगे, किन्तु उसने अपने झूठे तर्कों से भद्रमित्र पागल, पिशाच आदि घोषित करके पहरेदारों से बाहर निकलवा दिया । वहाँ भद्रमित्र का किसी ने विश्वास नहीं किया । वह निराश होकर प्रतिदिन एक वृक्ष पर चढ़कर करुणापूर्ण

स्वर में प्रलाप करने लगा । रानी रामदत्ता ने राजा से इस रहस्य का पता लगाने का आग्रह किया । रानी ने राजा को दरबार में भेज दिया ।

इसके बाद रानी ने सत्यघोष को शतरञ्ज खेलने बुलाया और रानी ने मधुर संभाषण करते हुए उसकी छुरी, यज्ञोपवीत और मुद्रिका इन तीनों को जीत लिया । रानी चतुरतापूर्वक दासी को तीनों वस्तुएँ सौपते हुए मन्त्री के घर से उनकी पत्नी से भद्रमित्र के रत्नों की पोटली लाने को कहा । दासी ने वहाँ जाकर ''मन्त्री जी ने मुझे रत्नों की पोटली मांगने भेजा है और निशान स्वरूप यज्ञोपवीत, छुरी, अंगूठी दिखाई । इस प्रकार मंत्री पत्नी से रत्नों की पोटली रानी ने प्राप्त कर ली ।

चतुर्थ सर्ग - रानी ने वे रत्न राजा को सौंपे । राजा ने बहुत रत्नों में मिलाकर भद्रमित्र से अपने रत्न लेने को कहा, भद्रमित्र ने अपने सात रत्न ले लिये, जिससे प्रभावित होकर राजा ने उसे राजश्रेष्ठी बना दिया और सत्यघोष को कठोर दण्ड देकर पदच्युत कर दिया? परिणामस्वरूप सत्यघोष ने आत्मघात कर लिया और मरणोपरान्त सर्प हुआ। भद्रमित्र राजश्रेष्ठी रहकर वसस्थ मुनिवर के प्रवचनों से प्रभावित होकर सन्तोषव्रत के साथ धन सम्पत्ति का अतिशय दान करता है । उसकी दानशीलता का उसकी माँ ने तीव्र विरोध किया और दान देने से न रूकने पर उसकी माँ ने प्राण त्याग दिये वह मरणोपरान्त व्याघ्री हुई । एक दिन इस व्याघ्री ने भद्रमित्र का भक्षण कर लिया । तदुपरान्त भद्रमित्र राजा सिंहसेन के पुत्र ''सिंहचन्द्र'' के रूप में जन्मा ''पूर्णचन्द्र'' इनका अनुज था ।

एक दिन राजा सिंहसेन खजाने में रत्नों को व्यवस्थित रूप से रखकर निकले की तुरन्त ही (सत्यघोष) सर्प ने उन्हें डस लिया । राजा की मृत्यु हो गई और वह मरकर अशनिघोष नामक हाथी हुआ वह सर्प भी मरकर नगर के समीप वन में चमरमृग हुआ ।

शोकाकुल रानी रामदत्ता ने दो आर्यिकाओं के कहने से आर्यिका धर्म ग्रहण कर लिया। तदुपरान्त सिंहचन्द्र राजा और पूर्णचन्द्र युवराज हुए । एक दिन ''पूर्णविध'' नामक मुनिराज के पास पहुँचकर सिंहचन्द्र मुनि बन गया ।

एक दिन सिंहचन्द्र मुनि की वन्दना करती हुई आर्यिका रामदत्ता ने निवेदन किया- कि हे मुनिराज आपका अनुज एवं मेरा पुत्र पूर्णचन्द्र भोगविलास में लिप्त है, वह धर्माचरण करेगा या नहीं । मुनिराज कहने लगे जब वह अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनेगा तब वह धर्मपालन के लिए तत्पर होगा- ऐसा कहकर उन्होंने आर्यिका रामदत्ता को उसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया और कहने लगे कि यह वृत्तान्त पूर्णचन्द्र को सुना देना - सिंहचन्द्र कहने लगा - भरतक्षेत्र के कौशलदेश के मध्य वृद्ध नामक गाँव है, उसमें गृगायण ब्रह्माण और मधुरा पत्नी सहित दोनों रहते थे - इनकी ''वारुणी'' नामक पुत्री थी । मृगायण ब्राह्मण मरणोपरान्त अयोध्या की रानी सुमिता की लावण्यवती नामक पुत्री के रूप में उत्पन्न हुआ । यह पुत्री पोदनपुर के अधिपति पूर्णचन्द्र की पत्नी बनी । मृगायण की पत्नी मधुरा भी पूर्णचन्द्र की पुत्री के रूप में जन्मी । मैं पूर्वजन्म का भद्रमित्र हूँ और वारुणी लड़की ही आपके यहाँ पूर्णचन्द्र के रूप में प्रकट हुई ।

आपके पिता पूर्णचन्द्र भद्रबाहु नामक श्रीगुरु के पास मुनि बने और मैं भी उन्हीं पूर्णचन्द्र के समीप मुनि हुआ हूँ । आर्यिका दान्तमती के पास आपकी माता भी आर्यिका बनी हैं।

आपके पति राजा सिंहसेन मरणोपरान्त अशनिघोष हाथी हुए । एक दिन वह हाथी मुझे मारने आया तो मैंने समझाकर आत्मोद्धारक व्रत धारण कराया ।

वह एक बार मासोपवासी व्रत की पारणा के लिए नदी में पानी पीने गया और महापङ्क में फंसकर धर्म भावना से समाधि ले ली । सत्यघोष का जीव भी चमरमृग हुआ, वह मृग मरकर फिर सर्प हुआ और इसने अशनिघोष हाथी के मस्तक में काट खाया। वह हाथी सहस्रार स्वर्ग के रविप्रभ विमान में श्रीधर नामक देव हुआ । धम्मिल मंत्री का जीव जो बन्दर हुआ था उसने उस सर्प को मार डाला और सर्प रौद्रपरिणाम से मरने के कारण तीसरे नरक में पहुँचा । व्याघ्र ने उस हाथी के दाँतों और मस्तकस्थ मोती को ले जाकर धनमित्र सेठ को बेच दिये जिन्हें सेठ ने वर्तमान राजा पूर्णचन्द्र को भेंट कर दिया ।

पञ्चम सर्ग - सिंहचन्द्र द्वारा सुनाये गये पूर्ववृतान्त को सुनकर रामदत्ता ने पूर्णचन्द्र के पास आकर भोगविलास के कष्टों का बखान किया और त्यागमय जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी और सिंहचन्द्र द्वारा कथित सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया । उसके उपदेश से प्रभावित होकर पूर्णचन्द्र भगवान् अर्हन्त की नियमित आराधना करते हुए गृहस्थ धर्म का पालन करने लगा ।

यहाँ रामदत्ता ने भी समाधि के द्वारा शरीर त्याग किया । जिससे स्वर्ग पहुँचकर सोलह सागर की आयु वाले भास्कर देव के रूप में स्वर्ग के सुख भोगने लगी । राजा पूर्ण चन्द्र भी महाशुभ भावों से मरण होने के कारण महाशुक्र नामक दशमें स्वर्ग में जाकर वैडूर्य नामक विमान का अधिपति देव हुआ । जिसकी सोलह सागर की आयु थी । मुनिराज सिंहचन्द्र ने कठिन साधना की अतएव वह अन्तिम ग्रैवेयक स्वर्ग में पहुँचकर इकतीस सागर की आयुका धारक अहमिन्द्र बना ।

विजयार्द्ध पर्वत के दक्षिण में धरणीतिलक नामक नगर में आदित्यवेग राजा हुआ उसकी सुलक्षणा रानी के उदर से रामदत्ता के जीव भास्करदेव ने पुत्री श्रीधरा के रूप में जन्म लिया। अलकापुरी के दर्शन राजा के साथ श्रीधरा का विवाह भी भास्करपुर के राजा सूर्यावर्त के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ । सिंहसेन राजा का जीव (श्रीधर देव था) इन दोनों का पुत्र रश्मिवेग हुआ । सूर्यावर्त ने रश्मिवेग को राज्यभार सौंपा और स्वयं मुनि बन गया तथा श्रीधरा और यशोधरा ने भी आर्यिका धर्म स्वीकार कर लिया।

एक दिन पूजनार्थ आये हुए रश्मिवेग की भेंट जिन मन्दिर में मुनि हरिश्चन्द्र से हुई, मुनि को प्रणाम करके उनके प्रवचन सुने । जिनसे प्रेरित होकर वह योगी बन गया और योगसाधना करते हुए कंचनगिरि की गुफा में विराजमान था कि वन्दनार्थ आयी हुई यशोधरा और श्रीधरा आर्यिकाएँ भी वहाँ पहुँची । इस समय सत्यघोष के पापी जीव ने अजगर की योनि में जन्म लिया था उसने उस गुफा में आकर रश्मिवेग, श्रीधरा, यशोधरा को खा लिया। ये तीनों चौदह सागर की आयु वाले कापिष्ठ स्वर्ग के देव हुए और अजगर भी मरणोपरान्त पङ्कप्रभ नरक में जाकर दु:सह कष्ट भोगने लगा ।

षष्ठ सर्ग - भरत क्षेत्र में ही चक्रपुर नामक नगर में अपराजित राज्य हुआ, उसकी अत्यन्त लावण्यमयी "सुन्दर" नामक रानी थी । सिंहचन्द्र का जीव इनका पुत्र चक्रयुध हुआ। युवावस्था के समय उसने चित्रमाता सहित पाँच हजार बालाओं को स्वीकार किया। रश्मि वेग ने चित्रमाला के वज्रायुध नामक पुत्र के रूप में जन्म लिया । किसी समय पृथ्वीतिलक

नगर के अतिवेग राजा की रानी प्रियकारिणी ने भी (श्रीधरा के जीव को) ''रत्नमाला'' कन्या को जन्म दिया। युवती होने पर इस बालिका का विवाह वज्रायुध के साथ किया गया। यशोधरा के जीव ने भी वज्रायुध और रत्नमाला के पुत्र ''रत्नायुध'' के रूप में जन्म लिया।

इस प्रकार चक्रायुध के सुखद समय में ही एक दिन उद्यान में पिहिताश्रव मुनि पधारे। राजा अपराजित ने वहाँ आकर प्रणाम करके मुनि से जब अपने पूर्व वृत्तान्त सुने तो मन में वैराग्य भाव जाग उठा और वे दिगम्बर मुनि बन गये। यहाँ राज्यपद पर उनके पुत्र चक्रायुध को प्रतिष्ठित किया गया। वह सत्यवादी न्यायप्रिय, पराक्रमी और प्रजावत्सल एवं धार्मिक गुणों से संयुक्त था।

सप्तम सर्ग – एक दिन दर्पण में मुँह देखते हुए राजा चक्रायुध ने अपने माथे पर सफेद केश पाया। उसे वृद्धावस्था के आगमन की सूचना मानकर सोने लगा यह सौन्दर्य, शरीर, भोगविलास। अस्थिर और नश्वर है शरीर और आत्मा पृथक्-पृथक् हैं। मनुष्य इन्हें एक मानकर मोहग्रस्थ है किन्तु शरीर का सुख नश्वर है। और आत्मा शाश्वत है। इसलिए आत्मसुख की प्राप्ति का उपाय करना चाहिये और भगवान् ''अर्हन्त'' में मन लगाना चाहिये। इन्हीं वैराग्यवर्धक विचारों से प्रेरित होकर उसने राज्य पुत्र वज्रायुध को सौंप दिया और स्वयं वन में अपराजित मुनि की शरण में आकर धर्मोपदेश और मुक्ति के उपाय पूँछने लगा।

अष्टम सर्ग – अपराजित मुनिराज द्वारा राजा-चक्रायुध को धर्माचरण के उपदेश दिये गये। जिनमें जीव-अजीव उसके भेद, योनि, कर्म, उनके भेदों, राग-द्वेष आत्मा उसकी अवस्था, योग, गति, ध्यान अहङ्कार त्याग आदि की व्यापक व्याख्या और समीक्षा की गई है। उक्त विषयों पर मुनि के पाण्डित्यपूर्ण उपदेश से प्रभावित होकर राजा चक्रायुध ने सर्वस्व त्याग कर मुनिवेष धारण कर लिया।

नवम सर्ग – मुनि के रूप में उसने समस्त सांसारिक वस्तुओं एवं मयूरपिच्छी तथा कमण्डलु के प्रति भी उदासीन वृत्ति अपना ली। सत्य, अहिंसा, क्षमा, ब्रह्मचर्य को धारण करके आत्मध्यान में रम गया नश्वर शरीर की चिन्ता न करते हुए गहन साधना की। वह परिग्रहरहित, एकान्तवासी और स्वाध्यायी हो गया और उसने कैवल्य ज्ञान भी प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार एक सरल चित्त व्यक्ति भद्रमित्र आत्मा से परमात्मा बन गया।

सम्यक्त्वसारशतकम्[23]

आकार – यह एक शतक काव्य होने के कारण सौ पद्यों में निबद्ध रचना है।

नामकरण[24] – इसमें जिनशासन की आधारशिला ''सम्यक्त्व''[25] का विशद् विवेचन आद्योपान्त हुआ है तथा आत्मा की अवस्था के रूप में चित्रित एवं प्रत्येक जैन धर्मानुयायी के लिए अनिवार्य सम्यक्त्व ही प्रस्तुत रचना का केन्द्र होने के कारण ''सम्यक्त्व सारशतकम्'' नाम सर्वथा सार्थक है।

प्रयोजन – मानवमात्र के हितार्थ उन्हें मिथ्यात्व और सम्यक्त्व के रहस्य से अवगत कराके – ''भव्यजीव प्रबोधनाय बोधाय च निजात्मनः'' (सभी भव्य जीवों के कल्याण एवं अपने हित के लिए भी) प्रस्तुत शतक काव्य की रचना की गई है। कवि ने ग्रन्थ के अन्त

में ''मेरी भावना'' शीर्षक के अन्तर्गत सुखी संसार की कल्पना की है । इससे हमें ग्रन्थकार की उदारवादी मनोवृत्ति और काव्य की रचना के प्रयोजन का भी आभास होता है ।

विषय वस्तु - प्रस्तुत कृति में आद्योपान्त सम्यक्त्व का विवेचन है, आत्मा की शुद्ध अवस्था का सर्वज्ञता ''सम्यक्त्व का विवेचन है -सम्यक्त्व सूर्य के उदित होने पर मिथ्यात्वरूपी अज्ञान रात्रि स्वयमेव विलीन हो जाती है ।

समयक्त्व के तीन भेद हैं- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आत्मा की इसके विपरीत अवस्थ (अशुद्ध) मिथ्यात्व'' कहलाती है ।

वस्तु के दो रूप है - चेतन और अचेतन । यह आत्मा जिसे जीव कहते हैं, चेतन है । अचेतन के पाँच भेद हैं - धर्म - अधर्म, आकाश, काल अमूर्त और पुद्गल मूर्त है। जीव और पुद्गल की गति में सहायक द्रव्य को धर्म द्रव्य कहते हैं। जो इन दोनों की स्थति में जो सहायक होता, उसे अधर्म कहते हैं । सब पदार्थों का आश्रयभूत स्थान आकाश है। वस्तुओं में परिवर्तन करने की शक्ति ही काल है । पुद्गल द्रव्य भिन्न-भिन्न अणुरूप अनन्तानन्त हैं, जो पुद्गलाणु अपने स्निग्ध और रूक्षगुण की विशेषता से एक दूसरे से मिलकर स्कन्धरूप हो जाते हैं । इस अपेक्षा से पुद्गल द्रव्य भी बहुप्रदेशी ठहरता है ।

अपने कर्तव्य के विषय में विचार करना कर्मचेतना या लब्धि कहलाता है । यह लब्धि देशना, विशुद्धि प्रायोगिका और काल-नामक चार प्रकार की है । गुरु के सुदपदेश को रुचिपूर्वक ग्रहण करना देशनालब्धि है । दु:ख से मुक्त होने के लिए कर्मचेष्टा से परे होने की विचारधारा का पल्लवन एवं उससे जीव के चित्त में निर्मलता का आना विशुद्धिलब्धि है । इस विचार से जीव के पूर्वोपार्जित कर्म कमजोर होकर सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण से घटकर अन्त: कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण रह जाते हैं और अणुमात्र भी कम हो जाता है इससे आगे के बन्धन वाले कर्मों की स्थिति भी अन्त: कोड़ाकोड़ी सागर से अधिक नहीं होती इसी परिस्थिति को प्रायोगिकालब्धि कहते हैं । अनादिकाल से मोहनिद्रा में सोये हुए संसारी जीव के जाग्रत होने का समय काललब्धि के अन्तर्गत आता है ।

उपर्युक्त लब्धियों से व्यक्ति सुविधापूर्वक सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है, इसके तीन रूप हैं - अध:करण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इनमें आत्मा निर्मल, निर्मलतर और निर्मलतम होती है, कहने का अभिप्राय यह कि जीव लब्धियों के माध्यम से अपने कर्मों का उपशमन करके सम्यक्त्व को प्राप्त करता है । ऐसा पुरुष देव. विद्याधर का जन्म एवं मोक्ष की प्राप्ति करता है ।

इसके पश्चात सम्यग्दृष्टि पुरुष की विचारधारा, गुण, प्रभाव आदि का विवेचन हुआ है । सम्यग्दृष्टि के गुणों में वात्सल्य धर्मप्रभावना, त्याग और सन्तोष सर्वोपरि है इन्हीं गुणों की व्यवस्था सम्यक्त्व है और बिगड़ी हुई दशा मिथ्यात्व है । ग्रन्थकार ने सम्यग्दृष्टि पुरुषों के लिए कतिपय कर्तव्य निर्देशित भी किये हैं । तत्पश्चात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र के स्वरूप, अङ्गों, माहात्म्य आदि का विस्तृत विवेचन किया है । इस ग्रन्थ में मिथ्यादृष्टि और मिथ्यात्व की असारता और हीनता का निरूपण भी हुआ है। इसके साथ ही आत्मा और शरीर से सम्बन्धित भेदविज्ञान, आत्मा का अवस्थाएँ (बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा) ज्ञान-अज्ञान गुण स्थान, निक्षेप कर्म के भेद, प्रभेदों क भी पर्याप्त प्रतिपादन हुआ है ।

इस प्रकार जैन दर्शन के गूढ़ सिद्धान्तों का अभिव्यञ्जना सम्यक्त्व के प्ररिप्रेक्ष्य में ग्रन्थ में सर्वत्र हुई है । उक्त दार्शनिक विषयों को अलङ्कृत एवं दृष्टान्तों के माध्यम से व्यक्त किया गया है । इस प्रकार सम्यक्त्वसारशतकम् में 100 पद्यों में उक्त प्रतिपाद्य विषय ही पल्लवित हुआ है ।

प्रवचनसार[25] – यह ग्रन्थ श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य कृत हैं । इसमें तीन अधिकार हैं- ज्ञान प्ररूपक अधिकार-इसमें गाथाएं हैं ज्ञेयाधिकार में 108 गाथाएं और तृतीय चरित्राधिकार में 95 गाथाएं हैं । यह सम्पूर्ण ग्रन्थ प्राकृत भाषा में रचित है । हमारे आलोच्य महाकवि ज्ञानसागर जी ने संस्कृत भाषा के अनुष्टुप पद्यों में इसका छायानुवाद प्रस्तुत किया है और हिन्दी पद्यानुवाद तथा सारांश भी स्वयं किया है । इस प्रकार यह संस्कृत एवं हिन्दी की मिश्रित रचना है।

इसमें जैनदर्शन के प्रसिद्ध द्रव्य, गुण, पर्याय, शुभोपयोग, अशुभोपयोग, शुद्धोपयोग, मोह, स्याद्वाद, द्रव्य-भेद, जीव, पुदगल, आत्मतत्त्व, ध्यान, आचरण, मुनियों के भेद, पाप-भेद, स्त्रीमुक्ति इत्यादि विषयों की विस्तृत विवृत्ति हुई हैं ।

आ. ज्ञानसागरजी की स्फुट रचना :

आपकी एक स्फुट रचना ''श्री शिवसागर स्मृति ग्रन्थ में प्रकाशित हुई है ।[26] इस रचना में दो अनुष्टुप् छन्दों में आचार्य शिवसागर महाराज को नमन करते हुए रचनाकार ने उन्हें भली प्रकार से तीनों गुप्तियों से सहित बताकर कल्याण एवं ज्ञान का सागर कहा है तथा उनके आगे अपने को अज्ञानी बताकर अपना विनय गुण प्रकट किया है-

सम्यक्त्रिगुप्तियुक्ताय, नमोऽस्तु शिवसिन्धवे ।
ज्ञानसागरतां नीतोऽहमज्ञः गुरुणामुना ॥

आगे रचनाकार ने शिवसागर महाराज के गुणों का उल्लेख किया है। उन्होंने उन्हें आर्य-ग्रन्थों का अध्येता, सर्वदा अध्ययन में लीन धर्म वात्सल्यमूर्ति और धर्म की प्रभावना करने वाला निरूपित किया -

ऋषिप्रणीतग्रन्थानां सदध्ययनशालिना ।
वात्सल्यान्वितचित्तेन सदा धर्मप्रभाविना ॥

इस प्रकार कवि की प्रस्तुत रचना में भाषा का प्रवाह है । उपमाओं का और विषय वस्तु के अनुसार पदों का प्रयोग उल्लेखनीय है ।

आचार्य विद्यासागर जी महाराज

परिचय :

परम पूज्य, तपस्वी आचार्य विद्यासागर जी महाराज प्रखर बुद्धि सम्पन्न, सदैव चिन्तनशील, दिगम्बर महात्मा हैं ।

आचार्य श्री का जन्म विक्रम संवत् 2003 (सन् 1947 ई.) की शारदीय पूर्णिमा की रात्रि में कर्नाटक प्रान्त के बेलगाम जिले में स्थित ''सदलगा'' ग्राम में हुआ । बचपन में इनका नाम ''विद्याधर'' जी रखा गया । आपकी गृहस्थावस्था के पिता श्री मल्लपा जी अष्टगे, सम्प्रति श्री मल्लिसागर जी मुनि के रूप में प्रसिद्ध हैं । आपकी गृहस्थावस्था में माता श्री श्रीमती जी, समाधिस्थ आर्यिका समयमती जी के नाम से विश्रुत थी ।

बालक विद्याधर जी में विरक्ति के बीज बचपन से ही अंकुरित होने लगे थे, चरित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज के उपदेशामृत से विरक्ति भाव के पौधे का सिञ्चन हुआ फलतः अध्यात्म पथ पर अग्रसर होने का सङ्कल्प लेकर आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज से खानिया (जयपुर) में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। उत्कट ज्ञान पिपासा आपको अजमेर स्थित आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के समीप खींच लाई । विद्याधर के रूप सुयोग्य शिष्य पाकर आचार्य ज्ञानसागर जी अभिभूत हो उठे। आपकी अप्रतिम योग्यता का मूल्यांकन करते हुए उन्होंने आपको आषाढ़ सुदी 5 संवत् 2025 (30 जून रविवार सन् 1968 ई.) को अजमेर में ही दैगम्बरी दीक्षा प्रदान की। आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर आचार्य ज्ञानसागर ने मगशिर कृष्ण 2 संवत् 2029 (21 नवम्बर, बुधवार सन् 1972 ई.) को नसीराबाद (राजस्थान) में आत्मरत्नत्रय निधि रक्षार्थ "आचार्य" पद से अलङ्कृत किया और आचार्य विद्यासागर जी के निर्देशन में सल्लेखना ग्रहण की । आचार्य विद्यासागर जी ने अपने गुरु की सेवा जिस तन्मयता और तत्परता से की, वह दृश्य नयनाभिराम है ।[7] इस प्रकार बालक विद्याधर से आचार्य विद्यासागर बनने की ये कथा अत्यन्त रोचक है ।

आपके गृहत्याग के पश्चात् आपके माता-पिता, भाइयों और बहिनों ने भी योग मार्ग स्वीकार किया और दीक्षाएं ग्रहण की । आचार्य श्री के अतिरिक्त तीन भाईयों में से एक श्री महावीर अष्टगे विरक्त अवस्था में "सदगला" में ही रहते हैं और दोनों अनुज मुनि समय सागर जी एवं मुनि योगसागर जी के नाम से दीक्षित होकर आत्मकल्याण में प्रवृत्त हैं। दोनों बहिनों ने भी किशोरवय में ही योग मार्ग स्वीकार किया - ये आर्यिका प्रवचनमति और आर्यिका नियममति के रूप में प्रसिद्ध हैं । धन्य है यह परिवार जो पूर्ण विरागी और जिनपथगामी है । इस प्रकार महामुनि विद्यासागर जी सपरिवार जैन दर्शन के अध्ययन-मनन जिनवाणी के प्रचार-प्रसार और साधना में संलग्न हैं ।

आचार्य प्रवर की मातृभाषा कन्नड़ है । यद्यपि आपकी शालेय शिक्षा अपर्याप्त ही है किन्तु वस्तुतः स्वतः ज्ञान का सागर आपके पास आ गया, प्रतीत होता हैं । आपने जहाँ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी हिन्दी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में प्रौढ़-पाण्डित्य प्राप्त किया है वहीं दर्शन इतिहास, संस्कृति, साहित्य, न्याय, व्याकरण, मनोविज्ञान और योग विद्याओं में अनुपम वैदुष्य हासिल किया है ।

पूर्वभव के संस्कार वश अल्पवय में ही सांसारिक सुखों और भोगों से विरक्त होकर दैगम्बरी मुद्रा धारण करने वाले आचार्य श्री के प्रवचनों में ज्ञान गङ्गा की धारा अबाध गति से प्रवाहित होती है - आपकी प्रवचन शैली प्रभावशाली है । स्वसाधना में लीन, ज्ञानाभ्यास में प्रवृत्त महनीय मुनि विद्यासागर की कृतियों में उनके व्यक्तित्व की दिव्यता दृष्टिगोचर होती है ।

आप संस्कृत, हिन्दी और प्राकृत आदि भाषाओं में ग्रन्थ रचना करके भगवती भारती की आराधना में संलग्न हैं - आपके द्वारा रचित संस्कृत भाषा में निबद्ध ग्रन्थ-रत्न निम्नलिखित है - श्रमण शतकम्, निरञ्जन शतकम्, सुनीति शतकम्, भावनाशतकम्, परीषहजयशतकम् शारदास्तुतिरियम् ।

प्राकृत रचना - विज्जाणुवेक्खा

हिन्दी में निबद्ध काव्य कृतियाँ - मूक माटी (महाकाव्य) नर्मदा का नरम कङ्कर (कविता संग्रह), डूबोमत लगाओ डुबकी (कविता संग्रह) आदि ।

आचार्य श्री ने जैन संस्कृति, दर्शन और साहित्य के अनेक ग्रन्थों का हिन्दी पद्यानुवाद किया है - जिनमें प्रमुख कतिपय ग्रन्थ निम्नलिखित हैं -

(1) योगसार (2) इष्टोपदेश (3) समाधितन्त्र
(4) एकीभावस्तोत्र (5) कल्याणमन्दिर स्तोत्र (6) जैन गीता
(7) निजामृत पान (8) कुन्द कुन्द का कुन्दन (9) रयण-मञ्जूषा
(10) द्रव्य संग्रह (11) समन्तभद्र की भद्रता (12) गुणोदय आदि

बीसवीं शताब्दी के मूर्धन्य मनीषियों में अग्रगण्य चरित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यासागर जी अपनी असाधारण काव्य साधना के माध्यम से नित्यप्रति वाग्देवी की आराधना करते हैं ।

आचार्य प्रवर विद्यासागर जी महाराज की शिष्य परम्परा: प्रमुख साधु-साध्वियाँ

पूज्य मुनि सर्व श्री समय सागर, योग सागर, क्षमासागर, सुधासागर गुप्तिसागर, प्रमाण सागर, चिन्मय सागर, नियम सागर, चरित्र सागर, स्वभाव सागर, समाधिसागर, आर्जव सागर, मार्दव सागर, पवित्रसागर, पावनसागर, उत्तम सागर, सुखसागर एवं दर्शनसागर जी आदि।

पूज्य ऐलक सर्व श्री दयासागर, निश्चयसागर, अभयसागर, उदारसागर, वात्सल्य सागर, एवं निर्भयसागर जी आदि ।

पूज्य क्षुल्लक सर्व श्री ध्यानसागर, नयसागर, प्रसन्नसागर, गम्भीरसागर, धैर्यसागर, एर्व विसर्ग सागर जी आदि ।

इसी प्रकार आपके द्वारा दीक्षित परमविदुषी आर्यिका माताओं के नामों की सुदीर्घ श्रृंखला सम्यक्रत्नत्रय की निरन्तराय साधना में निरत हैं ।

आचार्य श्री के चातुर्मास वर्षायोग :

आचार्य श्री के चातुर्मास वर्षायोग निम्नलिखित स्थानों पर हुए हैं -

अजमेर (राजस्थान), मदनगंज-किशनगढ, नसीराबाद (उ.प्र.) ब्यावर (राजस्थान), फिरोजाबाद (उ.प्र.) कुण्डलपुर (दमोह), रेशंदीगिरी/नैनागिरि (छतरपुर) मढ़िया जी (जबलपुर) मुक्तागिरी (बैतूल) थूबोन (गुना)

भारतीय संस्कृति के उन्नायक, युगपुरुष तपस्वी आचार्य श्री के साहित्य पर शोधार्थियों ने पी.एच.डी. उपाधियाँ भी प्राप्त की हैं ।

निरञ्जन शतकम्[२८]

आचार्य प्रवर विद्यासागर जी द्वारा विरचित निरञ्जन शतकम् "सौ पद्यों में निबद्ध शतक काव्य हैं। "अञ्जन" शब्द में "निर्" उपसर्ग के संयोग से "निरञ्जन" शब्द की निष्पत्ति होती है । जिसका अर्थ है - सभी प्रकार के अञ्जन (विकारों) से पूर्णत: मुक्त आत्मा । चेतना की विशुद्धावस्था ही निरञ्जनतत्त्व है । मिथ्यात्व से रहित, निष्कलङ्क चिद्रूप परमात्म

तत्त्व ही निरञ्जन का प्रतिनिधित्व करता है । वास्तव में जो कर्मरूपी अञ्जन से पूर्णत: अलिप्त हैं, वे ही निरञ्जन कहलाने के अधिकारी हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ में अतीत, अनागत और वर्तमान की सभी निरञ्जन आत्माओं की स्तुति की गई है और वैराग्य की महिमा, भक्ति के द्वारा मोहरूपी अन्धकार का विनाश आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यों को उजागर किया गया है । भक्ति भावना से व्यक्ति तेजस्वी होता है उसके मुखमण्डल पर शांति और प्रेम की सौम्यता विराजती है उसके ज्ञान की अलौकिक बिना सूर्य की द्युति को भी मलिन करती है - ऐसे पुरुष पर आचार्य का प्रेम है -

स्पृशति ते वदनं च मनोहरं तव समं मम भाति मनोहरम् ।
समुपयोग पयो ह्यपयोग तन्ननु भवेन्नपयोऽपि पयोगतम् ।।[29]

आचार्य जी भोमादि से असंपृक्त निरञ्जन में रागद्वेषादि से रहित अपनी आस्था अभिव्यक्त करते हैं । परमात्म तत्त्व की अनेकों प्रकार से स्तुति इस ग्रन्थ में की गयी है । आचार्य जी ने सर्व शक्तिमान, असीम गरिमामय विज्ञानरूप आदि संज्ञाएँ परमात्म के लिए दी हैं -

सर्वज्ञ हो इसलिए विभु हो कहाते निस्सङ्ग हो इसलिए सुख चैन पाते ।
मैं सर्वसङ्ग तज के तुम सङ्ग से हूँ आश्चर्य ! आत्म सुखलीन अनङ्ग से हूँ ।।[30]

आचार्य श्री भावोद्गार व्यक्त करते हैं - कि हजारों सूर्य से प्रखर आप मेरे अन्त: करण में विराजमान हों आप मोक्षदाता हैं और निज में नित्यलीन हैं । इसीलिए जैसे नदी समुद्र में समाकर सुख का अनुभव करती है उसी प्रकार मेरा मन आप में समाकर हर्षित होता है -

''चरणयुगमतिदं तव मानसः सनखमौलिक एवं विमानस ।
भृशमहं विचरामि हि हंसक यदिह तत् तटके मुनि हंसकम् ।।[31]

इसी भाव से प्रेरित होकर आगे कहते हैं जड़, चेतन, वाणी, त्रिलोक आदि सबमें तुम्हारी सत्ता है मुझे आप अपनी उपासना में लीन होने का अवसर दो अत: मैंने अब प्रथम अम्बर (वस्त्र) त्याग कर दिगम्बरत्व को धारण कर मन को विभु बना लिया है । मन का मैल धो रहा हूँ जब मेरी मति स्तुति रूपी सरोवर में रहेगी तो मदाग्नि का उस पर कुछ भी असर नहीं हो सकता ।

निरञ्जन शतकम् में आचार्य प्रवर की परमात्म के प्रति गहन गम्भीर आस्था परिलक्षित भी होती है, इसी भाव से परिपूर्ण यह ग्रन्थ रोचक और लोकप्रिय बन पड़ा है । रचनाकार का मन्तव्य है कि आकाश में अपने पङ्ख फैलाकर उड़ने वाले अकेले पक्षी के समान मैं पहले आपकी स्तुति का सहारा लूँगा तत्पश्चात अपने अन्त:करण में विचरण करूँगा । आपके आश्रित रहकर ही मैं मोहादि मलों को नष्ट कर सका हूँ अब काम मेरा दुश्मन हो चुका है । कारण के सद्भावात्मक अभाव में ही कार्य की निष्पत्ति होती है। अत: मैं भी कामयुक्त कभी नहीं हो सकता । संसार के जो लोग तुम्हें वैभव, भोग आदि से पूजना चाहते हैं वे उस मूर्ख कृषक के समान हैं, जो सोने के हल से अपनी कृषि करवाता है । इस प्रकार उपरोक्त भावों से परिपूर्ण निरञ्जनशतक आ. विद्यासागर जी की श्रेष्ठ रचना है ग्रन्थ के अन्त में अनेक रूपों में निरञ्जन (ईश्वर) की स्तुति करते हुए अपने मन में हमेशा उन्हें स्थापित करने की कामना की है उसे जग सन्मार्ग दृष्टा, मृत्युञ्जयी, अक्षर आदि सम्बोधनों से विभूषित किया है । ''निरञ्जनशतकम्'' की सुधाधारा में स्नपित हो भक्त हृदय अमृतमय हो जाता है । इस ग्रन्थ के गाम्भीर्य में अवगाहन करने वालों को ही काव्यानन्द की प्राप्ति होती है।

जिस प्रकार पारसमणि में लौह को स्वर्ण बनाने की क्षमता है, उसी प्रकार प्रस्तुत शतक में भक्त को भगवान बनाने की सामर्थ्य है । इस शतक के आस्वादन से सहृदयों का हृदय भी निरञ्जनमय हो जाता है ।

परिषहजय शतकम्[३२]

पद्य साहित्य में गहन आस्था रखने वाले आचार्य प्रवर विद्यासागर जी महाराज गेय छन्दों में ही पद्य रचनाएँ करते हैं । आचार्य श्री कृत "परीषहजयशतकम् का सुधीजनों में अत्यन्त समादर हुआ है । इस कृति को आचार्य श्री ने अपने गुरु ज्ञानसागर के नाम को ध्यान में रखकर "ज्ञानोदय" नाम दिया है । "परीषहजय शतकम्" सौ पद्यों में निबद्ध शतक काव्य है । इसमें दिगम्बर जैन परम्परा में मान्य, मुनियों के क्षुधादि 22 परीषहों तथा उन पर विजय प्राप्त करने के आध्यात्मिक उपायों का काव्यात्मक विवेचन है ।

परीषह की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा :

क्षुधादि वेदनोत्पतौ कर्म निर्जरार्थं सहनं परीषहः ।
परिषहस्य जयः – परिषहजयाः ॥[३३]

अर्थात – क्षुधादि जो वेदनाएं हैं उन्हें संयत होकर सहन करना "परीषहजय" है। सवार्थसिद्धि में वर्णित 22 परीषहों के नाम अधोलिखित हैं–

क्षुत्पिपासाशीतोष्ण दंशकमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्या
निषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमल
सत्कारपुरस्कार प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥[३४]

अर्थात – क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार पुरुषस्कार, प्रज्ञान, अज्ञान और अदर्शन ।

उक्त परीषह जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं तथा जीव की शारीरिक और मानसिक पीड़ा के कारण भी जैसे भूख और प्यास जीव के परिणाम हैं । इसी प्रकार उक्त 22 परीषह भी पीड़ा के कारण हैं, आत्मकल्याण के अभिलाषी पूज्य दिगम्बर मुनि इन सब परीषहों और उपसर्गों को समतापूर्वक सहन करते हैं[35] वे कर्मों की निर्जरा करते हुए शिवपथ पर अग्रसर होते हैं – अतः इन पूज्य दिगम्बर मुद्राधारी मुनियों में आस्था करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य होता है –

परीषहजय शतकम् की विषय वस्तु

संवर मार्ग पर दृढ़ रखने वाले तथा कर्मों की निर्जरा करने वाले परीषहों में प्रथम क्षुधा परीषह है । आचार्य श्री ने ग्रन्थारम्भ में अपने इष्ट देवों के प्रति श्रद्धा समर्पित करते हुए इस काव्य ग्रन्थ की सफलता की कामना की है वे ज्ञान मेष द्वारा अमृत वर्षा करने की प्रार्थना करते हैं ।

क्षुधा परीषह तप का कारण भूत है । पहले भोगे हुए भोजन का स्मरण न करते हुए वैराग्यरस का आस्वादन करने वाले सुधीजन धैर्यपूर्वक इसे सहन करते है । उनकी आपत्तियाँ नष्ट होती हैं तथा सद्गति मिलती है । फलतः इस परीषह के साधकों की कीर्ति विस्तृत हो जाती है –

''अनघातं लघुनैति सुसंगतां संभगतां भगतां गतसंगताम्
जित परीषहकः सह को विदा, विद्वदिहाप्यध का सह कोविदाः''।

हिन्दी पद्य भी अत्यन्त रमणीय है –

स्वर्णिम, सुरभित, सुभग, सौम्यतन सुरपुर में वर सुरसुख है
उन्हें शीघ्र से मिलता शुचितम शास्वत–भास्वत शिव सुख है ।
वीतराग विज्ञान सहित जो क्षुधा परीषह सहते हैं ।
दूर पाप से हुए आप हैं बुधजन जग को कहते हैं[36]

तृषा परीषह का विश्लेषण करते हुए कहा गया हैं कि सूर्य से सन्तृप्त शरीर हो रहा है, गर्भस्थानों में भ्रमण करते है तथा उपवास और प्यास से कण्ठ सूख जाता है तथापि प्यास की बाधा पर विचार नहीं करते शरीर की ममता को पाप-ताप का कारण समझकर उसे त्याग देते हैं और समता में विश्वास करते हैं वे ही विमलात्मा तृषा परीषह धारण करते हैं, उन्हें प्यास नहीं सताती वह तो स्वप्न में लीन हो जाते हैं । यम-नियमादि धारण करने वाले ये मुनि अपने जीवन को स्वावलम्बी बना कर विषयों के प्रति आसक्ति नहीं रखते- उनके अनुसार नारकी ही तृषित होकर व्यथित बने पड़े रहते हैं । बोधमय सुधापान करने वालों को तृषा व्याप्त नहीं होती-

विमलं बोध सुधां पिबतां तृषा,
व्यथति तं न तृषा सुगताज सा.[37]

मुनि जीवन स्वीकार करने वालों को शीत परीषह का भी सामना करना पड़ता है।

शीत कालीन पवन तथा हिमपात के समय दिगम्बर मुद्राधारी कम्पायमान शरीर से युक्त होते हुए भी साधना करते हैं । नदी के तट पर रहने वाले दिगम्बर साधु शीत परिषहजय प्रशंसनीय होता है । वह विषम परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए शिवपथ पर अग्रसर रहता है । हिमपात की बाधा अपने तपस्या के महातेजस्वी अनल को प्रज्वलित करके सहता है –

विमल चेतसि पूज्ययतेः सति महति सत् तपसि ज्वलिते सति ।
किमु तदा हि बहि र्हिमपाततः सुखित–जीवनमस्यमपाः ततः ।।[38]

हिन्दी पद्य भी दर्शनीय है –

यम-दम-शम से मुनि का मान अचल हुआ है विमल रहा
महातेज हो धधक रहा है जिसमें तप का अनल महा
बाधा क्या फिर बाह्य गात पे होता हो हिमपात भरे

जीवन जिनका सुखित हुआ हम उन पद में प्रतिपाद करें वर्षाकाल में घनघोर बादलों की गर्जना, बिजली का तड़कना आदि भयोत्पादक परिस्थितियाँ इन मुनियों के सम्मुख आती हैं और उसी समय उनके धैर्य एवं गम्भीर त्याग की परीक्षा हो जाती है। उष्ण परीषह की व्यापक बाधाओं का उल्लेख करते हुए आचार्य श्री प्रतिपादित करते हैं, जब सम्पूर्ण प्राकृतिक वातावरण और जन जीवन सूर्य की प्रचण्डता और गर्म हवाओं से अस्तित्वहीन सा हो जाता है, उस विकट समय में भी मुनिजन शान्ति सुधा का पान करते हुए स्थिरता धारण करते हैं - अग्नि तुल्य शिलातल पर एकासन लगाये हुए तन-मन-वचन से उष्ण परीषह जय करते हैं ।

परीषहं कलयन् सह भावतः स हतदेहरुचिनिर्ज भावतः
परमतत्त्वविदा कलितो यतिः जयतु मे तु मनः फलतोयतिः।।[39]

तन से, मन से और वचन से उष्ण परीषह सहते हैं
निरीह तन से हो निज ध्याते वहाव ने बहते हैं
परमतत्त्व का बोध नियम से पाते यति जयशील रहे
उनकी यश गाथा गाने में निशदिन यह मन लीन रहे ।

आचार्य श्री दंशमशक परिषह का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट करते हैं -

तपश्चरण में अनेकों जीव जन्तु (बिच्छु, मच्छतर आदि) डसते हैं किन्तु दया धर्म के स्वामी ये मुनि चराचर के प्रति मैत्री भाव रखते हुए उनका प्रतिकार नहीं करते बल्कि अपना रुधिर पिलाकर उनके जीने की कामना करते हैं। दंशमशक परीषह मुनियों द्वारा मान्य है क्योंकि वे उसे सहर्ष सहन करते हैं । नाग्न्य परीषहजय आते हुए कर्मों को रोकता है- यह सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय है । ऋषिजन वस्त्रों को पाप का प्रदाता समझ कर उन्हें त्याग देते हैं और दिगम्बरत्व धारण करते हैं । मानसिक विकारों को जीत लेने से स्त्रियों को निन्द्य समझते हैं, वे संसार शरीर और भोगों से विरक्त होकर मोक्ष की अभिलाषा करते हैं - नग्नता के प्रति भाव नहीं रखते ।

अत इतो न घृणां कुरुते मनो, भुवि मुदार्षिरिदं जयतोऽमनो ।।[40]

बिना घृणा के नग्नरूप धर मुनिवर प्रमुदित रहते हैं ।
भव दुःख हारक, शिवसुखकारक, दुस्सह परिषह सहते हैं ।

नृत्य, संगीत आदि से विरहित, एकान्तवासी, सुख-दुःख के प्रति माध्यमस्थभाव धारण करना आदिनियम अरति परीषह जय में सम्मिलित है। विषयों के प्रति निरत मुनि "इन्द्रियजयी- बनकर अरति परीषहजय करते है । सड़ी-गली वस्तुओं तथा श्मशान के ग्लानिपूर्ण दृश्यों को देखकर भी वे उद्विग्न नहीं होते । विषयवासना प्रधान शास्त्रों से दूर रहते हैं । वैराग्य में पूर्ण मन लगाकर मानसिक कलुषता से ग्रस्त नहीं हो सकते यही "अरति परीषह जय है"

सुविधिना यदनेन विलीयते मनसिजा विकृतिख लीयते[41]

आगम के अनुकूल साधु हो अरति परीषह सहते हैं
कलुषित मन की भाव-प्रणाली मिटती गुरुवर कहते हैं ।

उपर्युक्त परीषहों के क्रम में विद्यासागर जी महाराज स्त्री परिषह का उद्घोष करते हैं कि तपस्वीजन ! मोह उत्पन्न होने के कारणों के विद्यमान होने पर भी निर्लिप्त रहते है।

निर्जन वन प्रदेश में स्त्रियों के हाव-भाव और सौन्दर्य से चित्त भ्रमित न हो तथा काम परास्त हो जावे इसे ही "स्त्रीपरिषह जय" कहा गया है । आचार्य श्री अभिव्यक्त करते हैं कि वनप्रदेश में निर्मुक्त भ्रमण करती हुई सौन्दर्य सम्पन्न प्रमदाएँ मुनियों के मन में काम भाव नहीं जगा सकती। वे महाभाग तो शीलवती, समतारूपी रमणी को ही वरण करते हैं। ऐसे यतियों की उग्र तपस्या का प्रभावशाली शङ्खनाद प्रस्तुत पद्य में है -

कठिन साध्य तपो गुणवृद्धये मति मलाहतये गुणवृद्धये
पदविहारिण आगमनेत्रका व्रतदयाविमदाभुव नेत्र का:[42]

इस पद्य का हिन्दी अनुवाद भी द्रष्टव्य है -
कठिन कार्य है खरतर तपना करने उन्नत तप गुण को,
पूर्ण मिटाने भव के कारण चञ्चल मन के अवगुण को ।

दयावधू को मात्र साथ ले वाहन बिन मुनिपथ चलते
आगम को ही आँख बनाये निर्मद जिनके विधि हिलते

आचार्य परिषह का परिचय इस स्थल पर मिलता है - पादत्राण रहित अर्थात् नङ्गे पैरों से पाषाण, कण्टकों आदि के चुभने से रुधिरमय होते हुए भी मार्ग का सेवन करना तथा किसी भी प्रकार के वाहन का सहारा न लेना चर्या परिषह जय है । ऋषिजन इन बाधाओं की चिन्ता न करते हुए बोधयान के यात्री बनने की आनंद लेते हैं । तत्पश्चात् तन, मन को संयत किये हुए (किसी एकान्त, निरापद, स्थान में) आसन लगाते हैं - सरिता, सागर, सरोवर के तटों पर या किसी गुण या वृक्षों की कोटर आदि में उनकी आसन रहती हीं (जिनमें वीरासन, पर्यंकासन सिंहासन, पद्मासन उत्फुटिकासन वज्रासन आदि कष्टकारक क्रियाएं उन्हें साध्य हैं तथा विविध भयोत्पादक जानवरों की आवाजों से निडर रहते हुए अन्तर्ध्यान में मग्न रहते हैं । इस प्रकार आसन परीषहजय करते हुए सुख का अनुभव करते हैं -

इह युतोप्यमुना नतिभागतः, ऋषिवरैः क्षय तत्त्व समागतः ।
दृढ़तम आसन लगा आप में होता अन्तर्धान वहीं ।
ऋषिवर भी आ उन चरणों में नमन करें गुण गान वहां ।।[43]

शय्या परीषह जय की पृष्ठभूमि निर्मित करते हुए ज्ञानोदयकार ने अभिव्यंजना की है । तपस्या को सार्थक बनाने के लिए तथा ब्रह्मचर्य व्रत की सिद्धि के लिए आलस्य और निद्रा का परित्याग करना आवश्यक होता है । ऐसा करने के लिए इच्छित भोजन त्यागना पड़ता है -

ऋषिजन शास्त्र स्वाध्याय अथवा मार्ग में चलने से उत्पन्न थकावट को दूर करने के लिए मुहूर्त व्यापिनी निद्रा लेते हैं । अर्थात कङ्कड़ काँटों से व्याप्त भूखण्ड पर रात्रि समय करवटें सावधानी पूर्वक लेकर थकावट दूर करना मुहूर्त व्यापिनी निद्रा कहा जा सकता है। इस प्रकार शय्या परीषह जय में शरीर का श्रम दूर करने के लिए अवसर है, सोने के लिए नहीं। वैसे शयन परिषह जय करने वाले को निद्रा आ ही नहीं सकती।

सममयच्च मुनेश्छयनं हितं, शयनमेवमटेच्छयनं हि तत् ।
यथा समय जो शयन परीषह तन रति तजकर सहता है,
निद्रा को ही निद्रा आवे मुनि मन जाग्रत रहता है ।[44]

मुनिमार्ग के पथिक हुए मनस्तियों के समक्ष आक्रोश परीषह भी उपस्थित होता है। मिथ्याचारी समझकर दुष्टजन अनादर एवं तिरस्कारपूर्ण अपशब्दों का प्रयोग ऋषियों के लिए करते हैं परन्तु उनका प्रतिकार करने में तत्काल समर्थ होने पर भी जो अपशब्दों पर विचार नहीं करते अर्थात् दूसरों के कठोर अपशब्दों को सुनकर भी क्रोधित नहीं होती वहीं आक्रोश परिषह को जीतते हैं । इस प्रकार तप के अनुष्ठान में संलग्न तथा आत्मशुद्धि को करने वाला आक्रोश परिषहजयी कहा जाता है । दूसरों के द्वारा निन्दा किये जाने से मुनियों की उज्ज्वलता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वे उस ओर ध्यान ही नहीं देते -

कटुक-कर्कशकर्णशुभेतरं प्रकलयन् स इहा सुलभेतरम्
वचनकं विभुधत्विव विश्रुतिः बलयुतोप्यबलश्च भुवि श्रुतिः

हिन्दी अनुवाद-क्रोधजनक है कठोर, कर्कश, कण कटुक कछु वचन मिले
निहार बेला में सुनने को अपने पथ पर श्रमण चले सुनते भी पर बधिर हुए से आना-कानी कर जाते सहते हैं आक्रोश परीषह अबल, सबल होकर भाते-[45]

कभी कभी तो असभ्य और अज्ञानी जनों के द्वारा उपहास करके साधुओं को परेशान भी किया जाता है किन्तु समता के धारक मुनिजन उन पर रुष्ट नहीं होते तथा चक्र, कृपाण, धनुष, दण्ड मुद्गर आदि से पीटे जाने पर भी जो मारने वालों के प्रति रोष भी नहीं करते तथा पूर्वजन्म के पाप कर्मों का फल समझकर पीड़ित होते रहते हैं क्योंकि वे आत्मा को अमर मानते हैं और शरीर को क्षणभङ्गुर इस हालत में मृत्यु हो जाने को वध परीषह कहते है । उसे सहन करना समदर्शी महर्षि अपना कर्तव्य समझते हैं, काया के प्रति उनकी यह धारणा रहती है - ''समतत: क्षतिरस्ति न काचन चरण बोदकशो ध्रुवकाश्चन'' इसका यदि बध हो तो हो पर इससे मेरा नाश कहाँ ?

बोध धाम हूँ चरण सदन हूँ दर्शन का अवकाश यहां[46]

आचार्य प्रवर याञ्चा (याचना) परीषह का प्रतिपादन करते हुए अभिव्यञ्जित करते हैं । तप में संलग्न जिनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया है, क्षुधा से सन्तप्त होने पर भी जो आहार तथा औषध आदि की कहीं याचना नहीं करते-वे चर्या (विहार) करने पर भी उपवास ही धारण किये रहते हैं । उन्हीं के द्वारा याचना परीषहजय प्रशस्त और प्रशंसनीय है ।

व्रजति चैव मुनिर्मृगराजतां, जिनपरीषहक: मुनिराजताम्
यदि न चेल्लघुतामुपहासतां, सुगत एव मतो शुभ हा सताम्

याञ्चा परीषह विजयी मुनिवर-समाज में मुनिराज बने,
स्वाभिमान से मण्डित जिसविध हो वन में मृगराज तने ।
याञ्जा विरहित यदि ना बनता जीवन का उपहास हुआ,
विरत हुआ पर बुध कहते वह गुरुता का सब नाश हुआ[47]

आचार्य विद्यासागर जी अलाभ परीषह का उज्ज्वल विश्लेषण करते हैं । और उसके महत्त्व का भी प्रतिपादन करते हैं -

अलाभ परीषह का स्वरूप प्रस्तुत है - वायु के सदृश निस्सङ्ग तथा विविध देशों में विचरण करने वाले और आहार के लिए किसी के घर बार-बार न जाने वाले साधु उसे धारण करते हैं । वे दिन में एक बार कर युगल रूपी पात्र में ही अल्प भोजन ग्रहण करते हैं और बहुत दिनों तक शिक्षा न मिलने की स्थिति में दु:खी नहीं होते ऐसे महापुरुषों द्वारा सेवित समस्त कर्मों की निर्जरा करने वाला ''अलाभ'' परीषह जय'' है । उपर्युक्त आचार सम्पन्न मुनि सद्गुणों से परिपूर्ण चिन्तन मग्नता सभी रसों के प्रति असम्पृक्त रहते हैं । लेकिन उनके मुख की कान्ति देदीप्यमान रहती है ।

आचार्य श्री ने परीषहों को सहने के प्रति अपनी तल्लीनता और अनुभव दर्शाया है। मुनि जीवन में आने वाले अवरोधों का सामना स्वयं ग्रन्थकार ने किया है, इसलिए परीषह जयशतकम् की मौलिकता निर्विवाद ही है ।

परीषह के मनोवैज्ञानिक पक्षों का उद्घाटन करते हुए उसी क्रम रोग परीषह का विवेचन कर रहे हैं ।

अनेक स्थानों पर विचरण करने से जलवायु की भिन्नता का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है, इसी निमित्त (कारण) वातादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं । लेकिन ऋषिजन औषधियाँ रहते हुए भी शरीर के प्रति मोह नहीं करते और उन्हें ग्रहण नहीं करते तथा राजा का प्रतिकार नहीं करते । इस तरह धैर्य और सामर्थ्य से वे रोग परिषहको जीतते हैं । मुनि रोगों पर विजय पाने

में आत्मसुख का अनुभव करते हैं - वे उसे कर्मों का फल मानकर एवं शरीर को नश्वर समझकर दयालुता पूर्वक सहते हैं - इसी भाव को प्रस्तुत पद्य में अभिव्यक्त किया है -

विधिदलाः कटु दुःख–करामया बहव आहु रपीह निरामयाः ।
अशुचि–धामनि चैव निसर्गतः क्षरणमेव विधेरुपसर्गतः ॥[48]

हिन्दी पद्य -

सभी तरह के रोगों से जो मुक्त हुए हैं बता रहे,
कर्मों के ये फल हैं सारे, सारे जग को सता रहे ।
रोगों का ही मन्दिर तन है, अन्तर कितने पता नहीं,
हृदय रोग का कर्म मिटाता ज्ञानी को कुछ व्यथा नहीं ॥

आचार्य प्रवर ने मुनियों की श्राङ्गारिक वस्तुओं के प्रति उदासीनता निरुपित की है। वह गम्भीर परिस्थितियों में औषधि भी ले सकता है । इस प्रकार विविध परीषहों का समीचीन अनुशीलन करने के पश्चात् हमें विदित होता है कि मुनियों का समग्र जीवन कठिन परिस्थितियों (कष्टों-विषमताओं) और सङ्घर्षों से परिपूर्ण है, क्योंकि सांसारिकता के प्रति उदासीन वृत्ति, रोगों से अनासक्ति रखना तथा शरीरिक वेदना निरन्तर सहना सहज नहीं है, किन्तु साधनापथ के पथिक बनने के उपरान्त एक अलौकिक आनन्द का अनुभव होने लगता है, जिससे सांसारिक बाधाएँ व्याप्त नहीं हो पाती ।

ज्ञानोदयकार परीषहजयों के क्रम में तृणादि स्पर्श परिषह जय का सैद्धान्तिक अस्तित्व प्रकट करते हैं । तदनुसार छोटे-छोटे कङ्कण, मिट्टी, काष्ठ तृण, कण्टक और शूल आदि के द्वारा चरण युगल के घायल हो जाने पर उस और जिनका चित्त आसक्ति नहीं रखता तथा जो चर्या, शय्या और निषद्या में अपनी पीड़ा का परिहार करते हैं । मुनि के इस आचार विचार को तृणादि स्पर्श परिषहजन्य माना गया है - इन्हीं भावों से ओत-प्रोत यह पद्य दृष्टव्य है -

यदि तृणं पदयोश्च निरन्तरं, तुदति लाति गतौ मुनिरन्तरम् ।
तदुदितं व्यसनं सहतेजसाहमपि सच्चासहे मतितेजसा ॥

तृण कण्टक पद में वह पीड़ा सतत दे रहे दुखकर हैं,
गति में अन्तर तभी आ रहा रुक-रुक चलते मुनिवर हैं ।
उस दुसस्सह वेदन को सहते-सहते रहते शान्त सदा
उसी भाँति में सहूँ परीषह शक्ति मिले, शिव शान्ति सुधा ।[49]

आचार्य श्री ने मल परीषह का चित्रण अत्यन्त सरसता और भावुकता के साथ अपनी कर्तृत्वपूर्ण शैली में किया है - मल परीषह का सामान्य परिचय इस प्रकार है- सूर्य के संताप से उत्पन्न वेद बिन्दुओं से और धूलि के जम जाने से ऋषियों के शरीर में खाज आदि होते हैं किन्तु शरीर के प्रति निर्मोह रखने के कारण स्नानादि नहीं करते वे तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आदि गुण रूपी शीतल जल में अवगाहन करके कर्मरूपी कीचड़ को दूर करने के लिए दत्तचित्त रहते हैं, ऐसे मुनि ही मल परीषह जय करते हैं । उपर्युक्त भाव से परिपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत है -

कलपनाङ्गज़रज्जि – देहकः सहरजो मलको गतदेहकः ।
मल परीषहजित स्वसुधारकः विरस–पादय–भाव सुधारकः ॥

हिन्दी पद्य -

तपन ताप से तप्त हुआ तन स्वेद कणों से रंजित है
रज कण आकर चिपके फलतः स्नान बिना मल संचित है
मल परीषह तब साधु सह वहा सुधापान सह सतत करें
नीरस तक सम तन है जिसका हम सबका सब दुरित हरें[50]

आचार्य जी स्पष्ट करते हैं कि इस मल से प्यार करना व्यर्थ है, जो इसमें लगाव रखते हैं - वे रागी और भोगी कहलाते हैं । साधुजन तन को नीरस वृक्ष के समान समझकर मल परित्याग करते हैं इसीलिए विकार रहित और व्रती होते हैं । परिभव परीषह जय का प्रतिपादन और उसकी व्यापकता का मनोवैज्ञानिक विश्वलेषण भी हुआ है । ब्रह्मचर्ययुक्त जो ऋषिजन अपने आशंसकों और निन्दकों के प्रति समान भाव रखते हैं । आत्मस्तुति सुनकर भी जिनका मन मान-मद से कलुषित नहीं होता तथा वन्दित न होने पर मन में कोई हीन भावना नहीं लाते-वे ही बुधजन परिभव परीषह जय करते हैं । उनका मन्तव्य है छोटे-बड़े जीवों के प्रति समानता और मान-अपमान से उदासीन रहना । इस प्रकार अपने मन को कलुषित नहीं होने देते सदैव पवित्र बनाये रहते हैं । प्रस्तुत पद्य में इसी तथ्य का समावेश हुआ है -

जगति सत्वदलः सकलश्चलः परिमलो विकलः सकलोचलः ।
समगुणैर्भरितो मत आर्यक गुरुरयं सलघु र्न्ववधार्यते ॥

हिन्दी पद्य -

अमल समल है सकल जीव ये, ऊपर भीतर से प्यारे,
अगणित गुणगण से पूरित सब ''समान'' शीतल शुचि सारे
मैं गुरु तूँ लघु फिर क्या बचता परिभव-परिषह बुध सहे,
आर्य देव अनिवार्य यही तव मत गहते सुख से रहते 1[51]
परिभव परीषह को सत्कार पुरस्कार परीषहजय भी कहा गया है ।

ऐसे मुनिवर श्रुत के मर्मज्ञ होते हैं सरस्वती उनके मुख में निवास करती है । शास्त्र रूपी सागर का मन्थन करने वाले वे तो व्याकरण तथा न्याय आदि शास्त्रों के ज्ञाता होते हैं और तप करने में समर्थ हैं । उन्हें कदापि अहङ्कार उत्पन्न ही नहीं होता बल्कि वे विनम्र बने रहते हैं । इस प्रकार मानरहित, स्वार्थहीन होकर अपनी रसमयी वाणी का सांसारिक प्राणियों को आस्वादन कराने वाले वे प्रज्ञा (ज्ञान) परीषह जय करते हैं । ये महापुरुष जिनश्रुत के अनुवादक (करने वाले) और स्याद्वाद के व्याख्याकार होते हैं तथापि पूर्ण ज्ञानप्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं विनम्रभाव धारण करते हुए ज्ञान परीषह सहन कर रहे साधुओं के प्रति आचार्य प्रवर की सहानुभूति द्रष्टव्य है -

स्वसमयस्य सतोप्यनुवादकः समयमुक्तितयाजितवादकः।
परिवेदन्न मुनिर्मनसाक्षर मसिनिरक्षर एष तु साक्षरः ॥

हिन्दी पद्य -

अवलोकन-अवलोड़न करते जिनश्रुत के अनुवादक हैं
वादीजन को स्याद्वाद से जीते पथ प्रतिपादक हैं ।
ज्ञानपरीषह सहते सुख से कभी न कहते हम ज्ञानी
ज्ञान कहाँ है तुम में इतना महा अधम हो अज्ञानी[52] ॥

आचार्य श्री विद्यासागर जी अज्ञान परीषह का अस्तित्व और प्रभाव समझाते हुए मुनि जीवन में उसे सहन करने की प्रेरणा भी प्रदान करते हैं ।

यह अज्ञानी है, पशुवत् है, कुछ भी नहीं जानता इत्यादि अपमान युक्त वचन निरन्तर सहज करते हुए जिसको मानसिक क्लेश भी उत्पन्न नहीं होता, उस तपस्वी साधु के इस गाम्भीर्य को अज्ञान परीषह जय कहा गया है ।

ग्रन्थकार का मन्तव्य है कि साधुजन मन का मैल धोने के लिए और अक्षय सुख (चरम सुख) पाने के लिए अज्ञान परीषह सहते हैं और साधुत्व को सार्थक बनाते हैं। अज्ञान परीषह जय करने की प्रेरणा प्रदान करते हुए ग्रन्थकार अभिव्यक्त करता है -

''परिषहोस्तु निजानुभविश्रुतं, ह्यपमितं शिवदं बुधविश्रुतम्
बहुतरं तु तृण सहसाप्यलं, दहति चाग्निकणी भुवि साप्यलम्[53]

सदो सदा अज्ञान परीषह नियोग है यह शिव मिलता,
अल्पज्ञान पर्याप्त रहा यदि निज अनुभवता भव टलता
बहुत दिनों का पड़ा हुआ है सुमेरुसम तृणढेर रहा,
एक अनल की कर्णिका से बात ! जल मिटता क्षण देर रहा ।

जैन नियमों से प्रभावित मुनि इन्द्रिय जन्य सुखों से वंचित रहता है और निर्वाण सुख की प्राप्ति के लिए अदर्शन परीषह को धैर्यतापूर्वक सहता है । अपने वैराग्य, धर्म, तप, दीक्षा और महिमा के संबध में जो अहंकार वृत्ति या अभिमान का भाव पल्लवित नहीं होने देते तथा सम्यग्दर्शन की महिमा के योग से निर्मल हृदय होते हैं वे ही अदर्शन परीषह जय करते हैं । आचार्य श्री ने उद्घोष किया है - ऐसे यतियों का जीवन जिनमत की उन्नति के लिए समर्पित रहा है -

जिनमतोन्नति–तत्पर–जीवनं, विमल दर्शनवत् यतिजीवनम् ।
भवतु वृत्तवतां खलु वार्पितः परिजयोस्तु यदेष समर्पितः[54] ।।

ऋषिजन-पदपूजन, सम्पत्ति, विपत्ति, निन्दा, स्तुति, अपयश आदि से अप्रभावित रहते हुए दुस्सह सभी परीषहों को सहन करने में सक्षम होते हैं । परीषह-जय के बिना उनकी तपस्या सफल नहीं मानी जा सकती।

उपर्युक्त विविध परीषहों का भावपूर्ण काव्यमयी, पृष्ठभूमि में चित्रण किया है। ग्रन्थ के अन्त में आचार्य श्री आत्मा का अवलोकन करने की अपनी दीर्घ कालीन अभिलाषा प्रकट करते हैं तथा ऐश्वर्य से प्राप्त सुखों के प्रति विरक्ति प्रदर्शित करते हैं वे तन-मन-वचन से अविद्या को परित्यक्त करने का सङ्कल्प लेते के पश्चात् कहते हैं - ''ज्ञानसिन्धु को मथकर पीऊँ समरस विद्या प्याला है'' ।[55]

जैन सिद्धान्त के अनुसार शान्ति परिषह और उष्ण परिषह ये दोनों एक समय में नहीं होते अर्थात् इनमें से एक ही एक काल में हो सकता है । इसी प्रकार चर्या शय्या, निषद्या इन तीनों में से एक समय में एक ही होता है । इस प्रकार (शीत, उष्ण में से एक परीषह शेष बचता है और चर्या, शय्या निषधा में से 2 शेष बचते हैं ये शेष बचे हुए तीन परीषह कम हो जाने से उन्नीस परीषह एक समय में मुनियों के हो सकते हैं, इससे अधिक नहीं यहाँ पर यह आशय निकलता है कि एक साथ एक ही समय में एक मनुष्य (ऋषि) के एक से लेकर उन्नीस परीषह तक हो सकते हैं। अतः मुनि जीवन के परीषहों की समीचीन

रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए आचार्य प्रवर उन सभी का अपने जीवन में अपनाकर तपस्या को सार्थक (सोद्देश्य) करना चाहते हैं - सन्दर्भवश प्रस्तुत पद्य उपस्थित हुआ है -

दशपरीषहकाश्च नवाधिका, इति भवन्तु समं विधिबाधकाः ।
द्व्यधिक विंशतिका जिन सेविता मम नु सान्त्वखिला स्तपसे हिताः ॥

हिन्दी पद्य -

एक साथ उन्नीस परीषह मुनि जीवन में हो सकते,
समता से यदि सहो साधु हो विधिमल पल में धो सकते ।
सन्त साधुओं तीर्थंकरों ने सहे परीषह सिद्ध हुए,
सहूँ निरन्तर उन्नत तप हो समझूँ निज गुण शुद्ध हुए ।[56]

ज्ञानोदय शीर्षक से प्रकाशित परीषहजय शतक ग्रन्थ के अन्त में संस्कृत पद्यों में सम्पन्न मङ्गल कामना ग्रन्थकार के उदार हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति है । उन्होंने साधुता की समाज में आदर बढ़ने और प्रजा में शान्ति स्थापित किये जाने की आवश्यकता पर बल दिया है एवं समाज में "परिषहजय शतक के सफल होने की कामना की है-

विद्याब्धिना सुशिष्येन ज्ञानोदधे रत्नङ्कृतम् ।
रसेणाध्यात्मपूर्णेन शतकं शिवदं शुभम्[57] ॥

ज्ञानोदयकार ने ग्रन्थ रचना के स्थान और समय का परिचय देकर भी सम्पूर्ण तथ्यों के प्रति उदारता ही व्यक्त की है -

श्री कुण्डलगिरौ[58] क्षेत्रे भव्यैजनैः सुसेविते ।
हरिणनदकूलस्थे भवाब्धिकूलदर्शिनि ॥
याम व्योमाक्षगन्धे दो वीरे संवत्सरे शुभे ।
फाल्गुन-पूर्णिमामीत्वे तीमामितिं मितिंगतम्[59] ॥

गुरु स्मृति के माध्यम से आचार्य कुन्द कुन्द का स्मरण करते हुए अपने गुरुवर आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज से आशीष पाने की प्रार्थना की है ।

हिन्दी पद्यों में प्रस्तुत मङ्गल कामना के अन्तर्गत अभिव्यञ्जित करते हैं कि मानव शरीर प्राप्त कर विषय सुखों को विष के समान मौत का कारण जानना चाहिये तथा तप के द्वारा कर्मों का नाश कर देना उपयुक्त है । तत्पश्चात् मोक्ष मार्ग पर चलो, जिससे दुःखों का अन्त हो सके ।

इस प्रकार "परिषहजय शतकम्" में मुनिमार्ग के कष्टों और उन पर स्वामित्व रखने वाले यतियों की साधना का भावपूर्ण निदर्शन है । यह ग्रन्थ मुनि जीवन के आधारभूत तथ्यों का प्रकाशक है और सामाजिक मर्यादा, शील, आचार-विचारादि की प्रेरणा प्रदान करता है।

सुनीति शतक[60]

सुनीति शतक सौ पद्यों में निबद्ध काव्य है । सुन्दर नीतियों का संग्रह होने से सुनीति शतक नाम सार्थक है । संसार में रोग, शोक और पापों की निवृत्ति हेतु इसका प्रणयन किया गया है ।

अनुशीलन - आचार्य प्रवर का मन्तव्य है कि मुनियों का मुनित्व उनके कुल, वर्णादि के कारण मलिन नहीं होता कृष्ण वर्ण की गाय से धवल दुग्ध ही निकलता है । कलियुग

के प्रभाव के कारण जो लोग मान पाने की आकांक्षा से धन और ज्ञान का दान करते हैं, वे धर्म से दूर हो जाते हैं -

धनी तु मानाय धनं ददाति, धनाय मानाय धियं तु श्रीमान् ।
प्रायः प्रभावोस्तु कलेः किलायं दूरोस्तु धर्मो नियमाच्च ताभ्याम्[61] ॥

गृहस्थ के लिए पूर्ण वैराग्य की साधना असम्भव है । तीवरागता का पूर्ण अनुभव जो तन से मुक्त हो जाते हैं, वे ही विभाव से पूर्णतः मुक्त होते हैं । और स्वभाव से मुक्ति के अधिकारी हो जाते हैं । आचार्य श्री का तर्क है कि शृंगार रस कवियों की कल्पना में श्रेष्ठ है पर आध्यात्मिक उन्नति के लिए शान्त रस की शरण लेना अनिवार्य है ।

जिस प्रकार पवन के तीव्र वेग की स्थिति में मयूर का पुच्छभार गमन में बाधक बनता है, उसी प्रकार मुनि मार्ग के अनुयायियों के लिए अणुमात्र का परिग्रह भी विध्नकारक है ।

रचनाकार स्वतः अपने को अहंकार से पूर्णतः विरत रहने को संकल्पित हैं । पाप से पाप मिट नहीं सकता वह तो पुण्य से ही मिटता है - मल युक्त वस्क्ष मल से नहीं जल से ही धुलता है -

पापेन पापं न लयं प्रयाति पुनस्तु पुण्यं पुरुषं पुनातु ।
मलं मलेनालमलं त्वयं कृत बिना विलम्बेन जलेन याति ।।[62]

अतः मन को हमेशा पापादि से विरत रखना चाहिये ।

संसार में अभयदान की महत्ता सर्वोपरि है - विनम्रता पूर्वक दिया गया दान श्रेष्ठ है, जिस गुरु के शिष्यों में आपसी वैरभाव हो, वह उसी प्रकार चिन्तित रहता है, जिस प्रकार दो-दो पत्नियों वाला गृहस्थ मन के प्रतिकूल विचारों वाली स्त्रियों से दुःखित होता है ।

सम्पूर्ण स्वर्ग, मणि, सम्पत्ति को त्यागने बाद भी उनमें मन लगाने वाले की स्थिति कांचली त्यागने पर भी जहर धारण करने वाले सर्प के समान है ।

सभी सुखों में आत्मिक सुख उत्तम है । गतियों में पञ्चम गति उत्तम है । सभी ज्ञानों में ज्ञान-ज्योति ही सुखद है । आचार्य श्री का मन्तव्य है कि मति के अनुसार गति और गति के अनुसार मति का नियम शाश्वत है । श्वान अपने उपकार के प्रति कृतज्ञ होता है, वह अत्यल्प निद्रावान भी है परन्तु स्वजाति से विद्वेष रखता है - यह विधि की विडम्बना ही है ।

सम्पूर्ण शास्त्र शब्दों के पात्र हैं और मानव गात्र मल का पात्र है इसलिए इसे शुचिता का पात्र बनाओ ।

इस प्रकार "सुनीतिशतक" सुनीतियों का सुन्दर संग्रह है ।

श्रमण शतकम्[63]

श्रमण शतकम् "शतक काव्य" है ।

आकार - श्रमण शतकम् सौ पद्यों में निबद्ध है ।

नामकरण - इस कृति का नामकरण "श्रमण शतकम् इसलिये किया गया है, क्योंकि इसमें दिगम्बर जैन श्रमणों की चर्या का विवेचन हुआ है।

श्रम+युच्=श्रमण । श्रम=तपस्या, ''श्रमेण युक्तः श्रमणः''

अर्थात् तपस्या से युक्त अथवा समताभाव से परिपूर्ण (हृदय) श्रमण होता है । अतः प्रस्तुत शतक का नामकरण सर्वथा उपयुक्त है । शतककार ने श्रमणों के हितार्थ यह कृति उन्हीं को समर्पित की है और शुद्धात्म की कामना भी की है ।

विषय वस्तु - श्रमणों की जीवन चर्या पर प्रकाश डाला गया है - ''श्रमण स्वभाव से ही मान-अपमान से परे अपने चित्सरोवर में अवगाहन करके आनन्दानुभूति करता है । वह पाप-पुण्य के प्रति उदासीन शुभाशुभ कर्मों से विरत होकर विशुद्ध परिणति के लिए प्रयत्नशील रहता है । वह वस्त्रादि अलङ्करणों से दूर तपश्चरणपूर्वक निजानुभव से दीप्त होता है । क्षुधादि परीषहों को जीतकर वीतरागोन्मुखी होता है । सच्चा योगी बाह्य परिग्रहादि से दूर रहता है और आत्म द्रष्टा होता है । अपनी समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्वत करने वाला ही सच्चा यती है -

''यो हीन्द्रियाणि जयति विश्वयत्नेन स ज्ञायते यतिः
मुनिरयं तं कलयति शुद्धात्मानं च ततोऽयति[64]

यति रागादिभावों से परे रहकर ज्ञानीमुनीश्वर से सम्पर्क रखता है ।

मुमुक्षुसाधक संसार में रहकर उससे विरत रहता है । वह चेतन मन को तन से भिन्न समझता है और तन में कोई आसक्ति नहीं रखता तथा तन के मद से सर्वथा दूर रहकर मोक्ष पक्ष पर अपने मन को अग्रसर करता है । संसार में यदि कोई सार है तो वह समयसार ही है और यही मुक्ति का साधन है । ज्ञान आत्मा का स्वाभाविक धर्म है । महाश्रमण दशधर्मों का पालन करते हैं । सच्चे साधक यश कीर्ति के आकाँक्षी नहीं होते वे सोचते हैं - निजामृत पान में जो आनन्द है, वह बाह्य पदार्थों में कैसे प्राप्त हो सकता है । इसीलिए मुमुक्षु साधक भावश्रुत का ही आश्रय लेकर निजानुभूति का रसास्वादन करता है । सच्चा साधक अनन्तबल, अनन्तसुख की कामना करते हैं - केवल बाह्य दिगम्बरत्व मोक्ष का हेतु नहीं होता, इसके लिए मुनि को मन, वचन, काय से पवित्र रहकर समता रूपी सुधा का सेवन करना है - यह भव्य की प्रथम पहचान भी है । सप्त तत्त्वों के चिन्तन से ही आत्मानुभूति का निर्झर प्रवाहित होता है । अतः साधक को निरन्तर चिन्तनरत होना चाहिये ।

न मनोऽन्यत् सदा नयदृशा सह तत्त्वसप्तकं सदानय ।
यदि न त्रासदाऽनयः पन्थास्ते स्वरसदा नयः ।[65]

उपर्युक्त विवेचन से युक्त श्रमणशतकम् श्रमणों के जीवनादर्शों से परिपूर्ण रचना है और उन्हीं के हितार्थ समर्पित की गई है ।

भावनाशतकम्[66]

जिनवाणी माता के भण्डार का अमूल्य रत्न आचार्य विद्यासागर जी द्वारा रचित ''भावनाशतकम्'' है । यह सौ पद्यों में निबद्ध आध्यात्मिक काव्य है । जैन साहित्य में विख्यात, तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध की कारणभूत सोलह भावनाओं का विवेचन होने के कारण इस शतक का नाम ''भावना शतकम्'' है ।

''भावना'' शब्द का अर्थ है ''ऐसा चिन्तन जो तीर्थंकरत्व की भूमिका का निर्माण करता है ।[67]

जिन षोडश कारण भावनाओं से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है, उनका उल्लेख जैन-दर्शन के मूर्धन्य आचार्य उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थ सूत्र में किया है -

""दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतेष्वनती-
चारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौशक्तितस्त्याग-
तपसीसाधुसमाधिवैयावृत्यकरणमर्हदाचार्य
बहुश्रुत-प्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिमार्ग
प्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य[68] ॥

उपर्युक्त षोडश कारण भावनाओं के सतत चिन्तन से तीर्थंकरत्व की प्राप्ति संभव है ॥ प्रस्तुत रचना में आध्यात्मिक काव्य का आश्रय लेकर आचार्य श्री इन्हीं सोलह भावनाओं का काव्यात्मक विवेचन किया है ॥ किन्तु आचार्य श्री कहीं-कहीं नाम परिवर्तित भी किये हैं- शास्त्रकार द्वारा निर्दिष्ट भावनाओं के नाम इस प्रकार हैं - निर्मल दृष्टि, विनयावनति, सुशीलता,, निस्तर ज्ञानोपयोग,, संवेग,, त्यागवृत्ति सन्ताप, साधु समाधि सुधा साधन, वैयावृत्य, अर्हद्भक्ति,, आचार्य स्तुति,, शिक्षा गुरु स्तुति,, भागवता भारती भक्ति, विमलावश्यक, धर्म-प्रभावना और वत्सलता ॥

भावनाशतकम् के चतुर्थपद्य से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ज्ञान के द्वारा काम का नाश करने, परमात्मा के प्रति भक्ति भाव तथा भव्य जीवों के हृदयों में उक्त भावनाओं के चिन्तवन की अभिरुचि जाग्रत करने एवं परोपकार्य जैसे महनीय उद्देश्यों को लेकर ही इस कृति का प्रणयन किया गया है ॥

अनुशीलन - ""दर्शन विशुद्धि"" मुमुक्षु साधक के लिए मुक्ति का प्रवेश द्वार है। शुद्ध दर्शन दर्पण के समान स्वच्छ होता है उसे ""सम्यग्दर्शन"" भी कहते हैं। करणादि भाव चन्द्रक्रान्ति के समान ऊज्ज्वल हैं ॥ मोहादि सत्पथ पर अग्रसर होने में अवरोधक हैं ।

मोह रूपी शत्रु को नष्ट करने वाले, संयमी, परम तपस्वी, दिव्यालोक प्रदान करते हैं ॥

""विनयशीलता"" से मान का मर्दन होता है, आत्मा की विशुद्धि के लिए विनयावनति परमावश्यक है ॥ योगी और विद्वान सभी इसका आश्रय लेते हैं - अविनयी संसार सागर में डूबा जाते हैं ॥

कामसम्पन्न संसार दुःख से परिपूर्ण है ॥ इसका परित्याग करने वाला सिद्ध योगी होता है और मोक्षगामी होता है ॥ निरन्तर ज्ञानोपयोग पर बल देते हुए कहते हैं मेरा मन ज्ञानयुक्त हो ज्ञानोपयोग मेरा मित्र बन जावे इससे पीड़ा का अन्त हो जायेगा-ज्ञान दीप की महत्ता द्रष्टव्य है ॥

ज्ञानरूपी करे दीपोऽमनोऽचलो यतेऽस्तव ।
सन्तरूपी हरेऽपापो जिनोऽवलोक्यते-स्वयम् ॥[69]

संवेग दुर्गति कर्म आस्रवादियों को नष्ट करता है सांसारिक बन्धनों को हटाता है- संवेग से सम्यक्त्व सुशोभित होता है ॥ दुःखों से छुटकारा पाने के लिए त्याग भावना अनिवार्य है ॥ इसीलिए मैं भी वीतरागी होकर मन को संयमित रखता हूँ तथा सत्य के रहस्य का आकांक्षी हूँ ॥

"संतप" से शुद्धात्म की प्राप्ति होती है महाव्रतों का पालन करने वाले, आतापनादि तप से शरीर को दग्ध करने वाले योगी आत्मजयी अहिंसक होते हैं ॥ तप, तृष्णा का नाशक है । इससे सम्यक्त्व बोध होता है ॥

साधु की समाधि करने का मुख्य लक्ष्य संसार से मुक्त होना है ॥ साधी चेतना मुक्ति के अभिलाषी होते हैं । ज्ञान और वैराग्य की दिव्य ज्योति जाग्रत करने वाला मुनि ही समाधिस्थ होता है । हम कह सकते हैं कि साधुओं का रत्नत्रय में अवस्थित होना ही "साधु समाधि सुधा साधन है "

परोपकार में दत्तचित्त होना और साधुओं की सेवा शुश्रूषा करना "वैयावृत्य" है ॥

वर्तमान, भूत, भविष्य संबंधी जो गतागत भाव हैं–वे शुद्धात्म के द्वारा ज्ञानियों को निरत हैं । जितेन्द्रिय, निरंजन, जितकाम, निर्मोही और घातिया कर्मों को नष्ट करने वाले अर्हन्त में श्रद्धा रखना, अनुरक्त होना" अर्हन्तभक्ति" है ॥ अतः आदिनाथ की स्तुति करना ही श्रेयस्कर है ।

आचार्य सबको समान रूप से अमृतपान कराता है ॥ वह अज्ञानान्धकार को दिव्यज्ञान के अञ्जन से नेत्रों को प्रकाशित करता है ॥

"आचार्यस्य सदा भक्तिः भवत्याः हृियेः करोम्यि ताम् ॥
आचार्यस्य मुदाशक्तिः युक्त्याः व्यक्तेः गुणोऽम्यिताम् ॥[70]

आचार्य प्रवर का मन्तव्य है – कि आत्मज्ञान कराने वाले गांभीर, धैर्यवान, सर्वज्ञ, भवपीड़ा नाशक, कल्याणपथ पारगामी, शिक्षागुरु की संस्तुत्य हैं ॥

ज्ञान प्राप्ति और चेतना जागृति के लिए जिनागम रूपी सुधा का पान सदैव करना चाहिए। शुद्धात्मवान साधु आगम को समझकर, कल्याणपथ पर प्रशस्त होता है और केवल ज्ञान प्राप्त करता है । इस प्रकार श्रद्धापूर्वक आगम का ज्ञाता सांसारिक भ्रमण को त्यागा देता है ॥

हृदय की दुर्वेदना "विमलावश्यक" से दूर होती है – संवेदना जाग्रत हो जाती है, अतः प्रतिक्रमण को धारण करना चाहिए सांसारिक विषयों में प्रवृत्ति न करते हुए निजानुभव जागृति की प्रेरणा सद्धर्म प्रभावना है। रोगी दुःखी, निर्धन, असहाय के प्रति सहानुभूति रखने से उनके कष्टों का निवारण करने से सद्भावना प्रस्फुटित होती है– संसार सागर को पार करने के लिये धर्म के सहारे से ही मोक्ष रूपी द्वारा साफल्यता संभव है –

संसारागाध पीठानां करमाज्जितदेहिनाम् ॥
दासानगारपालानां सारसाज्जिः सद्हिनाम् ॥[71]

हृदय में वात्सल्य भाव के आते ही क्रूर भावनाएँ नष्ट हो जाती हैं–वात्सल्य की विमलता एवं प्रभा से सम्पूर्ण लोक दैदीप्यमान होते हैं–त्रैलोक्य पूज्य जिनदेव में वात्सल्यभाव की प्रधानता थी इसीलिए उनके प्रवचनों में विश्ववन्द्यत्व और मैत्री का उपदेश समाहित होता था ॥

इस प्रकार भावनाशतक में उक्त सोलह भावनाओं का सजीव सरस काव्यात्मक विश्लेषण है ।

मूकमाटी महाकाव्य[72]

दिगम्बर जैन संत आचार्यप्रवर विद्यासागर जी द्वारा "मूकमाटी" महाकाव्य" का सृजन

आधुनिक भारतीय साहित्य की एक उल्लेखनीय उपलब्धि है । सबसे पहली बात तो यह है कि माटी जैसी अकिंचन, पद दलित और तुच्छ वस्तु को महाकाव्य का विषय बनाने की कल्पना ही नितान्त अनोखी है । दूसरी बात यह है कि माटी की तुच्छता में चरम भव्यता के दर्शन करके उसकी विशुद्धता के उपक्रम को मुक्ति की मंगल यात्रा के रूपक में ढालना कविता को अध्यात्म के साथ अभेद की स्थिति में पहुँचाना है। इसीलिए मूकमाटी महाकाव्य मात्र कविकर्म नहीं है, यह एक दार्शनिक सन्त की आत्मा का सङ्गीत है ।

मूकमाटी महाकाव्य में चार खण्डों में मुक्तछन्द का प्रवाह और काव्यानुभूति की अन्तरङ्ग लय समन्वित करके इसे काव्य का रूप प्रदान किया है । इस महाकाव्य में "सोने में सुहागा" उक्ति वस्तुतः चरितार्थ हुई है क्योंकि आचार्य प्रवर तपस्या से अर्जित जीवन दर्शन को अनुभूति में रचा पचाकर सबके हृदय में गुंजरित करने का लक्ष्य सामने रखा है । इस महाकाव्य में लोक जीवन के रचे पचे मुहावरे, बीजाक्षरों में चमत्कार, मन्त्र विद्या की लोकोपयोगिता, आयुर्वेद के प्रयोग, अङ्कों का चमत्कार और आधुनिक जीवन में विज्ञान से उपजी कतिपय नई अवधारणाएँ सर्वत्र देखने मिलती हैं । वस्तुतः मूकमाटी आधुनिक जीवन का अभिनव शास्त्र है ।

आचार्य श्री कुन्थु सागर मुनि महाराज

परिचय :

आचार्य श्री कुन्थसागर जी महाराज की असाधारण विद्वत्ता ने जन-साधारण व विद्वत् समाज में एक क्रान्ति पैदा कर दी है । उनकी विद्वत्ता, गम्भीरता, निःस्पृहता, सर्वजीव समभावना, लोक हितैषिता, विश्व-बन्धुता आदि गुण लोक विश्रुत हैं । वे जैन धर्म के महनीय दिगम्बर आचार्य थे । बीसवीं शती में जैन धर्म की निरन्तर प्रगति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे ।

अलौकिक प्रभाव :

पूज्य आचार्य श्री की वीतराग वृत्ति का लोक में अलौकिक प्रभाव है । यह दर्शनार्थियों ने प्रत्यक्ष अनुभव किया है । आचार्य श्री ने अपने दिव्य विहार से असंख्यात आत्माओं का उद्धार किया । लोग किसी सम्प्रदाय या धर्म के हों आपकी निर्मोह वृत्ति पर मुग्ध हो जाते हैं - क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या क्रिश्चियन सभी लोग आपका धर्मामृत को उपस्थित होते हैं । आपने जहाँ जहाँ पुण्य विहार किया । आपस के मतभेद और द्वेषाग्नि बुझ गयी।

नरेन्द्र वन्द्यत्व :

आचार्य श्री की तपोनिष्ठा, ज्ञान मंडिता का अमिट प्रभाव न केवल सर्वसाधारण पर बल्कि अनेक राज्य शासकों के हृदयों पर पड़ा है । बड़ौदा के न्यायमंदिर में खास बड़ौदा के राज्य के दीवान एवं हजारों श्रोताओं के बीच पूज्य श्री का जो तत्त्वोपदेश हुआ था, वह दृश्य अविस्मरणीय है । आचार्य श्री की जन्म-जयन्ती कई राज्यों में सार्वजनिक रूप से मनायी जाती है एवं वह दिन "अहिंसा दिवस" के रूप में घोषित हो जाता है। इस प्रकार धर्मोद्योत का ठोस कार्य जो पूज्य श्री के द्वारा किया गया वह सैकड़ों विद्वान् भी कई वर्षों तक नहीं कर सके ।

साहित्य सेवा :

आचार्यवर अपनी मौन बेला में ग्रन्थ रचना के कार्य में संलग्न रहते हैं । आपने पूर्वाचार्य परम्परा को कायम रखते हुए साहित्य निर्माण प्रणाली में आश्चर्य कारक उन्नति की है ।

आपके द्वारा रचित ग्रन्थ इतने लोकप्रिय हुए कि बहुधा उनका स्वाध्याय होते देखा आता है । जिनमें वस्तुतः विश्वकल्याण की भावना ओत-प्रोत है-वर्णनशैली की अत्यन्त सुगम और सुबोध है । जीवन के अल्प समय में लगभग चालीस ग्रन्थों का प्रणयन, आचार्य श्री के कठोर श्रम सङ्कल्प, धर्म एवं साहित्य सेवा का सजीव उदाहरण है - लगता है प्रमाद छू न गया ।

आपके अनेक ग्रन्थों का विदेशों में प्रचार हुआ । आपके ग्रन्थों का प्रकाशन संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, कन्नड़ी और अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद होकर हुआ ताकि देश के सभी प्रदेशों में उनका समुचित उपयोग हो सके ।

आचार्य श्री प्रणीत ग्रन्थ :

1. चतुर्विंशति-जिन स्तुतिः
2. शान्ति सागर चरित्र
3. बोधामृतसार
4. निजात्मशुद्धि भावना
5. मोक्षमार्ग प्रदीप
6. ज्ञानामृतसार
7. लघुबोधामृतसार
8. स्वरूप दर्शन सूर्य
9. नरेशधर्म दर्पण
10. लघुप्रतिक्रमण
11. लघुज्ञानामृतसार
12. मोक्षमार्ग प्रदीप
13. शान्तिसुधा सिन्धुः
14. श्रावक धर्म प्रदीप
15. मुनिधर्म प्रदीप
16. लघु सुधर्मोपदेशामृतसार
17. स्वप्नदर्शनसूर्यः (षड्भाषात्मक)
18. भावत्रय फलदर्शी
19. नरेशधर्मदर्पण (षड्भाषात्मक)
20. सुवर्णसूत्रम्

इस प्रकार अनेक ग्रन्थों का प्रणयन आचार्य श्री की अनवरत साहित्याराधना से ही संभव हो सकता है ।

शान्ति सुधा सिन्धु[७३]

नामकरण - "शान्ति सुधासिन्धु" ग्रन्थ का यह नाम अत्यन्त उपयुक्त एवं सार्थक है । क्योंकि इसमें शान्ति की प्रतिष्ठा की गई है तथा इस ग्रन्थ का अनुशीलन करने के पश्चात् पाठक शान्ति के सुधापूर्ण सिन्धु में ही निमग्न हो जाता है और सांसारिक कार्यों, विचारों से निरपेक्ष होकर मुक्ति की कामना करने लगता है ।

आकार - शान्ति सुधा सिन्धु पाँच अध्यायों में विभक्त है, जिनमें पाँच सौ बीस पद्य हैं, इसे एक आचार संहिता मानना युक्ति संगत है ।

ग्रन्थ परिचय - इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में आत्मतत्त्व पर आधारित हितपूर्ण मार्मिक प्रश्नों के उत्तर हैं। द्वितीय अध्याय जिनागम के रहस्यों की अभिव्यक्ति है। तृतीय अध्याय में वस्तुस्वरूप एवं माननीय आदर्शों का व्यापक विवेचन हुआ है । चतुर्थ अध्याय हेयोपादेय के स्वरूप का सारपूर्ण अंश है तथा पंचम अध्याय में समग्र शान्ति की कामना की गयी है और आत्मा के दिव्य गुणों का अवतरण किया है । इस ग्रन्थ में जैन सिद्धान्तों का विवेचन तथा शान्ति की सर्वोत्कृष्टता प्रतिपादित की है और अध्यात्म, मनोविज्ञान, जीव, मोक्ष, वैराग्य, पुरुष, सत्य, धर्म, कर्म, सुख, दुःख आदि तत्त्वों की यथार्थता विश्वगति के परिप्रेक्ष्य में निरूपित की गई हैं ।

उद्देश्य - आचार्य कुन्थुसागर जी ने यह रचना सांसारिक विकारों, जन्ममरणरूप व्याधियों से सर्वथा मुक्त होने तथा जीवों के कल्याणार्थ चिरन्तर सुख, शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर निबद्ध की हैं । इस कथन की पुष्टि आचार्य श्री द्वारा ही रचित ग्रन्थ के अन्त में प्राप्त प्रशक्ति से भी होती है । इसके साथ ही आचार्य श्री का यह भी लक्ष्य है- कि पृथ्वी पर कल्याणकारी धर्म, सम्यववाणी, और सच्चरित्र के धारक साधुवृन्द सदैव विजयी हों ।

टीका - हिन्दी अनुवादक-श्री धर्मरत्न पं. लालाराम जी शास्त्री जी हैं-

शान्तिसुधासिन्धु का अनुशीलन

इस ग्रन्थ में कुन्थुसागर जी का मनोवैज्ञानिक चिन्तन और जीवदर्शन की यर्थाथता समाहित है, प्रस्तुत ग्रन्थ का भावात्मक विश्लेषण प्रस्तुत है -

प्रथम अध्याय - इस अध्याय का नाम हितोपदेश वर्णन है । इसमें एक सौ (100) पद्य हैं, आत्मा के स्वरूप के सम्बद्ध - जिज्ञासापूर्ण प्रश्नों के समीचीन उत्तर निबद्ध हैं आत्मज्ञान रहित दुःखी होता है जबकि सम्यग्दृष्टि सर्वत्र सुखानुभूति प्राप्त करता है मनुष्य के दुःखी होने का प्रधान कारण अज्ञान है, इसके विपरीत शुभयोगसाधना चरमसुख का साधन है । इस संसार में कोई भी पदार्थ सुख या दुख की अनुभूति कराने में सक्षम है नहीं है किन्तु अज्ञान एवं मोह के कारण पदार्थों में यह कल्पना की जाती है । आचार्य श्री का दृढ़ मत है कि कर्म के अनुसार यह जीव स्थिर नहीं रहता तथा अपने कर्मानुसार ही चारों गतियों में परिभ्रमण करता है किन्तु कर्मों का अभाव होने पर जीव इस परिभ्रमण से मुक्त हो जाता है-इसे ही ''मोक्ष'' कहते हैं ।

जो व्यक्ति दूसरे का अहित करना चाहता है परन्तु उसे ही अपने दुष्कर्म का फल भोगना होता है । क्योंकि कर्मरूपी रस्सी से पुरुष पशुओं के समान बन्धनग्रस्त है अर्थात् कर्म प्रधान है ।

इसके पश्चात् आत्मा में राग और द्वेष की साथ-साथ उपस्थिति का भी विवेचन किया है तथा संसारी जीवों के सुख-दुःख को दिन और रात्रि के समान निरूपित किया है । इसके उपरान्त धन की हेयता प्रतिपादित की है और उसकी तीन गतियों का विवेचन किया है धन को दुःखों का कारण माना है । तत्पश्चात् मानव को सदाचार की ओर प्रेरित किया

गया है । लोभी व्यक्तियों की घोर निन्दा की है एवं धन की उपयोगिता और उद्देश्य पर भी प्रकाश डाला है जप, तप, ध्यान, दया आदि गुणों से मण्डित मानव "पात्र कहलाता है - जो विधिवत् पात्र को आहार देता है, इसके पश्चात् स्वयं अन्न जल ग्रहण करता है वही श्रेष्ठ गृहस्थ है किन्तु अकेला खानेवाला पापी होता है । इसके अनन्तर काम शक्ति को दु:खदायी सन्तापयुक्त, अपमानसूचक कहकर उसके सर्वत्र व्याप्त होने पर चिंता व्यक्ति की है, कुछ ऐतिहासिक पुरुषों का भी उल्लेख किया गया है, जो कामशक्ति के प्रभाव से सम्पृक्त हो गये । ग्रन्थकार का यह भी मत है कि यह जीव काम भोगों से तृप्त नहीं होना न स्याद्धि जीवश्च कदापि तृप्त: सत्काम भोगैरिह जीव- लोके[74] काम सेवन से तृष्णा की पूर्ति नहीं होती अपितु वह बढ़ती ही जाती है, इसलिए आत्महित में विषयवासना का परित्याग ही कर देना चाहिये । तदुपरान्त सज्जन, दुष्ट की प्रकृति (स्वभाव) की समीक्षा की गई है। प्रत्येक विचारशील मानव द्वारा अपने प्रतिदिन के कार्यों की समीक्षा की जाती है, जिससे उसे कर्तव्यबोध हो जाता है । ग्रन्थकार ने एक तर्क यह भी प्रस्तुत किया कि कर्मबन्धन में आबद्ध यह मनुष्य अनादिकाल से अशुद्ध हो रहा है, अत: वह जप, तप, ध्यान, सदाचार आदि के द्वारा अनन्त सुख प्राप्त कर सकता है और शुद्ध हो सकता है, मानव शरीर को अत्यन्त अशुद्ध और नश्वर भी निरूपित किया है-क्योंकि यह मलमूत्र, मांस, रुधिर आदि से समन्वित है तथा इनका निवास स्थान भी है-जीव निकल जाने पर तो कोई इस शरीर को स्पर्श करना भी उचित नहीं मानता, ऐसे शरीर में अहं, स्वार्थ को प्रश्रय न देकर व्रत, उपवास, जप, तप, करुणा, क्षमा, ध्यान, मैत्री आदि को स्थापित (के प्रति आकृष्ट होकर) करके मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। क्रोधादि विकार तो आत्मा का अहित करने वाले हैं तथा नरक के साधन हैं कहने का अभिप्राय यह कि यह शरीर ही जीव के हित एवं अहित का माध्यम होता है ।

आचार्य श्री का यह संदेश भी है कि आत्मा के शुद्ध स्वरूप का चिन्तन करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने वाला मोक्ष नगर में प्रतिष्ठित होता है । आत्मा के सम्बन्ध में ग्रन्थकार का चिन्तन अत्यन्त मुखर है-आत्मा सर्वज्ञ है यह आत्मा ज्ञेय, ज्ञायक, दृष्टा एवं दृश्य भी है । इसके साथ ही जिनेन्द्रदेव द्वारा उपदिष्ट मार्ग के शास्त्रों का अध्ययन करने की प्रेरणा प्रदान की है। इस अध्याय में अपरिग्रही साधुओं की महिमा, कठोरसाधना एवं लोकपूज्यता का व्यापक वर्णन किया गया है और सरागी, साधुओं की निन्दा की है-मोक्ष के लिए सतत् यत्न करने वाले को "यति" कहा गया तथा जिनेन्द्रदेव की उपासना एवं आत्मचिन्तन पर विशेष ध्यान देने की प्रेरणा प्रदान की है ।

द्वितीय अध्याय - यह अध्याय 102 पद्यों में निबद्ध है । इसका नाम "जिनागम रहस्य वर्णन" है । इस जीव के कर्मों से आबद्ध और उनसे मुक्त होने का विश्लेषण किया है।

यति अनन्त सुख का अन्वेषण करने में चिन्तनरत होते हैं तथा पापों के समान पुण्यों का भी परित्याग कर देते हैं । इसके पश्चात् आत्मा के से विमुख को परमुखी तथा उसके सम्मुख रहने वाले को चिदानन्दमय, निराकार, शुद्ध विकाररहित मोक्षगामी कहा गया है । श्रावकों के लिए शान्ति ग्रीष्म, वर्षाकाल में तपस्या करने का व्यवस्थित कार्यक्रम (दिनचर्या) निर्धारित किया गया है तथा मुनियों द्वारा भौतिक बाधाओं को उपेक्षा किये जाने का भी विवेचन किया है । इसके पश्चात् देव, शास्त्र, गुरु के उपासकों की प्रशंसा की गई है और बन्ध तथा मोक्ष के स्वरूप की व्याख्या भी प्रस्तुत हुई है । जिसमें अज्ञान, मोह, परपदार्थ प्रेम

आदि त्याग देने और आत्मशुद्धि करने की आवश्यकता निरूपित की है । अकिंचनधर्म की सराहना की गई है और भेदज्ञानियों के चिन्तन का विश्लेषण किया है । भेदज्ञानी अपने कुटुम्बियों को चिंता, मोह, कषाय, विकार में सहायक मानते हैं और उनका परित्याग कर देते हैं । कर्ता, कर्म, क्रिया का सद्भाव व्याप्य-व्यापक भाव पर भी निर्भर है ।

इसके साथ ही महापुरुषों की विवेकपूर्ण विचारधारा और आत्मा के अनन्त, निर्मल स्वभाव की प्राप्ति के लिए आत्मचिन्तन की अनिवार्यता भी प्रतिपादित की गई है । कुन्थुसागर जी आत्मा और ज्ञान को एक मानते हैं किन्तु इन दोनों को प्रवचन करते समय गुणी-गुणी के भेद से अनेक हिस्सों में विभाजन करने को उपयुक्त कहते हैं । बाह्य परिग्रह और अन्तरङ्ग परिग्रह की सत्ता का व्यापक वर्णन मिलता है - बाह्यपरिग्रह का त्याग करना सरल है किन्तु अन्तरङ्ग परिग्रह त्यागना कठिन (दुष्कर) होता है। किन्तु अन्तरङ्ग परिग्रह त्याग देने पर आत्मा मोक्ष प्राप्त करता है । स्वधर्म और विधर्म की व्याख्या की गई है - स्वधर्म सुखदायक एवं आत्मशुद्धि का प्रतीक होता है किन्तु विधर्म तो दुःखमय और विकारमय है ।

इसके पश्चात् जीवनदर्शन की सर्वोच्च पराकाष्ठा की विवेचना हुई है - कि इस जीव ने संसार में अन्तकाल से परिभ्रमण करते हुए लौकिक ऐश्वर्य अनेक बार प्राप्त किया किन्तु आत्मा का शुद्ध स्वरूप नहीं प्राप्त कर सका -

न किन्तु लब्ध स्वपथं पवित्रं ततः प्रयत्नाद्धि तदैव लभ्यम् ।[75]

इस आत्मतत्त्व को पाने का उपाय भी निदर्शित किया है । तदनन्तर मानव चित्त की चंचलता का विश्लेषण किया है और उसे एकाग्र करने के साधन भी वर्णित किये हैं । सामाजिक तत्वों की यथार्थता के मर्मज्ञ महापुरुषों के गुणों एवं वीतराग की तपस्या का परिचय भी दिया गया है । आत्म प्रधान विद्या को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसी की शिक्षा का प्रसार करने को श्रेयस्कर कहा है । इस अध्याय के अन्त में मनीषियों के एकान्तप्रिय जीवनादर्श तथा साधु स्वभाव का सम्यक् चित्रण किया गया है तथा सच्चे साधकों द्वारा प्रत्येक स्थिति (निन्दा या स्तुति) में समता धारण करने का भी निदर्शन किया है ।

तृतीय अध्याय - इस अध्याय का शीर्षक "वस्तुस्वरूप" है । इसमें 98 पद्य हैं। प्रस्तुत अध्याय में बहुमुखी दृष्टिकोण पूर्वक नीतियों की सार्थकता प्रतिबिम्बित हुई है। राजा-चोर, सज्जन-दुर्जन में अन्तर स्पष्ट किया है तथा उनके लक्षणों पर भी विचार किया है - कर्म के आधार पर मनुष्यों के तीन भेद किये गये हैं - उत्तम, मध्यम अधम। सम्यग्दृष्टि को स्वपरभेद विज्ञान का मर्मज्ञ निरूपित किया है - वह परपदार्थों के प्रति निर्लिप्त आत्मचिन्तनरत एवं कर्मबन्धन से उन्मुक्त होता है । मानव का स्वभाव और गति ऐसी है कि वह (आत्मा) जिसका चिन्तवन करता है, तब वह तद्रूप हो जाता है । इसलिए हमें साधुओं की जीवनशैली का अनुकरण करना चाहिये । क्योंकि परपदार्थों से उत्पन्न दुःख "अनिर्वचनीय" होता है । अपरिग्रही मुनियों के समीप मुक्ति के अस्तित्व को स्वीकार किया है और कर्म की प्रबल स्थिति का विवेचन भी किया गया है । आचार्य कुन्थुसागर जी ने राजतंत्र का समर्थन करते हुए राष्ट्र की समृद्धि एकता के लिए शक्तिमान, न्यायप्रिय, कार्यकुशल प्रशासक (सम्राट) का होना आवश्यक मानते हैं । मनुष्य को (लक्ष्य तक या) कर्तव्यच्युत करने वाले गुरु, देव, धर्म, बन्धु, मित्र, राजा देश, स्त्री आदि का परित्याग करना हितकारी होता है ।

इसके उपरान्त काम सन्तप्त मानव को अवगुण, अपयश का पात्र निरूपित किया है

और सत्सङ्ग के महत्त्व पर प्रकाश डाला है । लौकिककार्यों को विपत्ति बहुल कहा गया है तथा इस कार्यकाल में भी मुनिजीवन की निर्विघ्न सफलता प्रतिपादित की है। ग्रन्थकार ने चिन्ता को व्यापक, अनन्त एवं शरीरान्त करने वाली व्याधि माना है । इसी परिप्रेक्ष्य में विभिन्न पक्षों के मूल्याङ्कन करने के अवसर का निदर्शन है - प्रभो: परीक्षा गुणदोषभेदै: स्मृते परीक्षा सदसद्विचारे पसाधो । परीक्षादु सर्गकाले, नारी परीक्षा विपत्प्रकीर्णे ।।[76]

माता-पिता तथा प्रजा को संस्कारच्युत करने वाले शासक को भी ''पापी'' कहा गया है । पाश्चात्य सभ्यता की तीव्र आलोचना की गयी है और इस सभ्यता के अन्धे अनुयायियों की भर्त्सना की है । देव, शास्त्र गुरू में श्रद्धा करने वालों की प्रशंसा की है, क्योंकि ऐसा करने से समस्त दु:ख नष्ट हो जाते हैं । इसमें गृहस्थी सम्बन्धी पापों को नष्ट करने के लिए जिन प्रतिमा पूजन को अनिवार्य माना गया है । इस अध्याय में स्वपरभेद विज्ञान को आत्मौन्नति का प्रतीक एवं पुण्य को सुख का साधन माना गया है । इस संसार के क्रियाकलापों एवं अशुभकर्मों पर आश्चर्य व्यक्त किया है । इसके साथ ही मानवमात्र को आत्मा और शरीर का भिन्नता का ज्ञान (रहस्य) कराने का प्रयत्न किया गया है - यह शरीर आत्मा का निवास स्थान है जबकि आत्मा का स्वरूप अनुपम है । वह शरीर से सर्वथा भिन्न है- इस रहस्य का ज्ञाता प्राणी की मोक्ष का पात्र होता है । ग्रन्थकार ने अज्ञान से दी गई समस्त क्रियाओं को असफल माना है । इस अध्याय के अन्त में नीतिपूर्ण, सारगर्भित पद्यों के माध्यम से सद्गुणों की समीक्षा की गयी है।

चतुर्थ अध्याय - ''हेयोपादेय'' (स्वरूपवर्णन) शीर्षक युक्त प्रस्तुत अध्याय में 115 श्लोक हैं । इसमें साधु, विद्वान दानी, पतिव्रता, न्यायप्रिय शासक, महापुरुष के लोकोत्तर प्रभाव का वर्णन है और मानव के विभिन्न गुणों की सर्वोच्चता प्रतिपादित की गई है-

क्षमासमं नास्ति तपोऽपरं च दया समो नास्त्यपरो हि धर्म: ।
चिन्ता समो नास्त्यपरश्च रोगो रसोऽपरो न स्वरसस्य तुल्य: ॥ [77]

प्राचीन परम्परा के प्रतिकूल विचार देवसत्ता के प्रति अभिव्यक्त हुए हैं तथा सर्वत्र विद्यमान देवशक्ति अर्हन्तदेव में सन्निविष्ट कर दी है । विषयवासना से ग्रसित मनुष्य को पशुवत माना है । तथा अध्यात्म विद्या के प्रभाव और महत्त्व का व्यापक विश्लेषण किया है - कि चिन्तामणिरत्न, कल्पवृक्ष, इन्द्र, नागेन्द्र राजा, भोगभूमि कामधेनु, पृथ्वी आदि अध्यात्म के वशीभूत एवं सेवक हैं, अत: अध्यात्म शक्ति की उपासना करना चाहिये। आत्मा का स्वरूप अमूर्त है किन्तु विविध विकारों के आ जाने पर उसे व्यवहारनय से मूर्त कहा जाता है तथा कर्मबन्धन से मुक्त किये जाने पर एवं विकारत्याग करने पर यह आत्मा अपने शुद्ध अमूर्त रूप को प्राप्त करता है । संसारचक्र की गतिशीलता एवं गुरुशिष्य सम्बन्धों पर भी चर्चा की गई है ।

जैनधर्म सुख-शान्ति, विभूति, बन्धुत्व, आत्मकल्याण का आश्रय है, इसलिए निरन्तर इसकी उन्नति के लिए संलग्न रहना चाहिये । सभी प्राणियों के प्रति बन्धुत्व का व्यवहार करना परम् कर्तव्य है । मनुष्य को अपनी विचारधारा चिंतनपरक बनानी चाहिये - क्योंकि यह जीव सत् एवं असत् कर्मों का कर्ता होता है । कर्म परिवर्तन का सूत्रधार है । इसके कारण क्षणभर में ही धनी, दरिद्र राजा-रङ्क एवं योग्य भी अयोग्य बन जाते हैं । इस प्रकार कर्म मानव को भाग्य का निर्णायक है । सत्संग के महत्त्व एवं प्रभाव का परिकलन भी

किया है इसके पश्चात् अनेक दृष्टान्तों के द्वारा यह समझाया गया है कि धर्म के बिना धन की प्राप्ति भी असंभव है अत: धर्म सर्वोपरि है और प्रत्येक व्यक्ति का धार्मिक लगाव अत्यधिक होना चाहिये । मानव की समस्त क्रियाएँ अन्तरंग शुद्धि के बिना निष्फल (असफल) हैं- इसकी पुष्टि अधोलिखित पद्य में हुई है -

ये केपि मूढा गणयन्ति कालं, अन्तर्विशुद्धिं हि विना वराकाः ।
वृथैव तेषां च भवेद्विचारः क्रियाकलापो विफलं नृजन्म ॥[78]

आचार्य कुन्थुसागर जी ने अधर्म को अनर्थ का कारण माना है । इस अध्याय में प्राणियों के स्वभाव का (व्यापक) वर्णन भी है - कि उन्हें अपनी विरोधी विचारधारा पसन्द (स्वीकार्य) नहीं होती - व्यभिचारिणी को पति, श्वान को घी, बधिर की गीत, दुष्ट को न्याय, जोंक को दूध, गधे को मिष्ठान्न, उलूक को सूर्यदर्शन आदि । यह जीव इन्द्रियजन्य सुखों की तृष्टि के कारण ही जन्म-मरण रूप परिक्षेत्र का भ्रमण करता है। क्रोध आत्मा की घातक अवस्था है, इससे दूर रहना श्रेयस्कर है । संसार में लौकिक ऐश्वर्य भी पुण्यकर्मों के से ही प्राप्त होता है - जो जीव आचार विचार कर्म, वेषभूषा, भोजन व्यवहार आदि के प्रति विवेकशील नहीं होता वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है अत: परोपकारमय जीवन ही सार्थक है । मानव समाज के धर्म के प्रति आडम्बरपूर्ण दृष्टिकोण पर भी अप्रसन्नता प्रकट की गई है इसके साथ ही धर्म की उन्नति के लिए प्रयत्नशील, सात्विक वृत्ति रखने वाले मनुष्य को सर्वाधिक कुशल एवं सक्षम माना है और देव, शास्त्र गुरु, सन्तोष, शान्ति, परोपकार को साथ लेकर चलने में ही जीवन की सार्थकता प्रतिपादित की है । किन्तु कालिकाल में इन गुणों जी उपेक्षा एवं दुर्गुणों की प्रतिष्ठा की जा रही है इसलिए आचार्य कुन्थुसागर जी चिन्तित हैं । साधुओं की चिन्तनीय स्थिति पर खेद व्यक्त करते हुए उनके निवास के सम्बन्ध में कहा गया है कि दुराग्रहरहित व्यापक कल्याण के हित में गाँव, नगर, कन्दरा, पर्वत, वन, जिनालय आदि में रहना श्रेयस्कर है । ग्रन्थकार जनसंख्या वृद्धि की धारणा से असहमत हैं और इसे समस्या मानते हुए उपयोगी सामग्री भी प्रस्तुत की है और जन सामान्य को अपने विचारों से प्रभावित भी किया है । इसी अध्याय में साम्राज्यवाद की निन्दा की गयी है और इसे महायुद्ध अशान्ति, एवं लिप्सा का द्योतक निरूपित किया गया है ग्रन्थकार ने आत्मा में समस्त देवताओं को प्रतिष्ठित किया है इसलिए यह आत्मा उपादेय है, शेष परपदार्थ हेय (त्याज्य) हैं ।

पंचम अध्याय - ''परमशान्ति उपदेश स्वरूप वर्णन'' शीर्षक इस अध्याय में 105 श्लोक हैं इसमें शान्ति एवं आत्मा से सम्बद्ध सारगर्भित उपदेशों का निदर्शन है । सभी धार्मिक क्रियाओं एवं आत्मशुद्धि का प्रधान लक्ष्य शान्ति प्राप्त करना है । इन्द्रिय-निरोध, कषायत्याग, विकारत्याग का मूलाधार आत्मशान्ति की प्राप्ति ही है । यह समग्र मानवता विकारों से त्रस्त है - ऐसी स्थिति में जीवों को शान्ति की अनुभूति कराना अनिवार्य है । अत: विकारों का त्याग करना ही होगा ।

समाधिमरण की व्याख्या की है - ध्यानपूर्वक शरीर का परित्याग करना ''समाधिमरण'' कहलाता है । इसमें साधक आत्मशांति में लीन होता है और शरीर क्रमश: नष्ट होता जाता है।

इस अध्याय में द्यूत क्रीडा, मांस सेवन, सुरापान, वेश्यागमन, शिकार, चोरी परिस्त्रीसेवन को ''सप्तव्यसन'' कहा गया है । इनसे विरक्ति होने पर आत्मशान्ति प्राप्त होती है । संसार को दु:खमय सिद्ध करके दु:ख उत्पन्न होने के कारणों की भी समीक्षा की है ।

ग्रन्थकार का मत है कि महापुरुष सुख एवं दु:ख दोनों ही अवस्थाओं को बन्धमय मानते हुए उनमें समता धारण कर लेते हैं । संसार का कोई भी पदार्थ हर्ष एवं विषाद का कारण नहीं हो सकता किन्तु मोह एवं अज्ञान के कारण पदार्थों के संयोग एवं वियोग से मनुष्य सुख एवं दु:ख का अनुभव करने लगते हैं । किन्तु आत्मशान्ति सर्वोपरि है। इसकी प्राप्ति के लिए समस्त साधनाएँ जैसे - परिग्रहत्याग, स्तुति-निन्दा की उपेक्षा, जिनागम का अनुशीलन, सामयिक आदि समस्त क्रियाएँ प्राणिमात्र में बन्धुत्व का व्यवहार आदि आवश्यक रूप से की जाती हैं । मुनिजन तो अनेक उपसर्ग सहन करते हैं और भौतिक द्वन्द्वों में समानता रखते हैं ।

जिनेन्द्रदेव का अभिषेक करना आत्मशान्ति के (हेतु) लिए अनिवार्य है । इसके पश्चात् राजतन्त्र के नियम प्रस्तुत किये गये हैं - राजा के कर्तव्य, दण्डविधान राष्ट्ररक्षा आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यों का विवेचन किया गया है । इस शांति उपदेश को बहुमुखी बना दिया है । इसके साथ ही श्रावकों के कर्तव्यों पर विचार किया और उन्हें परमशान्ति का प्रयास करते हुए अर्हन्त सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु शास्त्र आदि की आराधना करने का निर्देश दिया है। पृथ्वी पर युद्धों के अवसर उपस्थित होने का कारण राजलिप्सा तथा स्वार्थों का टकराव है । ऐसी स्थिति में शान्ति की स्थापना करना मानवमात्र का कर्तव्य है । इसके साथ ही आत्मा के शुद्ध स्वरूप का सविस्तार चिन्तन किया है - यहाँ आत्मा को विशेष उपाधियों से अलङ्कृत किया है - जैसे अनन्तसुख रूप, निर्विकार, ब्रह्मस्वरूप, ज्ञानमय निरञ्जन[79] विज्ञानज्योति[80], धर्मज्ञ, त्रिलोकदर्शी, स्वयप्रभु[81] स्वराज्यकर्ता[82], आदि । यहाँ आत्मा का बहुविध एवं गरिमापूर्ण सूक्ष्म अनुशीलन किया गया है । अपनी आत्मा को कृतार्थी[83], स्वानन्दकन्द[84], प्रजापति, चरित्रचूड़ामणि, त्रिविकारहारी, कलानिधि, दमीश्वर[85] ज्ञानी, मौनी[86] धनेश[87], नरेश[88] सवोत्तम, सौख्य शिरोमणि आदि का प्रतीक मानकर उसकी स्तुति की है । उन्होंने आत्मा को जितादि, मनोज्ञ, भुवनेशवन्द्य, महर्षि आदि अनेक रूपों में देखा है । इस प्रकार इस अध्याय में आत्मतत्त्व के महनीय दर्शन (विराड्दर्शन) होते हैं । ग्रन्थकार ने आत्मा के शुद्ध स्वरूप द्वारा अनन्त शान्ति का आविष्कार किया है और जीवमात्र के लिए भी उनका यही सन्देश है ।

यथैव विश्वो जलदृष्टिहीनः कदापि नो तिष्ठति कुन्थुसिन्धुः ।
आचार्यवर्यः सुखशान्तिमूर्तिः पूर्वोक्तशान्तेर्न बहिः प्रयातिः ।।[89]

प्रस्तुत विवेचन के पश्चात् ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ठों पर आचार्य श्री ने अपनी विनम्रता और लघुता के साथ प्रशस्ति का प्रणयन भी किया है। तथा विश्व में शान्ति की स्थापना में सहायक यह रचना मानवता के प्रति समर्पित की है ।

श्रावकधर्म प्रदीप[90]

यह श्रावकाचार कोटि की रचना है । यह परमपूज्य: प्रात: स्मरणीय श्री 108 आचार्य कुन्थुसागर जी द्वारा रचित है । इसकी संस्कृत एवं हिन्दी टीका अग्रगण्य मनीषी पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री ने की है ।

नामकरण - इसमें श्रावक के कर्तव्य-अकर्तव्य में विवेक धारण करने का मार्ग प्रदर्शित किया गया है । अत: यह ग्रन्थ श्रावकों के धर्म को प्रकाशित करने के लिए दीपक के समान है । इसीलिए श्रावकधर्म नाम सर्वथा युक्तियुक्त एवं उपयुक्त है ।

आकार - यह ग्रन्थ पाँच अध्यायों में विभक्त है जिनमें 212 श्लोक सम्मिलित हैं।

प्रयोजन - यह कृति जैनधर्म के प्रमुख विद्धान्त अहिंसा को लेकर किये जाने वाली आलोचना का खण्डन करने के लिए रची गयी हैं। "अहिंसा कायरपन और राष्ट्रद्रोही हमलों का सामना करने में अक्षम सिद्ध हुई है - ऐसे आक्षेपों का उत्तर, अहिंसा का स्वरूप उसकी सीमा एवं उपयोगिता को निर्धारित करने के लिए ही उक्त ग्रन्थ की रचना हुई है, ऐसा संकेत ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ठों पर प्राप्त प्रशस्ति से भी मिलता है ।

ग्रन्थ परिचय - इस कृति में पाक्षिक, नैष्ठिक, साधक श्रावकों के स्वरूप, प्रवृत्ति, आचार-विचार, गुण दोषत्याग, व्रतग्रहण, व्यसनत्याग, दैनिक कर्तव्य सामायिक का स्वरूप, क्षुल्लक-ऐलक आर्यिकाओं के स्वरूप एवं कर्तव्यों की सांगोपांग समीचीन समीक्षा सन्निविष्ट है । यह कृति श्रावकों की आचरण संहिता है ।

श्रावक धर्म प्रदीप का अनुशीलन

प्रथमोध्याय - इस अध्याय के 15 पद्यों में पाक्षिक श्रावक का स्वरूप और आचार सरल रीति से समझाया है ।

- लोक कल्याणकारी अहिंसा जीवनमात्र के हृदय में स्थापित हो, निर्लिप्त साधक ही पथप्रशस्त करे, सच्चे गुरु की मानवता का कल्याण करें, धर्म के आदर्श मानव ही "देव" है । उनके द्वारा उपदिष्ट शास्त्र ही प्रमाणिक और पठनीय है - ऐसे भाव जिसके हृदय में है वही पाक्षिक श्रावक है - पाक्षिक का मूल अर्थ है - जिसे धर्म का पक्ष हो । यद्यपि वह गृहस्थ कार्य एवं भोगोपभोग से विरक्त नहीं होता किन्तु प्राणियों के प्रति संवेदनशील और धर्म की प्रभावना के लिए सदैव उत्सुक और तत्पर रहता है । वह धर्म के प्रति समर्पित होकर ही रत्नत्रय के प्रतीक तीन सूत वाले यज्ञोपवीत को धारण करता है । पाक्षिक श्रावक देवोपासना, शास्त्राध्ययन, गुरुसेवा, स्वोपकार एवं परोपकार के कार्यों को भी समानरूप से करता है । वह प्रकृति से शान्त एवं गम्भीर होकर भी दुष्टों को उचित मार्ग पर लाने और सज्जनों की रक्षा करने का सक्रिय प्रयास करता है । उसे सुख-दुःख मैत्रीभाव, परोपकार, तीर्थवन्दन, शान्तिस्थापन, पीड़ित मानवता की सेवा आदि कार्यों के प्रति चिन्तनशील होने के साथ ही अपनी पत्नी को मधुरतापूर्वक उत्तमशिक्षा देने, गृहस्थ सम्बन्धी विचार विमर्श करने का भी निर्देश दिया गया है । पाक्षिक श्रावक को व्यर्थ के वाद-विवाद और अभिमानियों के सम्पर्क से दूर रहने की प्रेरणा दी गई है ।

द्वितीयोध्याय - इस अध्याय में जैन गृहस्थ के साधना मार्ग में क्रमिक उत्कर्ष के लिए नैष्ठिक श्रावकों का वर्णन है - प्रथम प्रतिमा से ग्यारहवीं प्रतिमा के धारक नैष्ठिक श्रावक है और समाधि द्वारा मरण साधने वाले श्रावक साधक कहलाते हैं । नैष्ठिक श्रावकों को अनिवार्य रूप से उपयोगी सम्यग्दर्शन की समग्र मीमांसा प्रस्तुत की गई है- यथार्थ वस्तु की तत्त्वश्रद्धा सम्यग्दर्शन है । वह यथार्थ वस्तु की श्रद्धा यर्थाथ ज्ञान चारित्र को विकसित करने का साधन है । इनके द्वारा मानव सिद्धि प्राप्त कर लेता है ।

सम्यग्दर्शन के 25 दोषों का क्रमबद्ध विस्तृत विवेचन भी किया गया है - 25 दोष इस प्रकार हैं - 8 दोष[91] + 18 मद[92] + 6 आयतन[93] + 3 मूढ़ता = 25 दोष उक्त सभी श्रावक को त्याज्य होते हैं ये सभी दोष मानव को पथभ्रष्ट करके स्वाभिमानी बनाते हैं अतः इनसे धर्मात्मा पुरुषों को दूर रहना चाहिये सम्यग्दृष्टि सप्तभयों[95] से उन्मुक्त होता है जबकि

सांसारिक प्राणी इनमें ग्रस्त रहते हैं । इससे पश्चात् सम्यक्त्वी के अष्टगुणों[96] का स्वरूप भी सन्निविष्ट है । ये सभी गुण श्रावकों को अनिवार्य होते हैं इसी अध्याय में सम्यग्दर्शन पाँच अतिचारों[97] का भी विवेचन हुआ है।

तृतीयोध्याय - धर्ममार्ग से च्युत कराने वाली आदत अंकित है -

द्यूतं मासं सुरा वेश्या स्तेयामाखेटकं तथा ।
परस्त्रीसङ्गमश्चैव सप्तानि व्यसनानि तु ।।[98]

ये व्यसन प्रत्येक मानव के लिए घातक हैं । इनका त्याग करना श्रेयस्कर है । मानव को पथभ्रष्ट करने वाले पञ्चपाप[99] हैं और इनका त्याग करना पंचाणुव्रत कहलाता है । ये पञ्चाणुव्रत[100] गृहस्थ श्रावकों को धारण करना नितान्त आवश्यक है, इससे सुख और शान्ति प्राप्त होती है ।

श्रावक को आत्मोन्नति चारित्र से ही सम्भव है जिनोक्त सन्मार्ग पर श्रद्धा करने के साथ ही उस पर अग्रसर होना "चारित्र" है । श्रावक के चारित्र में मूलव्रत आठ[101] हैं । इनको धारण करने वाला ही वास्तविक (सच्चा) श्रावक है ।

"अभक्ष्य" का अर्थ है खाने के अयोग्य । जिन पदार्थों में जीव हिंसा की संभावना रहती है उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिये - पदार्थों में मक्खन अचार, बैंगन, मधु तथा बैर, मकोर के फल की सम्मिलित हैं । आचार्य श्री ने लोकनिन्द्य स्याज, लहसुन तथा उन्मत्त बनाने वाले मदिरा, गाञ्जा, भांग, अफीम आदि पदार्थों से श्रावकों को सवर्था दूर रहने का उपदेश दिया है । मूलव्रत के अतिचारों[102] के सन्दर्भ में कहते हैं कि विचारपूर्वक भोजन करने वाले का व्रत ही प्रशंसनीय है । सप्तव्यसनों के अतिचार[103] भी विकारवर्धक है। अत: दुष्प्रभाव को देखते हुए इनका परित्याग कर देना चाहिये ।

चतुर्थोध्याय - श्रावक के दैनिक कार्यों तथा दान जप, पूजा, शील आदि का विवेचन है । सच्चे साधुओं को श्रावक द्वारा दान दिया जाना श्रेयस्कर है । श्रावक को चारों पुरूषार्थों[104] की सिद्धि के लिए कृतसंकल्प रहना चाहिये । वर्षाकाल में उन्हें धर्मसाधन तथा अन्य समय में नीतिपूर्वक धनार्जन करना चाहिये । इसके साथ ही उन्हें अपने राष्ट्र एवं धर्म के उद्धार के लिए अहिंसा का प्रचार प्रसार और वात्सल्यभाव की प्रतिष्ठा करना चाहिये । आत्मा के कल्याणकारी उत्तम दस धर्म[105] है । जो गृहस्थ सम्यग्दृष्टि तथा श्रावक को अनुकरणीय है। इनका उत्तमरीति से पालन करने के साथ ही द्वादश सद्भावनाओं[106] का भी विचार करना श्रावक का प्रमुख कर्तव्य है ।

इस अध्याय में ही गृहस्थ को सन्मार्ग पर निरन्तर अग्रसर होने के लिए शास्त्रों का पठन-पाठन एवं चिन्तन-मनन और विधिपूर्वक स्वाध्याय आवश्यक बताया गया है। जैनागम चार अनुयोगों[107] में विभाजित है । जिनका विधि पूर्वक अध्ययन-अनुशीलन शान्ति एवं मुक्तिमार्ग का सामीप्य कराता है । इनके साथ ही अपने ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए न्याय व्याकरणादि शास्त्रों का भी स्वाध्याय करना चाहिये ।

प्रसङ्गोपात ग्रन्थकार ने श्रावक के भोजन सम्बन्धी अन्तराय का विश्लेषण किया है - उसे मदिरा, माँस, अस्थि, रक्त की धारा, शरीर से निकला आर्द्रचमड़ा मृत पंचेन्द्रिय जीव का शरीर एवं मलमूत्रादि अपवित्र पदार्थों में से भोजन के समय किसी का भी दर्शन हो जाये तो अन्तराय के कारण उसे भोजन त्यागना अनिवार्य है । इसी प्रकार यदि शुष्क कपड़ा,

नख, कम्बल, पक्षी तथा उसका पंख शीलभग स्त्री-पुरुष, रजस्वला स्त्री, कुत्ता, बिल्ली, मुर्दे का स्पर्श, माँस के बाल हो तो भी भोजन त्यागना चाहिये। यदि भोजन के समय किसी का मरण, रुदन, अग्नि, लूटपात, धर्मात्मा पर सङ्कट, नारी का उपहरण, जिन प्रतिमा भेदन आदि से सम्बन्धित समाचार सुने तो भी उसे, नियमानुसार भोजन त्यागना चाहिये । इस प्रकार उक्त दर्शन, स्पर्श, श्रवण सम्बन्धी भोजन के अन्तराय कहे गये हैं । श्रावक को चक्की, रसोई, पानी, चंदोवा, बाँधना भी बताया गया है, उसे भोजन, मैथुन, स्नान, मलत्याग, वमन तथा पूजन, यज्ञ, सामायिक, दान और गमन के समय मौन धारण करना निर्धारित है । उसे अपने दैनिक कार्यों की समीक्षा और माला का जाप करना भी आवश्यक है ।

श्रावकों को रौद्र ध्यान का परित्याग और धर्मध्यान की आराधना भी नियमानुकूल करना चाहिये । इस अध्याय में मृतदेह का अग्निसंस्कार अस्थिविसर्जन, एवं सूतक की भी समीक्षा की गयी है । ''सूतक'' एक अशुद्धि है, जिसे दूर करने के लिए सफाई की जाती है । ग्रन्थकार ने नास्तिक प्रवृत्ति रखने वालों की घोर (आलोचना) निन्दा की है. उन्होंने कहा है कि सुख शान्ति की प्राप्ति के लिए धर्म में आस्था करना प्रत्येक मानव का प्रधान कर्तव्य है ।

पंचमोध्याय - इस अध्याय में द्वितीय प्रतिमा से ग्यारहवीं प्रतिमा तक के समस्त व्रतों का सातिशय विवेचन है । इसमें श्रावक के 12 व्रतों का सांगोपांग निदर्शन ही प्रस्तुत अध्याय की विषय वस्तु है । इनमें पाँच अणुव्रत+तीन गुणव्रत +चार शिक्षाव्रत सम्मिलित हैं । श्रावक के एक देश परित्याग को अणुव्रत[108] कहते हैं । अणुव्रतों को दोषरहित करने और गुणवृद्धि करने के लिए गुणव्रतों[109] का पालन किया जाता है और अणुव्रतों को महाव्रतों में परिवर्तित करने के लिए गृहस्थ को शिक्षाव्रत[110] उपयोगी होते हैं । उक्त समस्त व्रतों का स्वरूप और उनके अतिचारों का विवेचन किया गया है । इस प्रकार श्रावक के 12 व्रतों और उनके अतिचारों का सम्यका अध्ययन प्रस्तुत करने के पश्चात् श्रावक की शेष 9 प्रतिमाओं के स्वरूप और विशेषताओं से भी परिचय कराया गया है ।

अन्ततोगत्वा ग्यारहवीं प्रतिमा के अन्तर्गत क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिकाओं के स्वरूप, द्वादशव्रतों के भेदों एवं साधक के स्वरूप पर प्रमुख रूप से विचार किया गया है ।

श्रावक व्रत की समाप्ति ऐलकपद में ही हो जाती है । श्रावक के 12 व्रत, जो द्वितीय प्रतिमा में धारण किये जाते हैं । ग्यारहवीं प्रतिमा में अपनी मर्यादा समाप्त करके महाव्रतत्व को प्राप्त कर लेते हैं । ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के अन्त में अपने गुरुजनों का स्मरण करते हुए ग्रन्थ रचने का प्रयोजन और विनम्रता भी प्रकट की है ।

सुवर्णसूत्रम्[१११]

''सुवर्णसूत्रम्'' चार पद्यों में निबद्ध लघु काव्य रचना । यह कृति विश्व में शांति की स्थापना एवं विश्व के कल्याण हेतु धर्म के सर्वत्र प्रसार जैसे महनीय लक्ष्य को लेकर रची गई है ।

अनुशीलन - ''सुवर्णसूत्रम्'' का प्रारम्भ श्री परमपूज्य वीर जिनेन्द्र की स्तुति एवं नमन से हुआ है । तदुपरान्त जैनधर्म के स्वरूप का प्रतिपादन किया है-

''धनस्य बुद्धेः समयस्य शक्तेर्नियो जनं प्राणिहिते सदैव ।
स जैनधर्मः सुखेदाऽसुशान्तिर्ज्ञात्वेति पूर्वोक्तविधिर्विधेयः ।।[112]

अर्थात् धन, बुद्धि, समय और शक्ति का प्राणियों के कल्याणार्थ उपयोग कराने की शिक्षा देनेवाला धर्म ही ''जैनधर्म'' या विश्वधर्म है । जैन धर्म का इस रीति से पालन करने पर सम्पूर्ण प्राणी अपने आत्मरस का पान कर सकेंगे और अपनी आत्मा में रहे हुए चिदानंद शुद्ध चैतन्य रूप सुख का अनुभव भी करेंगे । विश्व में सर्वत्र शान्ति हो-यही हमारा ध्येय है ।

आचार्य १०८ श्री अजितसागर महाराज

परिचय

आपका जन्म विक्रम सवत् 1982 में भोपाल के आष्टा कस्वे के समीप भौरा ग्राम में हुआ था । श्री जवरचन्द्र जी पद्मावती पुरवाल इनके पिता और रूपाबाई माता थी । पिता ने आपका नाम राजमल रखा था । आपके तीन बड़े भाई हैं-श्री केशरीमल, श्री मिश्रीलाल और श्री सरदारमल ।

आप 17 वर्ष की उम्र में ही आचार्य वीरसागर महाराज के सङ्घ में सम्मिलित हो गये थे । संवत् 2002 में आपने महाराज श्री से ब्रह्मचर्य व्रत अङ्गीकार किया और आगम का ज्ञान प्राप्त किया । आपकी प्रवचन और लेखन शैली से प्रभावित होकर समाज ने आपको विद्या वारिधि पद से सुशोभित किया था ।

वैराग्य बढ़ने पर आपने संवत् 2018 कार्तिक सुदी चतुर्थी के दिन सीकर नगर में आचार्य श्री शिवसागर जी से मुनि दीक्षा ली थी । इस समय आपका नाम अजितसागर रखा गया था. आ. कल्प श्री श्रुतसागर महाराज के आदेश से आपको आचार्य पद (7 जून 1987 को उदयपुर में) पर प्रतिष्ठित किया गया ।

वैदुष्य

आपका संस्कृत ज्ञान परिपक्व एवं अनुपम था । आपने निरन्तर कठोर अध्ययन एवं मनन से आपने बड़े-बड़े विद्वानों को भी आश्चर्य चकित कर दिया था ।[113] आचार्य श्री का समाधिपूर्वक मरण हो गया है ।

संस्कृत रचना

आपकी एक छोटी सी रचना आचार्य शिवसागर के प्रति ''सूरिं प्रवन्दे शिवसागरं तम्'' शीर्षक से प्रकाशित हुई है ।[114]

प्रस्तुत रचना में पाँच श्लोक है । इनमें आपने अपने दीक्षा गुरु को नमन करते हुए उनकी विशेषताओं का उल्लेख किया है । आपने लिखा है कि आचार्य शिवसागर महाराज का ध्यान एकाग्रतापूर्वक होता था, वे गुणों के निधान थे, अभिमान नाम मात्र को न रह गया था, दुर्गणों की क्षति करने में रत वे मोक्ष की और प्रवृत्तिवान थे. उनकी महान पुरुष स्तुति करते थे । आचार्य के भाव ये इस प्रकार व्यक्त हुए हैं ।

ध्यानैकतानं सुगुणैकधानं ध्वक्ताभिमानं दुरिताभिहानम्
मोक्षाभियानं महनीयगानं सूरिं प्रवन्दे शिवसागरं तम् ।1

प्रस्तुत पद्य में अन्त्यानुप्रास आचार्य श्री के संस्कृत ज्ञान की प्रौढ़ता प्रकट करता है वे संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे । इस छोटी रचना के द्वारा भी संस्कृत साहित्य की वृद्धि हुई है । आपके द्वारा संकलित सार्वजनोपयोगी श्लोक संग्रह भी प्रकाशित है ।

आर्यिका सुपार्श्वमति माता जी

परिचय

आपका जन्म राजस्थान नें नागौर जिले के मैनसर नामक ग्राम में श्री हरकचन्द्र जी चूड़ीवाल के घर. वि. स. 1985 फाल्गुन शुक्ला नवमी के दिन हुआ था । माता-पिता ने आपका नाम ''भंवरी'' रखा था । बारह वर्ष की अवस्था में आपका विवाह नागौर के श्री इन्द्रचन्द्र जी के साथ हुआ था । विवाहित जीवन सुखकर न हुआ । विवाह के तीन मास बाद ही ये विधवा हो गयी थी । संकट के समय इन्होंने धर्म की शरण ली। धर्मध्यान करते हुए आपको मुनि अजितसागर का योग मिला । आपने उनसे विद्याध्ययन किया । जयपुर खानिया में वि. सं. 2014 भाद्रपद शुक्ला 6 के दिन आचार्य श्री वीरसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ली थी । यह दीक्षा तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ के गर्भकल्याणक के दिन सम्पन्न होने से आचार्य श्री ने इनका नाम आर्यिका सुपार्श्वमती रखा था ।

रचनाएं - आपने श्रुत सेवा का आदर्श रखा है । आपके मौलिक और अनूदित अनेक ग्रन्थ हैं इनके नाम हैं-परम अध्यात्म तंरगिणी, सागर धर्मामृत, नारी चातुर्य, अनगार धर्मामृत, महावीर और उनका सन्देश, नयविवक्षा, पार्श्वनाथ पञ्चकल्याणक, पञ्चकल्याणक क्यों किया जाता है, प्रणामाञ्जलि, दशधर्म, प्रतिक्रमण, मेरा चिन्तन, नैतिक शिक्षाप्रद कहानियाँ,(दश भाग) प्रेमयकमल-मार्तण्ड, मोक्ष की अमरवेल रत्नत्रय, राजवार्तिकम, आचारसार, लघु प्रबोधिनी कथा, और रत्नत्रय चन्द्रिका[115] षट्प्राभृतम् वराङ्गचरित्र, मेरा चिन्तवन आदि ।

वैदुष्य

आर्यिका सुपार्श्वमति माता जी अभीक्षण ज्ञानोपयोग की साधना, करके अनेक ग्रन्थों का मन्थन निरन्तर करती है । आपकी दिनचर्या ध्यान, तप, साधना, एवं साहित्य सृजन में ही सम्पन्न होती है । संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश हिन्दी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, कन्नड़ आदि भाषाओं पर आपका पाण्डित्यपूर्ण अधिकार हैं । आपने संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के अनेक ग्रन्थरत्नों का सम्पादन और अनुवाद तो किये ही हैं । हिन्दी एवं संस्कृत में मौलिक रचनाएं भी की हैं । वे उच्चकोटि की कवयित्री परम विदुषी आर्यिका हैं । प्रश्नकर्ताओं की शङ्काओं का समाधान करने में परम निष्णात हैं । प्रभावक प्रवक्ता हैं । निष्काम साधना और सदाचरण के समुन्नयन में ही आपका समय व्यतीत हो रहा है । आप शतायुष्क प्राप्त करें।

आर्यिका सुपार्श्वमती की संस्कृत रचनाएं

संस्कृत भाषा में प्रणीत आरकी पाँच स्फुट रचनाएं हैं । इनमें प्रथम रचना आचार्य महावीरकीर्ति महाराज के प्रति श्रद्धाञ्जलि है ।[116]

पांच पद्य की इस रचना में आर्यिका सुपार्श्वमती ने अपने दीक्षा गुरु आचार्य विमलसागर को नमन करते हुए विद्या गुरु आचार्य महावीर कीर्ति महाराज को श्रद्धा-सुमन समर्पित करके उनकी संस्तुति की है । उन्होंने इस संस्तुति में आचार्य महावीर कीर्ति महाराज को मुक्तिरमा का अभिलाषी, राग-द्वेष को दूर करने वाले, हितमित बचनों से भव्य जनों का उपदेशक, परिग्रह त्यागी, सभी का उपकारी, और स्थिर तथा निर्मल बुद्धिवाला, साधुओं के द्वारा सेव्य बताकर उनकी संस्तुति की है -

तीर्थक्षेत्र विहारी प्रथितपृथुगुणः मुक्तिरामाभिलाषी
रागद्वेषापहारी हितमितवचनैर्भव्य संबोधकारी ।
बाह्यान्तग्रन्थत्यागी परमृतसमं सर्वतत्त्वापकारी
तं साधुनामधीश स्थिर विशदधियं संस्तवे साधु सेव्यम्(3)

"वन्देऽहम् इन्दुमातरम्" शीर्षक रचना में नो श्लोक हैं[117] इन श्लोकों में आर्यिका इन्दुमति का परिचय दिया गया है । इनका पूर्व नाम जडावती था, ये राजस्थान के डेह ग्रामवासी श्री चन्दनमल की पत्नी थी -

मरुवाट सुदेशेऽ स्मिन् डेहग्रामः सुशोभनः ।
तत्र चन्दनमल्लस्य भार्या नाम्ना जडावती ॥ (1)

आपने आचार्य चन्द्रसागर जी से वि. सं. 2000 के आखिन मास के शुक्ल पक्ष में दशमी तिथि के दिन कसावखैड ग्राम में क्षुल्लक दीक्षा तथा संवत् 2006 के आखिन मास से शुक्ल पक्ष में एकादशी के दिन आर्यिका दीक्षा ली थी । इन तिथियों का लेखिका ने निम्न प्रकार उल्लेख किया है -

विक्रमे द्विसहस्राब्दे दशम्यामाश्विने सिते,
ग्रामे कसावखेडऽभूत्, एता क्षुल्लकदीक्षया (5)
विक्रमाब्दे तथा लब्धा, द्विसहस्रे षडुत्तरे
आश्विनी शुक्ल रुद्राऽके, शुभदीक्षा निजेश्वरी ॥ (6)

सागर-सागर से पार होने के लिए शास्त्र रूपी जहाज का निरूपण करते हुए लेखिका ने आर्यिका डन्दमति को उस पर आरूढ़ बताकर उन्हें जैनधर्म में आसक्त और धर्माचरण में तत्पर बताया है -

जिनधर्मसमासक्ता धर्माचरण तत्परा
आरूढा शास्त्रपोतं वा चरितं भवसागरम् ॥ (3)

तीसरी रचना आचार्य शिवसागर महाराज के प्रति श्रद्धाञ्जलि है[118] इस रचना में आठ श्लोक हैं, सभी में पद-पद पर उपमाओं का प्रयोग हुआ है । पदों में लालित्य भी है । लेखिका ने आचार्य वीरसागर को नामोल्लेख करते हुए उन्हें आचार्य शिवसागर का गुरु बताया है । आचार्य शिवसागर ने उनके चरण कमलों में ही विशुद्ध मन से निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण की थी। उन्होंने जीवों को मेघ के समान धर्मामृत की वर्षा करते हुए शिष्यों के साथ अनेक देशों में विहार किया था । इस विषय का आर्यिका सुपार्श्वमती ने इसमें उल्लेख किया है-

यो वीरसागर गुरोश्चरणारविन्दे धृत्वा तु शुद्धमनसा हि जिनेन्द्रमुद्राम् ।
धर्मामृतं तनुभृतां धनवत्प्रवर्तन् शिष्यैः सहैव विजहार बहूंश्च देशान् ॥ (1)

आर्यिका सुपार्श्वमती की रचनाओं में प्रवाह है । वर्णन शैली चित्ताह्लादक है । उन्होंने आचार्य शिवसागर महाराज के चरण कमलों की सहर्ष आदरपूर्वक अपनी अभ्यर्चना किये जाने का उल्लेख करके, उन्हें संसार ताप को शान्त करने के लिए चन्द्रमा और भव्य जन रूपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य की उपमा दी है -

संसारताप परिमर्दनशीतरश्मिं भव्याब्जबोधनविधौ दिननाथतल्यम् ।
कल्याणसागरगुरोश्चरणारविन्दं संपूजयामि समुदा महतादरेण ॥ (5)

आर्यिका सुपार्श्वमती की चौथी रचना आचार्य चन्द्रसागर-स्तुति है । इसमें आठ पद्य हैं ।[119] जिन्होंने आचार्य शान्तिसागर गुरु के चरण कमलों में सभी सुखों को देने वाली जिनेन्द्र-दीक्षा धारण की । जिनके चरणकमलों की राजाधिराज और देव सेवा करते हैं, उन गुरु चन्द्रसागर महाराज की हृदय में आर्यिका सुपार्श्वमती भावना भाती है । पद्य है -

यः शान्तिसागरगुरोश्चरणारविन्दे जग्राह सर्वसुखदां हि जिनेन्द्रदीक्षाम् ।
राजाधिराज सुर-सेवित पाद-पद्मं तं चन्द्रसागरगुरुं हृदि भावयामि ॥ (1)

रचना के अन्त में आर्यिका माता ने आचार्य की माता का नाम सती सीता और पिता का नाम विद्वान नथमल बताया है तथा आचार्य चन्द्रसागर की वन्दना की है -

माता सीता सती यस्य नथमल्लः पिता बुधः ।

पाँचवीं स्फुट रचना है - आचार्य शिवसागरस्तोत्र । इसमें आर्यिका सुपार्श्वमती ने काव्योचित भाषा में छह श्लोकों की रचना की है । श्लोकों के प्रथम तीनों चरणों में आचार्य श्री की विशेषताओं का तथा चौथे चरण में आर्यिका माता द्वारा आचार्य श्री को नमन किये जाने का उल्लेख है। उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है दो पद्य -

मुक्ति रूप अङ्गना के लिए जिनेन्द्र द्वारा रची गयी रत्नत्रयरूपी माला को अपने गले में पहिनकर जो पृथिवी पर श्रेष्ठ हुआ है, उन शिवसागर महाराज को आर्यिका सुपार्श्वमती नमन करती है -

मुक्त्याङ्गनायै रचिता मनोज्ञा रत्नत्रयीस्त्रग् भुवि या जिनेन ।
तां कण्ठमासाद्य बभूव श्रेष्ठो वन्दे मुनीशं शिवसागरं तम् ॥ (2)

यह भी कहा गया है कि आचार्य श्री को प्रशंसा सुनकर सन्तोष नहीं मिलता था। इसी प्रकार विरोधियों पर वे रोष भी नहीं करते थे । सभी जीवों पर उनके कृपा भाव था । ऐसे सूरीश्वर को प्रणाम करते हुए इस रचना में उनके इन गुणों को इस प्रकार समावेश किया गया है -

प्रशंसितो यो न दधाति तोषं, विरोधितो यो न बिभर्ति रोषम् ।
सर्वेषु जीवेषु कृपां दधानं सूरीश्वरं तं प्रणमामि भक्त्या ॥ (3)

इस प्रकार इन रचनाओं में काव्योचित भाषा का प्रयोग है । भाषा अलङ्कारों से अलङ्कृत, प्रसाद और माधुर्य गुण को से युक्त शान्त रस प्रधान है । भाषा मर्मज्ञता का प्रतीक है ।

परमपूज्य १०८ श्री आचार्य अजितसागर जी महाराज[120]

गुरुस्तवन :

आर्यिका श्री ने आचार्यप्रवर अजितसागर महाराज की स्तुति संस्कृतबद्ध छह श्लोकों में की है - तथा "भक्त्या नमामि सततं स्वजिताब्धिसाक्षम्" कहकर प्रबल भक्ति भावना का परिचय दिया है । इस रचना में आचार्यवर की प्रभामयी प्रतिमा एवं मानवतावादी दृष्टिकोण का विवेचन हुआ है । अथ पूजा लिख्यते (संस्कृत पूजा) आर्यिका श्री ने आचार्य प्रवर अजितसागर महाराज पर (संस्कृत पूजा) अथ पूजा लिख्यते से प्रारंभ कर बारह संस्कृत पद्यों में पुष्पाञ्जलि अर्पित की है । अर्थात् विधिपूर्वक आचार्य श्री का आह्वान करके उनकी आराधना की है -आराध्य मुनि श्री को जन्मजरामृत्यु के नाश हेतु जल, सांसारिक संताप से मुक्ति हेतु चन्दन, अक्षयपद प्राप्ति हेतु अक्षत कामवाण से मुक्ति हेतु पुष्प भूख और बीमारी के नाश हेतु नैवेद्य,

मोहान्धकार के नाश हेतु दीप, अष्टकर्म समाप्ति हेतु धूप मोक्ष हेतु फल तथा अनर्घपद प्राप्ति हेतु अर्घ्य सहित समपर्ण स्वाहा देने के हवन आयोजन को प्रतिपादित किया है ।

''यजे सदाजिताब्धिसूरिं मुदा सुखप्रदम् ॥''

जयमाला :

जयमाला में आचार्य अजित सागर के महनीय व्यक्तित्व और लोकोत्तर कीर्ति का सादर संस्मरण बारह पद्यों में हुआ है, उन्हें कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, कामधेनु, स्वर्णिकसुख दाता, विश्वबन्धुत्व के प्रतीकात्मक विशेषणों से अलङ्कृत किया गया है - उनके-चरणों की वन्दना करते हुए रचयित्री की कल्पना द्रष्टव्य है -

संसारताप पवनाशनवैनतेय श्री भारतावनिविभूषण पूज्यपाद ।
शीतांशुशुभ्र यशसा परिवर्धमान भक्त्या नमामि तवपादयुगं मुनीन्द्र ॥ (2)

सम्यक्त्वत्रय से सुशोभित, पवित्र देह सद्गुरु आप शान्तिसागर जी महाराज के उत्तराधिकारी श्रीवीरसागर महाराज के सुशिष्य आपको नमन है। इस प्रकार रचयित्री ने जयमाला के अन्तर्गत आचार्य अजितसागर महाराज के बहुमुखी एवं अन्तरङ्ग व्यक्तित्व का सूक्ष्म विवेचन किया है ।

आचार्य धर्मसागर स्तुति[१२२]

''श्री आचार्य धर्मसागर स्तुतिः'' संस्कृत के आठ श्लोकों में निबद्ध स्पष्ट रचना है।

इसमें आचार्य श्री धर्मसागर महाराज की स्तुति प्रस्तुत है, अतः श्री धर्मसागर स्तुतिः नाम सवर्था उपयुक्त है ।

आचार्य प्रवर के प्रति विशेष श्रद्धा, भक्ति होना ही रचयित्री का मूल उद्देश्य है।

इसमें महामुनि धर्मसागर की दिव्य कीर्ति लोक कल्याणकारी स्वरूप का विवेचन किया गया है - संसार समुद्र में डूबने वालों के पथप्रदर्शक, सांसारिक तापों के विनाशक, उदारता और करुणा की मूर्ति मोह रूपी अन्धकार के लिए सूर्य स्वरूप हे धर्मसागर मैं आपको भक्तिपूर्वक नमन करती हूँ। अशान्त एवं कलुषित चरित्र आपके दर्शन से प्रसन्न और शान्ति लाभ प्राप्त करता है - हे महर्षि आपके चरण कमलों की भक्ति की आकाङ्क्षिणी में सद्-वचन, और कर्म से आपके समक्ष श्रद्धावनत हूँ। आपका पूजन करती हूँ - ''मां देहि वाञ्छितफलं गुरुधर्मसिन्धो !''

इस प्रकार आर्यिका श्री ने आचार्य धर्मसागर के तेजस्वी व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए उनकी मनसा, वाचा, कर्मणा आराधना की है ।

आर्यिका सुपार्श्वमति जी द्वारा सम्पादित महत्त्वपूर्ण संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थ एवं हिन्दी की मौलिक रचनाएँ

नारी का चातुर्य - ग्रन्थ में आपने नारी जागृति का सजीव विवेचन किया है । ''नारी नर की खान है - यदि नारी सुशिक्षित होगी तो समाज की रचना भी तदनुरूप ही होगी'' कुछ अविस्मरणीय जैन नारियों के माध्यम से उक्त विचारधारा का पल्लवन ''नारी चातुर्य'' में हुआ है - इसमें नारी की महत्ता प्रतिपादित है । यह ग्रन्थ 1976 में प्रकाशित हुआ है।

मेरा चिन्तवन[१२३]

इसमें परिणामों के लिए और अशुभ से बचने के लिए [illegible] विसर्जन सम्बन्धी प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया गया है । ग्रन्थ के अन्तिम भाग में "जिनवर पच्चीसी" हिन्दी के छप्पय छन्दों में प्रस्तुत है और इन्दुमती जी की वन्दना [illegible] है । यह रचना मानवीय दृष्टिकोण को निर्मल बनाने में सहायक सिद्ध होगी ।

षट्प्राभृतम्[१२४]

यह श्रीमत् कुन्द कुन्दाचार्य देव प्रणीत प्राकृत रचना है । इसका संस्कृत अनुवाद श्री श्रुतसागराचार्य ने किया और हिन्दी टीका आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी ने की है।

वरांग चरित्र[१२५]

इसमें वराङ्ग नामक राजकुमार के संयमपूर्वक जिनमुद्राधारण करने और परिग्रह त्याग कर केवलज्ञान प्राप्ति तथा शिवनारी का वरण करने का वृत्तान्त वर्णित है । मानवता की शिक्षाओं से ओत-प्रोत वरांग का जीवन चरित्र आदर्श बन पड़ा है ।

रत्नत्रय की अमरबेल[१२६]

इस कृति में तीन लेख हैं - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन लेखों के माध्यम से जैनागम का सार, मोक्षमार्ग का साक्षात्कार कराने और युवावर्ग को धर्म का मर्म समझाने का पूर्ण प्रयास किया गया है । मानव जीवन में दर्शन, ज्ञान, चारित्र के प्रति आस्था उत्पन्न की गई है ।

श्री जिनगुण सम्पत्ति व्रत विधान[१२७]

जैन शास्त्रों में शुभापयोग के कारण भूत व्रतविधानों में "जिनगुण सम्पत्ति भी एक महान् व्रत है । जिनगुण सम्पत्ति से अभिप्राय: है - जिनेन्द्र भगवान् की गुणरूपी सम्पत्ति की प्राप्ति वे गुण हैं - आठ प्रातिहार्य, पञ्चकल्याणक और चौतीस अतिशय इनकी कारणभूत है - सोलह कारण भावनाओं को भी "जिनगुण सम्पत्ति कह देते हैं । व्रतों के उद्यापन में 63 पूजाओं का उल्लेख है, जो संस्कृत में है और अप्राप्त है । आर्यिका श्री ने इसी भाषा पूजा की रचना की है जिसमें जिनगुण सम्पत्ति पूजा का विधान समुच्चय पूजा जयमाला, सोलहकारण पूजा, पञ्चकल्याणक पूजा, अथाष्टक पञ्चकल्याणक अर्घ्य, अष्टप्रातिहार्य पूजा, अष्टप्रातिहार्य अर्घ्य, जन्मातिशय पूजा, केवलज्ञानातिशयपूजा, देवकृतातिशय पूजा, समुच्चय जयमाला आदि का विशेष विवेचन इस कृति में है ।

"जिनगुणसम्पत्तिव्रतोद्यापनम् - संस्कृत पद्यों में आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण व्रत विधान विषय का ग्रन्थ है ।

सागार धर्मामृत[१२८]

यह ग्रन्थ महापण्डित आशाधर द्वारा संस्कृत में रचित धर्मशास्त्र है। इसका अनुवाद श्री 105 सुपार्श्वमति माता जी ने किया है । इसका सम्पादन एवं संशोधन पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री जी ने किया है । यह रचना श्री आदिचन्द्रप्रभ आचार्य श्री महावीर कीर्ति सरस्वती प्रकाशनमाला का चतुर्थ पुष्प है ।

आर्यिका ज्ञानमतीमाता जी

जीवन परिचय :

आपका जन्म ईसवी 1934 के आसोज मास की पूर्णिमा तिथि में टिकैतनगर (बाराबंकी) में अग्रवाल अन्वय के गोयल गौत्र में सेठ छोटेलाल जी के घर हुआ था। मोहनदेवी आपकी मातेश्वरी हैं । आपके चार भाई और नौ बहिनें हैं । बाल्यावस्था का नाम "मैना" था । आपको वैवाहिक बन्धन इष्ट नहीं हुआ । ब्रह्मचर्य की आराधना स्वरूप उन्नीस वर्ष की उम्र में आपने ईसवी उन्नीस सौ बावन में शरत् पूर्णिमा के दिन बाराबंकी में आचार्य देशभूषण महाराज से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत और ईसवी उन्नीस सौ त्रैपन में चैत वदी एकम के दिन श्री महावीर जी में क्षुल्लक दीक्षा ली थी। क्षुल्लक अवस्था का नाम वीरमती था । आर्यिका दीक्षा स्व. वीरसागर महाराज से ईसवी उन्नीस सौ छप्पन में माधोराजपुरा (जयपुर) में ली थी । अब आपका नाम ज्ञानमती रखा गया था ।

वैदुष्य - जैन साहित्य की आपने अपूर्व सेवा की है । अष्टसहस्री का हिन्दी अनुवाद, इन्द्रध्वज विधान, मूलाचार और नियमसार आदि अनेक रचनाएँ हैं, जिनसे समाज लाभान्वित हुआ । "सम्यग्ज्ञान" मासिक पत्रिका आपकी ही देन है ।

हस्तिनापुर आपकी कर्मस्थली है । यहाँ आपके द्वारा जम्बूद्वीप की रचना करवायी गयी है । जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति रथ का प्रवर्तन करके जन-जन को ज्ञान ज्योति से आलोकित करने की योजना आपकी सूझ-बूझ का ही प्रतिफल है ।

आप बहुश्रुताभ्यासी, चरित्रकुशल आर्यिका हैं । आपके कुशल नेतृत्व में जो हस्तिनापुर का विकास हो रहा है वह युगों-युगों तक आपके कृतित्व और व्यक्तित्व को उजागर करता रहेगा ।[129]

आर्यिका ज्ञानमती की संस्कृत रचनाएं :

आर्यिका ज्ञानमती की संस्कृत में तीन स्फुट रचनाएँ प्राप्त हैं । वे क्रमशः आचार्य शान्तिसागर, आचार्य शिवसागर और आचार्य महावीरकीर्ति महाराज की स्तुतियों के रूप में प्रकाशित हुई हैं ।

आचार्य शान्तिसागर स्तुति में आठ पद्य हैं ।[130] आर्यिका ज्ञानमति ने अपनी इस रचना में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महाराज की स्तुति करते हुए उन्हें रत्नत्रय और सद्व्रतों से विभूषित, चतुर्विध सङ्घ का स्वामी मोह महामल्ल का विजेता तथा श्रेष्ठ मुनि होने की उद्घोषणा की है -

सुरत्नत्रयै सद्व्रतैर्भाज्यमानः चतुःसङ्घनाथो गणीन्द्रो मुनीन्द्रः
महामोह-मल्लैक-जेता यतीन्द्र स्तुवे तं सुचारित्रचक्रीश सूरिम् (1)

माता जी ने आचार्य श्री के द्वारा ताम्रपत्र पर महान् ग्रन्थ षट्खण्डागम के उत्कीर्ण कराये जाने को एक महान कार्य बताते हुए उसके चिरस्थायी होने की कामना की है।

महाग्रन्थराजं सुषट्खण्डशास्त्रं सुताम्रस्यपत्रै समुत्कीर्णमेव ।
अहो ! त्वत्प्रसादात् महाकार्यमेतत् प्रजातं सुपूर्णं चिरस्थायि भूयात् ॥

आचार्य श्री की पद्य परम्परा में वीर सागर, शिवसागर और महाराज धर्मसागर के नामों का उल्लेख किया गया है -

अनेके सुशिष्याः प्रसिद्धा तवेद्ध, स्तुवे वीरसिंह महाचार्यवयः ।
शिवाब्धिं च सूरिं गुणाब्धिं समुद्रं मुदा पट्टसूरिं स्तुवे धर्मसिन्धुम् ॥ (4)

दूसरी रचना आचार्य शिवसागर महाराज की स्तुति है । इसमें कुल ग्यारह पद्य हैं[131] इनमें अन्तिम पद्य अनुष्टुप् छन्द में और शेष बसन्ततिलका छन्द में निर्मित है ।

आर्यिका ज्ञानमती ने आचार्य शिवसागर महाराज की स्तुति करते हुए, उन्हें आचार्य वीरसागर महाराज के शिष्यों में श्रेष्ठ शिष्य बताया है । उन्होंने उन्हें रत्नत्रय रूपी निधि की रक्षा करने में प्रयत्नशील, श्रेष्ठ आचार्य तथा मुनिवृन्द से सेवि होने का उल्लेख भी किया है-

श्री वीरसागर मुनीश्वर शिष्यरत्न, रत्नत्रयाख्य–निधिरक्षण सुप्रयत्नः।
आचार्यवर्य मुनिवृन्द सुसेव्यमान, भक्त्या नमामि शिवसागरपूज्यपादम् ॥ (1)

आचार्य श्री मासोपवासी थे । शुभकर्म निष्ठ थे । स्वाध्याय और ध्यान में लीन रहते थे । साधुओं के द्वारा सेवित थे । परीषहों के परम् विजेता थे । ऋषियों द्वारा पूज्य थे । आर्यिका ज्ञानमती ने अपने शिव-सुख की प्राप्ति में आचार्य श्री को हेतु होने की कामना की है -

मासोपवासचरणः शुभकर्मनिष्ठः स्वाध्यायध्यानरतसाधुभिरीड्यमानः ।
मुख्यः परीपहजयी ऋषिरादिपूज्यः भूयात् स मे शिवनिधिः शिवसौख्यसिद्धयै ॥ (10)

अपने और जगत के सभी भव्य जीवों के कल्याण की कामना करते हुए अन्त में आर्यिका ज्ञानमती ने आचार्य श्री की नित्य वन्दना करने का उल्लेख किया है -

मया संस्तूयते नित्यं शिवसिन्धुर्मुनीश्वरः ।
कुर्याच्छिवं सुभव्याय मह्यं च जगतेऽपि च ॥ (11)

तीसरी रचना का शीर्षक है - श्री महावीर कीर्त्याचार्य स्तुति[132]

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी निधि के धारक, अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों प्रकार के परिग्रहों से रहित, वस्त्र-विहीन मुनीन्द्र आचार्य महावीरकीर्ति, महाराज को करुणा और पुण्य का सागर निरुपित करते हुए आर्यिका ज्ञानमति ने इन विशेषणों का भुजङ्गप्रयात् छन्द में निम्न प्रकार उल्लेख किया है -

सुरत्नत्रयाख्यं निधिं संदधानः तथापि द्विधासङ्गमुक्तो विवस्त्रः ।
सुकारुण्य पुण्यस्य रत्नाकरो यः स्तुवे तं महावीरकीर्तिं मुनीन्द्रम् ॥ (1)

आचार्य श्री रागी भी थे और विरागी भी, आर्यिका ज्ञानमती जी उन्हें पञ्च परमेष्ठियों में राग होने से रागी और इन्द्रिय-विषयों में राग न होने से विरागी निरूपित किया है। माता जी ने भव्य जनरूपी कमलों के विकास में आचार्य श्री को सूर्यस्वरूप और सिद्धान्त रूपी समुद्र के लिए चन्द्र स्वरूप मानने सम्बन्धी उनके इन विचारों की निम्न पदावली में अभिव्यक्ति हुई है ।

पञ्चगुरुषुरागी सन्, विरागी विषयेषु च ।
भव्याम्भोरुह भास्वांस्त्वं सिद्धान्ताम्बुधिचन्द्रमाः ॥ (3)

आर्यिका ज्ञानमति ने इन्हीं आचार्य से विद्या प्राप्त की थी । उन्होंने विद्या प्राप्त करके शीघ्र अविनश्वर सुख और ज्ञान प्राप्ति की भी कामना की है -

भगवंस्त्वत्प्रसादेन लब्ध्वा विद्यां सुदुर्लभाम् ।
प्रतिपित्साम्यहं तुर्यज्ञानं सौख्यमनश्वरम् ॥ (10)

अन्म में परम् योग-सिद्धि के लिए अपने गुरु को नमन करते हुए कहा है - नमोऽस्तु गुरुवर्याय ! परमयोगसंसिद्धये ।

श्री पञ्चमेरु स्तुति[१३३]

आर्यिका श्री की "श्री पञ्चमेरु स्तुति" रचना स्तोत्रकाव्य है । यह 6 पद्यों में निबद्ध है । इसमें पाँच पर्वतों पर जिनालयों के स्थित होने के कारण उनकी महत्ता प्रतिपादित है। जिनेश्वरों द्वारा सेवित होने के कारण ये पञ्चमेरु दर्शनीय, पवित्र और पूज्य हैं । इनके दर्शन करने से मानव जीवन की समस्याओं का निराकरण होता है और मनोकामनाओं की पूर्ति होती है ।

सः जयतु गुरुवर्यः[१३४]

आकार - "सः जयतु गुरुवर्यः" रचना संस्कृत के ग्यारह श्लोकों में निबद्ध स्फुट काव्य है ।

नामकरण - रचयित्री ने अपने गुरुवर की विजय कामना करने के कारण ही इसका नामकरण "सः जयतु गुरुवर्यः" किया है ।

रचनाकार का उद्देश्य - आचार्य धर्मसागर जी के जीवनादर्शों से जनजीवन को अवगत कराना ही रचना के सृजन का मूलाधार है ।

अनुशीलन - प्रस्तुत कृति के आधार पर कहा जा सकता है - कि आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज राजस्थान के गम्भीर ग्राम में खंडेलवाल कुल, छाबड़ा गौत्र के श्री बख्तावरमल नामक व्यापरी के यहाँ उत्पन्न हुए - आपकी माँ का नाम उमराबाई है । आचार्य श्री का जन्म पौष पूर्णिमा को हुआ । आपके बचपन का नाम चिरंजीलाल है । गुरुवर चन्द्रसागर से आपने क्षुल्लक तथा वीरसागर जी के सान्निध्य में ऐलकत्व धारण किया । इस प्रकार आप "धर्मसागर" के नाम से जाने गये ।

सिद्धक्षेत्र चन्दन ग्राम में कार्तिक माह की पूर्णिमा को आचार्य शिवसागर जी महाराज ने उत्तराधिकार स्वरूप अपना आचार्य पद आपको सौंप दिया ।

इस प्रकार प्रस्तुत कृति में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के जीवनक्रम का संक्षिप्त विवेचन है ।

"तं धर्मसागरमुनीन्द्रमहं प्रवन्दे"[135] (श्री धर्मसागराष्टकम्)

आकार - तं धर्मसागरमुनीन्द्रं प्रवन्दे" नामक कृति आठ श्लोकों में आबद्ध स्पष्ट काव्य है ।

नामकरण - मुनिवर धर्मसागर जी महाराज के प्रत्येक छन्द की अन्तिम पंक्ति में सादर नमन करने के कारण रचना का नामकरण "तं धर्मसागरमुनीन्द्रं प्रवन्दे" सर्वथा उचित है।

रचनाकार का उद्देश्य - यद्यपि रचयित्री को आचार्य श्री से सङ्घ में सम्मिलित होने का गौरव प्राप्त है अतः आचार्य श्री के प्रति जाग्रत श्रद्धा, भक्ति भाव ही प्रस्तुत कृति के सृजन का मूलोद्देश्य है ।

अनुशीलन - आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज मिथ्यात्व के नाशक, धीर-वीर गम्भीर, क्रोध जीतने वाले शून, मुक्ति पथ के साधक, अध्यात्म के ज्ञाता, जितेन्द्रय स्वाध्यायी, सम्यक्त्व

एवं शीलादि से मण्डित मुनीश्वर हैं । शिष्यों को तीर्थतुल्य और भक्तों के मार्गदर्शक हैं । उन्हें सादर नमन अर्पित है ।

आर्यिका विशुद्धमती माता जी

अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगी, सर्वतोमुखी प्रतिभा और वैदुष्य मंडिता श्री 105 आर्यिका विशुद्धमति माता जी का गृहस्थावस्था का नाम सुश्री सुमित्रा बाई था । आपका जन्म जबलपुर जिले के ''राठी'' नगर में स्व. सिंघई लक्षमण प्रसादजी के घर हुआ । सुप्रतिष्ठित मनीषीश्री नीरज जी और श्री निर्मल जी आपके भाई हैं । प्रारम्भिक शिक्षा के उपरान्त आपने पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य से संस्कृत और प्राकृत भाषाओं तथा सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन किया। अध्ययन के उपरान्त वे सागर के श्री दिगम्बर जैन महिला आश्रम की प्राचार्य भी बनीं, आपके कार्यकाल में संस्था ने बहुमुखी प्रगति की। वे इसी संस्था में कार्य करते हुए निवृत्ति मार्ग की और अग्रसर हुई और पपौरा सिद्ध क्षेत्र में आचार्य शिवसागर से आपने दीक्षा ली । स्वाध्याय, चिन्तन, स्व-पर कल्याण साहित्य प्रणयन आपकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं । अपने त्रिलोकसार जैसे गहन गम्भीर सफल ग्रन्थराजों का सम्पादन और अनुवाद किया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उनकी कतिपय स्फुट रचनाओं का अनुशीलन किया गया है। भाषा में हृदयहारी लावण्य और देशकाल की सांगोपांग विवृति प्रसाद गुणपूर्ण शैली में प्रस्तुति आपकी विशेषता है ।

''अष्टोत्तरशत नामस्तोत्रम्''[१३६]

आकार - ''अष्टोत्तरशत नामस्तोत्रम्'' रचना संस्कृत के सोलह श्लोकों में निबद्ध स्तोत्र काव्य है ।

नामकरण - प्रस्तुत स्तोत्र में आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज को सविशेष शत नामों से सम्बोधित करने के कारण ही इस रचना का नामकरण ''अष्टोत्तरशत नाम स्तोत्रम्'' किया गया है ।

रचनाकार का उद्देश्य - विवेच्य कृति के अन्तिम पद्य में प्रयुक्त ''जीवन हितकारम्'' का आशय यह है - कि प्राणियों के हित के लिए इस कृति का प्रणयन हुआ है ।

अनुशीलन - इस कृति में आचार्यवर धर्म सागर जी महाराज के गुणों, जीवनादर्शों एवं विशेषताओं की विवेचना है । उनके लिए प्रयुक्त प्रमुख उद्‌बोधन इस प्रकार है - भद्रमूर्ते धर्ममूर्ति, हितभाषी, मितभाषी, त्यागज्येष्ठ, तपोज्येष्ठ, गुणज्येष्ठ, वयोज्येष्ठ, महासुधी, महाव्रती, धर्मरक्षी, दयारक्षी, शिष्यरक्षी शीलरक्षी, सुनायक, सुतारक, आत्मज्ञानी, गुणज्ञ, अतन्द्राल, सौम्यमूर्ति, सुविज्ञानी, पञ्चाचारपरायण, निर्विकार, सुमेधस, आदि । अधोलिखित पद्य में भावुक निवेदन है ''धर्माम्भोधि-र्दयाम्भोधिः, क्षमाम्भोधि-र्दिगम्बरः

ज्ञानाम्भोधिः - कृपाम्भोधिः सिद्धान्ताम्बुधिः - चन्द्रमा

इस प्रकार अष्टोत्तरशत नामस्तोत्र में एक मुनिवर का गुणानुवाद की सफल व्याख्या हुई है ।

आर्यिका जिनमती माता जी

आपका गृहस्थावस्था का नाम प्रभावती था । म्हसबड (महाराष्ट्र) आपकी जन्मभूमि है । श्री फूलचन्द जी आपके पिता और कस्तूरीबाई माता थी। कमड जाति को अपने जन्म

से गौरवान्वित किया था । माता-पिता बचपन में स्वर्गवासी हो गये थे । एक भाई और एक बहिन सहित आश्रय रहित होकर आप अपने मामा के घर गयी । वहीं आपका लालन-पालन हुआ। आर्यिका ज्ञानमती के सम्पर्क में आकर आपने सोलह वर्ष की अवस्था में ही ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था । संवत् 1212 में माधोराजपुरा में आचार्य वीरसागरजी से क्षुल्लिका दीक्षा तथा संवत् 2019 में सहकर में आचार्य शिवसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की थी । आप चारित्रशुद्धिव्रत करती हैं[137]

''शिवाष्टक स्तोत्र''[138] आपकी एक स्फुट रचना है । इस रचना में 10 पद्य हैं। आदि और अन्तिम पद्य अनुष्टुप छन्द में तथा शेष पद्य शिखरिणी छन्द में है ।

आपने शिवसागर महाराज को मूल सङ्घ का चन्द्रमा बताकर उन्हें आचार्य वीरसागर का शिष्य तथा नेमिचन्द्र का पुत्र बताया है -

सुशिष्यो वीरसिन्धोर्यो मूलसङ्घस्य चन्द्रमाः ।
नेमिचन्द्रात्मजः सूरिः स्तुवे तं शिवसागरम्

आचार्य को अपना नयन पथगामी होने की कामना करते हुए आर्यिका जिनमती जी ने आचार्य श्री की विद्वत्ता मुनियों द्वारा मान्य बताई है । वे कृश काय थे, उनके संघ में अनेक यति थे, जन-जन में जैन मार्ग में सुखकारी रुचि उत्पन्न करते थे । इन भावों को माता जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है -

यदीयं सूरित्वं जगति विदितं सर्वमुनिभिः,
कृशाङ्गः सङ्घेयः धरति सुविशालं यतिगणम् ।
रुचिर्मार्गे जैने नयति जनतां या सुखकरं,
शिवाचार्यः सो यं नयनपथगामी भवतु मे ॥ (1)

शेष अन्य पद्यों में भी इसी प्रकार आचार्य के गुणों का उल्लेख किया गया है।

क्षुल्लिका राजमती माता जी

जीवन - आपका जन्म दक्षिण भारत में हुआ था । आप मुनि जम्बुसागरजी की पूर्व अवस्था की धर्मपत्नी हैं । पूज्य मुनि श्री का सम्पर्क प्राप्त करते रहने से उनसे प्रभावित होकर आपने पूज्य पायसागर महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ली थी । आप पूजा-पाठ, विधि विधान बराबर कराती रहती हैं ।[139]

रचना - आपकी एक रचना आचार्य शान्तिसागर महाराज के सम्बन्ध में प्रकाशित हुई है ।[140] इस रचना में अनुष्टुप् छन्द में निर्मित नो श्लोक हैं । दो श्लोक उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं ।

क्षु. राजमती जी आचार्य शान्तिसागर जी की परम भक्त ज्ञात होती हैं । आपने अपनी रचना में आचार्य श्री की सर्प सम्बन्धी घटना का उल्लेख भी किया है । गले में लिपटकर और सिर पर फण फैलाकर सर्प के स्थित हो जाने पर भी धीर वीर आचार्य विचित नहीं हुए थे । वे महान् ओजस्वी, ध्यानी और ज्ञानी थे । यह प्रसङ्ग निम्न प्रकार वर्णित है -

उरग-वैष्टितं कायं धीरं-वीरं स्थिरासनम् ।
महौजस महाध्यानी ज्ञानसाम्राज्यभास्करम् ॥ (7)

अन्तिम पद्य में माता जी ने अपने नाम एवं पद का उल्लेख करते हुए मनसा वाचा कर्मणा विशुद्धिपूर्वक आचार्य श्री को नमन किया है-

राजीमती समाख्याता क्षुल्लिकापदमाश्रिता ।
त्रिकरणेन शुद्धेन नमामि यतिनायकम् ।। (9)

इस प्रकार सम्पूर्ण रचना में सबल भाषा का प्रयोग है । अध्यात्म की गहराई है। तप की उत्कृष्टता का बोध और आचार्य श्री के गुणों का गान है ।

उपसंहार – प्रस्तुत तृतीय अध्याय में संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के उन जैन मनीषियों के जीवन दर्शन और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है, जो संसार, शरीर और भोगोपभोग के साधनों से विरक्त होकर जैन दर्शन के अनुसार अपने व्यक्तित्व का चरम विकास करते हुए मोक्ष मार्ग के उत्कृष्ट अनुगामी हैं । इसमें परम्पूज्य जैन आचार्यों और मुनियों के अतिरिक्त साध्वियों आर्यिकाओं आदि के प्रकृष्ट योगदान का विवेचन किया गया है । जैन मनीषियों (गृहस्थ) के योगदान का विश्लेषण आगामी चतुर्थ अध्याय में किया गया है ।

फुट नोट

1. विस्तार के लिए देखिये - द जैनस् इन द हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर: अहमदाबाद 1946 पृष्ठ 4
2. देखिये - अनुयोग द्वार सूत्र : ब्यावर प्रकाशन: सूत्र संख्या 127
3. विशेष विवरण के लिए देखिये - जैनमित्र (साप्ताहिक, मुनि श्री ज्ञानसागर का संक्षिप्त परिचय, वीर संवत् 2492, वैशाखसुदी 8, 24.4.1966 पृष्ठ 253
4. वीरोदय आ. ज्ञानसागर, प्रकाशक मुनि श्री ज्ञानसागर जैन ग्रन्थमाला, पृष्ठ 3, ब्यावर (राजस्थान) प्रथम संस्करण 1968 ई.
5. वीरोदय 8.6.124
6. वीरोदय 9.17.141
7. (अ) जयोदय, आ. ज्ञानसागर, प्रकाशन-ब्रह्मचारी सूरजमल (सूर्यमल जैन) श्री 108 (भूरामलशास्त्री) श्री वीरसागर जी महामुनि का सङ्घ, जयपुर प्र. सं. 2476 वी. नि. सं. सन् 1950
   (ब) जयोदय के त्रयोदश सर्गों का प्रकाशन - मुनि ज्ञानसागर ग्रन्थमाला पृष्ठ 5 ब्यावरं (राज.) सन् 1978
8. जयोदय 7.34.346
9. जयोदय 12.21.567
10. सुदर्शनोदय, आ. ज्ञानसागर प्रकाशित मुनि श्री ज्ञानसागर जैन ग्रन्थमाला (मंत्री प्रकाशचन्द्र जैन) ब्यावर (राजस्थान) प्रथम संस्करण 1966 ई.
11. सुदर्शनोदय 2.9.27
12. वही 2.37.38
13. सुदर्शनोदय 3.15.48
14. सुदर्शनोदय 4/ पद्य 17 से 27 तक
15. सुदर्शनोदय 5.19.98
16. सुदर्शनोदय 8.10.147
17. सुदर्शनोदय 8.15.150

18. सुदर्शनोदय 9.86.193
19. दयोदय चम्पू, आचार्य ज्ञानसागर कृत, प्रकाशक - आचार्य ज्ञानसागर ग्रन्थमाला पुष्प 1, ब्यावर, राजस्थान, प्रथम संस्करण 1966 ई.
20. दयोदय 1.23.13
21. दयोदय 2.25.44
22. श्री समुद्रदत्तचरित्र आ. ज्ञानसागर जी महाराज, प्रकाशक - समस्त दिगम्बर जैसवाल जैन समाज, अजमेर (राज.) वी. नि. सं. 2495 (सन् 1969 प्र. सं.)
23. सम्यक्त्वसारशतकम् - क्षु. श्री 105 श्री ज्ञानभूषण महाराज, प्रकाशक श्री दिगम्बर जैन समाज, हिसार, वीर नि. सं. 2482 प्र. सं. सन् 1956
24. सम्यक्त्व - सम्यक्त्व अर्थात् सम्यग्ज्ञान या आत्मा की शुद्ध अवस्था (सर्वज्ञता)
25. प्रवचनसार - श्री महावीरसांगका, पाटनी, किशनगढ़, रेनवाल ने सन् 1972 में प्रकाशित करवाया है ।
26. श्री शिवसागर स्मृति ग्रन्थ - वही पृष्ठ 2
27. विस्तार के लि देखिये - जैन गीता (भूमिका) पृष्ठ 8
28. निरञ्जन शतकम् - आ. विद्यासागर : प्रकाशक श्री सिद्धक्षेत्र कमेटी कुण्डलपुर (दमोह) सन् 1977 ई. तथा निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति, कलकत्ता, सन् 1978 ई.
29. निरञ्जन शतकम् - पद्य संख्या 22 पृष्ठ 11
30. निरञ्जनशतकम् - आ. विद्यासागर कृत पद्य पृष्ठ 17
31. निरञ्जनशतकम् - पद्य 45 पृष्ठ 23
32. ज्ञानोदय (परीषह जयशतकम्) प्रकाशक - संतोष कुमार जैन, श्री दिगम्बर जैन मुनिसंघ समिति, सागर 1982 ई.
33. सर्वार्थसिद्धि - आचार्य पूज्यपाद कृत प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, देहली तृ. संस्करण 9.3.791 पृष्ठ 321
34. सर्वार्थसिद्धि - आचार्य पूज्यपाद कृत 9.9.81 पृष्ठ 330
35. मार्गाच्यवनिनिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः सर्वार्थसिद्धिः आचार्य पूज्यपादकृत 9.8.812 पृष्ठ 329
36. ज्ञानोदय, (परीषहजय शतकम्) पद्य सं. 9 पृष्ठ 4-5
37. ज्ञानोदय पद्य सं. 10 पृष्ठ 4-5
38. ज्ञानोदय पद्य सं. 17 पृष्ठ 8-9
39. ज्ञानोदय पद्य संख्या 23 पृष्ठ 10-11
40. ज्ञानोदय पद्य संख्या 31 पृष्ठ 14-15
41. ज्ञानोदय पद्य संख्या 35 पृष्ठ 1
42. ज्ञानोदय पद्य संख्या 40 पृष्ठ 16-17
43. ज्ञानोदय पद्य संख्या 47 पृष्ठ 20-21
44. ज्ञानोदय, पद्य संख्या 52 पृष्ठ 22-23
45. ज्ञानोदय पद्य संख्या 54 पृष्ठ 22-23
46. ज्ञानोदय पद्य संख्या 58 पृष्ठ 24-25
47. ज्ञानोदय पद्य संख्या 63 पृष्ठ 26-27

48. ज्ञानोदय पद्य संख्या 68 पृष्ठ 28-29
49. ज्ञानोदय पद्य संख्या 71 पृष्ठ 30-31
50. ज्ञानोदय पद्य संख्या 77 पृष्ठ 32-33
51. ज्ञानोदय पद्य संख्या 80 पृष्ठ 32-33
52. ज्ञानोदय पद्य संख्या 85 पृष्ठ 34-35
53. ज्ञानोदय पद्य संख्या 87 पृष्ठ 36-37
54. ज्ञानोदय पद्य संख्या 95 पृष्ठ 38
55. ज्ञानोदय पद्य संख्या 100 पृष्ठ 41
56. ज्ञानोदय पद्य संख्या 99, पृष्ठ 40-41
57. ज्ञानोदय मङ्गल कामना पद्य 4 पृष्ठ 42
58. हरिणनदी के किनारे अवस्थित जबलपुर जिले की पाटन तहसील में कोनी क्षेत्र को विगत कतिपय वर्षों से कुण्डलगिरी के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुई है और आचार्य श्री ने यहीं पर अपनी इस रचना को पूर्ण किया है ।
59. ज्ञानोदय, (स्थान और समय परिचय) पद्य 1-2 पृष्ठ 42
60. सुनीति शतक - आचार्य विद्यासागर, प्रकाशक - विद्यासागर बाड़ी, ब्यावर (राजस्थान) वि. सं. 2044
61. सुनीति शतक पद्य 7 पृष्ठ 10
62. सुनीतिशतक पद्य 31 पृष्ठ 22
63. निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति, कलकत्ता, से प्रकाशित हुआ है ।
64. श्रमणशतकम्, श्लोक 16
65. श्रमणशतकम्, श्लोक 99
66. भावनाशतकम् - प्रकाशक - निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति, कलकत्ता, सन् 1979ई.
67. शब्दस्तोम महानिधि : पृष्ठ 308
68. तत्त्वार्थ सूत्र 6/24
69. भावनाशतकम्, पद्य 28, पृष्ठ 19
70. भावनाशतकम्, पद्य 70, पृष्ठ 46
71. भावनाशतकम्, पद्य 94, पृष्ठ 61
72. मुकमाटी: आचार्य विद्यासागर : प्रकाशक - भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली, लोकोदय ग्रन्थमाला क्रमांक 465, सन् 1988 (प्रथम संस्करण)
73. शान्तिसुधासिन्धु, आ. कुन्थुसागर, प्रकाशक पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, मंत्री श्री आ. कुन्थुसागर ग्रन्थमाला, पुष्प 22, दिसं. 1949
74. शान्ति सुधा सिन्धु 1.52.42
75. शान्ति सुधासिन्धु 2.173.139
76. शान्तिसुधासिन्धु 3/259/209
77. शान्तिसुधासिन्धु 4/303/248
78. शान्तिसुधासिन्धु 4/353/289
79. समस्त दोषों से रचित आत्मा निरञ्जन है ।

80. स्वपर भेद विषयक पदार्थों का विवेक करने वाला आत्मा विज्ञान ज्योति है ।
81. कर्मों को नष्ट करने पर आत्मा स्वयं सिद्ध है ।
82. आत्मा मोक्ष का स्वामी होने के कारण स्वराज्यकर्ता है ।
83. मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि के कारण कृतार्थी कहा है ।
84. आत्मचिन्तनपूर्वक अनन्त आनन्द प्राप्त करता है ।
85. इन्द्रिय दमन के कारण दमीश्वर
86. चुपचाप चिन्तन मग्न रहने के कारण मोनी
87. सभी निधियों का स्वामी होने से यह धनेश कहलाता है ।
88. तीनों लोकों का स्वामी होने से यह नरेश है ।
89. शांतिसुधासिन्धु 5/520/426
90. श्रावक धर्म प्रदीप, आ. कुन्थुसागर, प्रकाशक, श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थ माला 1, 2 भदैनीघाट, बनारस वी. नि. सं. 2481
91. शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितीकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना.
92. विद्या का मद, प्रतिष्ठा का मद, कुल का मद, जाति का मद, बल का मद, धन का मद, सुन्दरता का मद, तपस्या का मद ।
93. कुदेव और उसका सेवक, कुशास्त्र और उसका पाठक, कुगुरू और उसका सेवक
94. लोकमुढ़ता, देवमूढ़ता, गुरुमूढ़ता
95. लोकभय, परलोकभय, वेदुनाभय, मरणभय, अरक्षाभय, अगुप्तिभय और अकस्माद्भय।
96. संवेग, निर्वेग, उपशम, स्वनिन्दा, गर्हा, अनुकम्पा, आस्तिक्य, वात्सल्य।
97. शङ्कातिचार, काङ्क्षातिचार, विचिकित्सा अतिचार, प्रशंसा अतिचार और संस्तव अतिचार।
98. श्रावक धर्म प्रदीप 3 पृष्ठ 80 ।
99. हिंसा, असत्य, चौर्य कामवासना, परिग्रह पञ्चपाप है ।
100. अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदारसंतोष (ब्रह्मचर्य) अपरिग्रह, पञ्चाणुव्रत है ।
101. मद्य त्याग, मांस त्याग, मधु त्याग, बड़, पीपल, पाकर अमर, कठमूर फलों का त्याग।
102. पञ्चाम्बु त्याग अतिचार, मांस त्याग अतिचार, मद्य त्याग अतिचार मधु त्याग अतिचार।
103. जुआ त्याग अतिचार, वैश्या त्याग अतिचार, चौर्य त्याग अतिचार, शिकार त्याग अतिचार, परस्त्री सेवन त्याग अतिचार, मद्य त्याग अतिचार, मांस त्याग अतिचार
104. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ।
105. क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य, ब्रह्मचर्य ये दस धर्म हैं ।
106. अनित्यभावना, अशरण भावना, संसार भावना, अन्यत्व भावना, एकत्व भावना, अशुचि भावना, आश्रव भावना, संवर भावना, निर्जरा भावना, बोधिदुर्लभ भावना, लोक भावना और धर्मानुप्रेक्षा ।
107. प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ।
108. अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, परस्त्रीसेवन त्यागव्रत और परिग्रह परिमाण व्रत

109. दिग्व्रत, देशविरति अनर्थदण्डविरति ।
110. सामायिकव्रत प्रोषधोपास, भोगोपभोग परिमाण, वैयावृत्यव्रत ।
111. सुवर्णसूत्रम् - आ. कुन्थुसागर - प्रकाशक आ. कुन्थुसागर ग्रन्थमाला, पुष्प नं. 31 वी. सं. 2467 (सन् 1941)
112. सुवर्णसूत्रम् - पद्य संख्या 2 पृष्ठ 9
113. विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ, वही पृ. 25-26
114. श्री शिवसागर स्मृति ग्रन्थ
115. दिगम्बर जैन साधु परिचय, पृ. 152-156
116. आचार्य महवीरकीर्ति स्मृति ग्रन्थ, वही, पृ. 19
117. आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 104
118. आचार्य श्री शिवसागर महाराज स्मृति ग्रन्थ, पृ. 19
119. आचार्य चन्द्रसागर स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ प्रथम
120. परम पूज्य 108 आचार्य अजितसागर जी महाराज : प्रकाशक ब्र. डा. प्रमिला जैन, गणिका आर्यिका सुपार्श्वमति माता जी की संघस्था वि. सं. 2044 (गौहाटी)
121. परम पूज्य 108 श्री आचार्य अजित सागर जी महाराज, पद्य 5 पृष्ठ 11
122. श्री आचार्य धर्मसागर स्तुतिः 'आचार्य धर्मसागर अभिनन्दनग्रन्थ पृ. 219 प्रकाशन, श्री दि. जैन नवयुवक मण्डल कलकत्ता, प्र. सं. वीर निर्वाण सं. 2508
123. प्रका. हरकचन्द्र भँवरलाल सरावगी पाण्ड्या, चेरिटेबल ट्रस्ट बापू बाजार, गौहाटी (आसाम) द्वि. सं सन् 1972
124. श्री मती शांति देवी बड़जात्या, केदारं रोड, गौहाटी प्र. सं., मई 1989
125. प्रकाशक, श्री भारत वर्षीय दिगम्बर जैन महासभ, 28 वां पुष्प डीमापुर 'नागालैंड' 1.8.88
126. अ. भा. शान्तिवीर दि. जैन सिद्धांत संरक्षिणी सभा, प्रो. श्री महावीर जी, सवाई माधोपुर (राजस्थान) प्रथम संस्करण 24.4.85
127. श्री प्रकाशक, श्री दिगम्बर जैन महिला समाज, बारसोई (कटिहार) बिहार, प्रथमावृत्ति कार्तिकपूर्णिमा वि.सं. 2053
128. सागार-धर्मामृत - प्रकाशन सौ. भंवरीदेवी पांड्या, धर्मपत्नी दानवीर रा. सा. सेठ चांदमल पांड्या जी सुजानगढ़ भाद्रपद शुक्ला 5 संवत् 2498, सन् 1972 ई. (राजस्थान)
129. दिगम्बर जैन साधु परिचय, पृ. 150-151
130. आचार्य शान्ति सागर जन्म शताब्दी स्मृति ग्रन्थ, प्रकाशक, मन्त्री श्री चारित्र चक्रवर्ती 108 आचार्य शान्तिसागर जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था, फलटण (महाराष्ट्र) ई 1973 पृ. 79
131. आचार्य शिवसागर शताब्दी स्मृति ग्रन्थ पृ.3-5
132. आचार्य महावीर कीर्ति स्मृत ग्रन्थः वही पृ.27
133. जैन गजट अजमेर, 2 सित. 1971 भाद्रपद शुक्ल 12 के पृष्ठ 1 से सन्दर्भित सम्पादक डा. पं. लालबहादुर शास्त्री, जैन गजट साप्ताहिक रंगमहल अजमेर

134. आचार्य श्री धर्मसागर अभिनंदन ग्रन्थ पृ. 217 प्रकाशक, श्री दि. जैन नवयुवक मंडल, महिर्षि देवेन्द्र रोड (दूसरामाला) कलकत्ता 700070 वीर निर्वाण संवत् 2508
135. आचार्य धर्मसागर अभिनंदन ग्रन्थ पृष्ठ 218 प्रकाशक, श्री दिगम्बर जैन नवयुवक मण्डल, कलकत्ता, वीर निर्वाण सं. 2508
136. आचार्य धर्मसागर अभिनन्दन ग्रन्थ के 220-221 पृष्ठ से उद्धृत प्रकाशक, श्री दिगम्बर जैन नवयुवक मण्डल, कलकत्ता, प्रथम संस्करण वी. नि. सं. 2508
137. विद्वत् अभिनन्दन ग्रंथ पृ. 64 दिगम्बर जैन साधु परिचय पृ. 197
138. आचार्य शिवसागर महाराज स्मृति ग्रन्थ वही पृ. 22-23
139. दिगम्बर जैन साधु परिचय पृ. 426
140. श्री शान्तिसागर जन्म शताब्दि महोत्सव एवं दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था का गौरव महोत्सव स्मृति ग्रन्थ पृ. 77

चतुर्थ अध्याय

बीसवीं शताब्दी के मनीषियों द्वारा प्रणीत प्रमुख जैन काव्यों का अनुशीलन

इस शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में बीसवीं शताब्दी में साधु-साध्वियों द्वारा प्रणीत प्रमुख जैन काव्यों का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। इस चतुर्थ अध्याय में विवेच्य साहित्य की दृष्टि से शोध प्रबन्ध का यह अध्याय तृतीय अध्याय का पूरक ही है। इसमें भी पूर्व अध्याय की भाँति संस्कृत काव्य के सौरभ से दिग्दिगन्त सुरभित है। इस अध्याय में भी स्पष्ट किया गया है कि रचनाकारों ने जैन दृष्टि का अवलम्बन करके संस्कृत काव्य के उन सभी अङ्गों का सम्वर्धन किया है, जिसमें भगवती वाग्देवी का अक्षय भाण्डार और अधिक श्री समृद्ध हुआ है।

काव्य साहित्य की प्रौढ़ता और रचनाधर्मिता की वरिष्ठता को प्रायः दृष्टि पथ में रखकर इस अध्याय में सर्वप्रथम रचनाकार का परिचय, व्यक्तित्व वैदुष्य और उसके रचना संसार का अपेक्षित विश्लेषण किया है। तदुपरान्त उसकी उन जैन रचनाओं को अध्ययन का विषय बनाया है, जिन्होंने संस्कृत काव्य को श्री समृद्ध और विकसित करने में महनीय योगदान किया है।

डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य

देश के ख्यातिलब्ध विद्वान डॉ. पन्नालाल जी सागर जिले के पारगुवाँ ग्राम में 5 मार्च 1911 में जनमें थे। पिता का नाम गल्लीलाल और माता का नाम जानकी बाई था। संवत् 1972 मे आपकी मां आपको लेकर पारगुवाँ से सागर चली आयी थी। सागर में धार्मिक वातावरण मिला। धार्मिक अभिरुचि जागी। पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी से भी परिचय हुआ। उनके सहयोग से आपके सत्तर्क सुधा तरङ्गिणी दिगम्बर जैन पाठशाला (मोराजी) में निः शुल्क प्रवेश मिला। व्याकरण मध्यमा परीक्षा आपने इसी विद्यालय से उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् आपने स्याद्वाद महाविद्यालय में कुछ अध्ययन किया तथा लौटकर पुनः आप सागर आये और मोराजी में ही अध्ययन करने लगे थे। इसी विद्यालय में पूज्य वर्णी जी के सहयोग से ईसवी 1931 में आपकी अध्यापक के रूप में नियुक्ति हुई। आपने 52 वर्ष तक इस विद्यालय की सेवा की। इस सेवा काल में आपको सामाजिक सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। ईसवी 1936 से तो आपको लोग नाम से कम साहित्याचार्य के नाम से अधिक जानने लगे। ईसवी 1931 में गढ़ाकोटा-निवासी मास्टर काशीराम जी की पुत्री सुन्दरबाई से आपका विवाह हुआ था। प्रकाश, महेश, अशोक, पवन, राकेश, और राजेश -ये छह पुत्र और कमला, कञ्चन तथा शारदा ये तीन पुत्रियां हैं। आलमचन्द्र जी आपके बडे भाई और लटोरेलाल जी मजले भाई थे। भाइयों के बच्चों का लालन-पालन भी आपने बड़े ही सौहार्द भाव से किया है। आपके जीवन में डॉ. रामजी उपाध्याय का भी स्तुत्य सहयोग रहा है। महाकवि

हरिचन्द्र एक अनुशीलन शोध प्रबन्ध पर भी पी-एच-डी. की उपाधि आपको उनके ही सहयोग से प्राप्त हुई थी । अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के तो आप प्राण हैं । आपने अनवरत तीस वर्ष तक इस परिषद् की सह मन्त्री और मन्त्री के रूप में सेवा की है । वर्तमान में आपका जीवन आचार्य प्रवर विद्यासागर जी के निर्देशानुसार वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल, पिसनहारी की मढ़िया, जबलपुर में अध्यापन करते हुए आत्मध्यान में व्यतीत हो रहा है ।

''साहित्य साधना''

आपकी श्रुत सेवा स्तुत्य है । विशाल पुराणों के सम्पादन, उनके अनुवाद ग्रन्थों की टीकाएं और मौलिक ग्रन्थों के रूप में आपने सर्वाधिक लेखन कार्य किया है । अब तक आपकी लेखनी से निष्पन्न 64 ग्रन्थ और आठ स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं । आपको अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है । आपकी साहित्यिक सेवाएँ साहित्य जगत में सदैव स्मरणीय रहेंगी ।[1]

मोक्षमार्ग प्रतिपादक – चिन्तामणि–त्रय

जैन धर्म में आचार का महत्त्वपूर्ण स्थान है । किसी भी धर्म के अन्तस्तल को जानने के लिए उसके आचार-मार्ग को जानना विशेष रूप से वाञ्छनीय है । क्योंकि आचार मार्ग के प्रतिपादन में ही धर्म का धर्मत्व सन्निविष्ट रहता है । अतः हम कह सकते हैं। ''आचारः प्रथमो धर्मः'' अर्थात् आचार ही प्रथम धर्म है । इसलिए द्वादशाङ्ग में प्रथम अङ्ग ''आचाराङ्ग'' है । आचारण शुद्धि से वैचारिक शुद्धि होती है । जिससे मुक्तिमार्ग प्रशस्त होता है । सर्वज्ञ, तीर्थंकरों ने आचार-शुद्धि से सांसारिक दुःखों का नाश किया है । दुःख सागर से पार होने के लिए सम्यक्चारित्र जहाज के समान है ।

प्रत्येक जीव की आत्मा अनन्त शक्तिमान् है । परन्तु कर्म श्रृंखला से जकड़ा होने के कारण आत्मा का ज्ञान स्वभाव रूप प्रकट नहीं हो पाता । जीव काषायिक वासना से ही इस दुःखमय संसार के कर्मों से बँधा हुआ है और इन बन्धनों को नष्ट करने का सर्वाङ्गीण उपाय सम्यग्चारित्र है ।

सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यचारित्र जिनागम के प्रमुख प्रतिपाद्य विषय हैं। इन विषयों में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन जैनाचार्यों ने किया है । इसी श्रृंखला में श्रद्धेय डॉ. पन्नालाल जी ने -''सम्यक्त्व चिन्तामणि''''सज्ज्ञान-चन्द्रिका'' और ''सम्यक्चारित्र चिन्तामणि'' कृतियाँ संस्कृत भाषा में विविध छन्दों में लिखी है ।

सम्यक्त्व चिन्तामणि :

सम्यक्त्व चिन्तामणि[2] (पं. पन्नालालजी जैन साहित्याचार्य द्वारा विरचित) जैन-दर्शन का प्रतिनिधि ग्रन्थ है । इसमें सम्यग्दर्शन से सम्बद्ध प्रमुख विषयों का आकलन हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषयों में मुख्य रुप से सम्यग्दर्शन के विषयभूत सात तत्त्वों[3] का निरूपण है तथा जीव के भेदों[4], संसारी जीव के पञ्च परावर्तनों[5], चौदह गुण स्थानों[6], चौदह मार्गणाओं[7], असंख्यात द्वीप समुद्रों, छह द्रव्यों[8], आस्रव के कारणों, कर्म के भेद-प्रभेदों, गुणस्थानों में बन्ध-व्युच्छिति, बन्ध के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश चारों भेदों, संवर के कारणों[9] आदि का विवेचन समाविष्ट किया गया है।

प्रस्तुत ग्रंथ 10 मुखों में निबद्ध है । ग्रन्थ की कुल श्लोक संख्या 1816 है । यह ग्रन्थ जैन दर्शन, धर्म और ज्ञान का कोश ही है। इसमें सत्प्रवृत्तियों, आधारभूत तत्त्वों और

सम्यग्दर्शन का साङ्गोपङ्ग विश्लेषण विद्यमान है । इस ग्रन्थ के वर्णनीय विषयों का आधार गोम्मटसार, (जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड), तत्त्वार्थवार्तिक, पञ्चाध्यायी, तत्त्वार्थसार आदि ग्रन्थों को बनाया गया है, किन्तु काव्य रचना सर्वथा मौलिक है । ग्रन्थारम्भ में विस्तृत प्रस्तावना के माध्यम से सम्यग्दर्शन के स्वरूप, भेद, महिमा आदि का प्रतिपादन किया गया है। विषय को स्पष्ट करने के उद्देश्य से प्रारम्भि वक्तव्य अत्यन्त उपयोगी और सराहनीय है । सम्यग्दर्शन पर विशिष्ट प्रकाश डालने वाला यह लेख पंडित जी द्वारा सम्पादित "रत्नकरण्ड श्रावकाचार"[10] की प्रस्तावना का अंश है ।

विषय वस्तु – प्रथम मयूख

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति एवं माहात्म्य पर समीचीन व्याख्या प्रथम मयूख का प्रतिपाद्य विषय है । जैन तीर्थङ्करों, प्रातः स्मरणीय आचार्यों, धर्म-विद्यागुरुओं का विविध प्रकार के स्तवन करते हुए ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति की कामना ग्रन्थकार ने भावुकता के साथ की है । लेखक की सुरम्य, हृदयस्पर्शी शब्दरचना सर्वत्र प्रवाहशील है । अपने गुरुवर श्रद्धेय पं. गणेसप्रसाद वर्णी की स्तुति तन्मयता के साथ प्रस्तुत की है –

येषां कृपा कोमल दृष्टिपातैः सुपुष्पिताभून्मम सूक्तिवल्ली।
तान्प्रार्थये वर्णिगणेशपादान्, फलोदयं तत्र नतेन मूर्ध्ना ।[11]

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पूर्व जीव की क्या परिणति होती है ? इसी तथ्य को समझाते हुए मिथ्यादृष्टि जीव की विभिन्न अवस्थाओं में दुर्दशा पूर्ण स्थिति का सजीव चित्रण किया गया है । जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष इन तत्त्वों की यथार्थता से अपरिचित मिथ्यादृष्टि जीव दुःखी और परेशान रहता है । माया, अहङ्कार, रागादि दोषों एवं अविद्या तथा पापों में आस्था रखता है । इसीलिए वह मिथ्यात्व के अन्धकार में भटकता हुआ नरक, तिर्यञ्च मनुष्य तथा देव इन चारों गतियों में भी अपार दुःखों को भोगता है। उसे निजशुद्धात्म की उपलब्धि अभीष्ट नहीं रहती, इसीलिए मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तकाल से इस संसार में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इन पाँच परिवर्तनों को करता है।

सम्यग्दर्शन के विवेचन में कृत सङ्कल्पित लेखक उसकी उत्पत्ति और महिमा पर प्रभावशाली प्रकाश डालता है ।[12] जिसका आशय यह है कि सम्यग्दर्शन की योग्यता रखने वाला संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक, विशुद्धियुक्त, जागृत साकार उपयोगयुक्त चारों गति वाला भव्य जीव जब इसे धारणा करने में समर्थ होता है, तब क्षायोपशमिक, विशुद्धि, देशना प्रायोग्य एवं कारण ये पाँच लब्धियाँ जीव को प्राप्त होती हैं । यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि अन्य चार लब्धियाँ भव्य एवं अभव्य दोनों को प्राप्य है, किन्तु करण लब्धि भव्य जीव को ही मिलती है । इनके प्राप्त होने पर सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्दर्शन का महत्त्व और उसकी प्रकट महिमा का दिग्दर्शन लेखक ने व्यापकता के आधार पर किया है । जीव को सांसारिक बन्धनों के उन्मुक्त करने वाले सम्यग्दर्शन को जो धारण करता है, वह निडरता और आत्मानन्द की भोगी, स्वात्मनिष्ठा प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य का उपासक बन जाता है । सरोवर में विद्यमान कमलपत्र के समान सम्यग्दृष्टि जीव चारित्रमोह के उदय से गृहस्थाश्रम में रहकर भी उसमें लीन नहीं होता

सम्यग्दर्शन ऋद्धि-सिद्धि, नौ निधि, चौदहरत्नों को सहज में ही प्रदान करता है। इससे अलङ्कृत पुरुष तेजस्वी, प्रतापी और सांसारिक आवागमन से विलग हो जाता है। मिथ्यात्व

की कालिमा को तिरोहित करने वाला सम्यग्दर्शन मोक्ष के द्वार पर लगे हुए किवाड़ों को खोलने में सक्षम है। भावार्थ यह है कि सम्यग्दर्शन मोक्ष प्रदान करता है।

सम्यग्दृष्टि लोकादि सप्त भयों से भयभीत नहीं होता। ज्ञानमय प्रवृत्ति रखने के कारण वह मृत्यु से नहीं डरता। वैचारिक श्रेष्ठता एवं निर्मल हृदय से सम्पन्न आप्तप्रणीत शास्त्रों के विषय में पृथ्वी पर निशङ्क रहता है। इन्द्रिय-जन्य सुखों एवं तृष्णा को व्यर्थ समझता हुआ वह निःकाङ्क्षत्व को प्राप्त होता है। किन्तु मोक्ष की इच्छा अवश्य करता है। पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का विचार करने वाला सम्यग्दृष्टि निर्विचिकित्सा से युक्त होता है। वह अमूढ़ दृष्टि का धारक होता है। कभी किसी के दोषों को अभिव्यक्त न करके अपने गुणों को विकसित करता है। अतः उपगूहन अङ्ग को सार्थक करता है। धर्म को स्थिर करने के हर सम्भव प्रयास करने के कारण वह स्थितिकरण का धारक है। धर्मयुक्त मनुष्यों पर प्रीति रखता हुआ सम्यग्दृष्टि वात्सल्य अंग का महत्त्व बढ़ाता है। जिन धर्म का प्रभाव फैलाना ही प्रभावना अङ्ग है, यह भी इसमे पाया जाता है। सम्यग्दर्शन के इन स्वरूप सम्बन्धित अङ्गों को सम्यग्दृष्टि नियमपूर्वक धारण करता है। सम्यग्दृष्टि जीव आठ प्रकार के मदों[13] एवं 6 अनायतनों[14] तथा तीन मूढ़ताओं[15] से सर्वथा दूर रहते हैं। शङ्कादि 8 दोषों से रहित है।[16]

द्वितीय मयूख

इस मयूख में जीवतत्त्व के स्वरूप और भेदों का विश्लेषण है। सम्यग्दर्शन के भेदों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् लेखक ने सम्यग्दर्शन के आधारभूत सात तत्त्वों का निरूपर्ण किया है। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को तत्त्व कहते हैं और तत्त्वरूप अर्थ का श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन है। सात तत्त्वों का सामान्य परिचय दिया गया है मूलभूत दो तत्त्व जीव और अजीव हैं। इन दोनों के संयोग का कारणभूत तत्त्व आस्रव है। आस्रव का रुक जाना संवर कहलाता है। सञ्चित कर्मरूप अजीवत्त्व का क्रम-क्रम से पृथक् होना निर्जरा कहा गया है और सम्पूर्ण रूप से कर्मरूप अजीव का संयोग आत्मा से सदा के लिए छूट जाना मोक्ष है।

अब जीव तत्त्व का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए पंड़ित जी अपने बोधगम्य शैली में कहते हैं -

''तत्र स्याच्चोतना लक्ष्मा जीवस्तत्त्व महेश्वरः ।
ज्ञानदर्शन भेदेन सापि द्वेधा विभिद्यते ।।''[17]

अर्थात् जीव उसे कहते हैं ''जिसका लक्षण चेतना है। यह जीव स्व-पर प्रकाशक होने से सब तत्त्वों का राजा है। ज्ञान और दर्शन ये दो भेद चेतना के होते हैं।'' इस प्रकार अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव इन तीनों दोषों से रहित चैतन्य ही जीव का लक्षण विद्वानों को मान्य है। जीव के कर्मों के अनुसार ही उसके औपशामिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक ये पांच असाधारण भाव होते हैं। इनके कुल मिलाकर 53 भेद हैं। विशेषता यह है कि पारिणामिक भाव कर्म निरपेक्ष होता है।

जीव के भेदों का सूक्ष्म परीक्षण भी ग्रन्थकार ने अत्यन्त सावधानी पूर्वक प्रतिपादित किया है -

''संसारिमुक्त भेदेन जीवो द्वेधा विभिद्यते ।
तत्र कर्मचयातीतः सिद्धो नित्यो निरञ्जनः ।।''[18]

भावार्थ यह है कि संसारी और मुक्त ये जीव के दो भेद हैं - उनमें जो कर्म समूह से रहित है, वे मुक्त कहलाते हैं। इन्हें सिद्ध, नित्य और निरजञ्न भी कहते हैं। जो द्रव्य,

क्षेत्र काल, भव और भाव के भेद से 5 प्रकार से संसार में भ्रमण कर रहे हैं, वे कर्मों को धारण करते हैं तथा जन्म-मरण के वशीभूत है, उन्हें ऋषियों ने संसारी जीव कहा है ।

जीवतत्त्व का गुणस्थानादि 20 प्ररूपणाओं के द्वारा साङ्गोपाङ्ग विशद् विवेचन करते हुए पण्डित प्रवर अपनी प्रसाद गुण पूर्ण मनोज्ञ शैली में कवित्व का सौन्दर्य सर्वत्र ही उपस्थित करते हैं । ग्रन्थकार के अनुसार मोह और योग के संयोग (निमित्त) से जीव के जो भाव होते हैं, उन्हें गुणस्थान कहते हैं । गुणस्थानों की संख्या 14 है -मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र, असंयत, सम्यग्दृष्टि, देशव्रती, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मलोभ, शान्तमोह, क्षीणमोह, संयोगकेवलिजिन और अयोगकेवलिजिन; ये गुणस्थानों के नाम हैं । इन गुणस्थानों का संक्षिप्त स्वरूप भी सम्यक्त्वचिन्तामणि ग्रन्थ के द्वितीय मयूख में प्रतिष्ठित है ।

जीवसमास प्ररूपण के द्वारा जीवतत्त्व का रोचक निरूपण किया गया है-जीवों में पाये जाने वाले सादृश्य के आधार पर उनके द्वारा इस प्रकार भेद करना कि जिसमें सबका समावेश हो जावे, जीवसमास कहलाता है । जीव समास के 14 और 98 भेद भी विख्यात हैं । पर्याप्ति प्ररूपणा के द्वारा जीव तत्त्व का निरूपण करते हुए समझाते हैं कि पर्याप्ति का अर्थ पूर्णता है । घट पट आदि पदार्थों के समान जीवों के शरीर भी पूर्ण और अपूर्ण होते हैं । इसी आधार पर जीवों के आहार-शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा और मन ये छह पर्याप्तियाँ कही गई हैं ।

प्राण प्ररूपणा के संबंध में अपना मनोवैज्ञानिक चिन्तन प्रकट करते हुए ग्रन्थकार इस तथ्य पर पहुँचता है । जिनका संयोग पाकर जीव जीवित होते और वियोग पाकर मरते हैं, उन्हें प्राण जानना चाहिये ।'' श्वासोच्छवास, तीन बल (मनोबल, कायबल, वचनबल) पांच इन्द्रिय (स्पर्शन, घ्राण, रसन, चक्षु, कर्ण) और आयु के दश बाह्य प्राण सर्वज्ञ ईश्वर के द्वारा परिलक्षित किये गये हैं । किन्तु ज्ञान-दर्शन रूप जो भाव प्राण है। उनका वियोग जीव से कभी नहीं होता है ।

संज्ञा प्ररूपणा का परिचय देते हुए कहते हैं कि जिनके द्वारा जीव बाधित होकर इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति करके लोक-परलोक में निरन्तर दुःख पाते हैं, उन्हें आचार्यों ने संज्ञायें कहा है-आहार, भय मैथुन, परिग्रह के कुल 4 संज्ञाएं हैं । इन संज्ञाओं की बाधा से रहित, आत्मीय आनन्द का रसास्वादन करने वाले भाग्यशाली जीव ही पृथ्वी तल पर वंदनीय हैं।

तृतीय मयूख

प्रस्तुत मयूख में गति-मार्गणा के द्वारा जीव तत्त्व का विशद विवेचन है-संसारी जीवों की परिचायक या अन्वेषण वस्तु मार्गणा कहलाती है । गति आदि निम्नलिखित चौदह मार्गणाएँ बहुश्रुत हैं-गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व और आहारक । इन्हीं मार्गणाओं में संसारी जीव निवास करते हैं ।

गति मार्गणा

गतिकर्म के द्वारा उद्भूत जीव की अवस्था ही गति कहलाती है । जीव की 4 गतियाँ विख्यात (विश्रुत) हैं ।

नरक गति - नरक नाम को सार्थक करने वाली जीव की अत्यन्त क्लेशदायक एवं दुःखपूर्ण स्थिति नरक गति है । इसी परिप्रेक्ष्य में नारकियों के गुणस्थान, उनकी 7 भूतियां[19] आयु, वेदना, लेश्याओं आदि का सर्वाङ्गपूर्ण विवेचन हुआ है ।

तिर्यञ्च गति – अपने नाम कर्म को चरितार्थ करती हुई बहुत अधिक माया से युक्त होती है । इसी माया से प्रभावित अज्ञानी जीव ही इस गति में उत्पन्न होकर निरन्तर दु:ख सहते हैं तिर्यन्चों के भेद-प्रभेदों का व्यापक वर्णन भी किया गया है ।

मनुष्य गति – अपने नाम कर्म के उदय से गतिच्छेद के अभिलाषी मनुष्यों द्वारा जानी जाती है । पूर्वकृत कर्मों के अनुसार ही मनुष्य इस गति में सुख और दु:ख को प्राप्त करते हैं । इसी सन्दर्भ में मनुष्यों के लक्षण, आर्य मलेच्छ, भोगभूमिज, कुभोगभूमिज आदि का विश्लेषण किया गया है। लवण समुद्रादि समुद्रों से घिरे हुए असंख्यात द्वीप समुद्रों का विस्तृत परिचय दिया गया है । जिनमें जम्बूद्वीप, धातकीद्वीप, वारूणीवर द्वीप, क्षीरवर, द्वीप, घृतवर द्वीप, इक्षुवर द्वीप, नन्दीश्वर द्वीप, अरूणवर द्वीप । इस प्रकार द्वीपसमुद्रों की नामावली प्रस्तुत हुई है । जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों[20], छह कुलाचलों[21], सरोवरों[22] एवं उनमें रहने वाली देवियों तथा कमलों और चौदह महानदियों[23] का समीचीन निरूपण हुआ है । धातकी खण्ड आदि द्वीपों के वर्णन के साथ ही मनुष्यगति के सम्बन्ध में लिखते हैं कि अपने-अपने भाग्य के अनुसार ही पुरुष इस मनुष्यगति में एवं कर्मों के अनुसार तो चारों गतियों में जन्म लेते हैं।

देवगति – इसी नाम कर्म के द्वारा प्रादुर्भूत जीवों की आकृति है। यह गति केवलज्ञान से परिज्ञात है । भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा वैमानिक नाम से देवों के चार भेद हैं। ये चार प्रकार के देव अनेक कोटि के होते हैं अर्थात् उनके भी अवान्तर भेद होते हैं । देवों के आवास स्थानों का परिचय भी दिया गया है । उर्ध्व लोक के वर्णन में लेखक ने सावधानीपूर्वक वैमानिक देवों, उनकी गति, शरीर की अवगाहना एवं आयु की सुरम्य व्याख्या उपस्थित की है । वैमानिक देवों की स्थिति, ऊत्पत्ति, स्थान एवं गुणस्थानादि का मनोज्ञ प्रतिपादन भी इसी मयूख में समाविष्ट हुआ है । इस प्रकार संसारी जीवों की गति का वर्णन पूर्ण होता है ।

चतुर्थ मयूख

इस मयूख में प्रयुक्त विभिन्न मार्गणाओं के द्वारा जीवतत्त्व का परिष्कृत विवेचन निबद्ध है। इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व संज्ञी, आहार इत्यादि मार्गणाएं ही ग्रन्थ में पल्लवित हुई हैं ।

इन्द्रिय

अपना (स्पर्शादि) विषय ग्रहण करने में स्वतन्त्र है । आत्मा का परिचय कराने के लिए साधन स्वरूप इन्द्रियों के द्रव्य और भाव ये दो भेद हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण,चक्षु, कर्ण ये पाँच इन्द्रियाँ विद्वानों को मान्य हैं । स्पर्श, रस, गंध, रूप शब्द ये इनके पाँच विषय कहे गये हैं । स्पर्शनादि इन्द्रिय के संयोग से एकेन्द्रियादि पाँच प्रकार के जीव होते हैं । ये जीव, अपने-अपने अनेक भेदों से संयुक्त हैं । इन्द्रियों के आकार एवं विषय भी अत्यन्त व्यापक है । कायमार्गणा के अन्तर्गत षट्काय (पांच स्थावर और त्रस) जीवों का विश्लेषण मिलता है । पृथ्वी कायिक आदि जीवों के आकार तथा साधारण एवं वनस्पति कायिक जीवों का विश्लेषण सूक्ष्मता के आधार पर हुआ है । योग मन, वचन तथा काय से युक्त जीवों के कर्मों की कारणभूत वह शक्ति है, जो शरीर नामकर्म से निष्पन्न होती है । यह योग मन, वचन, काय से 3 ही प्रकार का है । मनोयोग और वचन योग के सत्य, असत्य भय और अनुभव इन पदार्थों में प्रवृत्त होने से चार-चार भेद होते हैं । काययोग के भी औदारिक,

औदारिक, मिश्र तथा वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र ये भेद होते हैं । इस तरह योगमार्गणा में उसके लक्षण एवं भेदों-प्रभेदों का निरूपण किया गया है । वेदमार्गणा के अन्तर्गत द्रव्यवेद और भाववेद का तथा उनके परिणामों का निरूपण है । वेदकर्म के उदित होने पर जीव सम्मोह से युक्त होता है, इसी कारण गुण-दोष को नहीं जान पाता । कषायमार्गणा का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि आत्मा से सम्यक्त्व एवं चारित्र आदि गुणों को कषाय तिरोहित करता है । क्रोध, मान, माया तथा लोभ ये कषाय के चार रूप हैं । कषायमार्गणा के अन्य भेदों पर भी प्रकाश डाला गया है [24] कषायरहित व्यक्ति ही सुखी कहा गया है । संसारसागर के पार करने वाला मिथ्यात्व की निशा को नष्ट करने वाला मुनियों के हृदय कुमुदों को प्रफुल्लित करने वाला ज्ञान सभी मनुष्यों की श्रद्धा का विषय है । तात्पर्य यह है कि ज्ञान सर्वोत्कृष्ट है । जिनागम में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्याय ज्ञान तथा केवलज्ञान (5ज्ञान) उल्लिखित हैं । केवल ज्ञान को छोड़कर शेष चारों ज्ञान क्षायोपशमिक हैं तथा केवल ज्ञान क्षायिक ज्ञान है । इनका विस्तृत विवेचन ग्रन्थ में किया गया है [25] कषायों को रोकना, इन्द्रियों को वश में करना, मन, वचन-काय पर नियन्त्रण रखना, व्रतों का पालन करना संयम है । सामायिक छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय एवं यथाख्यात ये पाँच संयम कहे गये हैं । पृथ्वी पर जो षट्कायिक जीवों की हिंसा एवं इन्द्रियों व्यापारों में आसक्त होते हैं, उन्हें असंयमी कहते हैं ।

दर्शन मार्गणा के संबन्ध में रचनाकार का मन्तव्य है-सभी पदार्थों को सामान्य रूप से ग्रहण करना दर्शन है-यह पदार्थों के अस्तित्व को ही ग्रहण करता है । चक्षु दर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन और केवलदर्शन हैं । किन्तु केवलदर्शन ही शाश्वत माना गया है ।

लेश्यामार्गणा के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं कि जीवों द्वारा किये गये कर्मों की कारण भूत लेश्या है । लेश्या कर्मों के चतुर्विध बन्ध को करती हैं । द्रव्यलेश्या और भावलेश्या ये मुख्य हैं किन्तु दोनों के कृष्ण, नील. कापोत, पीत, पद्म शुक्ल ये 6 भेद किये गये हैं। गुणस्थानों में लेश्याओं का विभाग करने के उपरांत कहते हैं कि लेश्याओं से ग्रसित जीव, संसार भंवर में फंसकर कर्मों को करते हुए हमेशा दुःखी रहते हैं ।

भव्यत्व के सन्दर्भ में कहते हैं कि सम्यग्दर्शनादि भावों के संयुक्त जीव भव्य है। एवं इन भावों से रहित जीव अभव्य हैं । इन दोनों में जो भाव से बहिर्भूत है एवं सम्यग्ज्ञान से शोभित है, वे वन्दनीय हैं ।

सम्यक्त्वमार्गणा जीवादिजीव सप्त तत्त्वों में श्रद्धा करना सम्यक्त्व है जैनदर्शन में सम्यक्त्व के तीन भेद विश्रुत हैं- क्षायिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक । सम्यग्दर्शन से पतित होकर भी जीव जिसके कारण मिथ्यात्व में लिप्त नहीं हो पाता, वह सासादन सम्यग्दृष्टि है। मिश्र और मिथ्यादृष्टि का भी समीचीन निरूपण किया गया है । जो जीव मन के आलम्बन से सदैव शिक्षा, क्रिया आलांपादि उपायों को स्वीकार करता है, उसे ज्ञानियों ने संज्ञी कहा है । असंज्ञी इन गुणों के विपरीत है । जो जीव इन दोनों के व्यवहार से मुक्त एवं आत्मीय आनंद का भोगता है उसे, अनिर्वचनीय अर्हन्त ही जानना चाहिये।

आहार-मार्गणा के अन्तर्गत आहार का लक्षण और आहारक एवं अनाहारक जीवों का प्रतिपादन दर्शाया गया है । समुद्घात का लक्षण और उसके सात भेद भी अत्यन्त महत्व रखते हैं [26] मूल शरीर को न छोड़कर जीव जब आत्मप्रदेशों में बाहर फैलता है, वह समुद्घात कहलाता है ।

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग कारणों से उद्भूत जीव की चैतन्य युक्त अवस्था उपयोग प्ररूपणा है । इसके ज्ञानोपयोग और दर्शनापयोग ये दो भेद हैं । ज्ञानोपयोग के मति आदि 4 सम्यग्ज्ञान और 3 मिथ्याज्ञान मिलकर 8 भेद हैं । दर्शनोपयोग के चक्षु-अचक्षु, अवधि और केवल दर्शन ये चार भेद हैं । इस तरह 12 भेदों से संयुक्त उपयोग जीव का चिरकाल व्यापी लक्षण है। उपरोक्त 20 प्ररुपाणाओं में आबद्ध जीवतत्त्व सभी तत्वों के प्रधान है ।

पञ्चम मयूख

प्रस्तुत मयूख में चैतन्यरहित, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, और सम्यक्त्व विहीन अजीव तत्त्व का सूक्ष्म निदर्शन है-

अजीव तत्त्व के पाँच भेद हैं-पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। पुद्गल के लक्षण, पर्याय, भेद (अणु और स्कन्ध) परमाणु एवं स्कन्ध का लक्षण तथा उसके तैयार होने की विधि का गहन विश्लेषण अभिव्यञ्जित हुआ है । जिसका आशय यह है कि जीव के शरीरादि की रचना करना पुद्गल का कार्य है, इसी प्रकार जीव के लिए सुख-दुःख और जीवन-मरण की परिस्थितियाँ भी पुद्गल के सहयोग से ही निर्मित होती हैं ।

धर्म एवं अधर्म स्वेच्छा से चलने वाले जीव और पुद्गलों के चलने में जो सहायक है, वह धर्मद्रव्य कहलाता है तथा जो जीव एवं पुद्गलों को रोकने में सहायक होता है । उसे आचार्यों ने अधर्मद्रव्य कहा है । ये दोनों द्रव्य, लोक में सर्वव्याप्त, अमूर्त्तिक, अविनाशी एवं असंख्यात प्रदेशों से संयुक्त हैं ।

आकाश द्रव्य जहाँ जीवादि पदार्थ हमेशा स्थिर रहते हैं, वही आकाश है । वह आदि-अन्त विहीन, रूपादि से रहित, एक अखण्ड अमूर्तिक एवं लोकालोक में व्याप्त हैं ।

कालद्रव्य - कालद्रव्य एक प्रदेशी, शाश्वत, स्थायी, अमूर्तिक, वर्तना लक्षण से युक्त है । वह घड़ी, घण्टादि भेदों में विभक्त है ।

उपरोक्त 6 द्रव्यों में जीव अनन्त हैं । जो द्रव्य के आश्रित है एवं अन्यगुणों से रहित होता है उसे गुण कहते हैं । द्रव्य की क्रम से होने वाली अवस्थाएँ पर्याय कही जाती हैं। अस्तिकाय का लक्षण निरूपित करते हैं कि जो द्रव्य अस्तिरूप रहते हुए भी काय अर्थात शरीर की भाँति बहुप्रदेशी होते हैं उन्हें अस्तिकाय कहते हैं । जीवादि पाँच पदार्थ अस्तिकाय के अन्तर्गत समाविष्ट किये जाते हैं । किन्तु काल द्रव्य अणुरूप होने के कारण अस्तिकाय के अन्तर्गत नहीं आता ।

षष्ठ मयूख

आस्रव तत्त्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए पण्डित जी अपनी सरस एवं भावानुवर्तिनी शब्दावली में लिखते हैं -

"येनास्रवन्ति कर्माणि जलान्यात्मजलाशये ।
आस्रवः स च संप्रोक्तो निर्गतास्रवबन्धने ॥[27]

भावार्थ यह है कि आस्रव के द्वारा ही जीव (आत्मा) कर्मों की ओर प्रेरित होता है, उसे बन्धविहीन भी कहा गया है । आत्मा के भावों के अनुसार ही आस्रव के शुभ और अशुभ ये दो भेद किये जाते हैं । कषाय से युक्त जीवों का आस्रव साम्परायिक है । इसमें पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय, पच्चीस क्रियाएँ और पाँच अव्रत सम्मिलित हैं। कषाय से रहित जीवों का ईर्यापथ आस्रव होता है । यह भेद रहित हैं ।

ग्रन्थकार गम्भीर सूझ-बूझ के साथ आस्रव से भेदोपभेदों का विवेचन करता है। अधिकरण नामक आस्रव के जीवाधिकरण एवं अजीवाधिकरण ये दो भेद हैं - जीवाधिकरण 8 प्रकार का एवं अजीवाधिकरण 11 प्रकार का है लेखक अभिव्यंजित करता है, पाँच प्रकार का मिथ्यात्व (एकान्त, विपरीत, अज्ञान, संशय, वैनयिक) बारह प्रकार की अविरति (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस इन 6 काय के जीवों की हिंसा तथा 6 इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति से विरत न होना) पन्द्रह प्रकार का प्रमाद (चार विकथा, चार कषाय, पांच इन्द्रिय, निद्रा और स्नेह) पन्द्रह प्रकार का योग (चार मनोयोग, चार वचनयोग, सात काययोग) पच्चीस कषाय (क्रोधादि 16 और हास्यादि 9 मिलकर 25) यही उस आस्रव तत्त्व का विस्तार है तथा योग और कषाय उसका संक्षेप है ।

ग्रन्थकार ने आस्रव को विभिन्न रूपों में परखा है । गुण स्थानों की दृष्टि में प्रथम गुण-स्थान में उपरोक्त सभी भेद सम्मिलित हो जाते हैं । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, असद्वेद्य, सद्वेद्य के पृथक्-पृथक् आस्रव प्रतिपादित हुए हैं । दर्शन, मोह, अकषाय मोहनीय, हास्य-वेदनीय, रति नोकषाय, अरतिनोकषाय, शोकवेदनीय, भय नोकषाय, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, चरित्रमोह आदि के प्रभावशाली एवं व्यापक आस्रवों का विशेष वर्णन, इसी मयूख में हुआ है ।

नरकायु में जीव को जो विभिन्न दुःख मिलते हैं, वे ही नरकायु के आस्रव हैं क्योंकि इन्हीं कारणों से नरकायु का बन्ध होता है । माया एवं मिथ्यात्व से मिश्रित तिर्यगायु के असंख्य आस्रव हैं । मनुष्यायु में सद्गुणों से परिपूर्ण एवं व्यावहारिक जीवन में, उपयोगी समस्त गुण आस्रवों के विषय हैं । सरागसंयम, संयमासंयम, अकाम-निर्जरा, बालतप ये देवायु के कारणभूत आस्रव हैं । कर्मों के अनुसार शुभनाम कर्म एवं अशुभनामकर्म के आस्रव होते हैं । तीर्थङ्कर कोटि के सर्वश्रेष्ठ आस्रव आचार्यों ने प्रतिष्ठित किये हैं। ये सभी के लिए अनुकरणीय हैं। नीचगोत्र में प्रेरित करने वाले निन्दा, अनाचार आदि दुर्गुणों से परिपूर्ण नीचगोत्र कर्म के आस्रव है । किन्तु इसके विपरीत लोकोत्तर गुणों से सुशोभित, धर्मात्माओं के द्वारा आदृत उच्चगोत्रकर्म के आस्रव हैं । दूसरों को बाधित करने वाले, धर्म स्थलों के विनाशक और अन्यायपूर्ण अन्तराय कर्म के आस्रव कहे गये हैं । इस प्रकार विभिन्न आस्रवों का दिव्यदर्शन कराने के उपरान्त उनकी सार्थकता और हेयता की समीक्षा भी करते हैं किन्तु औचित्य बताते हुए कहते हैं कि संसार सागर के पार होने के इच्छुक शीघ्र ही दोनों प्रकार के आस्रवों को त्याग देंवे, क्योंकि आस्रव के रहते हुए हित का मार्ग (मोक्ष) प्राप्त नहीं होता ।

सप्तम मयूख

सप्तम मयूख में बन्ध तत्त्व का निर्देशन है - आत्मा का कर्मों के साथ नीरक्षीरवत् एक क्षेत्रावगाह है, उसे आचार्यों ने बन्ध कहा है । अर्थात् जीव और पुद्गल की कोई अनादि अनन्त वैभाविकी शक्ति है, उस शक्ति के स्वभाव और विभाव नामक परिणमन प्रसिद्ध है। जीव और पुद्गल को उस वैभाविकी शक्ति का जो विभाव परिणमन् है, वही बन्ध का कारण है । बन्ध को जिनेन्द्र भगवान् ने चार भेदों में विभक्त किया है-

1. प्रकृति बन्ध, 2. स्थिति बन्ध, 3. अनुभाग बन्ध, 4. प्रदेश बन्ध ।

प्रकृतिबन्ध का लक्षण उसके मूलभेदों मूलकर्मों के उदाहरण, घाति-अघाति कर्मों का वर्णन तथा ज्ञानावरणादि कर्मों का सामान्य स्वरूप चित्रित हुआ है । ज्ञानवरण के 5 भेदों दर्शनावरण के 9 भेदों, वेदनीयकर्म के दो भेद, मोहनीय कर्म के भेदों का व्यापक वर्णन

मिलता है । नाम कर्म की उत्तर प्रकृतियों गोत्र एवं अन्तराय की उत्तरप्रकृतियों, भेदाभेद, विवक्षा में बन्धयोग्य प्रकृतियों की संख्या, गुणस्थानों में बन्ध का विशेष वर्णन एवं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में अबन्धयोग्य प्रकृतियों का विश्लेषण, इन सभी को प्रकृति बन्ध में समाविष्ट किया गया है । स्थितिबंध के संदर्भ में ज्ञानावरणादि मूल प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति, उत्तर प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति का उल्लेख करते हैं । उत्कृष्ट स्थिति बंध का कारण एवं उसकी विशेषता पर भी लेखक ने गहरा प्रभाव अङ्कित किया है । जघन्य स्थितिबन्ध के स्वामी अबाधा का लक्षण एवं उसकी व्यवस्था आदि का सटीक विवेचन उपस्थित हुआ है । चतुर्विध बन्ध के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण प्रतिपादित करते हैं ।

प्रकृतिप्रदेशबन्धौ योगात्पुंसां प्रजायेते ।
भवतः स्थितिरनुभागः कषायहेतोः सदा बन्धौ ॥[28]

भावार्थ यह है कि जीवों प्रकृति और प्रदेश बन्ध योगों के निमित्त से होते हैं तथा स्थिति और अनुभाग बन्ध कषाय के निमित्त से होते हैं । अतः स्थिति और अनुभाग बन्ध जीवों के लिए अनर्थ के कारण है किन्तु प्रकृति और प्रदेश बन्ध आत्मोन्मति के प्रतीक हैं।

अनुभाग बन्ध का स्वरूप बताते हैं कि कर्मों के समूह में जो विविध प्रकार की फलदायिनी शक्ति है, वही अनुभाग बन्ध है । उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध की सामग्री, स्वामी तथा जघन्य अनुभाग बन्ध के स्वामी का निरूपण किया गया है । दृष्टान्तों के द्वारा घातिया और अघातिया कर्मों की अनुभाग शक्ति का वर्णन भी हुआ है । अघाती-कर्मों के अन्तर्गत पाप-प्रकृतियाँ, पुण्यप्रकृतियाँ भी विश्लेषित हुई हैं । इसी परिप्रेक्ष्य में 20 सर्वघाती, 62 पुद्गल विपाकी, 26 देशघाती, 4 क्षेत्र विपाकी, 4 भव विपाकी एवं 68 जीव विपाकी प्रकृतियों का नामोल्लेख हुआ है ।

प्रदेश बन्ध का लक्षण करते हुए कहते हैं कि आत्मा योगादि के कारण सब ओर मे समस्त प्रदेशों के द्वारा आत्म प्रदेशों में प्रविष्ट होता है और कर्मरूप कार्माण वर्गणावत् पुद्गल को जो बांधता है, वही प्रदेश बन्ध है। मूलोत्तर प्रकृतियों में समयप्रबद्ध का बंटवारा भी किया जाता है । उत्कृष्टप्रदेश बन्ध की सामग्री और स्वामी का विश्लेषण करते हैं कि जो उत्कृष्ट योग वाला हो, संज्ञी, पर्याप्तक, अल्पप्रकृतिबन्ध हो, वही मनुष्य इसे धारण कर सकता है, इससे भिन्न व्यक्ति जघन्य प्रदेश बन्ध का धारक होता है । जघन्यप्रदेश बन्ध के स्वामी पर भी संक्षिप्त प्रकाश डालते हैं । बन्ध तत्त्व पर अपना वक्तव्य समाप्त करते हुए लेखक आशय प्रकट करता है कि बन्ध ही दुःख का कारण है । यदि भवभ्रमण से बचना है तो सर्वप्रथम आत्मस्वभाव की श्रद्धा करना चाहिये और उस (आत्म स्वभाव) को पाने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिये । यह पुरुषार्थ ही सम्यक्चारित्र कहा गया है।

अष्टम मयूख

प्रस्तुत मयूख में संवर तत्त्व का विस्तृत विवेचन है । "आस्रवस्य निरोधो यः संवरः सोऽभिधीयते । अर्थात् नये कर्मों के आगमन (आस्त्रव) का रुक जाना ही संवर कहलाता है । उनमें भी पुद्गल से सम्बन्धित ज्ञानवरणादि कर्मों का रुकना द्रव्यसंवर है तथा उन कर्मों के कारणभूत भावनाओं का जो सद्भाव है वह, भाव संवर है ।

संवर का माहात्म्य अद्वितीय है । संवर ही लोभ में उत्कृष्ट हित करने वाला है क्योंकि उसके बिना निर्जरा करने में समर्थ नहीं है । संवर के कारणों पर दृष्टिपात करते हैं - "गुप्ति,

समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय, चारित्र और तप के माध्यम से संवर की सिद्धि होती है -

''गुप्ति समितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयैश्च चारित्रैः ।
तपसाऽपि संवरोऽसौ भवतीति निरूपितं सद्भिः'' ॥[29]

मन, वचन, काय योगों का सम्यक् तरीके से निग्रह करना गुप्ति है - मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति ये उसके भेद हैं । समिति सांसारिक प्राणी की प्रवृत्ति का प्रतीक है - चलना, बोलना, खाना, रखना, उठाना तथा मलमूत्र छोड़ना । इन प्रवृत्तियों को प्रमादरहित होकर कराना ही समितियों का लक्ष्य है । ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और उत्सर्ग यही 5 समितियाँ हैं । इनका विस्तृत निरूपण ग्रन्थकार ने किया है । संवर के कारणों में धर्म का भी अमूल्य योगदान होता है । इसी सन्दर्भ में धर्म के दस अङ्गों का विश्लेषण हुआ है - मार्दवधर्म, आर्जवधर्म, शौचधर्म, सत्यधर्म, संयमधर्म, तपधर्म, त्यागधर्म, आकिञ्चन धर्म, ब्रह्मचर्य धर्म । अनुप्रेक्षाओं के माध्यम से भी संवर की प्राप्ति संभव है - अनित्यभावना, अशरणभावना, संसारभावना, एकत्वभावना, अन्यत्वभावना, अशुचिभावना, आस्रवभावना, संवरभावना, निर्जराभावना, लोकभावना, बोधिदुर्लभभावना और धर्मभावना ये बारह अनुप्रेक्षाएँ मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती हैं । संवर के पथ में दृढ़ता और कर्मों के निर्जरा के लिए बाईस परीषह सहना आवश्यक है, ये संवर के साधक हैं - क्षुधापरिषहजय, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, शय्या, आक्रोश, बन्ध, याचना, अलाभ, रोग, तृणादिस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन यही बाईस परिषहजय कहे गये हैं। संवर वह तत्त्व है जो मुक्ति को अलंकृत करता है । संवर से रहित व्यक्ति चारों गतियों में भटकता ही रहता है ।

नवम मयूख

प्रस्तुत मयूख में निर्जरातत्त्व का प्रतिपादन है।[30] तपों की व्याख्या के परिप्रेक्ष्य में छह बाह्य तपों और छह अन्तरङ्ग तपों का स्वरूपादि विश्लेषित हुआ है । उपवास, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, कायक्लेश, रसपरित्याग और विविक्तशययासन ये छह बाह्यतप हैं, जो अष्ट कर्मों को नष्ट करते हैं । मुनि लोग इन तपों का सेवन करते हैं । प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह अन्तरङ्ग तप हैं । इनमें से ध्यान के अनेक उपभेद हैं । ग्रन्थकार ने उपरोक्त विविध प्रकार के तपों के संक्षिप्त लक्षण भी समझाये हैं । निर्जरातत्त्व का समीचीन निरूपण करते हुए नवम मयूख के अन्त में संसार-सागर से पार होने के लिए तप की ही आराधना करके की प्रेरणा दी गई है ।

दशम मयूख

सम्यकत्व चिन्तामणि के इस अन्तिम मयूख में सम्यग्दर्शन के आधारभूत ''मोक्ष'' नामक तत्त्व को प्रतिपादित किया गया है । देव, शास्त्र गुरु का भी महत्त्वपूर्ण विवेचन भी निबद्ध है । मोक्ष के स्वरूप का स्पष्टीकरण अधोलिखित पद्य से होता है -

''सर्वकर्मनिचयस्य योगिना मात्मनः किल विमोक्षणं तु यत् ।
तद्धि सर्वसुखदं प्रकीर्त्यते, मोक्षतत्त्वमहि साधुसंचयै :।।[31]

अर्थात् योगियों की आत्मा से कर्मों का छूटना ही इस संसार में साधुओं ने शाश्वत सुखदायी मोक्ष कहा है । भावार्थ यह है कि संवर और निर्जरा के द्वारा समस्त कर्मों हमेशां के लिए क्षय हो जाना मोक्ष है । यह मुनियों को ही प्राप्य है । यह मोक्ष केवलज्ञान पूर्वक

ही प्राप्त होता है -जिसने ध्यान से मोह को भङ्ग कर लिया है और चार घातिया कर्मों को नष्ट किया है, वही केवल ज्ञान पा सकता है । सिद्धों का स्वभाव उर्ध्वगमन का होता है। अग्नि की ज्वालाओं के समान मुक्त जीव भी स्वभावत: उर्ध्वगामी होता है । क्षेत्र, काल, गति, तीर्थ, चारित्र, बुद्ध-बोधित, ज्ञान, अवगाहना, लिङ्ग, संख्या, अल्पबहुत्व और अन्तर ये 12 अनुयोग कहे गये हैं । इनके माध्यम से प्रश्नोत्तर शैली में सिद्धों का विस्तृत अवकलन प्रस्तुत रचना में समाविष्ट हैं । अर्हन्तदेव एवं आचार्यों को प्रणाम करते हुए मङ्गल-कामना के साथ ग्रन्थ का समापन किया है ।

सज्ज्ञान–चन्द्रिका[३२]

सज्ज्ञान-चन्द्रिका दक्ष प्रकाशों के 797 पद्यों में निबद्ध दार्शनिक रचना है । मुक्ति के साधक रत्नत्रय हैं-इस कृति में सम्यग्ज्ञान का साङ्गोपाङ्ग विवेचन होने के कारण इसका नामकरण ''सज्ज्ञान चन्द्रिका'' सर्वथा उचित है ।

रचनाकार ने मुक्ति के साधक सम्यग्ज्ञान से जन-जन को अवगत कराने और विश्वकल्याण करने के लिए लक्ष्य को लेकर इस कृति का सृजन किया है ।

''अनुशीलन''

सज्ज्ञान-चन्द्रिका के प्रथम प्रकाश में मङ्गलाचरण स्वरूप पञ्च-परमेष्ठियों का स्तवन, सम्यग्ज्ञान की दुर्लभता, सम्यग्ज्ञान सामान्य, आत्मज्ञान, चार अनुयोगों तथा सम्यग्ज्ञान के आठ अंगों का निरूपण है । द्वितीय प्रकाश में मतिज्ञान, उसके चार मूलभेद 336 उत्तर भेद वर्णित हैं । इनके सूक्ष्म निरूपण हेतु लेख ने विशेषत: आचार्य वीर सेन रचित धवला टीका के उद्धरणों का अवलम्बन लिया है ।

तृतीय प्रकाश में श्रुतज्ञान और उसके प्रभेद अङ्ग-प्रविष्ट और अङ्गबाह्यों को समाविष्ट किया है । तदनुसार अङ्ग प्रविष्ट के बारह भेद और अङ्ग बाह्य के अनेक भेद हैं । श्रुतज्ञान के विस्तार को देखकर पूर्वाचार्यों ने उसे केवलज्ञान तुल्य कहा है । इसमें मात्र परोक्ष और प्रत्यक्ष का अन्तर है । यह पूर्व में मुनियों के तपोबलपूर्वक सुरक्षित रहा है परन्तु पञ्चमकाल में स्मरण शक्ति की न्यूनता से इसका क्रमश: ह्रास होता जा रहा है ।

चतुर्थ प्रकाश में - आचार्य उमास्वामी रचित तत्त्वार्थसूत्र के आधार पर श्रुतज्ञान के भेदरूप नयों का निरूपण किया गया है । पञ्चम प्रकाश में-आचार्य नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक देव विरचित गोमटसार जीव काण्ड, अकलंकभट्ट रचित राजवार्तिक एवं धवला टीका के आधार पर अवधि ज्ञान के भेद-प्रभेदों का सूक्ष्म विवेचन हैं । षष्ठ प्रकाश में मन: पर्यय ज्ञान उसके भेद-ऋजुमति और विपुल मति मन: पर्यय ज्ञान का विस्तृत वर्णन किया गया है । सप्तम प्रकाश में-गुणस्थानों के क्रम से केवलज्ञान की प्राप्ति, उसका स्वरूप और सर्वज्ञ सिद्धि पर आगमोक्त प्रकाश डाला गया है । अष्टम प्रकाश में -धवला टीका के आधार पर चौंसठ ऋद्धियों की विस्तृत चर्चा है । नवम प्रकाश में-मोक्ष प्राप्ति में परम्परा से सहायक धर्मयज्ञ ध्यान के साङ्गोपाङ्ग विश्लेषण के साथ-साथ शुक्लध्यान के भेद प्रभेदों का वर्णन समाविष्ट है-जिसमें विशेषत: आचार्य शुभचन्द्र के ज्ञानार्णव एवं स्वामी कार्तिकेय की कार्तिकेयानुप्रेक्षा की संस्कृत टीका का प्रश्रय लिया गया है।

अन्तिम दशम प्रकाश में-शुक्लध्यान के भेदों का सम्यक् रीत्या विवेचन सन्निविष्ट है । ग्रन्थ के उपान्त्य में लेखक ने ग्रन्थ के प्रति मंगलकामना के साथ अपना जीवन परिचय

प्रस्तुत किया है तथा अन्त में मुक्ति साधक धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान का हिन्दी भाषा में विवेचन किया है ।

इसके पश्चात् दो परिशिष्ट संलग्न है-

(1) अकारादि क्रम से पद्यानुक्रमणिका,

(2) ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्दों की नामावली ।

सम्यक्चारित्र चिन्तामणि[३३]

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र जिनागम का प्रतिपाद्य विषय है । इन विषयों पर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन जैनाचार्यों ने किया है । इसी शृंखला में श्रद्धेय डा. पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने ग्रन्थत्रय की रचना की है- रत्नत्रयी का प्रथम अङ्ग सम्यक्त्व चिन्तामणि, द्वितीय अंग सज्ज्ञान चन्द्रिका और तृतीय अङ्ग सम्यक् चारित्र- चिन्तामणि है ।

विवेच्य ग्रन्थ 13 प्रकाशों में विभाजित है और ग्रन्थ की कुल श्लोक संख्या 1072 है । जनसाधारण को चारित्र की महिमा से अवगत कराना ग्रन्थकार का प्रमुख लक्ष्य है, इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर सम्यक्त्व चारित्र- चिन्तामणि का सृजन किया है ।

अनुशीलन :

श्रद्धेय डा. पन्नालाल जी साहित्याचार्य महोदय ने इस ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए अर्हन्तों, सिद्धों, उपाध्यायों के साथ भगवान् वृषभनाथ को प्रणाम किया है । इसके उपरान्त संसार परिभ्रमण के नाश के लिए इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है तथा सुधीजनों के प्रति स्वविनम्रता प्रदर्शित कर विभिन्न आचार्यों द्वारा विरचित ग्रन्थों में चारित्र की अलग-अलग परिभाषाओं को एक रत्न माला में पिरोकर प्रस्तुत किया है । व्यवहार नय से चरणानुयोग की पद्धति से मुनियों की जो हिंसादि पापों से निवृत्ति है वही पृथिवी पर "चारित्र" नाम से प्रसिद्ध है । चारित्र को विभिन्न अर्थों से स्पष्ट करके यह बताया गया है कि किस व्यक्ति को "सम्यक् चारित्र" की प्राप्ति है । अर्थात जो मनुष्य मोहनीय की सात प्रकृतियों को नष्ट कर उपशम, क्षय या क्षयोपशम कर जिसने "सम्यग्दर्शन" प्राप्त कर लिया है, जो कर्मभूमि में उत्पन्न है, भव्यत्वभाव से सहित है तत्त्वज्ञान से युक्त है, संसार - भ्रमण की सन्तति से भयभीत है, संक्लेश से रहित है उसे "चारित्र" की प्राप्ति होती है । सम्यक्चारित्र का इच्छुक भव्य मनुष्य बन्धुवर्ग से अनुमति लेकर स्नेहबन्धन को तोडकर पञ्च इन्द्रियों पर विजयप्राप्त कर शरीर पोषण से विरक्त होकर वन में आचार्य गुरुओं के पास जाता है और नमस्कार कर गुरु के वचनामृत सुनता है। आचार्य गुरु उपदेश देते हुए कहते हैं-यह संसार महादुःख रूपी वृक्ष का कन्द है, इसलिए मुनिदीक्षा धारण करो । मैं मुनियों के अनुरूप आचरण बताता हूँ, मुनि अवस्था का उत्सुक भव्य मानव अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों का पालन ईर्या, भाषा, एषणा, आदान, न्यास और व्युत्सर्ग इन पाँच समितियों से "महाव्रतों" की रक्षा करता है । सम्यग्ज्ञान के धारक मनुष्य के द्वारा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पाँच इन्द्रियां कही गयी हैं । मुनि दीक्षा के लिए उद्यत मनुष्यों को इन्द्रियों जीतना चाहिए, क्योंकि जो इन्द्रियों का दास वह दीक्षा नहीं ले सकता ।

साधु को प्रतिदिन छह आवश्यकों का पालन करना चाहिए । ये षडावश्यक समता, वन्दना, तीर्थ करों की स्मृति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग हैं । षडावश्यकों का पालन

करते हुए केश लोंच करना, नग्न रहता, स्नान न करना, पृथिवी पर सोना, दातौन (मंजन) न करना, खड़े खड़े आहार करना और दिन में एक बार आहार लेना ये मुनियों के योग्य शेष सात गुण माने गये हैं । इस प्रकार गुरु के मुख से मूल गुणों का वर्णन सुन दीक्षा के लिये उद्यत मनुष्य ॐ कहकर केशों का लोंच कर वस्त्रावरण दूरकर दिगम्बर हो जाता है, तब गुरु उसका संस्कार कर पीछी और कमण्डल धारण कराता है । इस प्रकार वह छठवें और सातवें गुण स्थान में आरोह-अवरोह करता हुआ सामायिक और छेदोपस्थापना चारित्र से युक्त हो गुरु (आचार्य) और संघस्थ मुनियों के साथ पृथिवी पर विहार करता है । इस प्रकार चारित्र का लक्षण पाँच महाव्रतों, पाँच समितियों, पाँच इन्द्रियजय, षडावश्यक और सात सामान्य गुणों के वर्णन से सामान्य मूल गुणाधिकार नामक प्रथम प्रकाश समाप्त हुआ।

''सम्यग्चारित्र चिन्तामणि'' के चारित्रलब्धि अधिकार नामक द्वितीय-प्रकाश के प्रारम्भ में भी ऋषि, मुनि यति और अनगार साधुओं को नमस्कार किया है । जो ज्ञानोपयोग से संयुक्त है, शुभलेश्याओं से सहित है, पर्याप्त है, जागृत है, योग्य द्रव्य क्षेत्र आदि से सुशोभित है, ऐसा मनुष्य कर्मक्षय करने वाली चारित्रलब्धि को प्राप्त होता है । विशुद्धि को प्राप्त कर मनुष्य प्रथम, चतुर्थ अथवा पञ्चम गुणस्थान से संयम को प्राप्त होता है।

संयम प्राप्त करने वाले मनुष्यों के प्रतिपात आदि-प्रतिपात, प्रतिपद्यमान और अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान संयम स्थान है । जो मनुष्य सङ्क्लेश की बहुलता से घटती विशुद्धि से चतुर्थ, पञ्चम अथवा प्रथम गुणस्थान में आते हैं, वे प्रतिपात स्थान हैं । जिस स्थान से मनुष्य संयम को प्राप्त होता है, वे प्रतिपद्यमान कहलाते हैं । इनके अतिरिक्त जो संयम के स्थान हैं, वे लब्धिस्थान कहे जाते हैं । क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन से सहित भव्यमनुष्य अनन्तानुबन्धी बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन सात प्रवृतियों का चतुर्थ से लेकर सप्तम गुण स्थान तक किसी भी गुणस्थान में उपशम कर सातिशय अप्रमत्तविरत होते हैं, वे ही मुनि अपूर्वकरण गुणस्थान को प्राप्त करते हैं । इस गुणस्थान में इनकी विशुद्धि उत्तरोत्तर बढती रहती है । इस गुण स्थान का समय अन्तर्मुहूर्त है । ये मुनि अन्तर्मुहूर्त तक पूर्ववत् स्थितिकाण्ड घात आदि क्रियाओं को करते हुए नवम गुणस्थान में स्थित रहते हैं इस गुणस्थान से ही नवक द्रव्य और उच्छिष्टावली को छोड़कर मोहनीय कर्म का सर्वथा उपशम हो जाता है । अन्तर्मुहूर्त मैं सम्यक्त्वमिथ्यात्व को सम्यक्त्व प्रकृतिरूप कर मोहनीय कर्म को क्षय कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर चारित्रमोह का क्षय करने के लिए वह क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होने का प्रयत्न करता है ।

आठ मध्यम कषायों की क्षपणा के पश्चात् स्त्यानगृद्धि आदि सोलह प्रकृतियों का क्षय होता है । एक-एक अन्तर्मुहूर्त में नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, पुंवेद, संज्वलन, क्रोध, मान और माया का क्रमशः क्षय होता है । जब तक मोहनीय कर्म का एक कण भी विद्यमान रहता है, तब तक यह जीव इस संसार वन में भ्रमण करता रहता है । सम्यग्दृष्टि प्राप्त करने के लिए जिनेन्द्र भगवान् की आराधना का उपदेश देकर, इस प्रकाश का समारोप किया है ।

इस प्रकाश के आरम्भ में संसार के भोगों का परित्याग कर मोक्ष पाने वाले भगवान् नेमिनाथ को प्रमाण किया है । मोक्ष सुख के इच्छुक महापुरुष हिंसा, असत्य, चौर्य, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों को पूर्णतः त्यागकर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों का पालन करते हैं । इन पाँच पापों के त्याग करने के लिए भव्यजीवों

के द्वारा किए गये प्रयत्नों का विशद विवेचन किये । ग्रन्थकार के अनुसार जब तक जीव-जातियों के ज्ञान के बिना "हिंसा का त्याग नहीं हो सकता। इसलिए संसारी जीवों की चार जातियाँ-(गतियां) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गतियों का भी वर्णन किया है । प्रत्येक महाव्रत की पाँच-पाँच भावनाएं होती हैं और इन्हीं पाँच भावनाओं का पालन करते हुए महाव्रतो में स्थिरता आती है । "अनादिकाल से उस संसार में भ्रमण करने वाले जीव के दु:ख समूह को नष्ट करने के लिए मुनिव्रत ही समर्थ है" की घोषणा कर इस महाव्रताधिकार का समापन हुआ है ।

पञ्चसमित्यधिकार नामक इस प्रकाश का प्रारम्भ ध्यानरूपी कृपाण से कर्मारिओं को जीतने वाले भगवान् महावीर की स्तुति से हुआ है । महाव्रतों की रक्षा के लिये ईर्या, भाषा एषणा, आदान-निक्षेपण और व्यत्सर्ग समितियों का वर्णन किया है । प्रमाद से रहित वृत्ति को "समिति" कहते हैं । चर्या तीर्थयात्रा, गुरु वन्दना और जिनधर्म के प्रसार के लिए नियम पूर्वक किया गया मुनियों का गमन ईर्या तथा असत्यवचन का त्याग कर हित-मित और प्रिय वचन बोलना भाषा समिति है । दिन में एक बार खड़े होकर पाणिपात्र में विधिपूर्वक प्राप्त हुए आहार को ग्रहण करना "एषणा समिति" कहलाती है । एषणा वृत्ति के पाँच अवान्तर भेदों का भी विवेचन है । कमण्डल, पिच्छी और शास्त्र को सावधानी से उठाना रखना ही "आदान-निक्षेपण" समिति हैं ।

व्युत्स समिति का विवेचन कर दोषों को नष्ट करने के लिए उद्यत भव्यजीवों को प्रमाद त्यागना चाहिए का उपदेश कर समिति-अधिकार नाम का यह प्रकाश समाप्त हुआ।

इस इन्द्रियविजयाधिकार नाम के प्रकाश का आरम्भ मङ्गलाचरण से हुआ है, जिसमें इन्द्रिय विजयी साधुओं को प्रणाम किया है । इन्द्रियविजय-मूलगुणों का वर्णन करते हुए ग्रन्थकर्ता लिखते हैं कि -इन्द्रिय विषयों के अधीन होकर मानव इस दु:खपूर्ण संसार में भ्रमण करता रहता है । संसारी जीव जिह्वाइन्द्रिय के आश्रित होकर दूषित आहार से पीड़ित हो मृत्यु प्राप्त करते हैं । संसारी जीव घ्राण इन्द्रिय का भी दास होता है । किन्तु आत्मस्वरूप में रमण करने वाले मुनि वस्तुओं के स्वरूप का ध्यान रखते हुए दुर्गन्ध या सुगन्ध में माध्यस्थ्य भाव को प्राप्त होते हैं । धवल ज्योति का आकांक्षी कीट मृत्यु को प्राप्त होता है वैसे ही यह मनुष्य चक्षुइन्द्रिय के विषय का लोभी बनकर मृत्यु को प्राप्त करता है । किन्तु आत्मध्यान में लीनसाधु के लिए रूप गन्ध से प्रयोजन नहीं रहता। जिनको प्रशंसा सुनकर हर्ष और निन्दा सुनकर विषाद नहीं होता जैसे धीर-वीर मुनि कर्णेन्द्रिय जयी कहलाते हैं । जिसके राद्वेष का नाश हो गया है और जिनके संतोष और रोष उत्पन्न नहीं होता ऐसे साधु ध्यान से कर्मों का क्षय करते हैं का निर्देश कर इस प्रकाश का समारोप किया है।

इस षडावश्यकाधिकार नामक प्रकाश के प्रारम्भ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को प्राप्त कर मोक्ष लक्ष्मी पाने वाले सिद्ध-परमेष्ठियों को नमस्कार किया है। मंगलाचरण के पश्चात् आवश्यक शब्द का निरूक्तार्थ और समता, वन्दना, स्तोत्र, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कार्योत्सर्ग इन षडावश्यक कार्यों को मुनि श्रद्धा से करते हैं । 3 पद्य कं. 6 से 13 तक समता आवश्यक का अर्थ और गुणों का वर्णन है। साधुओं द्वारा जब चौबीस तीर्थंकरों में से किसी एक तीर्थंकर की स्तुति की जाये तब वन्दना नामक आवश्यक माना जाता है । ग्रन्थकर्ता ने एक तीर्थंकर के स्तवन वन्दना में महावीर स्वामी का स्तवनरूप पद्य क्र., 15 से 23 तक में सरल, सहज और प्रसादपूर्ण भाषा में 9 पद्यों में किया है ।

गुरू वन्दना और विधि का विवेचन कर विविध छन्दों में चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति पद्य क्र. 33 से 58 तक वर्णित है । इसके पश्चात् जिन स्तुति की महिमा का वर्णन है । ज्ञातादृष्टा स्वभाव वाला आत्मा मोह के वश में होकर प्रमादी हो जाता है तब प्रमाद को दूर करने का जो सुप्रयास किया जाता है वह प्रतिक्रमण आवश्यक है । साधुओं की सरलता के लिए एक पाठ दिया जाता है सो वचनों के पाठ मात्र से आत्मा शुद्ध नहीं होती का विवेचन पद्य क्र. 73 से 88 तक किया हैं । निर्ग्रन्थ तपस्वी का जो त्यागरूप परिणाम होता है वह प्रत्याख्यानावश्यक कहलाता है । प्रत्याख्यान आवश्यक का विस्तृत वर्णन पद्य क्र. 89 से 100 तक किया है । कर्मक्षय का कारण मोक्षमार्ग का उपदेशक है । घातिया कर्मो का नाशकारक है, कृतिकर्मी से सारभूत है, वह कायोत्सर्ग आवश्यक कहलाता है । कायोत्सर्ग का जघन्य और उत्कृष्ट काल का परिणाम और भेद बताकर इस प्रकाश का समारोप किया है ।

पञ्चाचाराधिकार नामक प्रकाश के प्रारम्भ में भी आचार्य परमेष्ठियों को नमस्कार किया है । दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचारों का स्वरूप बताते हुए ग्रन्थकर्ता ने लिखा है कि इन पांच आचारों का पालन आचार्य स्वयं करते हैं एवं दूसरों को भी पालन कराते हैं । मोक्षमार्ग में सहायभूत देवशास्त्र गुरू का तीन मूढताओं और ज्ञानादि आठमदों से रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है [34] इसी क्रम में सम्यग्दर्शन के आठ अङ्गों का स्वरूप वर्णित है । सम्यग्दर्शन के आठ अंगों के तुरन्त बाद (पद्य क्र. 25 से 56 तक) सम्यग्ज्ञान के आठ अङ्गों का वर्णन है । तथा इसके अवान्तर भेदों का विवेचन है । इसके पश्चात् चारित्राचार का वर्णन है । तपाचार के अन्तर्गत बाह्यतप और आभ्यन्तर तप का वर्णन (पद्य क्र. 61 से 113 तक) वर्णित है । वीर्याचार का वर्णन करते हुए ग्रन्थकर्ता ने लिखा है - आत्मा की शक्ति वीर्य कहलाती है । आतापनादि से दीक्षित मुनि अपनी शक्ति को बढ़ाते हैं । इस प्रकार जो साधु विधि पूर्वक पञ्चाचार रूप तप को धारण कर तपस्या करते हैं, वे कर्मबन्ध से छुटकारा पाकर मोक्ष जाते हैं का वर्णन कर इस अध्याय का समारोप किया है ।

इस अनुप्रेक्षाधिकार नामक प्रकाश के प्रारम्भ में रागद्वेष से रहित मुनियों को प्रणाम किया है । वैराग्य वृद्धि के लिये वन में स्थित मुनिराज अनित्यत्वादि भावनाओं का चिन्तवन करते हैं । अनित्य भावना का विवेचन पद्य क्र. 2 से 11 तक वर्णित है । पद्य क्रमांक 12 से 21 तक अशरण भावना का विवेचन है । संसार भावना का वर्णन करते हुए ग्रन्थकर्ता लिखते हैं कि - दु:ख रूपी जल से परिपूर्ण, जन्म मृत्युरूपी मगर मच्छों से व्याप्त भयंकर संसार सागर में दु:ख का भार ढोते हुए चिरकाल तक दु:खित होते हैं । तदुपरान्त (पद्य क्र. 33 से 42 तक) एकत्व भावना का वर्णन है । अन्यत्व भावना का वर्णन पद्य क्र. 43 से 52 तक मिलता है । माता-पिता के रजवीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र का शरीर पवित्र नहीं होता। मलमूत्रय शरीर सुन्दर चर्म से ढका है इस प्रकार की भावना करना अशुचित्वानुप्रेक्षा है । पद्य क्र. 63-72 में आस्रव भावना का स्वरूप बताया है । आस्रव को रोकाना संवर कहलाता है। तीन गुप्तियों, दशधर्मों, पाँच समितियों, पाँच प्रकार के चारित्रों, बारहानुपप्रेक्षाओं और बाईस परिषहजयों से सम्यग्दृष्टि जीवों के आस्रव रुकते हैं अर्थात् सवर भावना पल्लवित होती है। निर्जरानुप्रेक्षा का वर्णन पद्य क्र. 84 - 93, लोकभावनाओं का चिन्तन पद्य क्र. 94 - 103, बोधि दुर्लभ भावना का चिन्तवन पद्य क्र. 104 - 113 । धर्म भावना का स्वरूप 114 - 23 का वर्णित है । जो भव्यपुरूष स्थिर चित्त से द्वादशानुप्रेक्षाओं का चिन्तन करते हैं ।

ध्यान सामग्री नाम के इस अध्याय के प्रारम्भ में मोक्ष पाने वाले सिद्ध-परमेष्ठियों का नमस्कार किया है । चित्त की स्थिरता के लिए ध्यान महत्त्वपूर्ण है । ध्यान तत्व की सिद्धि के लिये मार्गणाओं और गुणस्थानों का ज्ञान और व्यवहार में लाना आवश्यक है। इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, मार्गणाओं का वर्णन पद्य क्र. 2 से 38 तक है । मार्गणाओं में सम्यग्दर्शन का विस्तृत विवेचन है । संयममार्गणा की अपेक्षा सामायिक और छदोस्थापना संयम से सहित आत्मपुरूषार्थी जीवों के तीन भेद हैं । इस प्रकार इन सबका चिन्तन करने वाले पुरूष चिंतन के काल में अपने मन को अत्यधिक दुःख देने वाले पन्चेन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट को क्षय कर प्रसन्न होते हैं।

आत्मा शरीर के प्रपन्च से भिन्न शुद्ध चैतन्य है ऐसा ध्यान करने वाले निर्ग्रन्थ साधुओं को इस प्रकाश के प्रारम्भ में नमस्कार किया है । आर्यिकाओं की विधि का वर्णन करते हुए ग्रन्थकर्ता लिखिते हैं - यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीव मरकर स्त्रियों में उत्पन्न नहीं होते, फिर भी भावशुद्धि से स्त्रियाँ उत्कृष्ट औपशमिक अथवा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेती है । सीता, सुलोचनादि ऐसी ही स्त्रियाँ हुई है, जो भव्यस्त्रियाँ गृहभार से विरक्त हो गयी है वे गुरु के पास जाकर भक्तिपूर्ण निवेदन करती हुयी कहती हैं- हे भगवन् ! हमें आर्यिका की दीक्षा दीजिये । गुरुवाणी सुनने की इच्छा से उनके सामने चुपचाप बैठ जाती है । स्त्रियों की मुखाकृति देख तथा भव्य भावना की परीक्षा कर गुरुजी विनम्रता से बोले-आप सबकी आत्मा का कल्याण हो। महाव्रत धारण करो, पाँच समितियों का पालन कर पञ्चेन्द्रियजयी बनो । यदि आर्यिका व्रत धारण करने की तुम्हारी शक्ति नहीं है तो धोती के ऊपर एक चादर धारण कर सकती हो । क्षुल्लिकाओं का व्रत ग्यारहवीं प्रतिमा के धारक के समान है । इस प्रकार आचार्य महाराज के मुखचन्द्र से निकली अमृत के समान वाणी को सुनकर वे सभी स्त्रियाँ सन्तुष्ट होकर आर्यिका व्रत धारण कर आत्मकल्याण का सनातन मार्ग दिखाती हुयी संसार में विहार करती हैं। जो देवी के समान और तीर्थंकरों की माताओं के समान हैं, वे साध्वी मेरे लिए मोक्ष मार्ग दिखलाये की इच्छा व्यक्त कर इस प्रकाश का समारोप किया ।

प्रस्तुत प्रकाश में वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण करते हुए ग्रन्थकर्ता लिखते हैं कि जो स्वकीय आत्मा के हितार्थ सल्लेखना धारण कर मुनिराज पथ पर चलते रहते हैं, वे मुनिराज मोक्ष मार्ग बतायें - जिस प्रकार कोई विदेश में रहने वाला मनुष्य विपुल धन अर्जित कर स्वदेश आने की इच्छा करता है किन्तु वह अपने साथ धन लाने में असमर्थ रहता है । इसी तरह यदि मनुष्य आत्मकल्याण करना चाहता है तो उसे सल्लेखना धारण करना चाहिये। संन्यास सल्लेखना प्रतिकार रहित उपसर्ग भयंकर दुर्भिक्ष और भयङ्कर बीमारी के होने पर लेना चाहिए । प्रीतिपूर्वक ली गयी सल्लेखना फलदायक होती है। संन्यास के योग्य मनुष्य निर्यापक मुनिराज के पास जाकर प्रार्थना करता है कि हे भगवन् संन्यास देकर मेरा जन्म सफल करो । निर्यायक मुनि क्षपक की स्थिति जानकार अपनी स्वीकृति देते हैं । क्रमशः द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव देखकर उत्तमार्थ प्रतिक्रमण कराते हैं । निर्यापण विधि कराने में समर्थ साधु क्षुधा तृषा आदि से उत्पन्न कष्ट को अनेक दृष्टान्तों के द्वारा दूर करते रहते हैं । संन्यास मरण के प्रभाव से क्षपक स्वर्ग जाता है। साथ ही मेरू-नन्दीश्वर आदि के शाश्वत अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना करता है ।

यदि मनुष्य स्वर्ग सुख को चाहता है तो जिनेन्द्र देव की आराधना कर जिनेन्द्र वाणी का आश्रय ले सुगुरू को नमस्कार करें का निर्देश देकर इस अध्याय का समारोप किया है।

देश चारित्राधिकार नामक द्वादश प्रकाश के आरम्भ में भगवान् महावीर को प्रणाम किया है । जो व्यक्ति संसार और शरीर से उदासीन है, सम्यग्दर्शन से सुशोभित है और हिंसादि से विरक्त होते हैं उन्हें ही 'देश चारित्र' प्राप्त होता है । देश चारित्र प्राप्ति के लिए पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत सहायक होते हैं । इनका विवेचन पद्य क्र. 6-38 तक किया है । व्रतों की निर्मलता चाहने वाले पुरुष सत्तर अतिचारों का त्याग कर कर्मक्षय करने का प्रयत्न करते हैं । शंका भोगादि सत्तर अतिचारों का वर्णन पद्य क्र . 39 से 76 तक मिलता है । जिन पूजा सब संकटों को नष्ट करने वाली होती है, इसलिए श्रावकों को प्रतिदिन अत्यन्त श्रेष्ठ अष्ट द्रव्यों से जिनपूजा करनी चाहिए। व्रतों मनुष्यों को अपने द्रव्य से हमेशा भक्तिपूर्वक जिनवाणी का प्रसार करना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण नामक चारित्र मोह के क्षयोपशम और प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय की हीनाधिकता से श्रावक ग्यारह प्रतिमाओं में प्रवृत्त होता है । ग्यारह प्रतिमाओं के स्वरूप का विवेचन पद्य क्र. 94-120 तक वर्णित है । जैनधर्म सभी जीवों का हितकर्त्ता है इसलिए गृहस्थ और मुनिगण इच्छानुसार चारित्रधारण कर दुःख से निवृत्त होकर उत्तम सुख प्राप्त करे । इसी कामना के साथ इस अध्याय का समारोप किया है ।

त्रयोदश प्रकाश का अपर नाम संयमासंयमलब्धि अधिकार है । इस प्रकाश के प्रारम्भ में संसारसागर में निमग्न जीवसमूहों का उद्धार करने के इच्छुक सदगुरूओं को नमस्कार किया है । संसार में संयमासंयम को देश चारित्र कहते हैं । त्रस हिंसा से निवृत्त होने के कारण संयम और स्थावर हिंसा के विद्यमान रहने से असंयम कहा जाता है। चारित्रलब्धि और देश चारित्र लब्धिओं को पाने के लिए प्रतिबन्धक कर्मों की उपशामना विधि होती है । इसके चार भेद हैं - प्रकृति उपशामना, स्थिति उपशामना, अनुभाग उपशामना और प्रदेश उपशामना । इन भेदों का विशद विवेचन - 13 से 27 तक वर्णित है । संयतासंयत जीव पञ्चम गुण स्थानवर्ती कहे जाते हैं। देशचारित्र के धारक मनुष्य या तिर्यञ्च सोलहवें स्वर्ग में उत्पन्न होकर अढ़ाई द्वीपों में निवास करते हैं ।

इन्द्रिय विजय का उपदेश देते हुए इस प्रकरण को समारोप किया है ।

''धर्मकुसुमोद्यान ''

धर्मकुसुमोद्यान 35 ग्रन्थ बीसवीं शती के पश्चात साहित्यकार डा. पन्नालाल जी साहित्याचार्य की रचना है । जैनदर्शन, संस्कृति, सदाचार,पाण्डित्य के धनी डा. साहब ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है ।

नामकरण - प्रस्तुत कृति का नाम 'धर्मकुसुमोद्यान' सर्वथा उपयुक्त है । क्योंकि इसमें धर्म का कुसुम पुष्पित और पल्लवित हुआ है । इसे 'दशलक्षण धर्म-सङ्ग्रह' भी कहते है। इसमें धर्म के अभिन्न दश लक्षणों पर कवि की मार्मिक अनुभूति अभिव्यंजित है ।

आकार - इस रचना 109 पद्यों से सम्गुफित एक नीतिविषयक लघुकाव्य ही है ।

विषयवस्तु - प्रस्तुत कृति में धर्म का लक्षण एवं उसके 10 भेदों पर विचार किया गया है ।

उद्देशय - प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना का लक्ष्य मानव हृदय में व्याप्त अज्ञान को नष्ट करना तथा उसे अपने कर्त्तव्य एवं आत्मा का दर्शन कराना भी है। जिससे सामाजिक दुष्प्रवृत्तियाँ नष्ट हो सके ।

''अनुशीलन''

धर्म का लक्षण - जो प्राणियों को संसार के दु:खों से वञ्चित कर मोक्ष प्रदान करता है, वही धर्म है । इसमें क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य, ब्रह्मचर्य को धर्म के रूप में स्वीकार करके प्रतिष्ठित किया है । क्रोध की परिस्थितियां रहने पर भी क्रोध उत्पन्न न होना या क्रोध का अभाव क्षमा है । इसमें अपरिमित शक्ति होती है मनुष्य का नम्र स्वभाव मार्दव कहलाता है । इससे अलङ्कृत मानव सर्वत्र सम्मानित होता है । मनुष्य के हृदय की सरलता 'आर्जव धर्म' है । संसार से मुक्ति पाने के लिए आर्जव का होना अनिवार्य है । हृदय की पवित्रता शौच है- 'शुचेर्भाव: शौच: । 36 इससे मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है । संतोष का आश्रय सुख का मूल है, सन्तोषी के समीप विपत्ति नहीं आ सकती ।

अयमेव शौच धर्मो स्वात्माश्रयं संददाति लोकेभ्य: ।[37]

सत्यधर्म की महत्ता विश्रुत है - सत्य भाषण से समस्त सन्ताप और पाप नष्ट हो जाते हैं । संयम धर्म का परिचय भी द्रष्टव्य है - मन एवं इन्द्रियों की प्रवृत्ति को रोकना ''संयम'' है । संयम से मानव मात्र की रक्षा की जाती है । ''इच्छानां विनिरोधस्तप:[38]'' अर्थात् इच्छाओं को रोकना तप है । तप से आत्मा पवित्र होती है । तपस्या से कुछ भी असम्भव नहीं होता। इसके पश्चात् त्याग धर्म का निरुपण किया गया है - कि विश्वकल्याण (मानव कल्याण) के लिए भक्ति पूर्वक पात्र दान ''त्याग'' है - आहार, अभय, ज्ञान, औषधि ये त्याग के भेद हैं । इसके साथ ही त्याग की सर्वश्रेष्ठता भी निरूपित की है। ''आकिञ्चन्य'' का अर्थ है - जिसके पास कुछ नहीं हैं । यह धर्म मुनियों को प्रिय होता है, और वे बाह्य और अन्तरङ्ग दोनों ही परिग्रहों से दूर रहते हैं । ब्रह्मचर्य धर्म का विवेचन भी इस प्रकार हुआ है - दूरादेव समुज्झित्य नारी नरकपद्धतिम्।

ब्रह्मणि चर्यते यत्तद् ब्रह्मचर्य समुच्यते ।[39]

अत: स्त्री शरीर का पति त्याग कर ब्रह्म में (आत्मा) विचरण करना ''ब्रह्मचर्य'' है। स्त्री शरीर में लिप्त मनुष्य रोग एवं अपमान के शिकार होते हैं । इसलिए स्वास्थ्य, यश एवं प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य धारण करना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है ।

सामयिक पाठ[40]

आकार - ''सामयिक पाठ'' तिहेत्तर श्लोकों में निबद्ध लघुकाव्य रचना है ।

नामकरण - मानव जीवन के समस्त विरोधों का शमन करके सुख-शान्ति प्रदान करने के कारण इस कृति का नामकरण ''सामयिक पाठ'' सर्वथा युक्तिसङ्गत है ।

रचनाकार का उद्देश्य - सामायिक के काल में, व्यक्ति के द्वारा किये पाप क्रिया-कलापों की आलोचना ही ''निर्जरा'' का कारण है । इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर इस कृति का प्रणयन किया गया है ।

अनुशीलन - हे जिनेन्द्र देव, मन, वचन एवं काया से मेरे द्वारा किये पापों एवं क्रोध, मान, मद माया, मत्सर, लोभ, मोह के वशीभूत किये गये कर्मों के फल को शान्त कीजिए।

बचपन, यौवन में तथा कृषि, वाणिज्य, न्यायालादि में छल-बल, बसन्त-हेमन्त काल में प्रभावित काम चेष्टाओं आदि से उत्पन्न पापों का शमन कीजिए । प्रमादवश किये गये मेरे सभी प्रकार के अपराधों, पर निंदा, कुटिलता आदि मेरे समस्त दोषों का परिहार कीजिए ।

आर्त, रौद्र ध्यान को त्याग कर जीव-जीवन में साम्य भाव का व्यवहार करूँ, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वृक्ष के मध्य सभी जीवमात्र के प्रति क्षमाभाव धारण कर सकूँ। माता, पिता, बन्धु, पुत्र, मित्र, भार्या, साला, स्वामी, सेवकादि के प्रति समानता भावरखूँ- अर्थात् आत्मवत् व्यवहार करूँ । ऋषभदेव, अजितेश्वर, पद्मप्रभु, चन्द्रभव, श्री पुष्पदन्त, कुन्थुसागर, धर्मनाथ, श्री सुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी आदि तीर्थङ्करों का स्तवन मोक्ष दायक हैं । आत्म शान्ति की प्राप्ति के लिए निरन्तर उपयोगी हैं । हे वीर, हे गुणनिधि, त्रिशलापुत्र, हे दयालु संसार समुद्र से निकालकर मुझे शरण दीजिए। हे वर्धमान स्वच्छ छवि, विमल कीर्ति, उदार, देवों द्वारा संतुल्य त्रिशलातनय जिनेश्वर आपकी वन्दना करता हूँ । वीर्य, खून, मल-मूत्र, समूह से युक्त नश्वर, विविध रोगों से युक्त काया दु:खद है । जीव भ्रमण करते हुए इसमें आकर निवास करता है । शरीर से पापों का परिहार करना चाहिए । काया, चित्त वचन की पवित्रता मानव जीवन की सफलता हैं। इस काया को मोक्ष की सिद्धि में लगाना चाहिए ।

''स्फुट रचनाएँ''

डॉ. (पं.) पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने अनेक स्फुट-रचनाओं का भी सृजन करके साहित्य की श्रीवृद्धि की है । उनके द्वारा निबद्द स्फुट कृतियों का भावात्मक अनुशीलन अधोलिखित है -

महावीर स्तवनम्[४१] :

आकार - यह पाँच श्लोकों में निबद्ध लघु काव्य रचना है ।

नामकरण - इसमें तीर्थङ्कर महावीर स्वामी की स्तुति होने के कारण इसका ''महावीर स्तवनम्'' नाम सार्थक है ।

रचनाकार का उद्देश्य - महावीर स्वामी के स्तवन से आत्म शान्ति की प्राप्ति ही रचनाकार का प्रधान उद्देश्य है ।

अनुशीलन - भगवान महावीर समुद्रवत् गंभीर, धीर, वीर, सर्वगुण सम्पन्न, पवित्रता के प्रतीक काम कुचालों के नाशक, काल जयी महापुरुष हैं । तत्त्ववेत्ता, कामादि विकारों के शत्रु महावीर स्वामी की जय हो ।

महावीर स्तोत्रम्[४२] :

आकार - ''महावीर स्तोत्रम्'' दश श्लोकों में निबद्ध लघु काव्य रचना है ।

नामकरण - तीर्थङ्कर महावीर स्वामी के गुणों की स्तुति की प्रस्तुति के कारण इसका महावीर स्तोत्रम् नाम सार्थक है ।

रचनाकार का उद्देश्य - महावीर स्वामी के दिव्य व्यक्तित्व की स्तुति से उनके प्रति आध्यात्मिक आस्था की संतृप्ति ही रचनाकार का उद्देश्य प्रतीत होता है ।

अनुशीलन - महावीर स्वामी गहरे संसार सागर में गिरने वाले व्यक्तियों को निकालकर आध्यात्मिक सुख प्रदान करने वाले आत्मतत्त्व के ज्ञाता हैं । सम्पूर्ण लोक और अलोक को

जिन्होंने स्वयं अपनी आत्मा में देख लिया - ऐसे लोकनायक महावीर ही आनन्द देने में सक्षम है । वे ध्यानशील, प्रमुक्त, तत्त्वदर्शी, दयालु और त्रिकालज्ञ हैं । उन्होंने अपने हाथों में कृपाण धारण करके अघाति कर्मों को नष्ट किया है । आनन्द देने वाले महावीर स्वामी की जय हो ।

बाहुबल्यष्टकम्[४३] :

आकार - ''बाहुबल्यष्टकम्'' आठ श्लोकों में निबद्ध स्फुट रचना है ।

नामकरण - भगवान बाहुबली के तपश्चरण का आठ पद्यों में विवेचन होने के कारण ''बाहुबल्यष्टकम्'' शीर्षक तर्कसङ्गत है ।

रचनाकार का उद्देश्य - प्रत्येक पद्य के अन्त में प्रयुक्त ''तं सदाहं नमामि'' से स्पष्ट है कि भगवान बाहुबली रचनाकार की आस्था के केन्द्र हैं - और इसी की अभिव्यक्ति इस कृति में है ।

अनुशीलन - सुनन्दा सुत भगवान बाहुबली राज्य सुख में विरक्ति धारण करने वाले तपस्वी हैं । जिन्होंने तपश्चरण काल में जल त्याग कर दिया । शीतादि बाधाओं को सहते हुए सदा मोक्ष की सिद्धि हेतु ध्यान मग्न, रहने वाले सुनन्दासुत को सदैव नमन करता हूँ। महाबोध और मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति होने के पश्चात् देव वृन्दों द्वारा संस्तुत्य (स्तुति किये गये) सुनन्दा सुत भौतिक बाधाओं को नष्ट करने वाले हैं - उन्हें मैं सदैव प्रणाम करता हूँ।

डॉ. साहित्याचार्य की स्फुट रचनाओं में एक रचना श्री गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ में प्रकाशित है । इस रचना में परम पूज्य गणेश प्रसाद वर्णी जी की संक्षिप्त जीवन झांकी चित्रित की गयी हैं । चिरोंजाबाई को रचनाकार ने शान्तमूर्ति, जनहित-वर्धिनी, विद्वानों द्वारा वन्ध बताकर सम्पूर्ण आगमों के ज्ञाता वर्णी जी जैसे पुत्र की धर्म माता बनने का संयोग प्राप्त होने से इस पृथिवी पर उन्हें सौभाग्य शालिनी मानते हुए धन्य-धन्य माना है -

जयति जगति धन्या धन्या सा चिरोंजाभिधेया,
विविध विबुधवन्द्या धर्ममाता त्वदीया ।
निखिलनिगमविद्याभास्करं या भवन्तं,
सकलजनहितायोद्वर्धयामास शान्तम् ॥३॥

पूज्य वर्णी जी को रचनाकार ने बड़े ही श्रद्धा भाव से देखा है । उनके गुणों का उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया है कि उनकी महिमा अजेय है, वे गुण-गरिमा के भण्डार हैं, स्याद्वाद-सिद्धान्त के गम्भीर ज्ञाता, सब प्रकार से शान्त, विद्या-विलास से सहित है। साधुओं के गुणों में श्रेष्ठ हैं । कवि ने उनके दीर्घायुष्य की कामना करते हुए लिखा है-

जीयादजेयमहिमा गरिमा गुणानां,
स्याद्वादसिन्धुरमितः धमितः समन्तान् ।
विद्याविलाससहितो महितो मरुद्भि,
र्वर्णीन्द्रवर्णितगुणः प्रगुणो गणेशः ॥7॥

न्यायाचार्य उपाधि से विभूषित पूज्य वर्णी जी गुणों और स्याद्वाद निधि से रत्नाकर स्वरूप थे । उनके पूर्ण यश का वर्णन सहस्र रसनाधारी शेषनाग भी करने में समर्थ नहीं है । रचनाकार तो कर ही क्या सकेंगे । यहाँ जो कुछ कहा गया है, वह केवल पूज्य वर्णी जी के चरण-कमलों की भक्ति-पूजा वशात् ही कहा गया है । रचनाकार ने स्वयं लिखा है -

न्यायाचार्य । गुणाम्बुधे शुभविधे स्याद्वादवारां निधे ।
कः शेषो रसनासहस्रसुयुतः श्रीमद्ययोवर्णनम् ।
दृष्टा केवलमत्र मञ्जुलविभं त्वत्पादपद्यद्वयं,
पूजामो वयमद्य भक्ति निभृता, भ्रश्यद्गिरौ भावुकाः ॥12॥

प्रस्तुत रचना में रचनाकार ने पूज्य वर्णी जी को अपना गुरु माना है, उन्हें करुणाकर और पाप-ताप को दूर करने वाला निरूपित किया है । वर्णी जी के चिरकाल तक जीवित रहने की रचनाकार की कामना भी इस रचना में गर्भित है -

पापातापहरा महागुणधराः कारुण्यपूराकरा,
जीयासुर्जगतीतले गुरुवराः श्रीमद्गणेशाश्चिरम् ॥11॥

डॉ. साहित्याचार्य का जीवन साधु-सङ्गति पूर्वक रहा है । यही कारण है कि वे साधुओं आज भी श्रद्धालु हैं । उन्होंने ने केवल पूज्य वर्णी जी के प्रति अपितु आचार्य धर्मसागर महाराज के प्रति भी सरल संस्कृति आठ पद्यों में अपने श्रद्धा भाव व्यक्त किये हैं ।[44]

रचनाकार ने सर्वप्रथम आचार्य श्री के स्वभाव का चित्राङ्कन किया है । उनकी सरल निर्ग्रन्थ मुद्रा, उनका प्रमोद भाव और अमृतोपम वाणी से युक्त सदुपदेश का उल्लेख करते हुए रचनाकार ने धर्म सिन्धु की उपमा देकर उन्हें नित्य नमन किया है -

निर्ग्रन्थमुद्रा सरला यदीया प्रमोदभावं परमं दधाना ।
सुधाभिषिक्तेव धिनोति भव्यान् तं धर्म सिन्धुं प्रणमामि नित्यम् ॥

प्रस्तुत रचना में साधु के पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति और तीन गुप्ति रूप चारित्र भी मुखरित हुआ है -

हिंसानृतस्तेय परिग्रहाधः कामाग्नितापाच्च निवृत्य नित्यम् ।
महाव्रतानि प्रमुदा सुधत्ते तं धर्मसिन्धुं प्रणमामि नित्यम् ॥3॥
ईयाप्रधानाः समितीर्दधानः गुप्तित्रयीं यः सततं दधाति ।
स्वध्यानतोषामृततृप्तचित्तस्तं धर्मसिन्धुं प्रणमामि नित्यम् ॥4॥

रचनाकार ने अन्त में आचार्य श्री की गुर्वावली का भी उल्लेख किया है । आचार्य श्री के गुरु शिवसागर महाराज और शिवसागर महाराज के गुरु वीरसागर महाराज तथा दादागुरु आचार्य शान्तिसागर महाराज बताये गये हैं । इस संबन्ध में कवि की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

शान्त्यब्धि-वीराब्धि-शिवाब्धिदिष्टं, श्रेयः पथं दर्शयते जनान्यः ।
अवाग्विसर्गं वपुषैव नित्यं, तं धर्मसिन्धुं प्रणमामि नित्यम् ॥8॥

इस प्रकार सरस पदावली से संक्षेप में पूज्य वर्णी जी और आचार्य धर्मसागर महाराज का परिचय कराते हुए जैन सिद्धातों का रसास्वादन कराने में डॉ. साहित्याचार्य जी पूर्ण सफल हुए प्रतीत होते हैं ।

वृत्तहार[45] :

प्रस्तुत रचना में साहित्याचार्य जी ने 30 विविध छन्दों में रचे गये संस्कृत पद्यों में गुरु गोपालदास जी वरैया की संस्तुति की है । रचना का शीर्षक "वृत्तहार" प्रयुक्त हुए छन्दों की बहुलता से सार्थक प्रतीत होता है । कवि की इस रचना में जिन छन्दों का व्यवहार हुआ है, वे हैं - अनुष्टुप्, आर्या, गीति, उपगीति, आर्या गीति, अक्षरपङ्क्ति, मदलेखा, शशिवदना,

माणवका, विद्युन्माला, चम्पकमाला, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, स्वागता, रथोद्धता, शालिनी, दोधक, भुजङ्ग-प्रयात, तोटक, द्रुतविलम्बित, भूपेन्द्रवंशा, वंशस्थ, वसन्त-तिलका, मालिनी, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, हरिणी, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा और शिखरिणी ।

गुरुगोपालदास बरैया अनेकान्त रूपी तीक्ष्ण शस्त्र समूह से मिथ्यामत का खण्डन करते हुए मिथ्यावादी रुपी मदोन्मत्त हाथियों के लिए शार्दूल स्वरूप थे । विद्या के सागर थे । आर्य समाजी वादियों को इन्होंने शास्त्रार्थ करके निरुत्तर किया था । वे कुशल वादी थे । आपके इन गुणों का प्रस्तुत रचना में निम्न प्रकार उल्लेख हुआ है -

योऽनेकान्तनिशातशस्त्रनिकरैर्मिथ्यामतं खण्डयन्
मिथ्यारादिमतङ्गजेषु कुरुते शार्दूलविक्रीडितम् ।
विद्यावारिधिरार्यवादिविनतिं शास्त्रार्थ सङ्घटते,
यस्तूष्णीमकरोत्स वादकुशलो जीयाद्गुरैया गुरुः ॥

प्रस्तुत रचना में श्लेष अलङ्कार के भी प्रयोग हुए है । शशिवदना छन्द में शशिवदना का अर्थ चन्द्र मुख भी निरूपित है -

शशिवदना गीः प्रणिमति नित्यम् ।
यमिह गुरुं तं मनसि दधामि ।।7।।

पं. मूलचन्द्र शास्त्री का परिचयः

परिचय - पण्डित मूलचन्द्र जी शास्त्री अपनी सारस्वत साधना के लिए विख्यात हैं। कर्कश तर्क और सुकुमार साहित्य, वज्र और कुसुम दोनों ही उनकी लेखनी से प्रसूत हैं। शास्त्री जी द्वारा विरचित काव्य उनकी आध्यात्मिक भावभूमि से प्रोद्भूत होकर चिरन्तन काव्य परम्परा पर कालजयी बनने के लिए प्रतिष्ठित है ।

पण्डित मूलचन्द्र जी शास्त्री का जन्म विक्रम संवत् 1960 अगहन बदी अष्टमी को मध्यप्रदेश के सागर जिले में स्थित मालथौन नामक कस्बे में हुआ है । आपकी माता का नाम सल्लो और पिता का नाम श्री सटोरे लाल था । शास्त्री जी का अध्ययन बनारस में स्थित, श्री पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी द्वारा संस्थापित स्याद्वाद महाविद्यालय में हुआ है । वहाँ पर श्रीमान् पं. अम्बादास जी शास्त्री के सान्निध्य में आपने विद्यार्जन किया ।

रचनाएँ - शास्त्री जी ने मौलिक रचनाओं के साथ ही 50 से अधिक ग्रन्थों का अनुवाद भी किया है । अष्टसहस्री के भाव को लेकर आप्तमीमांसा का एवं युक्त्यनुशासन ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद किया है । उन्होंने ''न्यायरत्न'' नामक सूत्र ग्रन्थ की रचना की और संस्कृत में उस पर तीन टीकाएं भी रचीं है । आपने स्वान्तः सुखाय और भी दूसरे काव्य लिखे हैं एवं ''लोकाशाह'' नामक 14 सर्गों में सम्गुफित महाकाव्य भी रचा है । शास्त्री जी ने 70 वर्ष की अवस्था में ''वचनदूतम्'' नामक खंडकाव्य का प्रणयन किया है। जो पूर्वार्ध और उत्तरार्द्ध नामक दो हिस्सों में प्रकाशित हुआ है । शास्त्री जी की नवीनतम कृति ''वर्धमान चम्पू'' चम्पू काव्य परम्परा पर आधारित है ।[6] ''अभिनव स्तोत्र'' में एकीभाव स्तोत्र विषापहार स्तोत्र,कल्याणमन्दिर, स्तोत्र और भक्तामर स्तोत्र का संकलन है । शास्त्री जी ने उक्त स्तोत्रों में पादपूर्ति करके नवीन रचना विधा पर सफलतापूर्वक लेखनी चलाई है। शास्त्री जी ने अनेक स्फुट रचना संस्कृत भाषा में निबद्ध की है । संस्कृत भाषा के महाकवि, भाषाशास्त्र के विशेषज्ञ जैन दर्शन के कर्मज्ञ विद्वान पं. मूलचन्द्र जी 83 वर्ष की दीर्घायु प्राप्त कर 5.8.1986 को संध्या समय 5.45 पर इस संसार से अलविदा हो गये ।

वचनदूतम् :

पं. मूलचन्द्र शास्त्री द्वारा रचित वचनदूतम् काव्य दो भागों में विभक्त है । वचनदूतम् के पूर्वार्द्ध[47] में आगत 67 श्लोकों (पद्यों) में ध्यानस्थ नेमि के निकट राजुल की मनोवेदना का अङ्कन है । जबकि उत्तरार्द्ध के 84 पद्यों में राजुल के हताश होकर गिरि से लौट आने का समाचार सुनकर उसके माता-पिता और सखियों की उनके पास प्रकट की गई परिस्थिति - जन्य संवेदना का मार्मिक चित्रण है । इस ग्रन्थ की कथावस्तु ''नेमिदूत'' काव्य पर आधारित कथासार इस प्रकार है - कृष्ण के चचेरे भ्राता नेमिकुमार का विवाह श्रावण मास में हो रहा था । सम्पूर्ण तैयारी के साथ नेमि-कुँअर की बारात द्वारिका से प्रस्थित होकर जूनागढ़ आ गई थी । जूनागढ़ के महाराजा उग्रसेन ने स्वर्ग से बढ़कर मनोहर साजसज्जा से नगर का सौन्दर्य बढ़ाया । जब बारात द्वारचार के लिए राजमहल के मुख्य द्वार पर पहुँची तभी राजकुँवर नेमिकुमार की दृष्टि एक बाड़े में घिरे हुए सुन्दर हिरणों पर पड़ी । इनको घेरे जाने का कारण सारथी से जानकर नेमिकुमार का चित्त व्याकुल हो गया और रथा राजद्वार से वन की ओर मोड़ दिया गया । नेमि गिरनार पर्वत पर जाकर स्वयं वैरागी हो गये और केवलज्ञान प्राप्तिपर्यन्त वे सर्वथा मौन रहे ।

राजुल ने जब यह देखा तो वैवाहिक माङ्गलिक चिह्नों को उतारकर उनके पीछे-पीछे उसी पर्वत पर पहुँची । विवाह मङ्गल बेला पर निराशा का अनन्त पारावार राजुल के हृदय में तरङ्गित होने लगा था, वह अपने हृदय की दयनीय स्थिति प्रकट करती हुई नेमि के निकट आन्तरिक वेदना प्रकट करती है -

''याचेऽहं त्वां कुरु मयि कृपां मास्मभूनिर्दयस्त्वम्,
नास्तीदं ते गुणगणमये साधुयोग्यं शरीरम् ।
सौख्यैः सेव्यं विरम तपसो नाथ सेव्या पुरी में
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिका धौतहर्म्या ।।[48]

नारी हृदय की वियोग जन्यवेदना इन शब्दों में साकार हो उठी है- वह कहती है - हे नाथ, ओली पसार कर में आपसे एक यही भिक्षा माङ्गती हूँ, कि आप मुझ पर दया करें, निर्दय न बनें । हे गुणगण मणे। आपका यह शरीर साधु अवस्था के योग्य नहीं है किन्तु सुखों द्वारा ही सेवनीय है । इसलिए, आप तपस्या से मुँह मोड़कर मेरी नगरी में पधारें वहां के राजमहल के बाहिरी उद्यान में स्थित शिवजी के मस्तक के चन्द्र की कांति से सदा धवल बने रहते हैं ।

प्राकृतिक वातावरण में भी नेमिकुमार के इस निर्णय से उदासीनता आ गई है, पक्षी भी अपनी पत्नियों के साथ इस दृश्य को देखकर दुःखी हो.रहे हैं -

''अस्मिन्नद्रावपगतघृणं पक्षराजी र्विधूय,
उड्डीयन्ते, कतिचिरबलां त्यागिनं त्वां निरीक्ष्य ।
एतान् पश्य त्वमिह वद किं साङ्गना म्लानचित्ताः,
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।''[49]

राजुल अनेकों प्रकार से उन्हें घर लौट चलने को प्रेरित करती हैं- अपने को नेमि के बिना असहाय, अशरण, तिरस्कृत, महसूस करती है। इस काव्य में विभिन्न स्थलों पर प्रकृति का बाह्य चित्रण सजीव हो गया है । सजल मेघों जैसे - सरोवरों से सुहावना गिरिनार

पर्वत है, जिसका मध्यभाग सघन छायावाले वृक्षों से मण्डित और रमणीय है। नेमि की नीली कान्ति से युक्त ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह पृथ्वी के मध्य में श्याम और शेषनाग में पाण्डु स्तन ही हो ।'[50]

राजुल विभिन्न दृष्टान्त और अन्योक्तियों के सहारे प्रणय-निवेदन करती है, आपके माता-पिता, बन्धु, मित्र, परिवार वाले जो आपके बिना चिन्तित और दयनीय है, आपके घर जाने पर प्रसन्न होंगे । विरहजन्य दु:ख को प्रकट करती हुई राजुल कहती है कि आपके बिना राजमन्दिर भी शोभाविहीन श्मशान जैसा प्रतीत होता है । इस प्रकार वियोग श्रृङ्गार का भावात्मक अनुशीलन राजुल के मार्मिक आत्म निवेदन में उपस्थित हुआ है। बाह्य प्रकृति और अन्त: प्रकृति का मणिकाञ्चन समन्वय प्राय: सर्वत्र परिलक्षित होता है । सर्वत्र भ्रमणशील वायु को सम्बोधित करती हुई राजुल अपने अन्तरङ्ग स्थित भावों को प्रकटित करती है ।

''भो वायो त्वं निखिल भुवन व्याप्तकीर्तरमुष्य,
पार्श्वं गत्वा सविनयमिमं मामकं श्रावयेनम् ।
संदेशं मा, दयित, नय ते गर्जिते नो विधास्ये,
सोत्कम्पानि प्रियसहचरी संभ्रमालिङ्गितानि ।।[51]

वायु के माध्यम से विनय पूर्वक प्रियतम के पास सन्देश विरहव्यथा का परिचायक है । अपने प्रियतम को राजसिंहासन पर आरूढ़ करने की कल्पना राजुल के हृदय की भावुकता का प्रमाण है -

''नष्यामूल्यस्फटिकमणिभिर्निर्मितं स्वच्छताद्यम्,
शुभ्रं दीर्घं प्रचुरमहसा राजसिंहासनं त्वम् ।
अध्यासीनः सुरनरवरैर्पूजिताङ्घ्रे । लभेथाः,
शोभा शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खात पंकोपमेयाम् ।।[52]

राजुल मनोवेदना के अपार प्रवाह को नेमि के समक्ष छोड़ती है - वह कहती है कि बिना कारण के आपने मुझे विष के समान छोड़ दिया किन्तु मैं आपको अपनाना चाहती हूँ और घर ले चलने के लिए तत्पर हूँ । इसलिए इस पहाड़ को छोड़कर राजधानी में पधारिये, मैं आपके आगे-आगे चलकर मार्ग के तृण कण्टकों को साफ कर दूँगी-

मुञ्चेमं त्वं गिरिवरतटं राजधानीं प्रयाहि,
अग्रे गत्वा व्यपगततृणान् तृणान मर्दयन्ती व्रजामि ।।[53]

''वचन दूत'' में राजीमती को केवल असहाय या अबला नारी के रूप में चित्रित नहीं किया गया है, अपितु वह एक वीर क्षत्रियाणी है इसलिए प्रसन्नतापूर्वक प्रियतम के मंगलपथ को प्रशस्त करना चाहती है और सहज ही अनुनय विनय के पश्चात् अपनी स्वीकृति प्रदान करती हुई कहती है-

''मुक्तिचेतः प्रियसहचरी नाथ ! नास्मीह रुष्टा,
आगच्छेत्त्वां वरितुमिह सा तामहं स्तौमि नौमि ।
स्वस्मिन् रत्नत्रयमनुपमं पूर्णमाधेहि तत्र,
सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी ।।[54]

यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नारी प्रियतम को सर्वथा उदासीन हो जाने की अपेक्षा मुक्ति रमा का वरण के लिए जो अनुज्ञा देती है, वह भावान्तर को ही अभिव्यञ्जित करती है ।

इस प्रकार वचनदूतम् पूर्वार्ध में मेघदूत के प्राय: समस्त श्लोकों के अन्तिम पदों की समस्या पूर्ति रूप में परिणति की गई है। वचनदूतम् के उत्तरार्द्ध में उत्तर मेघदूत के कतिपय श्लोकों के उपयोगी अन्त्यपादों की पूर्ति की गई है। वचनदूत उत्तरार्द्ध[55] के 84 पद्यों में राजुल के हताश होकर गिरि से लौट आने का समाचार सुनकर उसके पिता-माता और सखियों की उनके पास प्रकट की गई अपनी अन्तर्द्वन्द्व से भरी हुई मार्मिक पीड़ा का चित्रण है। राजुल के परिजन नेमि को अनेक प्रकार से समझाते हैं - पर्वतीय क्षेत्र बड़ा कष्टप्रद है, नग्नावस्था में आपको देखकर भीलों की स्त्रियाँ देखकर लज्जित होंगी और निन्दा करेंगी तथा आपको विघ्न रूप मानकर प्रताड़ित करेंगी। राजमती के आत्मीयजन उसकी विरह वेदना नेमि के सामने प्रकट करते हैं - अन्त: प्रकृति का सजीव रूप नेत्रगत होता है -

"त्वच्यालीना विरह दिवसॉस्तेऽधुवा संस्मरन्ती,
त्यक्ताभूषा कुसुमशयने निस्पृहाऽस्वस्थचित्ता।
गत्वैकान्तं प्रलपति भृशं रोदिति बूत, इत्थम्-
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनी वान्यरुपाम्॥[56]

राजमती के माता-पिता, नेमि को अपनी पुत्रि की विरह दशा से अवगत कराकर सूचित करते हैं - कि वह आप में ही दत्तचित्त है। मेघवाले दिनों में स्थल कमलिनी के समान न सोती है, न जगती है। उसकी तो कोई अपूर्व ही स्थिति है - साम्रेड ह्रीव स्थकमलिनी न प्रबुद्धां न सुप्ताम्।[57] राजुल की सखियाँ नेमि के समक्ष विभिन्न प्राकृतिक दृष्टांत प्रस्तुत करती हैं।

"रात्री रम्या न भवति यथा नाथ। चन्द्रैण रिक्ता,
कासार श्री: कमल रहिता नैव वा संविभाति।
लक्ष्मीर्व्यर्था भवति च यथा दानकृत्येन हीना,
नारी मान्या भवति न तथा स्वामिना विप्रयुक्ता॥[58]

आपको पाने के लिये नियमव्रत में संलग्न मेरी प्रिय सखी कृश शरीर और निद्रा का परित्याग किये है। उसकी दयनीय स्थिति आपके कारण हुई है, अत: आपने उसे विवाह के बीच में छोड़कर निर्दित कार्य किया है। सखियों के द्वारा राजुल की विरहावस्था की दयनीयदशा का सजीव चित्रण सुरम्य बन गया है। वियोग शृंगार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है। सखी कहती हैं -

"अस्याकान्तं नयनयुगलं चिन्तया स्पन्दशून्यं,
रुद्धापांगं चिकुरनिकरै रञ्जनभ्रूविलासैः।
हीनं मन्ये त्वदुपगमनात्तत्तदा स्वेष्टालाभात्,
मीनक्षो भाच्चलकुवलयश्री तुलामेष्यतीति॥[59]

राजुल का नेमि को भेजा गया प्रेरणास्पद सन्देश भी अत्यन्त सौम्य वातावरण की अभिव्यक्ति ही है। अपनी किस्मत को कोसती हुई राजुल पति द्वारा परित्यक्त होने के कारण स्वयं को अभागिन कहती है -

"माहक्कन्या भवति महिला दु:खिनी या स्वभर्त्रा,
त्यक्ता तावत्परिणयविधे निर्निदानं पुरस्तात्।
द्रष्टो द्रष्टा न खलु समया तेन चाहं न साक्षात्,
आयातोऽपि क्षण इव गत: सधननो द्वार देशात्॥[60]

उस समय की याद करके राजुल चिन्ताक्रान्त हो जाती है, जब वह प्राणनाथ के गले में वरमाला डालने को आई, किन्तु लोगों ने बताया कि माङ्गलिक आभूषणों को उतार कर नेमि वापिस हो गये हैं । राजुल की सखियाँ नेमि के समक्ष विभिन्न प्रकार से राजुल की विरह दशा का बखान करती हैं और उन्हें उसे अपनाने के लिए प्रेरित करती हैं । वे नेमि को सद्गृहस्थ बनकर घर में रहने और बाद में राजीमति के साथ आकर तपस्या करने का सुझाव बताती हैं ।

"कञ्चित्कालं निवस निलये सद्गृही भूय, पश्चात्,
राजीमत्या सह यदुपते । निर्विकर्जयन्तग ।
मन्यस्व त्वं सुवचनमिदं स्वाग्रहं मुञ्च नाथ,
भोगं भुक्त्वा न भवति गृही मुक्तिपात्रं न चैतत् ।।[61]

सखियाँ कहती हैं : सुन्दर देह, वैभव, प्रभाव आदि सब कुछ सर्वोत्तम है, फिर किसलिए आप कष्टदायक तपस्या कर रहे हैं । वर्षाकाल में सूखे ईधन के अभाव में आपका वस्त्रविहीन शरीर जल बिन्दुओं को कैसे सहेगा । मेघों की गड़गड़ाहट, बिजलियों की चमक आपको निर्जन प्रदेश में भयभीत करेगी, ओलों की बरसात आपसे सहन नहीं होगी । (वर्षाकाल) सावन में विरह गीतों को प्रमदाएँ झूलों पर झूलती हुई गायेंगी, उस समय आपका चित्त अस्थिर हो जायेगा । अत: आप अभी से ही राजमन्दिर में पहुँच कर सबको सुखी बनावे। आप अवधि ज्ञानशाली हैं, इसलिए पहले से ही इस घटना को जानते थे तो फिर बारात लेकर क्यों आये । किन्तु इस सब तर्कों का नेमिनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया । सखियाँ लौटकर नेमि के समाचार राजुल को सुनाती है तो वह आत्म कल्याण के मार्ग पर भ्रमण करने का निर्णय लेती हैं । उसके माता-पिता नेमि के प्रति उसके लगाव पर वक्तव्य देते है कि विवाह के पहले उसने तुझे छोड़ दिया है इसलिए उसे पति मानकर विरह में दु: खी होना उचित नहीं हैं । बेटी ! कुल, जाति, कर्त्तव्य, आदि का विचार न करने वाले नेमि के लिए तू व्यर्थ ही दु:खी होती है, इसलिए तुम्हें भी "जो आपको न चाहे ताके बाप को न चाहिये" इस नीति का अनुकरण करना चाहिये । किन्तु राजीमति नेमि के प्रति अपनी अपार श्रद्धा सूचित करती है –

"श्रुत्वोक्तिं साऽवनतवदनोवाचवाचं श्रृणुष्व,
नेमिं मुक्त्वाऽमरपतिनिभं नैव वाञ्छामि कान्तम् ।
चिन्ता कार्या न मम भवता नेमिनाऽहं समूढा,
जातो वासो मनसि च मया संवृतो भर्तृभावात् ।।[62]

इस प्रकार अन्ततोत्गत्वा वह माता-पिता से आज्ञा लेकर आर्यिका की दीक्षा लेकर गिरनार पर्वत पर पहुँच जाती है । और नेमिनाथ की स्तुति पूर्वक वन्दना करती है ।

वर्धमान चम्पू

काव्य की गद्य और पद्य दोनों विद्याओं के प्रयोग से वर्धमान चम्पू[63] रचना का सृजन हुआ है । यही कारण है रचनाकार श्री मूलचन्द्र जी शास्त्री न्यायतीर्थ ने इस चम्पू संज्ञा दी है । जैन साहित्य में यशस्तिलक चम्पू का नाम प्रसिद्ध है । श्री शास्त्री जी ने इसकी रचना करके चम्पू काव्य की समृद्धि में चार चाँद लगाये हैं ।

इस काव्य में चौबीसवें जैन तीर्थङ्कर महावीर के पाँचों कल्याण को काव्यात्मक भाषा में चित्रण किया गया है । सम्पूर्ण विषय वस्तु आठ स्तवकों में विभाजित हैं । प्रस्तुत काव्य

में कवि की यह अनूठी विशेषता है कि उन्होंने बुराई में भी अच्छाई को देखा है । अन्य कवियों के समान उन्होंने दुर्जनों की निन्दा नहीं की । उन्होंने उन्हें कवियों की प्रसिद्धि का हेतु माना है । काँच और मणि का दृष्टान्त देकर उन्होंने लिखा है कि जैसे काँच के सद्भाव में ही मणि की प्रतिष्ठा होती है, ऐसे ही दुर्जनों का सद्भाव कवि की प्रसिद्धि के लिए अपेक्षित है -

कवि प्रकाशे खलु एव हेतुर्यतश्च तस्मिन् सति तत्प्रकर्षः ।
काचं विना नैव कदापि कुत्र मणेः प्रतिष्ठा भवतीति सम्यक् ॥1.21

कवि ने ग्रीष्म में सूर्य की प्रखरता और उसमें प्राणियों की बैचेनी, पृथिवी की शुष्कता, तालाबों की नीरसता और प्राणप्रद वायु के प्राणहारी प्रतीत होने का उल्लेख करते हुए ग्रीष्म ऋतु का सजीव चित्र उपस्थित किया है -

तीव्रस्तापस्तपति तपने ग्रीष्मकाले यदेह,
जायेतास्मात् सुखविरहिता प्राणिनां क्लेशहेतुः ।
क्षोर्णी शुष्का भवति सरसा मृत्तिका नीरसा च,
वाति प्राणप्रद इह तदा प्राणहारी समीरः ॥ 1–1 ॥

कवि ने जीव-दया को धर्म और उनकी हिंसा को अधर्म संज्ञा दी हैं । उनकी दृष्टि में हिंसा से धर्म की प्राप्ति वैसी ही असम्भव है, जैसे बालू के पेलने से तेल-

यत्रास्ति हिंसा न समस्ति तत्र, धर्मो यतः प्राणिदयान्वितः सः ।
न बालुका पेषणतः समाप्ति, स्तैलस्य कुत्रापि कदापि दृष्टा ॥1–14॥

कवि की नगर-वर्णन शैली द्रष्टव्य है । वैशाली नगर का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि वहाँ कोई ऐसा घर नहीं था जिसमें वृद्ध न हो, और कोई ऐसा वृद्ध न था, जो उदार न हो । उदारता भी ऐसी न थी जिसमें विशालता न हो और विशालता भी ऐसी न थी जो जीव-अनुकम्पा से सनी न हो । पङ्क्तियाँ हैं -

न तद्गृहं यत्र न सन्ति वृद्धाः वृद्धा न ते ये च न सन्त्युदाराः ।
उदारता सापि विशालतादया, विशालता सापि दयानुबन्धा ॥1–36॥

आगे कवि ने नगर की उत्कृष्टता का वर्णन करते हुए कहा है कि वैशाली नगर में द्वेष था तो कुत्तों में ही था- विरोध था तो, सिंह और हाथी में ही था, और पारस्परिक विवाद प्रवाद काल में वादी और प्रतिवादियों में ही था । ये सब बातें प्रजा में न थी। कवि ने स्वयं लिखा है -

द्वेषः परं मण्डलमण्डलेषु, करेणुकंडीरवयो निरोधः ।
मिथो विवादः प्रतिवादिवादि, प्रवादकाले, न जनेषु तत्र ॥1–54॥

त्रिशला माता के सौन्दर्य का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है कि कालिमा उनके बालों में ही थी, गुणों में नहीं । मन्दता उनकी गति में थी, बुद्धि में नहीं । निम्नता नाभिगर्त में ही थी, उनके चरित्र में नहीं और कुटिलता केश-पंक्ति में ही थी, उनकी वृत्ति में न थी क्योंकि सद्भावों के द्वारा उनका निर्माण हुआ था । कवि ने अपने इन भावों को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है -

कृष्णाः कचा नान्यगुणाश्च मन्दा, गति र्न बुद्धि ननु नाभिगर्तो ।
नीचो, न वृत्तं कुटिलालकालिः वृत्तिर्न सद्भाव विनिर्मितायाः ॥1–65॥

महावीर के गर्भ में आने पर त्रिशला माता की देवियों द्वारा की गयी सेवा का कवि ने मर्मस्पर्शी चित्रण किया है । तीर्थङ्कर पुण्य-प्रकृति के प्रभाव से महावीर की माता त्रिशला देवियों की सेवा से सुख पाती है और देवियाँ भी सेवा धर्म कठिन होने पर भी उनकी सानन्द सेवा करती हैं। वह जन्म यथार्थ में धन्य है जो देव सेव्य होता है -

सेवाधर्मः परमगहनः सत्यमेतत्तथापि,
देव्यश्चक्रुर्मुदित मनसा तीर्थकृत्पुण्य योगात् ।
मातुः सेवामतिसुखकरीं वृत्तिरिक्तां स्वयोग्याम्,
धन्यस्तेषां भवति स भवो देवसेव्यो भवेद् यः ॥2-32॥

भगवान् महावीर के जन्म हो जाने पर उनके जन्म के प्रभाव से दिशाएँ निर्मल हो गयी थी, आकाश भी निर्मल हो गया था । उस समय तारे दिखाई नहीं पड़ते थे। मंद सुगन्धित और शीतल वायु बहने लगी थी । मार्ग सम और पङ्क विहीन हो गये थे -

दिशः प्रसन्नाश्च नभो बभूव विनिर्मलं तारकितं तदानीम् ।
वाता बभूवुश्च सुगंध शीताः मार्गाः समा पङ्कविहीनरूपाः ॥3-9॥

राजा सिद्धार्थ द्वारा विवाह का प्रस्ताव रखे जाने पर महावीर के द्वारा पिता के निरुत्तर किये जाने में कवि की दार्शनिक सूझ-बूझ की झलक दिखाई देती है । विवाह के विरोध में महावीर का यह कहना युक्ति सङ्गत प्रतीत होता है कि हे तात ! द्रव्यात्मक दृष्टि से विचार करें तो कोई किसी का नहीं है । संबन्ध मनुष्यों द्वारा निर्मित है । जीवों के पुत्र-पिता के सम्बन्ध पर्याय दृष्टि से ही इस संसार में है -

द्रव्यात्मना नास्ति च कोऽपि कस्य सम्बन्धबन्धेन जनो निबद्धः ।
पर्यायदृष्ट्यैव च तात-पुत्राः सम्बन्धिनोऽमीह भ्रमन्ति जीवाः ॥4-9॥

संसार की असारता, क्षण भङ्गुरता और इष्टानिष्ट पदार्थों के संयोग और वियोग का कवि शास्त्री जी ने वर्द्धमान के मुख से अच्छा दिग्दर्शन कराया है । वे अपनी माता त्रिशला से तपोवन जाने की आज्ञा मांगते हुए कहते हैं - हे माता ! यहाँ कौन किसका है । संयोग से प्राप्त पदार्थों का नियम से वियोग होना है । अतः मोहजाल को शिथिल करके हे माता। मुझे तपोवन जाने की आज्ञा दीजिए -

मातस्त्वमेव परिचिन्तय कस्य कोऽत्र,
संयोगिनां नियमतोऽस्ति वियोग इत्थम् ।
चित्ते विचिन्त्य शिथिलीकुरु मोहजालं,
मह्यं ह्यनुज्ञां जननि प्रदेहि ॥5-35॥

कवि ने दैगम्बरी दीक्षा का महत्त्व भी वर्द्धमान के मुख से ही प्रतिपादित कराया है। कुमार वर्द्धमान विचारते हैं कि दिगम्बर दीक्षा के बिना आत्मशुद्धि नहीं होती । और कर्मों का नाश इसके बिना नहीं होता तथा कर्मों का नाश हुए बिना मुक्ति नहीं । ऐसा विचार कर वर्द्धमान ने दिगम्बरी दीक्षा धारण की -

दिगम्बरीं बिना दीक्षामात्मशुद्धि र्न जायते ।
तच्छुद्धिमन्तरा नैव कर्मनाशो भवेत्क्वचित् ॥5-44॥
मुक्तिलाभो विना नाशात् कर्मणां नैव संभवेत् ।
इत्थं विचिन्त्य वीरेण दीक्षा दैगम्बरी धृता ॥5-45॥

कवि ने कैवल्य प्राप्ति का रहस्य और महत्त्व एक साथ दर्शाया है। कैवल्य की प्राप्ति घाति-कर्म-ज्ञानवरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय के नष्ट होने पर होती है तथा इसके होने पर ही तीर्थङ्कर उपदेश देते हैं। वर्द्धमान इन कर्मों का नाश कर केवली हुए और उन्होंने धर्म-ज्ञान से शून्य लोगों को धर्म का स्वरूप समझाया -

घातिकर्माणिसंहत्य कैवल्यं समवाप्य च ।
धार्मिकज्ञानरिक्तेभ्यो नृभ्यो बोधमसावदात् ।।7-14।।

तीर्थङ्कर वर्द्धमान ने पावापुरी में मुक्ति प्राप्त की थी। देवों,मनुष्यों और राजाओं ने पावापुरी में भक्ति-भाव से असंख्य दीप जलाकर प्रकाश किया था। श्री शास्त्री जी ने वर्द्धमान को सर्वसुखाकर कहते हुए लिखा है -

वीरे सर्वसुखाकरे भगवति प्रध्वस्तकर्मोदये,
मुक्तिश्री निलयाधिपे सतिसुरेरिन्द्रैस्तथा मानवैः ।
भूपैश्चादि जय प्रघोषकलितैरागत्य पावापुरीं,
तत्रासंख्यसुदीपदीपकगणः प्रज्वालितो भक्तितः ।।8-52।।

प्रस्तुत काव्य को श्री गङ्गाधर भट्ट निर्देशक राय बहादुर चम्पालाल प्राच्य शोध-संस्थान, जयपुर ने प्राञ्जल एवं सुपरिष्कृत काव्य शैली में विरचित वर्तमान युग का एक सुन्दर चम्पू काव्य कहा है। उन्होंने लिखा है कि यह काव्य प्रसाद गुण से आकण्ठ पूरित है। अलङ्कारों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। मार्मिक स्थलों पर उपयुक्त रस की अभिव्यक्ति सहज रूप से प्रस्फुटित हुई हैं। वैशाली की समृद्धि का वर्णन करते हुए कवि ने वहाँ के राज-प्रसादों के वैभव, उनकी विशालता, वहाँ रहने वाली नारियों के अनुपम अङ्ग लावण्य आदि का मनोरम चित्रण किया है। भाषा प्रवाहमयी है। कवि का मुख्य लक्ष्य प्राचीन कथा का सहज सरस और साहित्यिक भाषा में वर्णन करना है, जिसकी इस काव्य में पर्याप्त पूरित हुई हैं। समाज में यह धारणा दृढमूल होती है कि वार्धक्य काल में कविगण मतिभ्रम से ग्रस्त हो जाते है किन्तु कवि की बुद्धि विलक्षणता एवं विचक्षणता उसका सुखद अपवाद है।[14]

कवि ने वर्द्धमान के - महावीर, वीर, अतिवीर और सन्मति नामों का एक ही श्लोक में बड़ी ही सुघड़ता से उल्लेख करते हुए स्याद्वाद न्याय के कर्त्ता के रूप में उन्हें नमन किया है -

वर्धमानं महावीरं वीरं सन्मतिदायकम् ।
स्याद्वादन्यायवक्तारमतिवीरं नमाम्यहम् ।।3-1।।

वर्धमान चम्पू में अङ्कित पं. मूलचन्द्र शास्त्री का छन्द बद्ध जीवन परिचय :

''वर्धमान चम्पू'' में महावीर स्वामी के जीवन चरित के पश्चात् काव्य प्रणेता पं. मूलचन्द्र शास्त्री ने अपना परिचय छन्दबद्ध करके प्रस्तुत किया है। तदनुसार विक्रम संवत् 1960 अगहन वदी अष्टमी तिथि को सागर जिले के मालथोंन ग्राम में आपका जन्म हुआ। जैन धर्म के प्रेमी परिवार में उत्पन्न श्री सटोले लाल आपके पिता और श्रीमती सल्लोदेवी माता थी। इस विषय में शास्त्री जी ने स्वयं लिखा है -

सागरंमण्डलाधीनो मालथोनेति संज्ञकः ।
ग्रामो जनधनाकीर्णः सोऽस्ति मे जन्मभूरिति ।।1।।
''सल्लो'' माता पिता मे श्री सटोलेलाल नामकः ।
जिनधर्मानुरागी स परवार कुलोद्भवः ।।2।।

उन्होंने यह भी लिखा है कि वे अपने माता-पिता के एक मात्र पुत्र थे । पिता अढ़ाई वर्ष की अवस्था में ही दिवङ्गत हो गये थे । माता ने वैधव्य जनित कष्टों को भीगते हुए बड़े लाड-प्यार से इनका पालन किया था । दु:ख अकेला नहीं आता । एक दु:ख के बाद शास्त्री जी को दूसरा दु:ख भी भोगना पड़ा । उनका बायाँ हाथ भग्न हो गया था । निर्धनता के कारण जिसकी चिकित्सा भी न हो सकी थी । श्री शास्त्री जी ने स्वयं लिखा है -

मदेक पुत्रां जननीं विहाय स तातपादः परमल्पकाले ।
दिवंगतस्तत्समयेऽहमासं सार्धद्विवर्षायुषि वर्तमानः ।।3।।
वैधव्यकष्टेन संमर्दिताम्बा मां पालयामास यथा कथञ्चित् ।
वामः करो मे ह्यशुभोदयेन भग्नोऽभवद्रिक्तधनस्य हन्त ।।4।।

अपनी निर्धनता का सजीव चित्रण करते हुए श्री शास्त्री जी ने लिखा है कि वे अभाव में ही जन्मे और अभाव में ही बड़े हुए थे । विद्याभ्यास भी उन्होंने अभाव में ही किया था । इस प्रकार अभावों के होने पर भी वे कभी हतोत्साहित नहीं हुए, अपने कर्त्तव्यों का सदैव निर्वाह करते रहे। शास्त्री जी के शब्द हैं -

अभावे लब्धजन्माऽहं अभावे चाथ बर्द्धितः ।
अभावे लब्धविद्योऽहं स्वकर्त्तव्ये रतोऽभवम् ।।6।।

शास्त्री जी प्रतिभा के धनी थे । लेखनी में आकर्षण रहा है । शैली चित्ताल्हादक है । यदि उनकी प्रतिभा का सही उपयोग किया गया होता तो नि:सन्देह संस्कृत भाषा की और अधिक समृद्धि होती । उन्हें अपनी जीवन यात्रा में अनेक धनिकों से सम्पर्क हुआ । अनेक अधिकारी प्राप्त हुए किन्तु गुणग्राही हृदय कोई दिखाई नहीं दिया । उन्होंने अपनी इस व्यथा को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है -

दृष्टा मयाऽनेकविधा धनाढ्याः गणोऽपि तेषामधिकारिणां च ।
परं न विद्वज्जनगण्य गुण्य गुणानुरागी हृदयोऽत्र दृष्टः ।।

श्री शास्त्री जी ने मातृभक्ति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है । उन्होंने न केवल प्रस्तुत ग्रन्थ उनको समर्पित किया है, अपितु आगामी पर्याय में भी अपनी इसी माता का पुत्र होने की कामना की है । माता की श्रद्धा-भक्ति का स्वरूप द्रष्टव्य है, कवि के निम्न शब्दों में-

मातस्त्वया मम कृतोऽस्ति महोपकारो,
यावांस्तदंशमपि पूरयितुं न शक्तः ।
एतन्नवीनकृतिं वृद्धियुतं विधाय,
प्रत्यर्पयामि महिते ! तद्धुरीकुरुष्व ।।

कवि की यह विशेषता है कि उन्होंने नारी के सम्मान का सर्वत्र ध्यान रखा है। उन्होंने न केवल माता को सम्मान दिया है, अपितु अपनी पत्नी को भी आदर दिया है । उन्होंने साहित्य-सृजन प्रसङ्ग में पत्नी के योग को अपेक्षित बताया है । उन्होंने लिखा है -

साहित्यनिर्माण विधौ च पुंसो योगेन पत्न्या भवितव्यमेव ।
विशोभते चन्द्रिकयैव युक्तो विधोः प्रकाशोऽप्युनुभूत एषः ।।

प्रस्तुत काव्य के स्तविकों के अन्त में कवि की पत्नी का नाम "मनवावरेण" पद से मनवादेवी बताया गया है । खुशालचन्द्र, नरेशकुमार, सुरेशकुमार और महेशकुमार, ये कवि

के चार पुत्रों के नाम हैं । इसी प्रकार कवि के चारों पुत्रियों के नाम है - शान्ति, सुशीला, सविता और सरोज । कवि ने अपने एक पौत्र के नाम का भी उल्लेख किया है, जिसका नाम ननकू बताया गया है । चारों पुत्रों के नामों का उल्लेख आदि के चार स्तबकों के अन्त में, पुत्रियों के नाम पाँचवें स्तबक के न्त में और पौत्र ननकू का नाम छठें स्तवक के अन्तिम श्लोक में तथा राजेश, सञ्जय, अज्जू, सोमू, मोनू, और शैलू पौत्रों के नाम आठवें स्तबक के अंत में आये हैं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ का सृजन श्रीमान् सटोलेलाल जी के सुपुत्र और सल्लो माता की कुक्षि से मालथौन ग्राम में जन्मे श्री मूलचन्द्र जी द्वारा किये जाने का उल्लेख भी कवि ने स्वयं प्रस्तुत कृति में किया है -

श्री सटोले सुतेनेयं सल्लोमात्रुद्भवेन च ।
रचिता मूलचन्द्रेण मालथौनाभजन्मना ।।7-18।।

कवि ने प्रस्तुत रचना श्री अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी में लिखकर पूर्ण की थी। इस संबंध में कवि का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है -

श्री मत्यतिशयक्षेत्रे महावीरे नाम्ना जगद्विदिते ।
पाण्डित्यपदं वहता चम्पूकाव्य मया रचितम् ।।पृ.-220।।

कवि की अन्य प्रकाशित मौलिक-संस्कृत रचनाओं में "लोकाशाह" एक महाकाव्य है । दो भागों में प्रकाशित 'वचनदूतम्' कवि की दूसरी रचना है । टीकाएँ लिखने में भी कवि सिद्धहस्त थे । उनकी प्रकाशित संस्कृत टीकाओं में हरिभद्रसूरि कृत "षोडशक प्रकरण की 15,000 श्लोक प्रमाण तथा विजयहर्ष सूरि प्रबन्ध की 450 श्लोक प्रमाण टीकाएँ उल्लेखनीय हैं । अङ्गों और उपाङ्गों पर भी की गयी हिन्दी टीकाएँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं । आप्तमीमांसा की हिन्दी टीका पर कवि को न्याय वाचस्पति की उपाधि से अलङ्कृत किया गया था । युक्त्यनुशासन का हिन्दी अनुवाद साहित्य जगत में कवि की अनूठी देन है । इन्होंने औपपातिक सूत्र, राजप्रश्नीयसूत्र, जीवाजीवाभिगम सूत्र, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, नन्दीसूत्र, उत्तराध्ययन का हिन्दी अनुवाद करके ख्याति प्राप्त की थी । जैन धर्म का तुलनात्मक अध्ययन और सुरेन्द्र कीर्ति भट्टारककृत चतुर्विंशति सन्धान 13 अर्थ का अनुवाद ये दो रचनाएँ अप्रकाशित हैं।[65]

चतुर्विंशति सन्धान का अनुवाद अपने द्वारा किये जाने का उल्लेख कवि ने प्रस्तुत रचना में भी किया है -

श्री मत्सुरेन्द्र यशसा दृब्धं काव्यं सुविज्ञविज्ञेयम्
चतुर्विंशतिसंधानमनूदितं तन्मया हिन्द्याम् ।।8।।

यह अनुवाद कवि के जीवन काल में ही हो गया था । उन्होंने बहुत खोज की किन्तु वे सफल नहीं हुए । प्रस्तुत कृति में इस अनुवाद का उल्लेख कर देना सम्भवत: कवि ने इसलिए आवश्यक समझा था अन्यथा वे अपने समय में अप्रकाशित अपनी रचना "अभिनवस्तोत्र" का भी अवश्य उल्लेख करते ।

इस रचना का प्रणयन कवि ने 78 वर्ष की उम्र में किया था । कवि ने इस सम्बन्ध में प्रस्तुत गंन्थ में लिखा है -

अशीति वर्षायुषि सांस्थितस्य द्वि वर्ष हीनेऽपि च शेमुषीयम् ।
पूर्वीय संस्कार वशादहीना करोति काव्यं ननु नव्यमेतत् ।।[66]

कवि को- राजस्थान सरकार ने उनकी संस्कृत साहित्यसेवा के लिए और श्रीमहावीर जी तीर्थ क्षेत्र कमेटी ने उनके ''वचनदूतम्'' संस्कृत काव्य के लिए महावीर पुरस्कार को सम्मानित किया गया था । कवि ने अपने इन सम्मानों का उल्लेख प्रस्तुत रचना के अंत में ''हेतु प्रदर्शनम्'' शीर्षक के अन्तर्गत दो श्लोकों में किया है -

क्षेत्राधिकारिभिर्मान्यैरध्यक्षादि – महोदयैः ।
राज्याधिकारिभिस्चापि राज्यपालैर्महाजनैः ।।3।।
यथाकालं समाहूय सत्कृतोऽहं पुरस्कृतः ।
सत्यं–पुण्यादृते जीवैः सौभाग्यं नैव लभ्यते[67] ।।4।।

''अभिनव स्तोत्र''

अभिनव स्तोत्र में पं. मूलचन्द्र जी का नाम सङ्कलन-कर्त्ता के रूप में प्रकाशित हुआ है । किन्तु यथार्थता इससे भिन्न है । वे सङ्कलनकर्त्ता नहीं रचनाकार थे । स्तोत्रों के अन्त में इस तथ्य का उल्लेख द्रष्टव्य है-

एकीभावस्तोत्रादन्त्य पादान् मुदा समादाय ।
श्रीनेमेःस्तुतिरेषा रचिता ''मूलेन्दुना'' भक्त्या ।।
राजीमत्या हार्द संकल्प्येयं च समस्यापूर्तिः ।।
मालथोनाख्या ग्रामे जन्माप्तेन मया रचिता ।।पृ.20।।
तेनैवेयं रचिता विषापहारान्त्यपाद संयुक्ता ।
''मूलेन्दुना'' च रुचिरा संस्तुतिः पुराणपुरुषस्य ।।पृ.37।।

कल्याण मन्दिर स्तोत्र के अन्तिम श्लोक में तथा भक्तामर स्तोत्र के साठवें श्लोक में भी उनके द्वारा उन स्तोत्रों की रचना किये जाने के उल्लेख प्राप्त हैं ।

इन श्लोकों के पश्चात् श्री शास्त्री जी द्वारा हिन्दी भाषा में अनुदित ग्रन्थों का नामोल्लेख भी किया गया है । अष्ट सहस्री, आप्तमीमांसा और युक्त्यनुशासन के हिन्दी अनुवाद का द्योतक श्लोक निम्न प्रकार है -

अष्टसहस्त्रीभावं येनादायैवाप्तमीमांसा ।
अपरं युक्त्यनुशासनमनूदितं भाषया हिन्द्या ।।पृ.36।।

कल्याण मन्दिर स्तोत्र के अन्तिम श्लोक में स्थानकवासियों के अनुसार समस्त आगमों और उपांगों के हिन्दी अनुवाद अपने द्वारा किये जाने का भी पं. मूलचन्द्र शास्त्री ने संकेत किया है -

हिन्द्यामनूदिताः येन स्थानकवासिसम्मताः ।
आगमा अखिला प्रायश्चोपाङ्गान्यपि कानिचित् ।।

भक्तामर स्तोत्र के अन्त में श्री शास्त्री जी ने कवि कालिदास कृत मेघदूत के अन्त्यपाद की पूर्ति करते हुए ''वचनदूतम्'' काव्य की अपने द्वारा रचना किये जाने का स्वयं उल्लेख किया है -

मेघदूतान्त्यपादानां समस्यापूर्तिरूपकं,
काव्यं वचनदूताख्यं रम्यं येनाल्पमेधसा ।।पृ.76।।

इन उल्लेखों के आलोक में ऐसा ज्ञात होता है कि पं. मूलचन्द्र जी शास्त्री द्वारा रचित इस शताब्दी की अनेकों साहित्यिक जैन रचना ''वर्द्धमान चम्पू'' काव्य उक्त रचनाओं के

पश्चात् रची गयी थी । श्री डॉ. कस्तूरचन्द्र "सुमन" श्री महावीर जी से ज्ञात हुआ है कि शास्त्री जी ने जीवन्धर स्वामी का चरित्र भी लिखना आरम्भ कर दिया था । इस काव्य का वे प्रथम अध्याय ही पूर्ण कर सके थे कि उनका देहावसान हो गया ।

"स्फुट रचनाएँ"

श्री मूलचन्द्र शास्त्री की अन्य स्फुट रचनाएँ अभिनन्दन ग्रन्थों में प्रकाशित हुई हैं। श्री गणेश प्रसाद वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित "गणेश स्तुति" रचना में श्री शास्त्री जी ने पूज्य वर्णी जी द्वारा गङ्गा तट पर संस्थापित जिस स्याद्वाद विद्यालय के प्रान्त भाग का गंगा की उत्तुंग तरँ स्पर्श करती हैं, उस विद्यालय की स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है । द्रष्टव्य हैं कवि की निम्न पंक्तियां -

गङ्गोत्तुङ्गतरङ्ग सङ्ग–सलिल प्रान्तस्थितो विश्रुतः,
श्री स्याद्वाद–पदाङ्घ्रितो भुविजनैर्मान्याऽस्ति विद्यालयः ।
सोऽनेनैव महोदयेन महता यत्नेन संस्थापितः,
ब्रूतेडसो सततं विनास्य वचनं कीर्तिपरां साम्प्रतम् ॥

श्री शास्त्री जी ने पूज्य वर्णी जी की स्वाभाविक वृत्ति का अपनी रचना में दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है कि वे अपनी व्यथा को तृण के समान मान का पर पीड़ा दूर करने में निष्णात थे । यदि ऐसा व्यक्ति लोगों के द्वारा पूजा जावे तो इसमें क्या आश्चर्य है? कवि की पंक्तियों में यह प्रसङ्ग निम्न प्रकार द्रष्टव्य हैं -

व्यथां स्वकीयां च तृणाय मत्वा परस्य पीडाहरणे विदग्धः ।
जनो जनैः स्याद् यदि पूज्य एव, किमत्र चित्रं न सतामरोहि ॥

वर्णी जी के माता-पिता, ग्राम, घर, जन्मघड़ी, धर्म की माता और गुरु वर्णी जी का सानिध्य पाकर धन्य हो गये थे । शास्त्री जी ने अपने इस विचारों को एक श्लोक में निम्न प्रकार निबद्ध किया है -

धन्या सा जननी पिताऽपि सुकृति गेहं च तत्पावनं,
धन्या सा घटिका रसाऽसि महती मान्या हसेरोऽपि सः ।
धन्याचापि बभूव मान्यमहिता बाई चिरोंजाभिधा,
धन्यः सोऽपि गुरुर्यदस्य हृदये विद्यानिधिं न्यक्षिपत् ॥

न्यायाचार्य डॉ. दरबारी लाल कोठिया अभिनन्दन ग्रन्थ में श्री शास्त्री जी द्वारा निर्मित सात श्लोक प्रकाशित हुए हैं । इस रचना में शास्त्री जी ने आदि के दो श्लोकों में डॉ. कोठिया की जीवन-झांकी तीसरे श्लोक में लक्ष्मी और सरस्वती के पारस्परिक विरोध का अभाव, चतुर्थ श्लोक में डॉ. कोठिया जी की धर्मपत्नी की प्रशंसा और अन्तिम तीन श्लोकों में डॉ. कोठिया जी के प्रति मङ्गल कामनाएँ प्रस्तुत की हैं ।

शास्त्री जी की इस रचना में उपमाएँ और कल्पनाएँ ध्यातव्य हैं । कवि की रचना शैली भी किसी भी मर्मज्ञ विद्वान को अपनी ओर आकृष्ट किये बिना रहती । उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं डॉ. कोठिया जी को समर्पित चार पंक्तियाँ-

गोलापूर्व समाजनन्दनवने यश्चन्दनाभायते,
वैदुष्यापि सुलब्धशिक्षकपदः सद्गन्धमालायते ।
आज्ञापालक शिष्यशिष्यनिचयो गन्धान्ध वृन्दायते,
सोऽयं श्री दरबारिलाल [illegible] भोः स्थेयाच्चिरं भूतले ॥

विद्वान् शास्त्री जी ने अपनी कल्पना से लक्ष्मी और सरस्वती के पारस्परिक विरोधात्मक स्वभाव को भी सत्सङ्गति से विरोध विहीनतामय बताया है। पठनीय है डॉ. कोठियाजी के अभिनन्दन प्रसङ्ग में निर्मित पङ्क्तियाँ -

सर्वंप्रियं त्वां प्रसमीक्ष्य लक्ष्मीः सरस्वती चापि मिथो विरोधम् ।
विस्मृत्य विद्वन् ! युगपत्समेत्य साध्वीं त्वदीयां प्रकृतिं व्यनक्ति ॥

श्री शास्त्री जी ने दीर्घायुष्य के हेतुओं में धर्म समाज और राष्ट्र की सेवा तथा गुणों जनों के आनन्दित होने की गणना की है । उन्होंने इन्हीं विचारों को व्यक्त करते हुए डॉ. कोठिया जी के दीर्घायु होने की कामना की है । पङ्क्तियाँ निम्न प्रकार हैं-

सद्धर्मसेवा च समाजसेवा, राष्ट्रस्य सेवा गुणिषु प्रमोदः ।
त्वज्जीवनं दीर्घतरं च कुर्याद्, विद्वज्जनानामियमस्ति काम्या ॥

आदर्श सहधर्मिणी का स्वरूपाङ्कन भी शास्त्री जी का स्तुत्य है । डॉ. कोठिया जी की धर्मपत्नी के सम्बन्ध में व्यक्त विचार इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं -

सरस्वती साधक भद्रमूर्ते ! कुटुम्बनी ते भवतात् त्वदीये ।
सद्धर्मकार्ये सहगामिनी स्याद्, यतोऽङ्गनायत्त गृहस्थवृत्तम् ॥

इस प्रकार श्री मूलचन्द्र जी शास्त्री की रचनाओं में काव्यात्मक सौन्दर्य चित्ताकर्षक है । भाषा का प्रवाह है । पदों में लालित्य है । सन्धि और समासों के प्रयोगों से भाषा में दुरुहता उत्पन्न नहीं हुई है । शब्दों का उचित प्रयोग शास्त्री जी की रचनाओं की अपनी एक अनूठी विशेषता है ।

''श्री आचार्य ज्ञानसागर–संस्तुति''[६८]

आकार - यह रचना एक स्तोत्रकाव्य है । ग्यारह पद्यों की निबद्ध रचना है ।

नामकरण : इसमें आचार्य ज्ञानसागर महाराज के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व और विद्वत्ता का सातिशय विवेचन होने के कारण ही इस रचना का शीर्षक ''श्री आचार्य ज्ञानसागर-संस्तुति'' सर्वथा उपयुक्त हैं ।

प्रयोजन - पण्डित मूलचन्द्र शास्त्री जी आ. ज्ञानसागर जी को अपना आराध्य गुरु मानते हैं और उनमें एक निष्ठ श्रद्धा तथा भक्ति भावना होने के कारण ही यह स्तोत्र रचा है । कवि ने इसका पठन-पाठन करने से सभी प्राणियों के मंगल होने और चिरन्तन शांति स्थापित होने की आशा भी व्यक्त की हैं ।

विषय वस्तु - इस स्तोत्र में मुनि श्री ज्ञानसागर के बाल्यकाल, शिक्षा-दीक्षा का विवेचन करते हुए आचार्य श्री के विद्याध्ययन केन्द्र गङ्गातट पर अवस्थित स्याद्वाद संस्कृत विद्यालय का संक्षिप्त परिचय दिया है । वहाँ प्रख्यात आचार्यों के व्याख्यानों से प्रभावित होकर और उचित-अनुचित का विचार करते हुए आचार्य ज्ञानसागर जी वैराग्य की ओर उद्यत हुए । तत्पश्चात् श्री शिवसागर सूरि के सान्निध्य में रहकर तथा उनका मार्ग दर्शन पाकर सांसारिक सुखों में विरक्ति धारण की ओर आत्म चिन्तन करते हुए यमनियमादि का सेवन किया । इसी समय आचार्य ज्ञानसागर जी की काव्य प्रतिभा प्रस्फुटित होती है । उन्होंने जयोदय, प्रभृति अनेक काव्यों का प्रणयन किया । तत्पश्चात् अपने अतुल वैदुष्य और सुदीर्घकालीन अनुभव को अपने सुयोग्य शिष्य विद्यासागर में स्थापित करने लगे, जिससे उनके सिद्धान्त, नीति, पाण्डित्य, प्रतिभा आदि की परम्परा समाज में फलीभूत हो सके । आचार्य श्री के

चारित्रिक पक्ष का निरूपण करते हुए कवि ने उन्हें धीर, वीर, गम्भीर, संयम, प्रज्ञाशक्ति एवं कामादि का विजेता माना है। कवि का मन्तव्य है कि राग-द्वेष से विमुख हुए इन महात्मा के पास विषय रूपी श्वान आ ही नहीं सकते - आचार्य श्री ने विश्व कल्याण और मानवता के हितार्थ गहन साधना की। जिससे प्रबोधमयी, अमृत प्रदायिनी, धर्म और अधर्म के रहस्य से युक्त दर्शनमयी दृष्टि से युक्त तात्त्विक, विवेकपूर्ण तथा संसार सागर से मुक्त करने वाली अपनी सरस वाणी से सभी को आनंदित किया। साक्षात् ज्ञान के सागर इनकी सुधा के समान वाणी को श्रवण करके ऐसा कौन है, जो आपके चरणों में नतमस्तक न हुआ हो ? इस स्तोत्र के प्रणेता शास्त्री ने आचार्य श्री की आराधना करते हुए उनके आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त करने पर बल दिया है और विभिन्न गुणों से मण्डित आचार्य श्री के विराट्-व्यक्तित्व, पाण्डित्य महिमा का मूल्यांकन करने में अपनी अल्पज्ञता स्वीकार की है।

एवं कृत्ये वद कथमिह सूरिभावं बिभर्षि
सूरित्वे वा भवति भवतः कौमुदः किं प्रबुद्धः ।।[69]

श्री पं. मूलचन्द्र जी शास्त्री निर्ग्रन्थ साधुओं के परम भक्त थे। भक्ति स्वरूप उन्होंने आचार्य शिव सागर महाराज की दश श्लोकों में स्तुति का सृजन किया था। जो आचार्य शिवसागर महाराज स्मृति ग्रन्थ में प्रकाशित हुई है।[70]

आचार्य श्री शिवसागर महाराज गुणों के भण्डार और मोक्ष-पथ के पथिक थे। उनकी वाणी में वैराग्य और गुणों में आकर्षण था। कवि की प्रस्तुत रचना में आचार्य श्री के इस व्यक्तित्व की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है -

सम्यग्दर्शन शुद्धबोधचरणं संधारयन्नादशत्,
स्वस्थानोचितसद्गुणेश्च विविधैराकर्षयन् मानवान्।
वैराग्यादवकारकैर्हितवहैर्नित्यं वचोभिः श्रितः,
स श्रीमान् शिवसागरो मुनिपतिर्भूयाद् भवार्त्तेहरः ॥

कवि ने आचार्य श्री को बाल्यकालीन धार्मिक स्नेह, सांसारिक निस्सारताबोध और मुक्ति रूपी स्त्री सङ्गम की उत्सुकता आदि गुणों से विभूषित बताकर उन्हें अपने गुरु वीरसागर महाराज के धार्मिक सदुपदेशों का नित्य पान करने वाला विद्वान् रूपी मान-सरोवर में राजहंस सदृश कहा है -

निस्सारां परिभाव्य संसृतिमिमां बाल्येऽपि धर्मस्पृहः
मुक्तिस्त्रीनवसङ्गमोत्सुकमना अत्यादरादत्यजत्।
श्री वीराब्धिगुरोर्निपीय नितरां सद्धर्मसन्देशनां,
विद्वन्मानसराजहंससदृशो नोऽव्याच्छिवाब्धि गुरुः ॥

कवि ने महाराज श्री की वृत्ति का, सङ्घ में उनकी स्थिति का और उनकी मुद्रा तथा पाण्डित्य का विश्लेषण करते हुए उन्हें आचार्य पद से विभूषित, जिनेन्द्र के समान निर्ग्रन्थ वीतराग मुद्रा का धारी, आगमोक्त वृत्ति से मण्डित, तत्त्वज्ञ, धर्मज्ञ और विद्वानों में श्रेष्ठ विद्वान्, प्रबल मोह का बैरी और रत्नत्रय का आराधक कहकर उनके सम्बन्ध में अपने उद्गार व्यक्त किये हैं तथा उन्हें नमन किया है -

जिनेन्द्रमुद्राङ्कित ! चारुवृत्ते ! तत्त्वज्ञ ! धर्मज्ञ ! विदांवरेण्य!
नमोऽस्तु ते मोहमहारि रत्नत्रयी समाराधक ! संघभर्ते ॥

कवि ने रचना के अन्तिम पद्य में स्तुति का अपना उद्देश्य भी स्पष्ट कर दिया है। आचार्य श्री में कवि की प्रकर्ष भक्ति इस रचना का हेतु है । रचनाकार ने स्वयं लिखा है-

शास्त्रिणा मूलचन्द्रेण मालथोननिवासिना ।
भक्त्या कृता स्तुतिर्दिव्या महावीरप्रवासिना ॥

प्रस्तुत रचना में दार्शनिक सिद्धान्तों, सांसारिक-असारता, वैराग्य, गुरु-भक्ति और आचार्योंचित गुणों का सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है । भाषा का लालित्य, काव्योचित पदावली के प्रयोग, उपमाओं का यथास्थान व्यवहार चित्ताकर्षक है । कवि की बौद्धिक विलक्षणता भी यहाँ द्रष्टव्य है ।

''पं. दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य''

परिचय - उच्चकोटि के विद्वान, समाज सेवक, साहित्यके अनन्योपासक पं. दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य का जन्म सागर जिले के अन्तर्गत शाहपुर नामक स्थान में 11 अगस्त सन् 1915 को हुआ । आपके पिता का नाम ब्रह्मचारी श्री भगवानदास जी भाई जी अध्यात्म-वेत्ता एवं माता जी का नाम श्रीमती भागवती बाई ''इन्द्राणी'' था । आपने 9 वर्ष की उम्र में प्रायमरी परीक्षा उत्तीर्ण कर 14 वर्ष की अवस्था में धर्म, व्याकरण, साहित्य, न्याय विशारद तथा शास्त्री कक्षाएँ उत्तीर्ण कीं । आप साहित्याचार्य, जैन दर्शन शास्त्री, जैसी विभूतियों से विभूषित हैं । आप स्काउटिंग के श्रेष्ठ शिक्षक है । आपने अनेक शिक्षण संस्थाओं में रहकर प्राध्यापक का कार्य किया ।

आपने 76 वर्ष की उम्र में ''जैन पूजा-काव्य'' विषय पर डॉ. भागेन्दु जी के निर्देशन में सन् 1991 में सागर विश्वविद्यालय की पी.एच.डी. उपाधि प्राप्त की । देश की स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भाग लेने वाले पं. दयाचन्द्र जी ने जैन संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु अथक परिश्रम किया - छात्रों युवकों में सेवा भाव और धार्मिक प्रवृत्ति जागृत की ।

रचनाएँ - आपने छात्रावस्था में ही ''छात्र-हितैषी'' पत्रिका का संपादन एवं प्रकाशन किया । आपके 30 निबन्ध एवं अनेक कविताएँ प्रकाशित हो चुके हैं । विश्व तत्त्व प्रकाशक स्याद्वाद, महाव्रत और अणुव्रत, गुरु पूर्णिमा और उसका महत्त्व, जैन धर्म में भगवत् उपासना, रक्षा बन्धन पर्व की महत्ता और बाल गङ्गाधर तिलक आदि निबन्ध भी आपने रचे हैं। अमर भारती भाग एक, दो, तीन नामक पुस्तकें आपकी अनूठी कृतियाँ हैं । आपने संस्कृत भाषा में निबद्ध स्फुट रचनाएँ करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है ।

सरस्वती वन्दनाष्टकम्

प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत श्री दयाचन्द्र साहित्याचार्य ने वीणापाणि सरस्वती का यशोगान संस्कृत पद्यों में किया है । लेखक ने ये पद्य सागर विश्वविद्यालय में आयोजित आधुनिक संस्कृत साहित्य परिसंवाद (सेमिनार) के अवसर पर पढ़े । उन्होंने विज्ञान मूर्त्ति, जगज्जननी, धात्री, परितापहारिणी, आत्मदर्शिनी, यशोधन प्रदायिनी, विघ्ननाशिनी आदि विशेषण प्रयुक्त किये हैं ।[71] अन्तिम पङ्क्ति की रमणीयता स्वाभाविक रूप से बढ़ गई है -

''स्तुमः सदा सरस्वतीं जनाय बोधकारिणीम्'' ।[72]

संस्कृत भाषा (वाणी) का स्तवन भावानुकूल है । संस्कृत भाषा की सजीवता अभिव्यक्त करके राष्ट्र भाषा हिन्दी को उसकी गुणवती पुत्री माना है -

''यस्याः सुपुत्री सुगुणापि हिन्दी, भाषासु विख्यात् सुराष्ट्रभाषा ।
यस्या सखी देश–विदेश भाषा, सा संस्कृता केन भवेदनाथा ।''[73]

रचनाकार की कल्पना शक्ति प्रभावशील है - संस्कृत साहित्य का शब्दकोष विशाल राज्य है, काव्यांग सेना है और संस्कृत के सौंदर्य अलंकार हैं । रस इसकी आत्मा है, इन सबसे सम्पन्न यह भाषा दरिद्र कैसे रह सकती है । रचनाकार ने मङ्गल कामना करते हुए वाणी पर्व महोत्सव (सेमीनार) की सफलता की कामना की है और विद्वज्जनों के प्रति आभार व्यक्त किया हैं ।

पं. दयाचन्द्र जैन साहित्याचार्य जी द्वारा विरचित गुरुवर श्री गोपालदास जी बरैया शताब्दी महोत्सव, देहली में पठित संस्कृत में निबद्ध गौरवगाथा अनुपम स्फुट पद्य रचना है ।[74] अपने गुरुवर का प्रारम्भिक जीवन लेखक ने प्रथम छन्द में स्पष्ट करने का प्रयास किया है । मेट्रिक उत्तीर्ण करने के उपरांत रेल्वे विभाग में गुरुजी ने काम किया तथा अजमेर में साहित्य साधना की । तदनन्तर विद्याकेन्द्र, महासभा, परीक्षाबोर्ड आदि के संस्थापक भी बने । गुरु श्री गोपालदास जी में अनुपम सांस्कृतिक गुणों का समावेश था । सामाजिक क्षेत्र में उनकी सेवाएँ बहुचर्चित हैं । मुरेना में संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना करके आपने निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने की प्रेरणा दी । राष्ट्र और राज्य के विभिन्न पदों को अलंकृत करते हुए आपने महान कर्मठता एवं निःस्वार्थ सेवा का परिचय दिया । लेखक ने प्रसाद गुणपूर्ण शैली में इसी भाव की सरस अभिव्यक्ति इस प्रकार की है -

''राष्ट्रे राज्यपदेऽपि तस्य महिमा सेवा प्रभावः श्रुतः ।
सिन्धीया नृपशासने स नियतो न्यायाधिपो निःस्पृहः ।
व्यापारस्य सभा सदस्य कुशलः सभ्योऽपि पञ्चायते,
मान्यः सर्वहितं सदैव कुरुताद् गोपालदासो गुरुः ॥

गुरु गोपाल दास जी महान व्यक्तित्व के धनी थे । वे सिद्धान्तशास्त्री विद्याभूषण, न्यायवाचस्पूति आदि उपाधियों से अलङ्कृत परम श्रद्धेय हैं । जैन विषयों पर उनका चिन्तन गहन और अनुभूति जन्य रहता है । शास्त्रों में गम्भीर वैदग्ध से पूर्ण उनका पाण्डित्य सर्वत्र विश्रुत है । शास्त्रों के वाद-विवाद में उनकी समानता करने में कोई समर्थ नहीं था । साहित्य के क्षेत्र में पाली, संस्कृत, काव्यशास्त्र, तर्कशास्त्र आदि में उनकी ख्याति दिग्दिगन्त में व्याप्त रही है - उनके द्वारा विरचित तीन ग्रन्थ साहित्य की अभिवृद्धि करने के लिए पर्याप्त हैं- मीमांसा, निबन्ध, मित्र । गोपाल दास जी का जीवन सदाचारी था, वे ''सादा जीवन उच्च विचार'' के अनुयायी थे ।

''येषां जीवनकाल शुद्धचरितं चेता विचारो महान्,
व्यापारे वचने च सत्यकथनं ज्ञानोपयोगे क्रमः ।
पञ्चाणुव्रतधारणं सुचरणं रत्नत्रयाराधनम्,
मान्यः सर्वहितं सदैव कुरुताद् गोपालदासो गुरुः''॥

इस प्रकार अन्त में अपने वक्तव्य के अन्त में गुरुवर को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। प्रस्तुत स्फुट पद्य रचना में लेखक ने गोपालदास जी के जीवन दर्शन के विभिन्न अंशों का प्रकाशन किया है । पद्य रचना सराहनीय है । शार्दूल विक्रीडित छन्द[75] में लेखक के भाव सुगमता से बोधगम्य बन गये हैं । प्रसाद गुण पूर्ण शैली सहज ही में भावों को सरस बनाकर

विषय वस्तु की यथार्थता को समझाती हैं । प्रत्येक छन्द की अन्तिम पङ्क्ति प्रायः सभी छन्दों में समान है । पद्यों में अनुप्रासादि अलङ्कार परिलक्षित किये जा सकते हैं । लेखक की सरल भाषा संस्कृत पद्य रचना में अत्यन्त उपयुक्त और मधुर बन पड़ी है ।

लेखक ने ''नक्तन्दिनं दहति चित्तमिदं जनानाम्''[76] प्रस्तुत पङ्क्ति का प्रयोग समस्यापूर्ति के रूप में अपने कतिपय संस्कृत पद्यों में किया है । लेखक की अत्यन्त सुरम्य, सरस भाषा पाठकों को मुग्ध कर लेती है, प्रसाद गुण पूर्ण यह पद्य शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति करता है-

''रात्रिक्षणे ज्वलति चेतसि चक्रद्वन्द्वः
चित्ते दिने ज्वलति कामुकचौरवर्गः ।
अर्थाज़ने श्रमशतेन हताशयानां,
नक्तन्दिनं दहति चित्तमिदं जनानाम् ।''

अलंकारिक सौन्दर्य होने के कारण भाषा संवलित हो गई है, सरल एवं सरस भाव सहृदयों के अन्तर्मन में समाविष्ट हो जाते हैं । रचनाकार ने अपने एक पद्य में चिन्ता की व्यापका का चित्रण कराके उसे चिता की समानता दी है । जो दूसरे के धन में आशा करते हैं तथा विषयों के प्रति इन्द्रियों को संलग्न रखते हैं, ऐसे लोगों का चित्त दिन-रात जलता रहता है ।

''विपत्तिरेवाभ्युदयस्य मूलम्''[77] प्रस्तुत पंक्ति को समस्या पूर्ति के रूप में दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य ने अपने कतिपय पद्यों में प्रयुक्त किया है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान विदेशी शासन के द्वारा प्रदत्त कष्टों को सहन करके ही भारतीयों ने सङ्घर्ष किया और आजादी प्राप्त की । छात्र प्रयत्नपूर्वक ग्रन्थों को पढ़कर कठिन परीक्षा रूपी सरिता को पार करते हैं और विद्यारूपी फल प्राप्त करते हैं । इसी प्रकार के परिश्रम और विपत्तियों के पश्चात् ही समृद्धि और प्रगति का पथ प्रशस्त होता है -

''कासः सदा रोगसमूहमूलम्, हासः सदा द्रोहसहस्रमूलम् ।
शिक्षा सदा देशसमृद्धिमूलम्, विपत्तिरेवाभ्युदयस्य मूलम्।।''

रक्षाबंधन पर्व पर दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य ने शार्दूल विक्रीडित छन्द में अपना संदेश अभिव्यञ्जित किया है । प्रसादपूर्ण इस पद्य में भावानुकूल सरल, एवं प्रवाहशील भाषा का प्रयोग सराहनीय है -

''हे हे भारतवीर ! सम्प्रति मुदा प्रोत्तिष्ठ निद्रात्यज
अज्ञानं दुरितं विदार्य तरसा कालोपयोगं करु ।
जीवानामिति रक्षणं च मनसा, सत्वेषु मैत्रीं कुरु,
रक्षाबन्धनपर्व मानवकुले सन्देशमाभाषते ।।''

''दीपावली-वर्णनम्'' शीर्षक के माध्यम से एक स्फुट पद्य रचना प्राप्त होती है। जिसमें यमकालंकार परिलक्षित होता है -

गुण प्रदीपान्समदीपि चात्मनि, ददाह कर्मारिततिं स सन्मतिः ।
असंख्यदीपा नरदेव दीपिताः, वधू न साम्यं किल वीर तेजसा ।।

''भाडतुला भारतस्य'' यह पङ्क्ति समस्यापूर्ति के रूप में दयानन्द जी ने अपने एक पद्य बन्ध में प्रयुक्त की है जिसमें मालिनीछन्द का प्रयोग किया गया है, मालिनी का लक्षण इस प्रकार है -

नननमययययुतेयं मालिनी भोगि लोकैः ।

मालिनीछन्द के प्रतिपाद में क्रमशः दो नगण, एक मगण और दो यगण होते हैं तथा अष्टम और सप्तम अक्षरों के पश्चात् यति होती है । यह 15 अक्षरों का छन्द है-

सकल जगति दत्ता नीतिसाहित्यधारा,
समजनि जनचित्ते येन वीर्यातिरेकः ।
गुरुजनपदकीर्तिः साम्प्रतं यस्य, तस्य,
विदित सकलराष्ट्रे ''भाडतुला भारतस्य॥''

अनुप्रास अलंकार भी इस पद्य में दृष्टिगोचर होता है । ये स्फुट रचनाएँ वर्तमान युग की अनुपम साहित्यिक और भावप्रवण झलकें उपस्थित करती है । गङ्गा नदी की गौरवगाथा का शङ्खनाद करते हुए लेखक ने उसे विभिन्न नामों से अभिषिक्त किया है-

''हिमालयाद् विनिर्गता विशालदेशसंगता,
मलाङ्गस्तापहारिणी पयः प्रवाहकारिणी ।
सुरम्यतीर्थमन्दिरा तृषात चक्रचन्द्रिका ,
त्रिमार्गगा गरीयसी नदीश्वरी नदीश्वरी ।।

लेखक दयाचन्द्र साहित्याचार्य ने वर्णी जयन्ती के अवसर पर भी सागर में स्वरचित पद्य प्रस्तुत किये । जिनमें संस्कृत महाविद्यालय के संस्थापक गुरुवर पं. गणेश प्रसाद वर्णी की स्तुति और प्रभाव का निदर्शन है । प्रत्येक पद्य के अंत में ''वर्णी गणेशो जयताँ जगत्याम्'' की कामना की गई है । उन्हें समाज सेवक, शिक्षादानी, सर्वगुण सम्पन्न, क्षमा, त्याग, विनम्रता आदि का धारक निरूपित किया गया है ।

इसी प्रकार ''जैन मित्र'' के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव पर भी शुभ कामना सन्देश दयाचन्द्र जी ने संस्कृत पद्य में प्रेषित किया है । जिसमें जैन मित्र विचार पत्र को जन हितकारी, कुरीति नाशक, समाजसेवी, आदि विशेषणों से अलङ्कृत किया गया है । इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत पद्य का आलङ्कारिक सौन्दर्य द्रष्टव्य है -

सरलतरल काव्ये नव्यवृत्तान्त लेखैः,
गमयतु नवशिक्षा भारते जैन मित्रम् ।
समयनियमनिष्ठं जैनपत्रेषु वृद्धम्,
विलसतु नववर्षे मित्रवज्जैन मित्रम् ।।

इस प्रकार साहित्याचार्य का शुभ कामना सन्देश अत्यन्त गौरवपूर्ण बन गया है । उनका कवित्व प्रशंसनीय और विद्वज्जनों के लिए पठनीय है ।

पं. जवाहरलाल सिद्धान्त शास्त्री

परिचय - पं. श्री जवाहर लाल सिद्धान्त शास्त्री राजस्थान स्थित ''भीण्डर'' के निवासी है । आपके पिता का नाम श्री मोतीलाल बगतावत था । आपकी माता श्रीमती कञ्चन बाई धर्मपरायण महिला थीं । बचपन से ही शास्त्री जी की रुचि जैन धर्म के शास्त्रों में रही तथा श्री धर्मकीर्ति जी महाराज की प्रेरणा पाकर चावण्ड ग्राम में रहकर शास्त्री जी ने जैन शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया । पूज्यात्मा, सिद्धान्त भूषण पं. श्री रतनचन्द्र जी मुख्तार आपके गुरुवर है - इनकी असीम अनुकम्पा से आपने धवला-जयधवला-महाधवला ग्रन्थों में सिद्धि प्राप्त की ।

रचनाएँ – शास्त्री जी ने आधुनिक साधु, जिनोपदेश, बृहद् जिनोपदेश, कर्माष्टक प्रकृति, ग्रन्थ, मुख्तार स्मृतिग्रन्थ आदि अनेक ग्रन्थ रत्नों का प्रणयन किया। अनेक कर्म ग्रन्थों की टीकाएँ भी की हैं । आपके द्वारा रचित ''पद्मप्रभ स्तवनम्'' श्रेष्ठ काव्य कृति है । आपने तत्त्वार्थ सूत्र, संस्कृत लब्धिसार, क्षपणसार आदि ग्रन्थों का पद्यानुवाद भी किया है ।

आपकी भाषा सरल, सरस प्रसाद और माधुर्यगुण प्रधान है । शास्त्री जी के कृतित्व का जैन काव्य साहित्य के विकास में विशेष योगदान है।

''पं.जवाहर लाल शास्त्री की प्रमुख रचनाओं का अनुशीलन'':

जिनोपदेश[७८]:

आकार – यह एक शतक काव्य है जिसमें सौ पद्य हैं ।

नामकरण – जिनस्यः उपदेशः = जिनोपदेशः । अर्थात् जिनेन्द्र द्वारा प्रदत्त उपदेश। इस रचना में जैन धर्म के विख्यात सिद्धान्तों की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है जिससे उक्त (जिनोपदेश) नाम सच्चे अर्थों में सार्थक है। इसमें समग्र जैन दर्शन का सार प्रतिबिम्बित है।

प्रयोजन – यह ग्रन्थ जीवों के हितार्थ और मानव मात्र की चिरन्तर शान्ति के लिए प्रणीत किया गया है । ऐसी धारणा कवि ने स्वयं व्यक्त की है । कवि के उद्देश्य का अपर पक्ष यह भी है कि वह आत्म शान्ति के लिए अध्यात्म और जैन दर्शन प्रेरणा लेकर मुक्त होना चाहता है ।

अनुशीलन – जिनोपदेश में जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्त्वों के क्रमशः शास्त्रसम्मत लक्षण, गुण, भेद आदि का विस्तृत विश्लेषण किया है । अजीव तत्त्व पाँच द्रव्यों को ग्रहण करते हैं- पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । प्रत्येक द्रव्य के स्वरूप को भी चित्रित किया गया है । इनके भेदों की भी समीक्षा की है । मोक्ष और योग के निमित्त से होने वाली आत्मा की अवस्थाएँ गुण स्थान हैं-

गुणस्थानानि जीवस्य भाषितानि चतुर्दश ।
मोहयोग निमित्तानि मिथ्यात्वादीनि तानि च ।[७९]

इस प्रकार गुणस्थानों की संख्या चौदह हैं – उनके नाम इस प्रकार है – मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, असंयत, सम्यक्त्व, विरताविरत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषाय, सयोगी केवली और अयोगी केवली । इन सभी के स्वरूप का पृथक्-पृथक् विवेचन किया गया है । मार्गणा के निरूपण में कहते हैं कि सभी जीव समास (गुण स्थान) जिसमें या जिसके द्वारा खोजे जाते हैं उसे ''मार्गणा'' कहते हैं । चौदह मार्गणाएँ विख्यात हैं – गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहारक । जीव को एक मार्गणा त्यागकर पुनः उसी में आने के लिए कुछ समय का अन्तर लगता है, तब वह मार्गणा सान्तर कहलाती है । ऐसी सान्तरमार्गणाओं का उल्लेख हुआ है – अपर्याप्तमनुष्य, वैक्रेयिकमिश्रयोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग, सूक्ष्म साम्पराय संयम, सासादन सम्यक्त्व, सम्यङ्मिथ्यात्व और उपशम सम्यक्त्व ।

मोक्ष के कारणभूतरत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) की समीचीन व्याख्या की गई है –

आत्मश्रद्धेव सम्यक्त्वम्, आत्मज्ञानस्य सन्मतिः ।
तस्मिन्स्थितिस्तु चारित्रं, त्रितयं मोक्षकारणम् ।।[80]

इनकी साङ्गोपाङ्ग व्याख्या करने के उपरान्त द्रव्य का परिचय देते हैं- वह सर्वकाल में व्याप्त रहता है और वस्तु, सत, अन्वय विधि इत्यादि अनेक नामों से यथार्थ रूप में विद्यमान है । द्रव्य का विभाजन अनेक प्रकार से किया जाता है - मूर्त्त-अमूर्त्त, रूपी-अरुपी, सचेतन-अचेतन, एवं सक्रिय (क्रियावान)-निष्क्रिय । ''गुण तत्त्व से एक द्रव्य को दूसरे द्रव्यों से पृथक् किया जाता है । यह विशेष गुण का कार्य है किन्तु सामान्य गुण-सहभूवोः गुणः है।

द्रव्य का विकार ''पर्याय'' है । इसके दो भेद हैं - अर्थ पर्याय और व्यञ्जन पर्याय। ''नय'' ज्ञाता के अभिप्राय को कहते हैं । प्रमाण का अंश भी ''नय'' है । इसके मुख्य रूप से दो भेद हैं -निश्चयनय और व्यवहार नय ।

''निक्षेप''-यह अप्रकृत अर्थ का निराकरण और प्रकृत अर्थ का प्ररुपण करता है । इसका विवेचन नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार शास्त्रों में हुआ है । धर्म शब्द की व्युत्पत्ति पूर्वक व्याख्या की है कि ''धृ'' धातु से मन् प्रत्यय होने पर ''धर्म'' शब्द बनता है । वस्तुका स्वभाव ही धर्म है । इस कारण द्रव्य का स्वभाव उसका धर्म है जिसे वह कभी नहीं छोड़ता ।

इस प्रकार विवेच्य ग्रन्थ में जैन दर्शन के प्रसिद्ध सिद्धान्तों, तत्त्वों का सम्यक् प्रतिपादन हुआ है ।

पद्मप्रभस्तवनम्[81] :

आकार - यह पच्चीस पद्यों में निबद्ध स्तोत्र काव्य है ।

नामकरण - पद्मप्रभु जैन धर्म के षष्ठ तीर्थङ्कर हैं । उन्हीं की स्तुति इस काव्य में होने के कारण इसका शीर्षक ''पद्मप्रभस्तवनम्'' है, जो पूर्णतः सार्थक और न्यायोचित है।

प्रयोजन - इस स्तोत्र की रचना का मुख्य उद्देश्य सांसारिक दुःखों को नष्ट करने, मोक्षमार्ग को प्रशस्त करने एवं विश्वबन्धुत्व का प्रचार-प्रसार करने के लिए की गई है - ऐसा उल्लेख प्रस्तुत स्तोत्र के सप्तम पद्य में हुआ है । इसके साथ ही कवि षष्ठ तीर्थङ्कर की महनीयता से समाज को परिचित कराके पाठकों के कर्मों एवं पापों को क्षीण करना चाहता है ।

विषयवस्तु - कवि का मन्तव्य है कि ज्ञानदर्शन के मर्मज्ञ, परोपकार में दत्तचित्त षष्ठ तीर्थङ्कर के रूप में विख्यात पद्मप्रभु पञ्चम तीर्थङ्कर सुमतिनाथ स्वामी के निर्वाण के अनन्तर 90 हजार करोड़ सागर के पश्चात् भूतल पर अवतीर्ण हुए । आपका जन्म कौशाम्बी नगरी में ''धारण'' राजा की रानी सुसीमादेवी के उदर से हुआ ।[82]

एक समय दरवाजे पर बँधे हुए हाथी को देखकर पद्मप्रभु जी को अपने पूर्वभवों का ज्ञान (जातिस्मरण) हो गया ।[83] तदनन्तर ''मनोहर'' वन में पहुँचकर प्रियंगु वृक्ष के नीचे एक हजार राजाओं के साथ कार्तिक कृष्णा 13 को चित्रा नक्षत्र के अपराह्न दीक्षा धारण की और बेला किया । फलतः इसी वृक्ष के नीचे चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र में अपराह्न में पद्मप्रभु जी को ''केवलज्ञान प्राप्त हुआ ।[84]

कवि ने पद्मप्रभु को सांसारिक दु:खों के निवारण में समर्थ, विधाता, पर पिता, सुखदायक, चतुर्गतिनाशक, कहकर वन्दना की है । वह उन्हें अनेकश: ''नमोऽस्तु'' कहता है । कवि पद्मप्रभु को अपने आराध्य के रूप में चित्रित करते हुए उनके चारित्रिक पक्ष की भक्तिपूर्ण अभिव्यञ्जना करता है । वह उन्हें संसारमुनीश्वर, बुद्ध, एक[65], अनेक[66], अनादि[67] आदि[68], शुद्ध, असहायक[69], सर्वज्ञ आत्मज्ञ, पृथ्वीपति, विनाथ, आप्त, प्रभु, रिपुनाशक इत्यादि परस्पर विरोधाभास युक्त विशेषणों से अभिहित करते हुए उनके व्यक्तित्व, प्रभाव, माहात्म्य आदि की समीक्षा करता है । तत्पश्चात् कवि इनकी स्तुति विशद, विशुद्ध, साधु, जिन, विमदन[70], मुनीन्द्र, देवाधिदेव, परम, विरत, विमोह, विधुपति[71], प्राज्ञ[72], ईश, शुचि, भक्तदेव आदि के रूपों में करके उनकी शरण पाने का आकांक्षी है-''सोऽत्रैव,सद्गति सुखं प्रददातु सर्वम्'' ।[73] क्योंकि कवि इस तथ्य से अवगत है कि पापोदय, दु:खमय, कृशकाय, जीवन की आशा से विमुख व्यक्ति भी भगवान् की स्तुति के द्वारा नीरोग और सफल मनोरथ हो गये हैं । इस प्रकार कवि अपार श्रद्धा, भक्ति पूर्वक पद्मप्रभु की महिमा का वखान करता है और उनका सान्निध्य पाने के लिए प्रयत्नशील होकर मार्मिक प्रार्थना करता है-

त्वय्येव तारयतु दु:खितहीन भक्तान् ।[74]

इस प्रकार उक्त स्तोत्र में कवि ने अपने आराध्य का मुक्तकण्ठ से यशोगान किया है ।

''विद्याभूषण पं. गोविन्दराय शास्त्री''

परिचय - बुन्देलखण्ड की गरिमा के प्रतीक पं.गोविन्दराय शास्त्री महरौनी जिला झांसी के निवासी थे । दि. जैन समाज में आप व्याकरण, न्याय काव्यादि के प्रसिद्ध विद्वान् और हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक थे । काशी के स्याद्वाद महाविद्यालय में अध्ययन और अध्यापन से आपकी विद्वता निखरी हुई थी, आपकी दोहरी देह, छोटा कद, बड़ी-बड़ी आँखें, गेहुआ चेहरा भरा होने से मुख मुद्रा प्रभाव शालिनी थी । मिलनसार व्यवहार और मुख पर पाण्डित्य की तेजस्विता से टीकमगढ़ और धार महाराजाओं के दरबारों में शास्त्री जी आदरणीय रहे। राज्य में 12 वर्ष तक धर्म और नीति के व्याख्याता तथा सहायक इन्सपेक्टर के पद पर शिक्षा विभाग में प्रतिष्ठित रहे । सन् 1940 में नेत्र पीड़ा के कारण विश्राम वृत्ति (पेंशन) लेकर मृत्यु पर्यन्त जिनवाणी की सेवा में अहर्निश लगे रहे । दि. जैन समाज के विद्वानों अत्यन्त सम्माननीय शास्त्री जी अपनी ललित रचनाओं के लिए राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद, सी. राजगोपालाचारी, आचार्य विनोवा भावे, सन्त गणेश प्रसाद जी वर्णी और काका कालेलकर जैसे गुण मान्य विद्वानों से पुरस्कृत एवं सम्मानित हो चुके थे ।

रचनाएँ - आपकी रचनाओं में जैन धर्म की सनातनता, गृहिणीचर्या, बुन्देलखण्ड गौरव, वर्तमान विश्व की समस्याएँ और जैन धर्म, भक्तामर स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद, यशस्तिलक चम्पू की बारह भावनाओं का हिन्दी गद्य पद्यानुवाद, आचार सूत्र और कुरल-काव्य अत्यन्त प्रसिद्ध है । समाट् जीवन्धर नामक काव्य के कार्य में लगे हुए थे कि आकस्मिक दुर्घटना में शास्त्रीजी का निधन हो गया, अत: उक्त काव्य पूरा नहीं हो सका।

शास्त्री जी के लेख समय-समय पर सरस्वती, वीणा, एजुकेशनल गजट, जैन-सिद्धान्त भास्कर, जैन मित्र और दिगम्बर जैन आदि पत्रों में प्रकाशित होते रहे । गांधी जी के नेतृत्व में सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलनों के समय आपने महरौनी तहसील की कांग्रेस कमेटी

के मन्त्री पद का कार्य कुशलता के साथ किया । आपकी साहित्यिक सेवाओं के संदर्भ में भारत सरकार आपको एक साहित्यिक अलोन्स भी देती रही । इस प्रकार पं. गोविन्द राय शास्त्री अप्रतिम प्रतिभा के धनी साहित्यकार के रूप में विख्यात हुए ।

''बुन्देलखण्डं सद्गुरुः श्रीवर्णी च''[१५]

आकार – ''बुन्देलखण्डं सद्गुरुः श्रीवर्णी च'' रचना इकतीस श्लोकों में निबद्ध स्फुटकाव्य है ।

नामकरण – बुन्देलखण्ड एवं श्री वर्णी जी की प्रशस्ति होने के कारण रचना का नामकरण ''बुन्देलखण्डं सद्गुरु, श्रीवर्णी च'' सर्वथा उपयुक्त है ।

रचनाकार का उद्देश्य – बुन्देलखण्ड एवं श्री वर्णी जी के माहात्म्य एवं प्रशस्ति को परिष्कृत करना रचनाकार का मूलोद्देश्य मालूम पड़ता है ।

अनुशीलन – बुन्देलखण्ड की प्रकृति, संस्कृति, ऐश्वर्य आकर्षक है । अनेक पर्वतों, नदियों, बगीचों, खेतों, वृक्षों से मण्डित पावन विन्ध्य भूमि अत्यन्त रमणीय है । इसकी सुरम्य गोद में तुलसी, बिहारी, रइधू, मैथिलीशरण गुप्त, केशवदास आदि कवियों ने क्रीडाएँ की है। यहीं (बुन्देलखण्ड में) महापराक्रमी आल्हा एवं परमाल अवतरित हुए । सर्वगुणसंपन्न यशस्वी महाराज छत्रसाल बुन्देलखण्ड के शक्तिशाली राजा रहे हैं । वीराङ्गना दुर्गावती ने मातृवत् प्रजा की रक्षा की । सिद्धक्षेत्र अहार जी की मूर्तियाँ मूर्तिकला चातुर्य की प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ।

राष्ट्र प्रेम और आजादी की जीवन्त प्रतिमा महारानी लक्ष्मीबाई ने हाथ में तलवार धारण करके स्वतन्त्रता सङ्ग्राम का सिंहनाद किया । राष्ट्रवीर श्री गणेश शङ्कर विद्यार्थी भी बुन्देलखण्ड में जन्मे । बुन्देलखण्ड के पन्ना नगर में हीरे निकलते हैं । दतिया नगर में उत्पन्न ''गामा'' पहलवान ने अपने व्यायाम कौशल से विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त की।

बुन्देलखण्ड में ही सुवर्ण, देशव्रज, चित्रकूट, चेदि (चन्देरी) पपौरा, खजुराहो और नैनागिर तीर्थस्थल विद्यमान् हैं । बुन्देलखण्ड में जन्मे श्री गणेश शङ्कर विद्यार्थी एक विद्वान्, ज्योतिषी, त्यागी, प्रकृति प्रेमी, शिक्षा शास्त्री, कर्मयोगी, मधुरभाषी, दयालु राष्ट्रभक्त महापुरुष हुए हैं । जिन्होंने अपने कार्यों से समाज को नई दिशा प्रदान की है ।

''पं. जुगल किशोर मुख्तार युगवीर''

परिचय – साहित्य के भीष्म पितामह के नाम से विश्रुत, सरस्वती के वरदपुत्र, निर्भीक, निराले व्यक्तित्व के धनी, निबन्धकार, सुप्रसिद्ध इतिहासकार, कुशलवक्ता, निपुण पत्रकार एवं संपादक, समीक्षक पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार युगवीर का जन्म सरसावा, जिला-सहारनपुर में श्री चौ. नत्थूमल जैन के घर में मार्ग शीर्ष शुक्ला एकादशी वि. सं. 1934 को हुआ था। शैशव से ही विलक्षण प्रतिभा और तर्क शक्ति के धनी मुख्तार जी की प्रारम्भिक शिक्षा गांव में स्थित पाठशाला में हुई । तत्पश्चात् संस्कृत में बढ़ती अभिरुचि ने आपको जैन शास्त्रों के स्वाध्याय के लिए प्रेरित किया । मेट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरांत 1899 ई. में आपने प्रान्तिक सभा की ओर से उपदेशक का कार्य प्रारंभ किया, किन्तु दो माह के बाद उपदेशक वृत्ति से त्याग पत्र देकर मुख्तारी करने लगे। इस पेशे में आपने सदा न्याय और सत्य का आधार लिया । आपका अधिकांश समय, साहित्य, कला, पुरातत्त्व के अन्वेषण में व्यतीत होता था । भट्टारकों की साहित्यिक गति-विधियों से क्षुब्ध होकर मुख्तार जी ने ''ग्रन्थ परीक्षा'' के नाम से एक शोध ग्रन्थ प्रकाशित करवाया । इसमें भट्टारकों द्वारा की गई साहित्यिक चोरी का भंडाफोर करके लोगों को वास्तविकता से अवगत कराया गया है ।

मुख्तार जी का जीवन सङ्घर्ष पूर्ण पारिवारिक आपदाओं से भरा हुआ था । मुख्तार दम्पत्ति को अपना आठ वर्षीय प्रथम पुत्री सन्मतिकुमारी की प्लेग बीमारी के कारण हुई दु:खद मृत्यु का कष्ट झेलना पड़ा । द्वितीय पुत्री का जन्म 1917 ई. में हुआ, किन्तु तीन माह के पश्चात् ही जीवन-साङ्गिनी आपका साथ छोड़ चल बसीं । पत्नी वियोग के तीन वर्ष पश्चात् मुख्तार जी एक मात्र सहारा भी मोतीझिरा की बीमारी का शिकार होकर अलविदा कर गयी । मुख्तार जी उक्त विपदाओं को प्रकृति की देन मानकर एक सच्चे कर्मयोगी की भांति साहित्य-साधना से विचलित नहीं हुए बल्कि पूरे उत्साह से दत्तचित्त रहे । आपने 21 अप्रेल 1929 में दिल्ली में समन्तभद्राश्रम की स्थापना की । यहीं से ''अनेकान्त'' मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया । बाद में यही वीर सेवा मन्दिर में परिवर्तित हो ''दिल्ली'' से ''सरसावा'' चला आया जो एक शोध प्रतिष्ठान के रूप में वाङ्मय की विभिन्न शोध वृत्तियों का प्रकाशन और अनुसन्धान करने लगा। ज्ञान-पीठ की स्थापना के पूर्व यही एक ऐसी दिगम्बर संस्था थी । मुख्तार साहब ने अपनी समस्त संपत्ति का ट्रस्ट कर दिया और उस ट्रस्ट से वीर सेवा मन्दिर अपनी बहुमुखी प्रवृत्तियों का संचालन करने लगा ।

रचनाएँ – आपकी काव्य रचनाओं का संग्रह ''युग-भारती'' नाम से प्रसिद्ध है। आपकी प्रसिद्ध रचना ''मेरी भावना'' राष्ट्रीयकविता के रूप में विख्यात है । आपके निबन्धों का संग्रह- ''युगवीर-निबन्धावली'' के नाम से दो खंडो में प्राप्त है । इसमें समाज-सुधारात्मक एवं गवेष्णात्मक निबन्ध है । इसके अलावा ''जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश'' नामक ग्रन्थ में 32 निबन्ध हैं । ये सामाजिक, राष्ट्रीय, आचारमूलक, भक्तिपरक, दार्शनिक एवं जीवन शोधक निबन्ध हैं । इनमें मुख्तार जी का संपूर्ण व्यक्तित्व उजागर हुआ है । आचार्य समन्द्रभद्र ही प्राय: समस्त कृतियों पर भाष्य लिखे हैं । मुख्तार जी की साहित्यिक गतिविधियों का प्रारम्भ ग्रन्थ परीक्षा और समीक्षा से होता है । ''ग्रन्थ-परीक्षा'' के दो भागों का प्रकाशन 1916 में हुआ था । वीर शासन की उत्पत्ति और स्थान श्रुतावतार कथा, तत्त्वार्थाधिगम भाष्य और उनके सूत्र, कार्तिकेयानुप्रेक्षा और स्वामिकुमार आदि शोध निबन्ध विशेष उल्लेखनीय हैं ।

मुख्तार साहब ने स्वयम्भू सतोत्र, युक्त्यनुशासन, देवागम, अध्यात्म रहस्य, तत्त्वानुशासन, समाधितन्त्र, पुरातन जैन वाक्यसूत्री, जैन ग्रन्थ, प्रशस्ति संग्रह (प्रथम भाग) समन्तभद्र भारती प्रभृति ग्रन्थों का संपादन कर महत्त्वपूर्ण प्रस्तावनाएँ लिखीं, जो अध्येताओं के लिए उपयोगी हैं । एक संपादक एवं पत्रकार के रूप में ''जैन-गजट'' साप्ताहिक के सम्पादन से आपको प्रसिद्धि मिली। इसके पश्चात् ''जैन-हितेषी'' का सम्पादन किया। समन्तभद्राश्रम की स्थापना के पश्चात् ''अनेकान्त'' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन और प्रकाशन प्रारम्भ किया- यह उस समय की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी । इसके अलावा मुख्तार साहब ने अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना भी की । इस प्रकार पं. जुगलकिशोर मुख्तार ''युगवीर'' का व्यक्तित्व बहुआयामी था ।[९५]

पं. जुगलकिशोर मुख्तार ''युगवीर'' द्वारा रचित संस्कृत रचना का अनुशीलन

जैनादर्श (जैन गुण दर्पण)[९६]

आकार – ''जैनादर्श'' (जैन गुणदर्पण) रचना दस श्लोकों में आबद्ध स्फुट काव्य हैं।

नामकरण – प्रस्तुत कृति जैन धर्म के गुणों या आदर्शों पर आधारित होने के कारण ''जैनादर्श'' नाम को सार्थक करती है ।

रचनाकार का उद्देश्य - जैनादर्शों के प्रतिरचनाकार की हृदयस्थ आस्था ही इस रचना के सृजन का प्रधान उद्देश्य है ।

अनुशीलन - कर्मेन्द्रिय विजय, लोकहित, अनिष्टनाश आदि में जैन ही सक्षम हैं । रागद्वेष से दूर आत्मालोचन करने एवं दया-दान-शांति-संतोष-सेवा, सुश्रुषा-सुशीलता शुचिता धारण करने के कारण जैन मनीषि परम पूज्य हुए हैं । जैन मतावलंबी, आत्मज्ञानी, प्रसन्नात्मा, गुणग्राही, परोपकारी और विवेकशील होता है । जो अपनी आत्मा के प्रतिकूल दूसरों के साथ व्यवहार नहीं करता, ऐसा जैन, समाज में लोकप्रिय हो जाता है ।

''राजवैद्य'' पं. बारेलाल जी जैन''

परिचय - पं. बारेलाल जी जैन व्यक्ति नहीं, संस्था थे । वे टीकमगढ़ जिले के पठा ग्राम में जन्मे थे । आयुर्वेद, संस्कृत और संस्कृति उनके प्रिय विषय थे । वे जैन संस्कृति के प्रसिद्ध सिद्ध क्षेत्र अहार जी और वहाँ पर सञ्चालित श्री शान्तिनाथ जैन विद्यालय के लगभग 45 वर्ष तक मंत्री रहे । आपके मंत्रित्व काल में क्षेत्र तथा विद्यालय और संस्कृत साहित्य की आशातीत प्रगति हुई । संस्कृत भाषा और साहित्य पर उनका प्रकाम पाण्डित्य था । अहार क्षेत्र में सर्वप्रथम जैन संग्रहालय की स्थापना हुई - पं. बारेलाल जी की सुरुचि और व्यवस्था प्रियता से अहार क्षेत्र की संस्थाएँ उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त हुई । वे विधि-विधान के वेत्ता मान्य प्रतिष्ठाचार्य भी थे । उनके आचार्यत्व में अनेक महोत्सव सम्पन्न हुए हैं । उनके द्वारा रचित संस्कृत काव्य रचनाओं में से ''श्री अहार तीर्थ स्तवनम्'' का प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उपयोग किया गया है ।

''राजवैद्य पं. बारेलाल जी''

''श्री अहार तीर्थ स्तवनम्''[१७] :

यह एक लघुस्तोत्र काव्य रचना है । जिसका प्रणयन श्री अहार क्षेत्र प्रबन्धकारिणी के वरिष्ठ मन्त्री श्री स्व. पं. बारेलाल जी जैन ''राजवैद्य'' ने किया है ।

नामकरण - इसमें अहारतीर्थ की गौरवमयी स्तुति होने के कारण ही इसका नाम ''श्री अहारतीर्थस्तवनम्'' रखा है जो सर्वथा उपयुक्त है और सार्थक है।

आकार - यह लघु रचना 16 पद्यों में निबद्ध है, जिसे हम लघुस्तोत्रकाव्य भी कह सकते हैं ।

प्रयोजन - इस संस्था की निरन्तर प्रगति और उन्नयन के लिये प्रयत्नशील कवि हृदय साहित्यकार ने क्षेत्र की गौरवपूर्ण विमल कीर्ति एवं संस्कृति को शाश्वत एवं अक्षुण करने के लिए ही इस रचना का प्रणयन किया है । इसके साथ ही रचनाकार ने तीर्थक्षेत्र के प्रति अपनी (आत्मा की) श्रद्धा प्रकट की है ।

विषय वस्तु - कवि ने अहार क्षेत्र को नित्य प्रणाम करने और उसकी सेवा करने का संयोग और अवसर प्राप्त किया । इसके लिए वह कृतकृत्य है । मध्य प्रदेश में स्थित चन्देलवंशीय राजाओं के द्वारा सुरक्षित जैन-मुनियों के पवित्र तपोवन जहाँ फलपुष्प से युक्त छायादार वृक्षों की पङ्क्तियाँ, पक्षियों का कलरवगान मानव मन को आकृष्ट करता है । यहाँ का ''मदनेश'' सागर जलाशय स्वच्छ स्फटिक की प्रभा के समान जल को धारण करता है । यह 3 मील लम्बा है इसका निर्माण ''मदनेश'' नामक राजा ने करवाया था, जिसकी

प्रशस्ति सरोवर के नामसे ही स्पष्ट होती है - राजा के यश को स्थायी रखने के लिये ही इस क्षेत्र का अपर नाम- ''मदनेश सागर पुर'' भी रखा गया।[8]

यहाँ एक व्यापारी पोणाशाह का राङ्गा भी चांदी के रूप में परिवर्तित हो गया था इसीलिए उसने पर्वती पर गगनचुम्बी मन्दिरों और भवनों का निर्माण कराया। यहाँ उन्होंने एक मासोपवासी मुनिराज को नवधाभक्तिपूर्वक अहार दिया जिससे इस क्षेत्र का नाम ''अहार'' पड़ा, जो बाद में ''अहार जी'' के नाम से प्रसिद्ध हुआ -

कृत्वा सपर्यां भगवज्जिनस्य मुनिं ददर्शाथ ददावहारम्।
आहारनाम्ना हि ततः प्रसिद्ध अहारतीर्थ प्रणमामि नित्यम्॥

इस क्षेत्र के प्रथम जिनालय में भगवान् शान्तिनाथ की (18 फुट ऊँची) अत्यन्त मनोज्ञ, सुखशान्तिदायक कायोत्सर्ग मूर्ति है। इस क्षेत्र के जिनालयों की मेरु के समान दिव्यता, बहुसंख्यता, मनोज्ञता, सातिशयता का नयनाभिराम दृश्य मानव मन पर संस्कृति के स्वर्णिम अध्याय को अंकित करता है। यहाँ के सुप्रसिद्ध प्राचीन शान्तिनाथ सङ्ग्रहालय में खण्डित एवं अखण्डित मूर्तियां बहुसंख्या में हैं। कभी-कभी देवाङ्गनाएँ, किन्नरों के द्वारा रात्रि काल में प्रस्तुत किये गये संगीत की ध्वनियाँ भी सुनी जाती हैं। इसे क्षेत्र की व्यवस्था जैन-प्रबन्धकारिणी समिति समर्पण भाव से करते हुए यहाँ की उन्नति के लिये प्रयत्नशील है। मैं (बाबूलाल) पूर्ण भक्तिभाव से पुण्य क्षेत्र की स्तुति में यह स्तोत्र गान करता हूँ।

(स्व.) पं. ठाकुर दास शास्त्री

परिचय - श्री शास्त्री जी का जन्म उत्तर प्रदेश में झांसी जिले के तालबेहट नगर में हुआ था। शास्त्री और बी.ए. परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने शासकीय विद्यालयों में अध्यापन कार्य किया। टीकमगढ़ आपकी कर्मस्थली थी।

आप बहुश्रुताभ्यासी और विद्या व्यवसनी थे। श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी ने समयसार का प्रामाणिक संस्करण निकालने के लिये जिन दो विद्वानों का चयन किया था, उनमें एक आप भी थे। आपको उत्कृष्ट विद्वत्ता और आदर्श साहित्यिक अभिरुचि के कारण महाराजा वीरसिंह जू देव, ओरछा नरेश, देश के ख्यातिलब्ध पत्रकार बनारसीदास जी श्री साहित्यकार यशपाल जी, आदि अनेक लोग आपसे प्रभावित हुए हैं। श्री दि.जैन अतिशय क्षेत्र पपोरा तथा वीर विद्यालय की अनवरत अठारह वर्षों तक मंत्री के रूप में सेवा की थी। स्व. राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी आपकी ही प्रेरणा से ही 29 मार्च 1953 में पपौरा पधारे थे।

हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और गणित पर आपका असाधारण अधिकार था। जैन दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् थे। आगमानुकुल अचार-विचार के भंडार थे। आपकी सर्वतोन्मुखी विद्वत्ता का उच्चकोटि के विद्वान भी लोहा मानते थे। स्मरण शक्ति भी आपकी अलौकिक थी। अनेक श्लोक आपको कण्ठस्थ थे। धर्म, समाज, तीर्थ, साहित्य एवं देश सेवा में आपका सराहनीय योगदान रहा है। आपकी निःस्वार्थ त्यागवृत्ति से विद्वत्ता गौरवान्वित हुई है। भयङ्कर बीमारियों और कठोर कठिनाईयों में भी आपने चारित्र और संयम की पूर्ण रक्षा की।[9]

महान् लोकोपकारी टीकमगढ़ के अद्वितीय विद्वान् श्री शास्त्री जी का 9 जून, 1965 के प्रातः तीन बजे स्वर्गवास हो गया। उनके न रहने से समाज की जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति होना असंभव है।

रचनाएँ - श्री मद् वर्णिगणेशाष्टकम् तथा पपौराष्टकम् आदि आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं । पं. ठाकुर दास जी की भाषा अलङ्कारों से शृंगारित है । भाषा में प्रवाह है । सरल और सुबोध शब्दों का प्रयोग है । पूज्य वर्णी जी के प्रति रची रचना में उक्त सभी विशेषताएँ द्रष्टव्य है ।[100] आपने पूज्य वर्णी जी के चिरायु होने की कामना करते हुए श्रीमद् वर्णि गणेशाष्टकम् रचना में इन्होंने पूज्य वर्णी जी के मधुर हितैषी स्वभाव का मूल्याङ्कन करते हुए लिखा है कि स्याद्वाद रूपी अमृत-सागर की वृद्धि के लिये चन्द्रमा स्वरूप, वात्सल्य-भावों के सागर, पुण्यवान् महर्षि, आगम-पान से तृप्त, आत्म-रहस्य के ज्ञाता, उज्ज्वल प्रतिष्ठाधारी निर्मल कीर्तिवाले, आत्मध्यानी श्री गणेश प्रसाद वर्णी चिरकाल तक जीवें। इन भावों की अभिव्यक्ति पण्डित जी की रचना में इस प्रकार हुई है -

स्याद्वादामृत वादिवर्द्धन विधुर्वात्सल्य रत्नाकरः,
पुण्यश्लोक-महर्षि-वाङ्मय सुधा-पानेन तृप्तिं गतः ।
आत्मख्यातिरहस्यवित्सु धवलां प्राप्तः प्रतिष्ठां पराम्
जीयान्निर्मलकीर्त्तिरात्मनिरतः श्रीमद्गणेशश्चिरम् ॥

वर्णी जी का हृदय आचार्य कुन्द कुन्द की वाणी से सुशोभित था। उनका कण्ठ शम-दम रुपी मणियों की माला से विभूषित था । वे तत्त्वज्ञानी थे, महर्षि थे और विज्ञ थे । कवि ने इन भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है -

विलसितहृदि सूरिः कुन्दकुन्दोऽपि यस्य,
अमृतराशि महर्षेस्तत्त्वदर्शी च विज्ञः ।
शम-दम गणिमाला यस्य कण्ठे विभाति,
चिरतरमतिजीयात् श्रीगणेशः स वर्णी ॥

पपौराष्ट्रक[101] :

आकार - ''पपौराष्टक'' रचना आठ श्लोकों में आबद्ध स्फुट काव्य है ।

नामकरण - सिद्ध क्षेत्र पपौरा जी का माहात्म्य आठ श्लोकों में करने के कारण ''पपौराष्टक'' नाम तर्कसङ्गत है ।

रचनाकार का उद्देश्य - इस कृति के माध्यम से रचनाकार ने विश्वकल्याण और जनहित की भावना को साकान किया है ।

अनुशीलन - मध्यप्रदेश में टीकमगढ़ नगर के पूर्व की ओर 3 कि.मी. दूरी पर अतिशय सिद्ध क्षेत्र पपौरा जी स्थित है । सघन वृक्षों की शीतल छाया, पक्षियों के कलरव, महात्माओं के सान्निध्य एवं सज्जनों की उपस्थिति से यहाँ के वातावरण में शान्ति है। यहाँ पर ''सभामण्डप'' में मुनियों के प्रवचन होते हैं । जिन्हें सुनकर मानव-मन तृप्ति और शान्ति प्राप्त करता है चार मान स्तम्भ हैं । विद्यालय, उपवन, धर्मशाला, बावड़ी आदि के कारण किसी प्रकार की असुविधा नहीं है । यहाँ मनुष्य प्रवचन श्रवण मनन चिन्तन आत्मालोचन का अवसर पाकर आननदित होते हैं । इस प्रकार सब प्रकार से सुखदायी दिव्य पपौरा जी परम कल्याणकारी अतिशय सिद्धक्षेत्र है ।

प्रो. राजकुमार साहित्याचार्य

परिचय- डॉ. राजकुमार साहित्याचार्य का जन्म 15 अक्टूबर, सन् 1940 को उत्तरप्रेदश के झांसी जिले के गुंदरापुर ग्राम में हुआ । आपने साहित्याचार्य, न्याय काव्यतीर्थ और एम.ए.

की उपाधियाँ प्राप्त की । प्रारम्भ में आपने पपौरा (टीकमगढ़) के वीर जैन विद्यालय और उसके उपरान्त दिगम्बर जैन कालेज, बड़ौत में अध्यापन कार्य किया । वे आगरा कालेज में भी संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद को अलंकृत करते हुए सेवा निवृत्त हुए । उन्होंने मदन पराजय, प्रशमरति प्रकरण बृहत्त् कथाकोश तथा जसहरचरिउ आदि ग्रन्थों का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन किया । वे भारतीय ज्ञानपीठ काशी में भी संपादन कार्य में निरत रहे, उन्होंने साहित्य और भाषा शास्त्र पर प्रकाम पाण्डित्य प्राप्त किया है । उनकी संस्कृत रचनाओं में भाव सौम्यता, अर्थ-गौरव और प्रसादगुण पढ़े-पढ़े निदर्शित है । यहाँ उनका एक पद्य ''श्रीबन्ध'' के रूप में प्रस्तुत है -

वस्तुत: ''श्रीबन्ध'' चित्र नामक शब्दालंकार का एक अंश है । आचार्य मम्मट ने इस प्रकार के बन्धों को चित्रालङ्कार के भीतर स्थान दिया है। उन्होंने लिखा है -

तच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृति हेतुता ।[102]

वस्तुत: विविध प्रकार के चित्रबन्ध क्लिष्ट काव्य की श्रेणी में आते हैं । किन्तु इस प्रकार का लेखन रचयिता के गंभीर अध्ययन और समुन्नत पाण्डित्य को व्यक्त करते हैं।

डॉ. राजकुमार, सिद्धान्त शास्त्री, साहित्याचार्य द्वारा रचित संस्कृत रचना का अनुशीलन :

वर्णिवाणी[१०३] : (श्रीबन्ध :)

आकार - ''वर्णिवाणी'' रचना संस्कृत के एक श्लोकीय ''श्रीबन्ध में आबद्ध'' स्फुट काव्य है ।

नामकरण - प्रस्तुत श्लोक में (वर्णिवाणी) की सराहना करने के कारण इस रचना का नाम ''वर्णिवाणी'' किया गया है । जो उपयुक्त ही है ।

रचनाकार का उद्देश्य - वर्णी जी की वाणी की प्रशस्ति का यशोगान ही प्रस्तुत कृति के सृजन का आधार है ।

अनुशीलन - जो वाणी अपनी तेजस्विता से चन्द्रमा के सौन्दर्य लक्ष्मी की कान्ति तथा जनमन की प्रसन्नता में श्री वृद्धि करती है, वह भावपूर्ण, रससिक्त, गुणयुक्त वर्णि-वाणी'' अमरत्व से ओत-प्रोत है ।

डॉ. भागचन्द्रजी जैन भागेन्दु''

परिचय - जबलपुर जिले के ''रीठी'' नगर में जन्मे डॉ. भागचन्द्र जी ''भागेन्दु'' जैन समाज के उन मनीषियों में से हैं, जिन्होंने अपने जीवन को सेवामय बना रखा है। प्राचीन वाङ्मय, भाषा शास्त्र, जैन दर्शन-संस्कृति और कला के क्षेत्र में उनकी विशिष्ट सेवाएँ हैं। डॉ. भागेन्दु जी का अध्ययन सागर (म.प्र.) के श्री गणेश जैन महाविद्यालय तथा सागर विश्वविद्यालय में हुआ ।

जैन-विद्याओं पर अनुसंधान निर्देशन हेतु विख्यात डॉ. भागेन्दु जी सम्प्रति सागर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं । आपके निर्देशन में पाँच शोधार्थियों को जैन विषयों पर पी.एच.डी. उपाधि प्राप्त

हो चुकी है । सात अन्य शोधार्थी सम्प्रति शोध-निरत हैं । डॉ. भागेन्दु जी अखिल भारतीय स्तर की अनेक संस्थाओं, शोध संस्थानों और विश्वविद्यालयों से निकटतः सम्बद्ध है । आप कुशल लेखक, यशस्वी संपादक, सफल प्राध्यापक और अच्छे वक्ता हैं।

रचना संसार - आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ ''देवगढ़ की जैन कला का सांस्कृतिक अध्ययन'', भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, जैन दर्शन का व्यावहारिक पक्षः अनेकान्तवाद, अतीत के वातायन से आदि हैं । आपने अनेक कृतियाँ का सम्पादन भी किया है । साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक और संयोजक डॉ. भागेन्दु जी ने प्राच्य विद्याओं के अनेक मनीषी विद्वानों-सर्वश्री न्यायाचार्य डॉ. दरबारीलाल जी कोठिया, पं. सरदारमल्ल सच्चिदानंद और सरस्वती वरदपुत्र पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य अभिनन्दन ग्रन्थ का कुशलतापूर्वक सम्पादन किया है ।

संस्कृत भाषा में आपकी अनेक प्रसाद गुणपूर्ण स्फुट रचनाएँ हैं । इस शोध प्रबन्ध में ''सोऽयं लोके भवतु नितरां कस्य नो पूजनीयः'' तथा ''तुभ्यं नुमः भव्यं हितङ्कराय शीर्षक रचनाएँ दृष्टिपथ में रखी गई हैं ।

संस्कृत रचनाएँ :

सोऽयं लोके भवतु नितरां कस्य नो पूजनीय :

''सोऽयं लोके भवतु नितरां कस्य नो पूजनीयः'' शीर्षक रचना ग्यारह पद्यों में निबद्ध है । यह रचना संस्कृत के प्रसिद्ध उपजाति, शार्दूल विक्रीडित स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता आदि वृत्तों में ग्रथित होकर रचनाकार के प्रौढ़ पाण्डित्य का निदर्शन कराती है । रचना में सर्वत्र प्रसाद गुण और वैदर्भी रीति की छटा निदर्शित है । यहाँ प्रस्तुत रचना का एक पद्य प्रस्तुत है -

दर्शं दर्शं प्रभवति मनो कस्य नो कस्य दिव्यं,
विद्वज्जातेः सघन-रुचिरं ज्ञान-विज्ञानतेजः ।
लोकालोके दिशि-दिशि चिरं श्रूयते यस्य कीर्तिः,
श्रीमन्मान्यो द्विवेदि-वर्य्यो विलसतुतरां धीमतामग्रगण्य॥

''तुभ्यं नुमः भव्य हितङ्कराय'' शीर्षक रचना में दस पद्य हैं । इस रचना में अनुष्टुप्, आर्या, गीति, उपगीति, चम्पकमाला, तथा शार्दूल विक्रीडित छन्दों का उपयोग कर भाव प्रसूनों को मूर्त्त रूप प्रदान किया है । इसका एक पद्य समुद्धृत है -

''ज्ञानार्जने लब्ध विशिष्टकृच्छ, विशाल दृष्टे ! गुणि-वृन्द-वन्द्य ।
विद्वद्-वरेण्याय महोदयाय, तुभ्यं नुमः भव्य ! हितङ्कराय ॥''

डॉ. साहब का प्राकृत भाषाओं पर भी समान अधिकार है । उन्होंने दसवीं शताब्दी के प्रख्यात जैन आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती द्वारा शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध, ''गोम्मटेश थुदि'' का प्रसाद गुण पूर्ण संस्कृत भाषा में रूपान्तरण किया है -

उदाहरणार्थ मूल रचना और डॉ. साहब द्वारा रूपान्तरित संस्कृत पद्य अधोनिदर्शित है -

विसट्ट-कंदोट्ट-दलाणुयारं, सुलोयणं चन्द-समाण-तुण्डं ।
घोणाजियं चम्पय -पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं - पणमामि णिच्चं ॥

डॉ. साहब द्वारा रुपान्तरित संस्कृत पद्य -

विसृष्ट–कञ्जोत्थ–दलानुकारं, सुलोचनं चन्द्र–समान–तुण्डम् ।
घ्राणाजितं चम्पकपुष्पशोभं, तं गोम्मटेशं प्रणमामि नित्यम् ।।[104]

इनके अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके द्वारा प्रणीत अनेक शोध-आलेख संस्कृत में भी प्रकाशित है, जिनसे लेखक की प्रौढ़ विद्वत्ता, प्राञ्जल भाषा और अभिराम शैली-प्रस्तुति का निदर्शन होता है ।

पं. भुवनेन्द्र कुमार शास्त्री, खरई

परिचय – पं. भुवनेन्द्रकुमार जी का जन्म 19 मार्च सन् 1914 में मध्यप्रदेश के सागर जिले में स्थित मालथौंन नामक गाँव में हुआ । आपके पिता का नाम श्री भुजबल प्रसाद जी एवं माता का नाम श्रीमती राधाबाई था । आपकी शिक्षा-दीक्षा स्थानीय विद्यालय से प्रारम्भ हुई । गँव में विशारद प्रथम खण्ड तक की शिक्षा लेने के बाद आप श्री गो. दि. जैन सिद्धान्त विद्यालय, मोरेना चले गये । यहाँ से आपने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की । इसके बाद अध्यापन कार्य करने लगे । आपका विवाह 1935 ई. में सरस्वती बाई से हुआ किन्तु 5 वर्ष बाद ही उनका स्वर्गवास हो गया । तत्पश्चात् 1940 में आपका दूसरा विवाह श्यामबाई के साथ सम्पन्न हुआ ।

आपने अपने अर्थोपार्जन का आधार अध्यापन कार्य को ही बनाया। अपने जीवन की अनेकानेक जटिल परिस्थितियों और समस्याओं का मुकाबला हँस-हँसकर करने वाले पं. भुवनेन्द्रकुमार जी आजकल श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल, खुरई (सागर) में अध्यापन कार्य कर रहे हैं । पं. भुवनेन्द्र कुमार जी समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता, उच्चकोटि के वक्ता, भावुक कवि और गद्य लेखन में निष्णात मनीषी हैं । आपके अन्तःकरण से उद्भूत सैकड़ों गीत और कविताएँ जन-जन के मानस पटल पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ती हैं । ''श्री 108 आचार्य विद्यासागर स्तवनम्''-आपकी प्रसिद्ध रचना है ।

श्री १०८ ''आचार्य विद्यासागर स्तवनम्''[१०५] :

परम श्रद्धेय एवं जैन धर्म के मर्मज्ञ मुनि विद्यासागर जी का चारित्रिक विश्लेषण पं. भुवनेन्द्र कुमार जैन, (खुरई) ने प्रस्तुत किया है । यह स्तोत्र पाँच पद्यों में है । आचार्य विद्यासागर अनेक ग्रन्थों के प्रणेता, दार्शनिक, विचारक, युग द्रष्टा एवं महान मुनि के रूप में विख्यात हैं । वे निरन्तर काव्यसाधना में दत्तचित्त हैं, उनके द्वारा विरचित हिन्दी एवं संस्कृत में अनेक ग्रन्थों के रसास्वादन का लाभ समाज ने किया है । पं. भुवनेन्द्र कुमार जैन ने उन्हें महावीर का सच्चा अनुयायी और निर्मल ज्ञान का प्रचारक निरूपित किया है । धर्म के द्वारा मुक्तिमार्ग को प्रशस्त करने वाले त्याग की प्रतिकृति आचार्य विद्यासागर में प्रत्येक पद्य की अन्तिम पंक्ति में स्तुतिकार ने अपनी हार्दिक श्रद्धा इन शब्दों में व्यक्त की है -

''विद्यासागरमत्र पूतचरणं वन्दामहे सन्ततम् ।[106]

छन्दकार स्तुति करता है कि कृपालु आचार्य श्री ने यहाँ आकर धर्मोपदेश के द्वारा समस्त पुरवासियों को धार्मिक प्रेरणा प्रदत्त की । आपका दर्शन सुपुण्य तथा सुफल प्रदान करता है । हे आचार्य तपस्या से पुनीत आपकी प्रभा सद्गति और सर्वाशा को विकसित करती है तथा मोह के अंधकार को नष्ट करती है । हे ज्ञानेश, आपके अपरिमित गुणों का

वर्णन करने में कौन समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं । आप दिगम्बर हैं और सत्य एवं परिग्रह के द्वारा विश्रुत हैं । आचार्य श्री ने हिंसा, स्तेय, कुशील के घोर विरोधी के रूप में प्रतिपादित भी किया है और उनके कौशल की सराहना की है । अन्तिम पद्य में रचयिता ने आचार्य श्री को आराध्य के रूप में चित्रित किया है और उनकी शरण में रहने की तीव्र अभिलाषा व्यक्त की है - एक सद्भक्त, सेवक के रूप में हम आपका ध्यान करते हैं और आपके श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त करने के लिये याचना करते हैं । हे गुरु आप हमें अपनी शरण में स्वीकार कीजिए । मैं आपके पवित्र चरणों की निरन्तर वन्दना करता हूँ ।

प्रस्तुत स्तोत्र संस्कृत के साहित्यिक स्वरूप को चित्रित करता है । इसमें प्रसाद माधुर्य गुणों का विवेचन है । भाषा की प्राञ्जलता और सरसता मुखरित हुई है । शैली की दृष्टि से ये पद्य सुललित और प्रभावोत्पादक है । वैदर्भी रीति की प्रमुखता अभिव्यंजित होती हैं । भाषा शैली में साहित्यिक संस्कृत का सौंदर्य दृष्टिगोचर होता है । प्रचुरता परिलक्षित हो रही है । शान्तरस की प्रधानता है, अन्य रसों की स्थिति नगण्य है । शब्दालङ्कारों एवं अर्थालङ्कारों के समन्वय से प्रस्तुत कविता को अलङ्कृत किया है - अनुप्रास, रूपक, अर्थान्तरन्यास आदि अलङ्कारों की उपस्थिति हैं । साहित्य के सुविख्यात शार्दूल विक्रीडित छन्द में ये पद्य निबद्ध हैं ।

पं. गोविन्द दास जी 'कोठिया'

परिचय - आपका का जन्म टीकमगढ़ जिले के अहार अतिशय क्षेत्र में संवत् 1976 के वैसाख मास में शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन हुआ था । आपके पिता श्री शिवलाल जी 'चौधरी' पद से विभूषित थे । आरम्भिक शिक्षा एवं न्यायतीर्थ, शास्त्री और व्याकरण मध्यमा परीक्षाएँ आपने वीर दि. जैन विद्यालय, पपौरा से उत्तीर्ण की थी । संस्कृत विषय से एम. ए. करने के पश्चात् आयुर्वेदाचार्य, साहित्याचार्य परीक्षाएँ भी आपने उत्तीर्ण की हैं।

अध्ययन के पश्चात आपने अध्यापन कार्य किया । अहार, दोहद, वहरामघाट पुनः अहार और इन्दौर आपकी कर्म भूमियाँ रहीं है । मुरेना विद्यालय में प्रधानाध्यापक रहने के पश्चात् शांतिनाथ विद्यालय अहार के आप प्रधानाध्यापक हैं ।

रचनाएँ - ज्ञानमाल पच्चीसी, अहार वैभव, अमर सन्देश, अहार दर्शन, प्राचीन शिल्प लेख आदि आपकी मौलिक रचनाएँ हैं । संग्रहालय की परिचयात्मक सूची, चन्द्रप्रभ चरित 4 सर्ग (हिन्दी, संस्कृत टीका), धर्मशर्माभ्युदय-6 सर्ग (हिन्दी-संस्कृत टीका) अहार का इतिहास और राङ्गा का चांदी (नाटक) आपकी रचनाएं प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं ।[107]

इन रचनाओं के अतिरिक्त आपकी एक स्फुट रचना है - अहार तीर्थ -स्तोत्र प्रस्तुत रचना में 9 श्लोक हैं । प्रथम आठ श्लोकों में अहार क्षेत्र का परिचय है तथा अन्तिम श्लोक में रचनाकार ने अपना नामोल्लेख किया है । अहार क्षेत्र के मदनेश सागर को विविध पुष्पों से और पक्षियों से विभूषित बताकर कवि ने लिखा है -

फुल्लैः सुपुष्पैर्विविधैर्विहंगैर्मह्यांप्रसिद्धो मदनेश नाम्नः ।
सरोवरा यत्र विभान्ति रम्या अहारतीर्थं तदहं नमामि ॥

अन्य श्लोकों में शान्तिनाथ प्रतिमा, उसके निर्माता तथा बानपुर के सहस्र कूट चैत्यालय का वर्णन किया गया है ।

श्री पं. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य

परिचय - विद्वत् परिषद के भूतपूर्व अध्यक्ष और विद्वानों में अग्रगण्य डा. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य का जन्म वाबरपुर ग्राम (राजाखेड़ा, धौलपुर) राजस्थान में 16 सितम्बर ईसवीं 1922 को हुआ था। आपके पिता का नाम बलवीर जी और माता जी का नाम सावित्री बाई था। आप जायसवाल थे। आपके पिता जी आपकी छः माह की उम्र में ही स्वर्ग वासी हो गये थे।

मामा के यहाँ प्राथमिक शिक्षा लेकर स्याद्वाद विद्यालय बनारस से आपने जैनधर्म शास्त्री, ज्योतिषतीर्थ, न्यायतीर्थ किया था। हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत में एम. ए. करने के बाद ई. 1961 में पी-एच.डी. और ई. 1965 में डी.लिट्. किया था। ईसवी-1937 में सुशीला देवी के साथ आपका विवाह हुआ। नलिनकुमार आपके पुत्र का नाम है। आपने आरा की सभी संस्थाओं में कार्य किया था। ई. 1939 से ई. 1974 तक लगातार 34 वर्षों तक आप शिक्षक रहे। 15 व्यक्तियों ने आपके निर्देशन में पी-एच.डी. के लिए शोध प्रबन्ध लिखे हैं।

रचानाएं - मुहूर्त्त मार्तण्ड, भारतीय ज्योतिष, आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, संस्कृत गीतकाव्यानुचिन्तनम्, और भगवान् महावीर और उनकी आचार्य परम्परा आपकी मौलिक रचनाएँ हैं।

उनके अध्ययन-अनुभव-अभ्यास की थाह पाना बड़ा मुश्किल रहा है। आपने केवल जैन धर्म की ही नहीं भारतीय धर्म और संस्कृति की भी बड़ी सेवा की है। वे सही अर्थों में सरस्वती के सफल सिद्ध वरद् पुत्र थे। दुःख है वे अधिक श्रुत - सेवा न कर सके। 10 जनवरी 1974 ईसवी को आपका अवसान हो गया।[108]

पं. कमलकुमार न्यायतीर्थ

परिचय - आप बकस्वाहा (छतरपुर) के निवासी थे। आप सहज और सरल थे। जो सोचते वही कहते और वही आचरते थे। व्याकरण, न्याय, काव्यतीर्थ, साहित्य और धर्मशास्त्री की परीक्षाएं आपने उत्तीर्ण की थी। आपकी भाषण शैली चित्ताकर्षक थी। सागर विद्यालय में व्याकरण का अध्यापन करने के पश्चात् आप कलकत्ता चले गये थे। वहाँ आप सेठ गजराज जी गङ्गवाल के घर रहते और उनके परिवार को धार्मिक शिक्षा देते थे। रात्रि में प्रतिदिन शास्त्र-प्रवचन करते थे। संस्कृत धारा प्रवाह बोलने में आप कुशल थे।[109]

रचनाएं - आपकी दो स्फुट रचनाएं हैं।[110] इनमें एक रचना में आपने अपना परिचय दिया हैं। अपनी बीस श्लोकों में रचित रचना पूज्य वर्णी जी को समर्पित करके अपने द्वारा उत्तीर्ण की गयी परीक्षाओं और आवासभूमि का उल्लेख किया है -

पूर्वं विच्छितान् विविधान्, ध्यायन् ध्यायन् तवोपकारानिह।
नमस्तेकोऽहमधुना, समर्पये वर्णिविंशतिकाम् ॥1॥
साहित्य-धर्मशास्त्री, व्याकरणन्यायकाव्यतीर्थश्च।
विद्याधनोपजीवी, नित्यं धर्मोपजीवी च ॥2॥
नाम्ना कमलकुमारः, श्रीमच्चरणारविन्दवन्दारुः।
चारुश्चरित्र - चित्रान्, श्रावं श्रावं गुणग्रामान् ॥3॥
कालिकातायां वासो, वासो भाषा त्वदीयगुणकस्य।
आज्ञां निर्मल-वृत्तेः, साक्षान्मोक्षस्य मार्गो मे ॥4॥

दूसरी रचना में बीस श्लोक हैं । इनमें वर्णीगाथा प्रस्तुत की गयी है । श्लोकों के चौथे चरण में पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी के चिरायु होने की कामना गर्भित है । वर्णी जी की भाषा के सम्बन्ध में कवि ने उद्घोषणा की है कि वर्णी जी के बोल-प्रसन्नता वर्द्धक थे, उनमें विवाद के लिए कहीं भी गुंजाइश न थी । अपवाद के समय में मौन रहते थे । उनकी बोली धन्य है । ऐसी पुण्यकारिणी बोली बोलने वाले वर्णी चिरायु हों । रचनाकार ने अपने विचार निम्न शब्दों में व्यक्त किये हैं -

यदीयभाषा परमा प्रसन्ना, विवादशून्या अपवादमौन्या ।
धन्या वदान्या वरपुण्ययुक्ता, जीयाच्चिरं वर्णिगणेश एषः ॥

प्रस्तुत उदाहरण से कवि की कल्पनाओं का , रचना-शैली का और उनके संस्कृत ज्ञान की सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है ।

पं. राजधरलाल जी व्याकरणाचार्य

आपका जन्म उत्तरप्रदेश में ललितपुर जिले केगुरसौरा (जखौरा) ग्राम में संवत् 1970 में हुआ था । श्री नन्दलालजी 'गोलावारे' आपके पिताजी थे । आपका अध्ययन क्षेत्रपाल ललितपुर स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी में हुआ । पं. शीलचन्द्र जी और पं. कैलाशचन्द्र जी आपके गुरु थे ।

दिगम्बर जैन गुरूकुल हस्तिनापुर, श्री गो. दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, मुरेना, ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, मथुरा और वीर विद्यालय पपौरा में अध्यापन के रूप में आपने अपनी सेवाएँ दीं । लगभग 40 वर्ष का समय आपका अध्यापन में ही बीता । जैन दर्शन के मर्मज्ञ तो थे ही, व्याकरण का भी आपको अच्छा ज्ञान था । मुरेना विद्यालय में आप साहित्य और व्याकरण ही पढ़ाते थे । आपकी कार्यकुशलता से प्रभावित होकर समाज ने हस्तिनापुर में आपकी प्राचार्य पद पर नियुक्ति की थी । साधु-सन्तों पर भी आपका अच्छा प्रभाव रहा। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर आचार्य शिवसागर महाराज ने अपने संघस्थ मुनियों को धार्मिक शिक्षण आप ही से दिलवाया था ।[111]

संस्कृत भाषा पर आपका अधिकार रहा है । भाषा में सरल हैं । सन्धि और समासों का प्रयोग होते हुए भी भाषा में दुरुहता नहीं है ।

आपकी 'श्री गोपालदासेतिवृत्तम्'[112] शीर्षक से प्रकाशित स्फुट रचना में गुरू गोपाल दास जी का जीवनवृत्त अङ्कित है । उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य हैं दो पद्य श्री वरैया 'जातो गुरूणां-गुरुः' हैं । मध्यप्रदेश का मुरैना शहर उनकी कर्मभूमि थी । तीस वर्ष की आयु में उन्हें आत्मबोध हो गया था.। उनकी बुद्धि सत्यं शिवं सुन्दरं थी। वे जैनधर्मी थे । कुशल थे । कवि ने इन विचारों को इस प्रकार संस्कृत पद्य में व्यक्त किया है -

मोरेनानगरी मङ्गलवता व्यापारि येनोच्छ्रितं,
त्रिंशद्वर्षमितायुषः पुनरहो भावैरजागः सुधी ।
स्वात्मन्यात्म समाध्ये कृतमतिः सत्यं शिवं सुन्दरं,
जैन धर्ममथावगाह्य कुशली जातो गुरूणां गुरुः ॥1॥

श्री वरैया जी न्यायवाचस्पति उपाधि से विभूषित थे । यह उपाधि उन्हें कलकत्ता में नैयायिकों की सभा में जैनधर्म पर दिये गये उत्तर भाषण पर प्राप्त हुई थी । कवि ने वरैया जी की इस विशेषता का निम्न-प्रकार उल्लेख किया है -

एकस्मिन् समये पुराकलकतानाम्नि प्रसिद्धे पुरे,
आसीद्धिश्रुत वाग्मिनामनुपमा नैयायिकानां सभा ।
श्रीमांस्तत्रभवान्नय मन्त्रि च ददे जैनोत्तमं भाषणं
विद्वत्तल्लजमण्डलेन पदवी सन्नयायवाचस्पतिः ॥7॥

कवि ने श्री वरैया के परिचय से संस्कृत भाषा को गौरवान्वित किया है । रचना में प्रौढ़ता है । भाषा सन्धि, समास पूर्ण होते हुए ललित पदों से युक्त हैं ।

श्री रामसकल उपाध्याय

श्री उपाध्याय जी ने भी पं. चन्दाबाई जी को अपनी श्रद्धांजलि समर्पित की है। यह रचना पन्द्रह श्लोकों में हैं ।[113] उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं दो पद्य -

आरम्भ में ब्र. चन्दाबाई द्वारा बिहार प्रान्त के आरा नगर में 'बाल विश्राम' की संस्थापना किये जाने का उल्लेख करते हुए रचनाकार ने उन्हें करूणा का सागर, धीर-बुद्धि, चन्द्र के समान निर्मल कीर्ति वाली बताया है -

प्रान्ते बिहारे रमणीयमेकम् आराभिधं पत्तनमस्ति रम्यम् ।
तस्योपकण्ठे दिशि वासवस्य बालादि विश्रामशुभं निकतम् ॥
संस्थापयामास महामहिम्नी कारूण्यरत्नाकरधीर बुद्धिः ।
चन्द्रावती चन्द्र विनिर्मला सा विशालकीत्तिर्जयतु प्रकामम् ॥

कवि ने ब्र. पं. चन्दाबाई के पाण्डित्य की सफलता का उद्घोष करते हुए लिखा है कि वे इस संसार को दुःख पूर्ण जानकर इससे पार होने के लिये परिव्राजिका हो गयी थी । कवि की दृष्टि में भारत-वसुन्धरा पर ऐसी नारियां विरली ही हुई हैं । वे नारी-रत्न थीं, इन भावों के कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है-

संसारमेनं खुल दुःखभारं, विचार्य बुद्ध्या परिव्राजिकाऽभूत्।
एवं विधं भारतभूमिभागे, नारीसुरत्नं विरलंबभूव ॥

श्री हरिनाथ द्विवेदी

आपने पं. चन्दाबाई आरा को जैसा देखा और समझा अपने भावों के अनुसार संस्कृत भाषा के माध्यम से उनका चरित्र चित्रण किया है ।[114] आपने पं. चन्दाबाई जी को सर्वशास्त्रों में पारङ्गत, अर्हता-वाणी की परम श्रद्धालु और मिथ्यात्वी उलूकों को तेजस्वी सूर्य की दीप्ति बताते हुए लिखा है -

अधीति-सर्वशास्त्रणां प्रतीति स्सर्वदार्हताम् ।
प्रचण्डभास्करी दीप्तिरूलूक कुश्रुतात्मनाम् ॥3॥

रचना के अन्तिम दसवें श्लोक में पं. चन्दाबाई जी के शतायु होने की कामना करते हुए रचनांकार ने उन्हें चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल बताकर उनके चन्दा नाम की सार्थकता प्रकट की है । कवि ने लिखा है -

सदब्रह्मचारिणी सेयं 'चन्दा' चन्द्रकरोज्ज्वला,
सूरिर्विज्ञा शतं जीयाद्विद्वभिरभिनन्दिता ॥10॥

इस प्रकार कवि ने अपनी स्फुट रचनाओं से संस्कृत भाषा की रचनाओं में समृद्धि की है । रचना में भाषा का प्रवाह है । अलंकारों का प्रयोग है । वर्णन के अनुकूल पदों का प्रयोग भी स्तुत्य है ।

स्व. पं. खूबचन्द्र शास्त्री द्वारा रचित संस्कृत रचना का अनुशीलन

'अपरिग्रह के अवतार- श्री आचार्य शांतिसागर जी महाराज'[115]

आकार - 'अपरिग्रह के अवतार - श्री आचार्य शान्तिसागर जी महाराज' रचना संस्कृत के आठ श्लोकों में निबद्ध स्फुट काव्य है ।

नामकरण - प्रस्तुत कृति में मुनिवर शान्तिसागर जी महाराज को अपरि-ग्रही अवतार निरूपित किये जाने के कारण ही 'अपरिग्रह के अवतार-श्री आचार्य शान्तिसागर जी महाराज' शीर्षक प्रयुक्त है ।

रचनाकार का उद्देश्य - आचार्य श्री के चरणों में श्रद्धाञ्जलि स्वरूप अर्पित करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर इस कृति का प्रणयन किया है ।

अनुशीलन - (आचार्य श्री) गणों के अधिपति तपस्वी, शान्ताकृति, संयमी, मङ्गलमूर्त्ति, महनीय गुणों के धारण करने वाले, आदर्शों के अनुयायी आप मेरे प्रणाम एवं श्रद्धासुमनों को सहर्ष स्वीकार कीजिए ।

इस प्रकार विशेषण युक्त विविध विनयवचनों द्वारा भावाञ्जलि अर्पित की गई है।

श्री सिद्धेश्वर वाजपेयी

शासकीय विद्यालय सिरोंज के अवकाश प्राप्त संस्कृत अध्यापक श्री वाजपेयी जी प्रस्तुत स्फुट रचना ब्र. पं. सरदार मल्ल अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित हुई हैं ।[116]

प्रस्तुत रचना में मात्र तीन ही श्लोक हैं । किन्तु उपमाओं के प्रयोगों से, यमक युक्त भाषा के व्यवहार से ये श्लोक महत्त्वपूर्ण हैं । रचनाकार ने सच्चिदानन्द शब्द यमक अलंकार में प्रयोग करते हुए ब्र. पं. सच्चिदानन्द को निजात्मा के आनन्द में आनन्दित बताकर शिव पथ का पथिक, आगम ज्ञाता और ब्रह्म ज्ञान में उन्हें महर्षि की उपमा दी है -

जयतु सच्चिदानन्द सच्चिदानन्द मूर्तिः,
शिवपथ –पथिकानां भ्रान्तिनाशो समर्थः ।
शिक्षा दीक्षा गुरुः क्षुल्लकः श्रीगणेशः ।
आगमात्मामनिष्णातः ब्रह्मज्ञाने महर्षिः ।।1।।

स्वामी जी गुणों की खान, मङ्गलों के मङ्गल, अध्यात्मवेत्ता, श्रीमन्त, दानी, त्यागी, वैरागी और त्रस्त तथा दुखियों को ऋद्धि-सिद्धि देने वाले थे । कवि ने इन गुणों का समावेश अपनी रचना में इस प्रकार किया है -

अध्यात्मवेत्ता भव्य सन्दोहं बन्धुः,
अनुपम गुण–आकर मङ्गलं मङ्गलानाम् ।
श्रीमन्तो दानी त्याग वैराग्ययुक्तः,
दुखित त्रसितजीवः ऋद्धिसिद्धिप्रदायी ।।2।।

पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी के समान स्वामी जी भी वर्णी पद से विभूषित थे, वर्णी सच्चिदानन्द स्वामी पद विभूषितः, महोजस महाज्ञानी सिद्धेश्वर त्वयंभवः ।।3।।

श्री रामनाथ पाठक 'प्रणयी'

श्री एच. डी. जैन कालेज, आरा के प्राध्यापक श्री 'प्रणयी' द्वारा प्रणीत दो स्फुट रचनाएं हैं । 'जयतु गुरु गोपालदासः' शीर्षक से प्रकाशित[117] रचना में रचनाकार ने गुरु गोपालदास

वरैया के निवास स्थान का उल्लेख करते हुए उनकी आदर्श कीर्त्ति का निम्न शब्दों में उद्घोषणा की है-

उज्ज्वला कीर्तिर्यदीया, बुध–समाजे दर्शनीया,
जन्मना जातः कृतार्थो, यस्य शुभ लक्ष्मण–निवासः ।
जयुत गुरु गोपालदासः ॥

वरैया जी की ज्ञानदान प्रवृत्ति ही नहीं वाणी भी अद्वितीय थी । उनके आगे सभी नत हो जाते थे । वे हाथी रूपी वादियों को सिंह स्वरूप थे । नयों का उनमें विलास था। इन सब विशेषताओं को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है -

अद्वितीया यस्य वाणी, को नु यं प्रति नतः प्राणी ।
वादि–गज केसरि वरैया, यस्य नयसिद्धो विलासः ।
जयतु नयसिद्धो विलासः ॥

मुरैना- श्री वरैया जी की कर्म भूमि थी । वरैया जी का योग उसे बड़े पुण्य से मिला था । जितना हो सका, उसके विकास में श्री वरैया जी संलग्न रहें । उनके दर्शन मधुर और प्रभावशाली थे । कवि की दृष्टि में उनका व्यक्तित्व महान् ही नहीं अद्भुत भी था । कवि की इस संबन्ध निम्न पङ्क्तियाँ द्रष्टव्य है -

दर्शनदृष्ट प्रभावः, यो विचित्र महानुभावः,
ये विद्वितो विविध कृत्ये पुण्य– मोरेना विकासः ।
जयतु गुरु गोपालदासः ॥

श्री 'प्रणयी' की दूसरी स्फुट रचना ''जयतु काऽपि देवी माँ चन्दा'' शीर्षक से प्रकाशित हुई है ।[118] इस रचना में रचनाकार ने माता चन्दाबाई आरा की जीवन झांकी प्रस्तुत की है। उन्होंनें चन्दाबाई के कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके कारुणिक स्वभाव का उल्लेख किया है तथा उनके स्नेह को अकाम स्नेह बताया है -

कोटि जैन–बाला विश्रामः, यस्याः स्नेहो नित्यमकामः,
या स्वकीय निः सीम–कारूण्या, सिञ्चति निखिल जनान् स्वच्छन्दा ॥
जयतु काऽपि देवी माँ 'चन्दा'

माता जी के स्वभाव का उल्लेख करते हुए रचनाकार ने उन्हें न्यायप्रेमी बताकर सम्पूर्ण कलाओं में बिजली के समान अमन्द प्रगति करने वाली तथा अन्याय सहन न करने वाली होने का निम्न पङ्क्तियों में भली प्रकार उल्लेख किया है -

लोकशास्त्रयोर्दधती न्यायम्, या क्षणमपि सहते नाऽन्यायम्,
सकल कलस्वमलासु यदीया, भवति विद्युदिव प्रगतिरमन्दा ।
जयतु काऽपि देवी माँ 'चन्दा' ॥

माता जी इस जगत् को तृण के समान तुच्छ-निस्सार मानती थीं । उन्हें लाभ होने पर हर्ष और हानि होने पर विषाद नहीं होता था । वे ज्ञान की भंडार होने से सभी के लिये सानन्द हाथ जोड़कर नम्य थीं । रचनाकार के इन भावों की निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्ति हुई है -

तृणमिव या मनुते जगदेतत्,
तस्यै चेदलभ्यं किं रे तत्,
ज्ञानमयी सर्वैर्नमस्यताम्–

साञ्जलिभिः सा परमानन्दा ।
जयतु काऽपि देवी माँ – 'चन्दा' ॥

डॉ. दामोदर शास्त्री

डॉ. शास्त्री जी का जन्म ईसवी 1942 में राजस्थान के चिरावा, झुंझनु में विख्यात एक संस्कृत सेवी परिवार में हुआ था । वैशाली के प्राकृत व जैन विद्या शोध संस्थान बिहार विश्वविद्यालय से प्राकृत व जैनालाजी में प्रथम श्रेणी में एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् संस्कृत विश्वविद्यालय से आपने व्याकरणाचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व में एम.ए. और भागलपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. किया था। आप जैन दर्शन में वाचस्पति उपाधि से अलंकृत भी हुए। वर्तमान में आप लालबहादुर संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली के जैनदर्शन विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं ।[119]

जैनदर्शन के अध्ययन-अध्यापन का आपके जीवन पर गहरा प्रभाव है । जैन साधुओं से आपके मधुर सम्बन्ध हैं । संघ ही नहीं उनके प्रति श्रद्धाभाव भी यथेष्ट है । यही कारण है कि समय-समय पर प्रकाशित हुए साधु-साध्वियों के अभिनन्दन ग्रन्थों में आपकी स्फुट रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। इन रचनाओं में दो रचनाएँ मुख्य हैं - आचार्य श्री धर्मसागर महाराज का जीवन परिचय और आर्यिका रत्नमती प्रशस्ति ।

आचार्य धर्मसागर महाराज के प्रति व्यक्त किये गये शास्त्री जी के उद्‌गार 'नं नम्यते मुनिवरप्रमुखाय तस्मै' शीर्षक से संस्कृत पद्यों में आचार्य श्री धर्मसागर अभिनन्दन ग्रन्थ के पृष्ठ 223-224 में प्रकाशित हुए हैं। शास्त्री जी की यह अल्पकाय, रचना मात्र पन्द्रह श्लोकों में निबद्ध हैं । आचार्य का परिचय इसका विषय है । इसमें मात्र विषय का ही प्रतिपादन किये जाने से इसे स्फुट रचना माना गया है ।

प्रस्तुत रचना के प्रथम दो श्लोकों में शार्दूलविक्रीडित, तीसरे श्लोक में स्रग्धरा, चौथे से चौदहवें श्लोक तक वसन्ततिलका और अन्तिम पन्द्रहवें श्लोक में उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है । रचना के आदि में कवि ने शास्त्रों के अध्ययन, श्रवण और मनन से पवित्र हुई मति, आध्यात्मिक साधना से उत्पन्न चारित्रिक उज्ज्वलता, और कर्म क्षय हेतु उग्रतम रूप प्रयत्न- इन तीन हेतुओं से आचार्य धर्मसागर के पूज्य होने की उद्‌घोषणा की है तथा श्रद्धा पूर्वक उन्हें नमन किया है । कवि की पङ्क्तियाँ निम्न प्रकार है -

सच्छास्त्राध्ययनाच्छुतार्थमननाद् यस्यावदाता मतिः,
यस्याध्यात्मिकसाधनाभुवि सदा चारित्रमत्युज्जवलम् ।
तं विद्वत्प्रवरं निजोग्रतपसा कर्मक्षयायोद्यतं,
पूज्यं श्रीयुत धर्मसागर जिनाचार्यं नुमः श्रद्धया ॥

कवि ने इस रचना के शीर्षक में दी गयी पङ्क्ति का चौदहवें श्लोक में प्रयोग किया है । तथा आचार्य श्री को - धार्मिक शिथिलाचार का विरोधी, सम्यग्क् ज्ञान, दान और शुभ कार्यों में प्रवृत्त तथा आर्ष-परम्परा का पोषक बताकर और श्रेष्ठ मुनि के रूप में उन्हें रचना के अन्त में भी नमस्कार किया है -

यस्यास्ति धर्मेशिथिलाचरणे विरोधः, सज्ज्ञानदानशुभकर्मणि यत्प्रवृत्तिः ।
यः पोषका भरति चार्षपरम्परायाः, नं नम्यते मुनिवर प्रमुखाय तस्मै ॥

रचना के मध्य में आचार्य श्री के जन्मस्थान, माता-पिता, दीक्षा एवं उनके सङ्घ की साधु-संख्या का उल्लेख किया है । रचना के अन्त में आचार्य श्री के व्यक्तित्व की झाँकी प्रस्तुत करते हुए कवि ने उन्हें लोकेषणाओं से निस्पृही, सद्धर्म सिद्धान्त समूह की मूर्त्ति और शुद्धात्मा-प्राप्ति का उद्यमी कहा है तथा उनके दीर्घायुष्य की निम्न शब्दों में कामना की है-

लोकैषणा– निस्पृहतां दधानः, सद्धर्म सिद्धान्त समूहमूर्त्तिः ।
शुद्धात्मसम्प्राप्तिकृतश्रमोऽयं, जीयात् जिनाचार्यवरश्चिराय ॥

डा. दामोदर शास्त्री की दूसरी स्फुट रचना पूज्या आर्यिका रत्नमती प्रशस्ति है, जो 'पूज्यार्यिकां रत्नमतीं नमामि' शीर्षक से प्रकाशित हैं ।[120]

प्रस्तुत प्रशस्ति में श्री शास्त्री जी द्वारा रचित 41 श्लोक हैं । ये श्लोक विभन्न-9 संस्कृत छन्दों में निर्मित हुए हैं । सर्वाधिक प्रयोग उपजाति छन्द का हुआ है । द्रष्टव्य है- 3, 10, 11, 15, 16, 17, 18, 27, 29, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 40 और 41 कुल 17 श्लोक । वसंततिलका और इन्द्रवज्रा छन्दों में छह-छह श्लोक रचे गये हैं । जिन श्लोकों में वसन्ततिलका प्रयुक्त हुआ है वे श्लोक हैं - 6, 7, 8, 9, 19 और 21 तथा इन्द्रवज्रा छन्द से निर्मित छह श्लोक हैं - 12, 22, 23, 37, 38 और 39 मन्दाक्रान्ता- 13, 20, 24, 25, इन चार श्लोकों में द्रष्टव्य हैं । शार्दूलविक्रीडित 5 और 14 वें श्लोक में तथा वंशस्थ 28 और 30 वें श्लोक में व्यवहृत हैं । अनुष्टुप छन्द भी प्रथम और द्वितीय इन दो श्लोकों में ही प्राप्त हैं। चतुर्थ और छब्बीसवें श्लोक में क्रमशः भुजङ्गप्रयात और उपेन्द्रवज्रा छन्द प्रयुक्त हुए हैं ।

आर्यिका रत्नमती का गृहस्थावस्था का नाम मोहिनी था । बाराबंकी जनपद में टिकैतनगर के सेठ छोटेलाल उनके पति थे । कवि ने आर्यिका, रत्नमती के गार्हस्थिक जीवन की आवासभूमि टिकैतनगर को धार्मिक ग्रहस्थों की आवासभूमि बताकर नगर का प्रसङ्गानुकूल समीचीन वर्णन किया है -

वारावंकी – जनपदे टिकैतनगराह्वः,
सद्धार्मिकाणामावासः ग्रामो भुवि विराजते ॥

भारतीय नारी के आदर्श जीवन चरित्र का कवि ने आर्यिका माता के जीवन चरित्र के रूप में उल्लेख किया है । उन्होंने श्रीमती मोहिनी के जीवन चरित की संक्षिप्त झाँकी प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि वे जैनशासन की अनुगामिनी थी । जैनशासन के अनुसार ही गार्हस्थ धर्म का निर्वाह करती थी । आर्यिका ''ज्ञानमती'' उनकी ही प्रथम कन्या हैं, जिनका पूर्व नाम ''मैना'' था -

गृहस्थधर्मं जिनशासनोक्तं, सा ''मोहिनी'' सन्ततमाचरन्ती ।
मैनेतिनाम्नी सुभगां सुकन्यां, प्रसूतवत्याभिजनप्रशस्ताम् ॥

मैना का जन्म शरद् पूर्णिमा के दिन हुआ था । वे शरच्चन्द्रिका के समान वर्द्धमाना हुई । बाल्यावस्था से ही उनके मन में आत्मकल्याण की भावना रहीं । इसी का परिणाम है कि वैराग्य भाव से युक्त होकर वे आर्यिका हुई । कवि ने उनके जन्म और बाल्यकाल के स्वाभाविक विचारों को निम्न प्रकार दर्शाया है -

शरत्पूर्णिमायां प्रजाता वरेण्या, शरच्चन्द्रिकावच्छ्रिया वर्द्धमाना ।
स्वबाल्यादियं स्वात्मकल्याणकामा, प्रशस्तान् बिभर्ति स्म वैराग्यभावान् ॥

माता-पिता की आध्यामिक भावनाओं और उनके धार्मिक आचरण पर संतर्ति पर मूक प्रभाव पड़ता है। कवि ने ज्ञानमती आर्यिका के व्रताचरण में मूल रूप से उनकी माता आर्यिका रत्नमती का प्रभाव बताया है।

सत्संयमज्ञान विशुद्धिरस्याः, लोके प्रसिद्धा ऽ भवदार्यिकायाः।
स्वमातृ – संस्कार–शुभप्रभावः, तत्रास्ति मूलं न हि संशयोऽत्र॥

सद् गृहस्था अपनी गृहिणी को गृह में नहीं फँसाये रहना चाहता। वह सदैव गृहिणी को धार्मिक आचरणवान्, जनहितकारी और मोह विहीन होने का उपदेश देता है। रचनाकार ने आर्यिका रत्नमती के गृहस्थावस्था के पति सेठ छोटेलाल को ऐसा ही आदर्श गृहस्थ निरूपित किया है तथा गृहस्थावस्था में पति आज्ञानुसार धार्मिक-आचरण में लीन नारी का आदर्श स्वरूप निम्न प्रकार प्रस्ततु किया है -

मृत्योः पूर्वं गृहपतिरिमां मोहिनीमुक्तवान् यद्,
धर्मान्नित्यं जनहितकराद्, मोहतो वारिताऽसि।
धर्मध्याने भवसि शुभगे साम्प्रतं त्वं स्वतन्त्रा,
धृत्वोक्ताज्ञां निजगृहपतिं नित्यमेवाचरत्सा॥

दृढ़ इच्छा-शक्ति आगत बाधाओं में भी अडिग रहती है। आर्यिका रत्नमती को परिजनों ने उनके व्रत लेने में बाधाएं उपस्थित कीं किन्तु उनके दृढ़ निश्चय के आगे वे परास्त हो गये। कवि ने इस सिद्धान्त का उल्लेख इस प्रसंग में इस प्रकार किया है -

आचार्यवर्योऽपि परीक्ष्य सम्यक्, स्वाज्ञा प्रदानेन समन्वग्रहणात्।
मनोबले यस्य दृढत्वमस्ति, स्वकार्यसिद्धो सफलः स नूनम्॥

मोहनी के दृढ़ निश्चय को देखकर परीक्षा करके आचार्य धर्मसागर महाराज ने आर्यिका के अनुरूप आगमोक्त व्रत धारण कराये और उनका नाम रत्नमती यह सार्थक नाम रखा था -

आचार्यवर्येण शुभे मुहूर्ते दीक्षा प्रदत्ता ऽऽ गमसम्मताऽस्यै।
दत्वार्यिकायोग्यपदं तदानीम्, समर्थिता रत्नमतीति संज्ञा॥

सम्वत् तिथि आदि का उल्लेख करने में आर्यिका रत्नमती के दीक्षा सम्वत् को शब्दों में व्यक्त किया गया है। ऐसे सम्वत् बायीं ओर से दायीं ओर पढ़े जाते हैं। कवि की यह लेखन शैली इस प्रकार द्रष्टव्य है -

अष्टद्विशून्य द्विमितः शुभंयुः, पुण्योत्सवे तत्र च विक्रमाब्दः।
मासस्तदाऽसीत् शुभमार्गशीर्षः, कृष्णश्च पक्षः सुतिथिस्तृतीया॥

इस श्लोक में आर्यिका रत्नमती की दीक्षा तिथि विक्रम संवत् 2028 मगशिर वदी तीज बतायी गयी है। कवि ने उपमाओं का भी यथास्थान प्रयोग किया है। आर्यिका ज्ञानमती के सङ्घ में स्थित आर्यिका रत्नमती को कल्पवृक्ष की छाया के समान बताकर उन्हें सेवनीय निरूपित किया है-

पूज्यार्यिका ज्ञानमतीः सङ्घे रत्नत्रयाराधनतत्परास्ति।
सङ्घस्थितानां खलु कल्पवृक्षच्छायेव सा सम्प्रति सेवनीया॥

अन्त में कवि ने पृथिवी को अलङ्कृत करने वाले अनेक रत्नों को जन्म देने से आर्यिका रत्नमती का सार्थक नाम बताकर उन्हें नमन किया है -

अनेकरत्नैरतिदीप्तिमद्भिः, यया प्रसूतैः समलङ्कृतोर्वी ।
अन्वर्थसंज्ञामनवद्यकीर्तिम्, तामार्यिकां रत्नमतीं नमामि ॥

पं. अमृतलाल शास्त्री

आपका जन्म उत्तरप्रदेश के झाँसी जिले में वमराना नामक ग्राम में सात जुलाई, 1919 को हुआ था । श्री बुद्धसेन जी आपके पिता और सोनादेवी माता थीं । बचपन में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो जाने से वमराने के सेठ चन्द्रभान जी ने आपको पढ़ाया था । साढूमल, बरूआसागर, ललितपुर, मुरेना और बनारस में आपने शिक्षा प्राप्त की। जैन दर्शनाचार्य, साहित्याचार्य, और एम.ए. परीक्षाएँ आपने बनारस में ही उत्तीर्ण की थी। ईसवी 1944 से ईसवी 1958 तक आप स्याद्वाद महाविद्यालय में अध्यापक तथा इसके बाद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में व्याख्याता रहे । आपने द्रव्यसङ्ग्रह, चन्द्रप्रभचरितम्, तत्त्वसंसिद्धि ग्रन्थों का अनुवाद किया ।[121] बनारस के पश्चात् आपने अपनी सेवाएँ विश्वभारती लाडनूँ को दीं । वर्तमान में आप लाडनूं में हैं ।

संस्कृत भाषा पर आपका अधिकार है । आपकी मौलिक स्फुट रचनाओं में भाषा का प्रवाह है । उपमाओं का प्रयोग है । 'वर्णी-सूर्यः' शीर्षक से प्रकाशित रचना[122] में आपने अशिक्षा को राक्षसी और रूढ़ियों को पिशाचिनी की उपमा दी है तथा उन्हें शीघ्र द्रवित करने के लिये वर्णी जी को सूर्य रूप माना है । द्रष्टव्य है निम्न श्लोक-

अशिक्षाराक्षसी श्लिष्टां हृष्टां रूढिपिशाचिनीम् ।
द्रुतं यो द्रावयामास वर्णिसूर्यः स वन्द्यते ॥

प्रस्तुत रचना में साहित्यिक विद्या ही नहीं अपितु इतिहास भी गर्भित हैं । वर्णी जी के समय जैन समाज में अज्ञान अन्धकार छाया था । रूढ़ियों का प्रचलन था, उन्मार्ग में लोग गमनशील थे । वर्णीरूप सूर्य के उदय होते ही इन सभी बुराइयाँ का अवशेष नहीं रहा। शास्त्री वर्णी जी के उदय को सूर्योदय कहने में सार्थकता सिद्ध हुई -

अज्ञान-निविऽध्वान्ते रूढिगर्तेऽतिभीषणे ।
उन्मार्गे पततां दिष्ट्या वर्णि सूर्योदयाऽभवत् ॥

वर्णी जी का माहात्म्य प्रकट करने में भी कवि को आशातीत सफलता मिली है । उनकी वर्णन शैली में स्वाभाविकता परिलक्षित होती है । वर्णी जी के दिवङ्गत होने पर श्रावक-श्राविका छात्र तथा अन्य जनों को उनके विरह का ऐसा दुःख हुआ था, जैसा चकवा पक्षी को वियोग का दुःख होता है -

तस्मिन्नदृश्यतां याते चक्रवाकाइवार्दिता ।
श्रावका-श्राविका विज्ञाश्छात्राश्चान्येऽपि मानवाः ॥

पूज्य वर्णी के प्रभाव को प्रभावरयुक्त पदावली में अङ्कित करते हुए आज भी विद्यमान बताया गया है । समाज में जो आज ज्ञानदीप, अज्ञान-अंधकार का नाश कर रहे हैं, यह उनकी देन हैं । रचनाकार ने स्वयं लिखा है-

तदभावेऽपि तत्तेजः समाश्रित्य तमश्छिदः ।
ज्ञानदीपाः प्रकाशन्ते समाजे बहुसंख्यकाः ॥

पूज्य वर्णी जी छात्रों के लिये कल्पवृक्ष, विद्वानों के लिये कामधेनु और संस्थाओं के लिये चिन्तामणि स्वरूप थे । कवि के इस कथन में न केवल श्रद्धा-भक्ति ही है, अपितु यथार्थता का उद्घोष भी है । पूज्य वर्णी जी को नमन करते हुए कवि ने लिखा है -

छात्राणां कल्पवृक्षाय, बुधानां कामधेनवे ।
संस्थानां च सदा चिन्ता–मणये वर्णिने नमः ॥

रचनाकार की दूसरी स्फुट रचना 'गोपालदासो गुरुरेक एव' शीर्षक से प्रकाशित है ।[123] प्रस्तुत रचना में गुरू गोपालदास वरैया को 'गुरूणां गुरुः' कहकर उपास्य निरूपित करते हुए रचनाकार ने लिखा है कि वरैया जी एक अच्छे कुल में जन्म हुआ था । अपने कृतित्व से उन्हें यथेष्ट सम्मान मिला । उनके चरणारविन्द पूज्य हुए । कवि ने उन्हें सभी विद्वानों का उपास्य बताया है –

श्रीमद्वरैया वरवंश जन्म, सन्मान्य मान्यार्चित पादपद्मः ।
गोपालदासः स गुरुर्गुरूणा–मुपासनीयो विदुषां न केषाम् ॥

वरैया जी की विशेषताओं का उल्लेख करने में कवि की लेखनी सफल हुई है। कवि ने उनकी दानकर्म प्रवृत्ति का निर्देश करने के पश्चात् उन्हें छात्रों के पुत्र के समान स्नेह देने वाला बताया गया है, वे रूढ़ियों के उन्मूलक थे और सामाजिक सुखों के अभिलाषी भी –

दानादिसत्कर्मरतः स्वतो यः, शिष्यान् स्वपुत्रानिव रक्षति स्म ।
सोऽशेषलोकान् सुखिनो विधातुं, विच्छेद रूढ़ी र्विषवल्लरीस्ताः॥

इस प्रकार गुरुओं के प्रति श्रद्धा–भाव, संस्कृत भाषा का स्नेह रचनाकार की इन विशेषताओं का एक ओर यहाँ उल्लेख है, दूसरी ओर रचनाकार की भाषा–ज्ञान की गम्भीरता का भी सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । प्रस्तुत रचना में 'गागर में सागर' भरे जाने की कहावत चरितार्थ होती है । आपकी संस्कृत – सेवाए स्तुत्य हैं। रचनाएं अल्पकाय होकर भी गाम्भीर्य की प्रतीक हं ।

आपकी तीसरी स्फुट रचना 'श्रद्धाप्रसूनाञ्जलि' शीर्षक से प्रकाशित हुई हैं । इसमें भाषा का प्रवाह, विषयानुकूल पदावलि के प्रयोग द्रष्टव्य है । आचार्य महावीर कीर्त्ति की विशेषताओं के सन्दर्भ में कवि ने अपने विचार व्यक्त करते हुए बताया है कि आचार्य श्री विमलगुण रूपी मणियों की माला से अलङ्कृत थे । मुनियों में प्रमुख थे । गुणियों में महान गुणी थे । उनकी आज सभी याद करते हैं । कवि ने इन विचारों को निम्न प्रकार श्लोकबद्ध किया है –

विमलगुणमणीनां मालयालङ्कृतो यः,
सदसि मुनिजनानामग्रगण्यो बभूव ।
गुणिगण गणनीयं श्रीमहावीर कीर्त्ति,
अधिगतसुरलोकं के न तं संस्मरन्ति ॥

कवि की वर्णन शैली सराहनीय है । आचार्य श्री को उन्होंने उन रत्नों का आश्रयी बताया है जो अनेक शास्त्र रूपी समुद्र–मन्थन से उन्हें प्राप्त हुए थे । वे पवित्र, आचार–विचार के आगार थे । मधु–मक्खियों के उपसर्ग जनित दुःख की असह्य पीड़ा उन्होंने सहन की थी । कवि ने अपने इन विचारों को इस प्रकार प्रकट किया है –

नानाशास्त्र–समुद्रमन्थनभवत्, सद्बोधरत्नाश्रयः,
शौचाचार–विचार–चारुचरितः श्रद्धापवित्रालयः,
संसेहे मधुमक्षिकादिजनिताः पीड़ा असह्याश्च स,
तस्मै श्री गुरवेऽर्प्यतेऽत्र भवते, श्रद्धाञ्जलिः प्रश्रयात् ॥

प्रस्तुत रचनाकार की चौथी स्फुट रचना आठ श्लोक मय है । इसका विषय है- ब्र. पण्डित - चन्दाबाई के प्रति श्रद्धाञ्जलि ।[124]

प्रस्तुत रचना में ब्र. चन्दाबाई जी का संक्षिप्त परिचय दर्शाते हुए कवि ने उन्हें बाला विश्राम आरा की संस्थापिका तथा महिलादर्श की सम्पादिका के रूप में नारी- शिरोमणि माना है । वे विदुषी थीं । कवि ने बाई जी की इन विशेषताओं का निम्न प्रकार उल्लेख किया है -

प्रान्ते यस्मिन्नभूद्वीर आरा पूस्तत्र राजते ।
बालाविश्रामतो यस्या नाम को नावगच्छति ॥
संस्थाया जननी चन्दाबाई नारी–शिरोमणिः ।
विदुषी महिलादर्श–पत्रसम्पादिका तथा ॥

अन्त में कवि ने बाई जी के दीर्घायुष्य की कामना करते हुए लिखा है कि जब तक आकाश में सूर्य-चन्द्र सुशोभित हो रहे हैं तब तक भारत वर्ष में चन्दाबाई जी विभूषित रहें। कवि ने लिखा है-

यावद् वानि नभस्वान् भाति विवस्वान् विभासते हिमगुः ।
तावच्चन्दाबाई भारतवर्षं विभूषयतु ॥

ब्रं. पं. सच्चिदानन्द वर्णी

आपका पूरा नाम ब्र. पण्डित सरदारमल जैन, 'सच्चिदानन्द' था । आपका जन्म सम्वत् 195 में ज्येष्ठा शुक्ला चतुर्दशी शनिवार के दिन हुआ था । विदिशा आपकी जन्मभूमि है। श्रीमन हुकुमचन्द्र जी 'वैद्यरत्न' आपके पिता और श्रीमती मूगाबाई माता थी । क्षुल्लक नमिसागर महाराज से आपने पाक्षिक श्रावक के व्रत सम्वत् 1983 में ले लिये थे । संवत् 2010 में क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी जी से आपने व्रत प्रतिमाह और सम्वत् 2013 में ब्रह्मचर्य प्रतिमा ली थी ।

अनेक ग्रन्थों का आपने अनुवाद किया है । अनेक लेख लिखे हैं ।[125] संस्कृत भाषा में लिखने की भी आपकी रुचि थी । द्रष्टव्य है आपका 'शुद्धात्मा स्तवन' इस रचना में नौ श्लोक हैं ।[126] प्रत्येक श्लोक के तृतीय चरण में आपने सच्चिदानन्द नाम से अर्हन्त भगवान की स्तना की है । आपने सच्चिदानन्द का अर्थ सत् = शक्ति, चित् = ज्ञन, दर्शन, आनन्द= सुख रूप अनन्तचतुष्टय किया है । उन्होंने सच्चिदानन्द को शिवरूप, ज्ञानानंद और सहजानन्द का आगार बताया है -

शिवरूपं सहजानन्द ज्ञानानन्द – निकेतनम् ।
वन्देऽहं सच्चिदानन्द सत् चित् आनन्द – दायकम् ॥

इस अर्थ की उनके ही एक श्लोक में अभिव्यक्ति हुई है । उन्होंने सच्चिदानन्द को अमल, विमल, निरामय, और मुक्त्यानन्द तथा अनन्त सुख का प्रदायी बताया है। उन्होंने लिखा है -

अमलं विमलं रूपं मुक्त्यानन्द निरामयम् ।
वन्देऽहं सच्चिदानन्दा ममलसौख्य प्रदायकम् ॥

पं. श्री गोपीलाल 'अमर'

आपका जन्म सागर जिले की बण्डा तहसील के पड़वार ग्राम में आज से लगभग पचपन वर्ष पहले एक सवाई सिंघई गोलापूर्व परिवार में हुआ था । श्री रामलाल जी आपके

पिता थे । वे पड़वार छोड़कर सागर में रहने लगे थे । आपरके छोटे भाई प्रकाशचन्द्र जी हैं । आपने जैनदर्शनाचार्य, धर्मशास्त्री, साहित्यशास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न आदि शैक्षणिक उपाधियाँ प्राप्त की हैं । प्राचीन भारतीय इतिहास विषय में एम.ए. करने के पश्चात् आप पुरातत्त्व की शोध-खोज में संलग्न हैं । भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली में शोध अधिकारी हैं । आपकी संपूर्ण शिक्षा श्री गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय, सागर में हुई । आपकी दो रचनाएं प्रमेयरत्नमाला और प्रमेयरत्नालंकार प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं ।

आपका हिन्दी, अङ्ग्रेजी और संस्कृत पर समान अधिकार है । पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी जी के प्रति रची गयी 'गणेशाष्टक' रचना आपकी प्रसिद्ध है ।[127] इस रचना में शिखरिणी छन्द में आठ श्लोक हैं । प्रत्येक श्लोक की चतुर्थ पङ्क्ति समान हैं । पूज्य वर्णी जी का जीवन चरित इस रचना का विषय है । वर्णी जी की वाणी मनुष्यों के मन को शक्ति प्रदायनी थी, अहितकर और हितकर दोनों में वर्णी जी के समान भाव थे । स्वर्ण, काँच, मिट्टी, भवन सभी उन्हें समान थे । इस स्थित का कवि ने इस प्रकार उल्लेख किया है-

यदीया वाग्धारा सुमनुजमनः शीतलकरा,
सभा भाव यस्याप्रहिकरजने वा हितकरे ।
सुवर्णे काचे वा मूतजन छटे वा सुभवने,
गणेशो वर्णी मे शत शत गणेशो विजयताम् ॥

यह श्लोक उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । सम्पूर्ण रचना इसी प्रकार सरल पदावली से युक्त हैं ।

पं. नेमिचन्द्र जैन

श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, खुरई के प्राचार्य डा. नेमिचन्द्र जैन का जन्म सागर जिले के बलेह ग्राम में हुआ । आपकी शिक्षा श्री गणेश जैन विद्यालय, सागर और स्नातकोत्तर शिक्षा आरा (बिहार) में हुई । आरा के देव कुमार शोध संस्थान में कार्य करने के उपरान्त वे विगत अनेक वर्षों से खुरई में प्राचार्य हैं । संस्कृत और हिन्दी भाषा में उनकी समान गति है । संस्कृत में आपकी अनेक स्फुट रचनाएं उपलब्ध हैं । किन्तु इस प्रबन्ध में कन्नड़ भाषा से संस्कृत में अनूदित 'कषाय जय भावना' रचना को विश्लेषण के लिये स्वीकार किया है ।

श्री 108 मुनि कनक कीर्ति जी द्वारा रचित कन्नड़ भाषा की रचना 'कषाय जय भावना'

'कषाय जय भावना'

आकार – 'कषाय जय भावना' संस्कृत के इकतालीस श्लोकों में से निबद्ध अनूदित रचना है । मूल रचना कन्नड़ भाषा है ।

नामकरण – कषायों को त्यागने की प्रेरणा के कारण प्रस्तुत कृति का नाम 'कषाय जय भावना' है ।

रचनाकार का उद्देश्य – प्रस्तुत रचना के अन्तिम पद्य के अनुसार 'भव्य जीवों के चित्त की शुद्धि के लिए 'कषाय जय भावना' प्रणयन किया गया है ।

अनुशीलन - मानव वृत्ति में व्याप्त कषाय उसकी भवबन्धन से मुक्ति के लिए अवरोधक हैं । कषाय दुःख के मूल कारण हैं । इनमें क्रोध, मान, माया एवं लोभ प्रधान कषाय हैं। जिनके कारण मनुष्य पथ भ्रष्ट हो जाता है।

क्रोध - क्रोध के वशीभूत होकर समान सुख, शान्ति एवं आत्मीय सम्बन्धों को दूष्ट करता है क्रोधी व्यक्ति दुष्टवत् व्यवहार करने लगता है। क्रोधाग्नि में जलते रहने के कारण उसकी चेष्टाएं शराबी व्यक्ति के समान हो जाती हैं । उसका खान, पान, निद्रा आदि क्रियाएँ अव्यवस्थित होती हैं । भाव यह है कि क्रोध अनर्थ की जड़ है।

मान - मान मनुष्य के मन में अहंकार उत्पन्न करने वाला कषाय है । मानी व्यक्ति अपनी जाति, कुल, रूप, शरीर, बुद्धि धन को श्रेष्ठ मानता है । और दूसरों को तुच्छ समझता है । देव, गुरु और सज्जनों की उपेक्षा करता है । वह मदज्वर से पीड़ित रहने के कारण सुख, शान्ति, कीर्ति, विद्या, मित्रता, सम्पत्ति, प्रभुता, मनोवाञ्छित सिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाता है । दास, मित्र और आत्मीय जन उससे असनतुिष्ट होकर साथ छोड़ देते हैं -

न मानिनः केऽपि भवन्ति दासाः, न मित्रतां याति हि कश्चिदेव,
निजोऽपि शत्रुत्वमुपैति तस्य, किंवाथ मानो न करोति नृणाम् ।।[129]

माया - ''माया'' मनुष्य को सर्वाधिक कष्टदायक कषाय हैं । सिंहनी, शरभी, राक्षसी, अग्नि, शाकिनी, डाकिनी, हथियार एवं ब्रज से भी अधिक घातक माया मनुष्य का पतन करती है । माया व्यक्ति मधुर वचन बोलता है, परन्तु कार्य उल्टे ही करता है । माया के कारण सच्चरित्र, सुशील, मृदु, बुद्धिमान व्यक्ति भी लघुता और अपमान को प्राप्त होता है। देवता, सज्जन और राजा की सेवा में संलग्न होने पर भी मायावी की कार्य सिद्धि नहीं हो पाती । वह आत्मीय जनों के लिये अविश्वसनीय हो जाता है । वास्तव में माया, धर्म, यश, अर्थ और काम की बाधक और दुःखों की जननी है।

लोभ - ''लोभ'' तृष्णातुर करने वाला कषाय है . लोभी व्यक्ति धनप्राप्ति की आशा से धरती, पर्वत, समुद्र एवं सभी दिशाओं में भटकता रहता है । शीतोष्ण, वर्षादि व्यवधानों की अपेक्षा करके धन संचय का प्रयत्न करता है । क्षुधा, पिपासा, को सहना है । पूजन, दान एवं उपदेशों के प्रति अनास्था रखता है । धर्म, कर्म का अनादर करके धर्नाजन के लियै सदैव श्रमरत रहता है ।

इस प्रकार उक्त कषायों का त्याग करना ही मनुष्य के लिये श्रेयस्कर है ।

''पं. महेन्द्रकुमार शास्त्री ''महेश''

महेश जी का जन्म आसोज कृष्णा द्वादशी विक्रम सम्वत् 1975 में हुआ था । श्री चुन्नीलाल जी आपके पिता और नत्थीबाई माता थी । आपके दो भाई और बहिनें हैं। आपकी पत्नी लक्ष्मीदेवी नाम सार्थक कर रही है ।

दिगम्बर जैन बोर्डिंग ऋषभदेव में आप प्रधानाध्यापक रहे हैं । महासभा और जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा के आप महोपदेशक भी रहे । आर्यिका परिचय, अर्चना और त्रिलोकसार आपकी रचनाएँ हैं । आप सफल प्रतिष्ठाचार्य हैं । सम्प्रति आप मेरठ में रहते हैं ।[130]

आपकी एक स्फुट रचना प्रकाशित हुई है ।[131] इसमें केवल पाँच श्लोक हैं । इन श्लोकों में आचार्य शिवसागर महाराज के मरण पर कवि के दुःखों की अभिव्यक्ति हुई है । कवि

ने आचार्य श्री को रत्नत्रय से विभूषित बताकर मुनियों में श्रेष्ठमुनि माना है । दुःख प्रकट करते हुए कवि ने लिखा है -

हा ! सूरिवर्य शिवसागर कुत्र यातो,
भक्तान् विहाय जनवृन्दगणान् सुभव्यान् ।
रत्नत्रयेण निखिलेन विभूषिताङ्ग
आसीत्त्वमेव मुनिराज गणे प्रमुख्यः ॥

इस रचना में उपमाओं के प्रयोग और कवि की कल्पनाएँ भी द्रष्टव्य है । उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है एक पद्य । इसमें कवि ने आचार्य शिवसागर जी के ज्ञान-ध्यान में मग्न, गुणों की निधि, दिव्य तेजवाला, मुनीन्द्र बताकर जैन रूपी आकाश का सूर्य निरूपित किया है । ज्ञान का सागर बताया है । कवि को नहीं किसी को भी यह बोध नहीं था कि महाराज श्री इतने शीघ्र समाधिस्थ हो जावेंगे । कवि के इन भावों की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है -

ज्ञानेध्याने निमग्नः सकलगुणनिधिर्दिव्यतेजो मुनीन्द्रो,
जैनाकाशैकभानुर्निखिल नरनुतो ज्ञानसिन्धुः पवित्रः ।
रे रे ज्ञानं न पूर्वं न विदितमेतत् क्वापि केनापि लोके,
सर्वान् भक्तान् विहाय त्वमिह लघुतरं यास्यसि स्वर्गलोकम् ॥

"श्री पञ्चराम जैन"

श्री पञ्चराम जी की एक स्फुट रचना "गुरोश्चरणयोः श्रद्धाञ्जलि" शीर्षक से प्रकाशित हुई है ।[132] इसमें केवल तीन पद्य हैं । प्रथम पद्य में कवि ने उसके दिवंगत होने पर दुःख प्रकट किया है तथा आचार्य श्री के गुणस्मरण को संसारी जीवों को पवित्र करने वाला बताया है । पद्य है -

गुरो ! त्वमस्मान् परतो विहाय, दिवङ्गतः स्यामहमत्तदुःखी ।
तथापि युष्माद् गुणरत्नराशिः, पुनातु नित्यं भववर्तिजीवान् ॥

दूसरे पद्य में आचार्य श्री को धर्मोपदेश रूपी धर्म वर्षा करके जीवों को सम्बोधित करने वाला तथा विविध गुणों से उज्ज्वल जीवन वाला बताकर उनके स्वर्गवास को देवों को सम्बोधित करने वाला निरूपित किया है । कवि की कल्पनाओं का प्रस्तुत पद्य सुन्दर उदाहरण है -

आचार्य वर्य शिवसागरमत्र वन्दे, गुण्यैः गुणैरतिसमुज्ज्वल जीववन्तम् ।
धर्मोपदेशवृषवृष्टि वशात् प्रबोध्य, स्वर्गङ्गतेऽमरतितिं सहसात प्रबोद्धुम् ॥

आचार्य श्री के समस्त गुणों का उल्लेख करने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कवि भक्ति पूर्वक गुरु के चरणारविन्दों में श्रद्धाञ्जलि समर्पित की है । अपनी विनय प्रकट करते हुए कवि ने लिखा है -

गुणानगण्यान् धर्मर्षिणस्ते, वक्तुं समस्तानहम-प्यशक्तः ।
तथापि भक्त्या तव पादपद्मे, श्रद्धाञ्जलिं देव समर्पयामि ॥

इन पद्यों में कवि के संस्कृत ज्ञान का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। वर्णन कल्पनाओं की पुट हैं । भाषा में प्रवाह और पदों में लालित्य है ।

श्री व्रजभूषण मिश्र ''आक्रान्त''

श्री कवि आक्रान्त ने गुरु गोपाल दास वरैया को अज्ञान अन्धकार को नाश करने के लिए सूर्य की उपमा दी है । विद्या और विवेक रूपी सागर में डुबकी लगाने वालों में प्रायः सभी उनके गुणों का स्मरण करते हैं । कवि ने संस्कृत पद्य में अपने विचार व्यक्त किये हैं -

गोपालदास गुरुवर्य महोदयाना,
मज्ञानतामसविनाशन भास्कराणाम् ।
विद्याविवेक जलधौ सुनिमज्जितानां,
चेतांसि नः कतिचिदेव गुणान् स्मरामि ॥

प्रस्तुत रचना में नौ श्लोक हैं ।[133] कवि ने इनमें श्री वरैया जी की विशेषताओं का सरसतापूर्वक उल्लेख किया है ।

श्री वैरया जी का जीवन थोड़ा रहा, परन्तु वह लघु जीवन भी लोकोपकार में ही लगा। वे समस्त शास्त्रों में निपुण थे । बुद्धिमानों की वे सुरक्षा किया करते थे । जन-जन को निः स्वार्थ भाव से लाभ पहुँचाते थे । कवि ने इन विचारों को निम्न प्रकार व्यक्त किया है -

ये सर्वशास्त्र निपुणाः सुधियः सुरक्षा,
निःस्वार्थ भावजनलाभरताः सदा स्युः ।
येषां समस्तलघुजीवनमेव नित्यं,
लोकोपकार करणे च समर्पितं यत् ॥

उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये गये इन श्लोकों में कवि ने अपने विचारों को बोधगम्य भाषा में व्यक्त किया है । पूर्ण रचना में भाषा का माधुर्य है ।

''श्री इन्द्रलाल शास्त्री''

आपका -जन्म 21 सितम्बर सन् 1897 में जयपुर में हुआ था । श्री मालीलाल जी आपके पिता और श्री मति हीरादेवी आपकी माता थी । जब आप दो वर्ष के थे, आपके पिता का देहासवान हो गया था । 9 वर्ष की अवस्था में बड़े भाई का और 12 वर्ष की अवस्था में मातृवियोग सहन कर अड़तालीस वर्ष की उम्र में आपको पत्नि लाड़लीबाई का वियोग भी सहन करना पड़ा था ।

आर्थिक कठिनाइयों का सामना करते हुए आपने शास्त्री, साहित्याचार्य परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं । विद्यालङ्कार ''धर्म दिवाकर तथा धर्मवीर जैसी उपाधियों से भी आप विभूषित हुए थे । जयपुर राज्य में देव स्थान विभाग के आप अधिकारी रहें । मथुरा, केकड़ी, लाडनूं तथा जयपुर के महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य भी किया ।

आपने संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य की यथेष्ट सेवा की है । लगभग 20 पुस्तकें आपकी मौलिक रचनाएँ हैं । अनेक पुस्तकों का पद्यानुवाद भी आपने किया है ।[134] आपकी एक स्फुट रचना अनुष्टुप छन्द में निर्मित है ।[135] इस रचना में बीस श्लोक हैं । कवि ने इन श्लोकों में मुनि चन्द्रसागर की जीवन झाँकी चित्रित की है । प्रस्तुत रचना के दो पद्य उदाहरणार्थ-यहाँ भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

एक पद्य में कवि ने मुनि की दीक्षा स्थली, दीक्षा गुरु, दीक्षा नाम और पर्वनाम का एक साथ उल्लेख किया है -

चन्द्रप्रभ प्रभोः पादे गुरोः श्री शान्तिसागरात् ।
खुशालचन्द्रात्सञ्जातो दीक्षाख्यश्चन्द्रसागरः ॥

इस पद्य में बताया गया कि चन्द्रसागर मुनि का पूर्व नाम खुशालचन्द्र था, दीक्षा स्थली-स्वर्णगिरि थी और दीक्षागुरु थे श्री आचार्य शान्तिसागर । अन्तिम पद्य में कवि ने अपने नाम का उल्लेख करते हुए गुरुचन्द्र सागर को सहर्ष अपने मन में विराजमान रखने की भावना व्यक्त की है । उन्होंने लिखा है -

यद्भक्ति भावनामिन्द्रः स्वान्तभवियते मुदा ।
सदा मन्मनसि स्थेयात् स गुरुश्चन्द्रसागरः ॥

''कुमारी माधुरी शास्त्री''

आपकी माता आर्यिका रत्नमती जी हैं और आर्यिका ज्ञानमती जी हैं-बड़ी बहिन। संपूर्ण शिक्षा आपने हस्तिनापुर में ही प्राप्त की है । सम्प्रति आप हस्तिनापुर में ब्रह्मचर्य की साधना में रत हैं ।

आपकी दो स्फुट रचनाएँ हैं । दोनों का विषय आर्यिका रत्नमती की स्तुति एवं जीवन चरित हैं । दोनों का एक साथ ही प्रकाशित भी हुई हैं ।[136]

प्रथम रचना में पाँच पद्य हैं । श्लोकों के अन्तिम चरण में लेखिका ने आर्यिका रत्नमती को नमन किया है । उदाहरण-स्वरूप एक पद्य प्रस्तुत है । इसमें रत्नमती के दीक्षागुरु धर्मसागर महाराज का नामोल्लेख करके रत्नमती के नाम को सार्थक नाम बताया गया है -

श्री धर्मसागर गुरोः प्रणिपत्य भक्त्या,
जग्राह त्वं शिवकरं व्रतमार्यिकायाः ।
अन्वर्थनामा किल ''रत्नमती'' दधासि,
त्वामार्यिकां प्रणिपतामि सदैव मूर्ध्ना ॥

दूसरी रचना में इक्कीस श्लोक हैं । इनमें आर्यिका रत्नमती का जीवन-वृत्त अङ्कित किया गया है । कुमारी माधुरी ने रत्नमती के नाम की सार्थकता के रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा है कि आपकी तेरह सन्तान है । सभी रत्नसदृश होने से पिता रत्नाकार और माता निश्चय से रत्नवती हैं । कवियत्री के इन विचारों का उद्घोष निम्न शब्दों में हुआ है -

त्रयोदश सन्तानाः स्युस्तयोस्ते रत्नसदृशाः ।
पिता रत्नाकरोऽतः स्यात् माता रत्नवती च वै ॥

आर्यिका रत्नमती जी को कवियित्री ने अपनी जननी कहा है तथा उन्हें करबद्ध नमन किया है

हे रत्नमति ! जननी ! हे मातः यशस्विति ।
अम्बिके भो नमस्तुभ्यं कृत्वा बद्धाञ्जलिर्मुदा ॥

यह ही नहीं अन्तिम श्लोक में कवियत्री ने अपने को आर्यिका रत्नमती की बालिका होना भी दर्शाया है तथा उनके शतायु होने की कामना की है

रत्नमत्यार्यिका माता जीयात् वर्षशतं भुवि ।
माधुरी बालिकायाश्च पुण्यात् सर्वमनोरथम् ॥

गुलाबचंद्र जैन

(प्राचार्य, श्री दिगम्बर संस्कृत कालेज, जयपुर) द्वारा रचित संस्कृत रचना का अनुशीलन

'तान् धर्मसागर गुरून् शिरसा नमामः'[१३४]

(श्री धर्मसागराचार्यस्य स्तुति पञ्चकम्) -

आकार - 'तान् धर्मसागर गुरून् शिरसा नमामः' (श्री धर्मसागराचार्यस्य स्तुति पन्चकम्- रचना संस्कृत के पांच श्लोकों में आबद्ध स्फुट काव्य है ।

नामकरण - आचार्य श्री धर्मसागर महाराज को प्रत्येक पद्य की अन्तिम पङ्क्ति में नमन के आधार पर ही रचना का नामकरण 'तान् धर्मसागर-गुरून् शिरसा नमामः' बहुत उपयुक्त है ।

रचनाकार का उद्देश्य - आचार्य प्रवर के प्रति विशेष भक्तिभाव ही इस कृति के सृजन का प्रधान उद्देश्य है ।

अनुशीलन - अपने आचार-विचार से अपने शिष्यों को पवित्रता की प्रेरणा देने वाले आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज त्रिगुप्ति, पञ्चमहाव्रत, दशधर्मों का परिपालन करते हैं, और रागादि दोषों एवं मायादिशल्यों से परे, वे रत्नत्रय के उपदेशों से जीवों का कल्याण करते हैं । आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के ऐसे सुशिष्य आचार्य धर्मसागर को साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ ।

'श्रीमती मिथिलेश जैन,

मवाना, (मेरठ) उ. प्र. द्वारा रचित संस्कृत रचना का अनुशीलन'

तं धर्मसिन्धु गुरूवर्यमहं नमामि[१३८]

आकार - ''तं धर्मसिन्धु गुरूवर्यमहं नमामि'' रचना छह श्लोकों में निबद्ध स्फुट काव्य है ।

नामकरण - प्रस्तुत कृति में गरूवर धर्मसागर जी महाराज को सादर नमस्कार किये जाने की विवेचना के कारण 'तं धर्मसिन्धु गुरूवर्यमहं नमामि' यह नामकरण सर्वथा उचित है ।

रचनाकार का उद्देश्य - रचयित्री की अपने आराध्य आचार्य श्री के प्रति अपार श्रद्धा एवं भक्तिभाव ही इस कृति के सृजन का मूलाधार है ।

अनुशीलन - है धर्मसागर गुरूवर आपको सादर नमन है । आप संसार का कल्याण चाहने वाले, करुणानिधान, शान्तिसिन्धु, उदारहृदय, सर्वात्मा, मुनिश्रेष्ठ हो । हे गुणी, मनस्वी, विद्वान्, दिव्यदेहप्राप्त, दिगम्बर, विरक्त, रत्नत्रययुक्त महात्मा आपको अहर्निश सादर नमन है।

पं. बिहारी लाल शर्मा

'मंगलायनतम् – गद्यकाव्य'

भगवान् महावीर का जीवन चरित पद्य-काव्य के रूप में अनेक आचार्यों एवं लेखकों ने लिखा है किन्तु बाण की कादम्बरी, वादीभसिंह की गद्यचिन्तामणि, दण्डी के दशकुमार चरित आदि संस्कृत गद्य रचनाओं की तरह किसी भी लेखक ने महावीर का जीवन चरित अंकित नहीं किया । इसी विचार से प्रेरित होकर भगवान् महावीर का सर्वोदयी जीवन चरित

'मङ्गलायतनम्'139 नामक गद्य रचना में चित्रित किया गया है। इसके रचयिता श्री रणवीर संस्कृत विद्यालय, (काशी हिन्दु विश्वविद्यालय) वाराणसी में संस्कृत प्राध्यापक श्री पण्डित बिहारी लाल शर्मा साहित्याचार्य हैं । ज्ञानरुचि सम्पन्न इस तरूण साहित्यकार को महावीर का जीवनवृत्त लिखने की प्रेरणा भारतीय वाङ्मय के अप्रतिभ विद्वान् डा. दरबारी लाल जी कोठिया से प्राप्त हुई ।'मङ्गलायतनम्' नामक गद्य काव्य पाँच सोपानों मे विभक्त है । संस्कृत महाकाव्य के साहित्य शास्त्रियों द्वारा निर्धारित प्राय: सभी लक्षण इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होते हैं। इस दृष्टि में आचार्य विश्वशाथ के साहित्यदर्पण में प्राप्त महाकाव्य का लक्षण सर्वाङ्गीण और व्यापक है ।[140]

मङ्गलायतनम् का कथानक पुराणेतिहास में विख्यात आख्यायिका ही है - वृत्त ऐतिहासिक है । भगवान् महावीर इसके नायक[141] हैं । वे धीर प्रशान्त[142] नायक की श्रेणी आते हैं यत: वे वैराग्य सम्पन्न हैं । इस काव्य में शान्तरस[143] प्रधान है तथा अन्य स्थलों पर शृङ्गार, वीर, करुण, अद्भुत, आदि का प्रयोग भी मिलता है सूर्य, चन्द्र, रजनी, प्रदोष, दिन, मध्याह्न, प्रभात, पर्वत, वन, सरोवर, मुनि, स्वर्ग, नगर, ग्राम, सङ्ग्राम आदि के वर्णन प्रसङ्गानुकूल मिलते हैं ।

"मङ्गलायतनम्' में स्वच्छन्द रस प्रवाह शब्दार्थालङ्कार की झंकार, कोमलकान्तपदावली और भौतिक विडम्बनाओं, दार्शनिक गूढ़ रहस्यों आदि का समन्वय अत्यन्त सुन्दर ढंग से हुआ है । इस प्रकार समीक्षकों के निष्कर्ष पर यह गद्य ग्रन्थ मौलिक उद्भावनाओं से ओत-प्रोत प्रमाणित हुआ है । लेखक का मनन चिन्तन, भावभंगिमा और भाषा का साहित्यिक रूप आदि गुणों ने ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान की है ।

'मंगलायतनम्' की प्रथम सोपान में भारतभूमि का प्राकृतिक चित्रण अभिव्यञ्जित हुआ है, विभिन्न स्थानों जैसे- वैशाली, कुण्डग्राम, विदेह वर्णन अत्यन्त सजीव बन गये हैं । लेखक ने गद्य काव्य के अनुरूप साहित्यिक परिमार्जित शैली को प्रतिष्ठित किया है । भारतभूमि की वन्दना नतमस्तक होकर लेखक ने अलङ्कृत शैली में अभिव्यंजित की है । कोमलकान्त पदावली कितनी आकर्षक बन पड़ी है - 'त्रिभुवनलक्ष्म्या: विलास स्थलीव, भुवनसदने देदीप्यमाना दीपशिखेव, जगत्सरसि विकसिता सरोजिनीव विश्वपुरुषस्यात्म शक्तिरिवास्ति वन्दनीया भारतभूमि: ।[144]

प्रथम सोपान में महाराज सिद्धार्थ के शासन का उनकी प्रजावत्सलता का, ऐश्वर्य का गौरवपूर्ण चित्रण किया गया है । उपमालङ्कार प्राय: सर्वत्र ही इस गद्यग्रन्थ में छा गया है । उसने भाषा की छटा निखार दी है - सिद्धार्थ के प्रशासन का वर्णन करने में लेखक की सूक्ष्मकल्पना शक्ति और भावभङ्गिमा हमें नैषधीय चरित के रचयिता श्री हर्ष की कल्पना शक्ति का स्मरण दिलाती है - एक दृश्य द्रष्टव्य है -

यस्य च प्रशासनकाले कलङ्को मृगाङ्के, कलहो रतिकलासु, क्षतिर्नखानाम्, आलस्यं गजगमनेषु, प्रवञ्चना मृगतृष्णासु, मानभङ्गो मानिनीनाम्, नमनं शाखानाम्, नियमनं पापस्य, कुटिलता भुज़ङ्गमनेषु कठोरता पाषाण खण्डेषु सजलता च सरित्स्वेवासीत् ।[145]

संस्कृत साहित्य में इस प्रकार के काल्पनिक दृश्य बहुत कम स्थलों पर हैं । बाणभट्ट की भाषा और उन्हीं की शैली से प्रेरणा लेकर लेखक ने यह ग्रन्थ निर्मित किया है । रानी त्रिशला के षोडश स्वप्नों का दर्शन होता है । सिद्धार्थ उन स्वप्नों का फल बताते हैं - निष्कर्ष यह होता है- तीर्थङ्कर उनके उदर से जन्म लेते हैं । लेखक ने जन्म के समय का उज्ज्वल

और गरिमामय चित्रण किया है - 'चैत्रमासस्य शुक्ल पक्षे त्रयोदश्यामुत्त राफाल्गुनीगते सुधाकरे रोहिणी नक्षत्रे, सोमवासरे, सिंहलग्ने शुभे च मुहूर्ते विद्युत्प्रकाशमिव मेघमाला दिवाकरमिव प्राची, पूर्णचन्द्रमिव पूर्णिमा त्रिशला सुतमसूत । बालस्य तस्यानन्यसाधारणस्य जन्मसमय मन्दसुरभित शीतलः पवनः संचार । दिनकरोऽपि चन्द्र एव लोभनीयो जातः । सर्वे जीवाः विगतमात्सर्यभावा अभूवन् ॥ सूर्योदये पद्मिनी व सकलापि जगती विकासमभूत् ।[146]

तीर्थङ्कर का जन्ममहोत्सव अत्यन्त धूमधाम के साथ सम्पन्न किया गया। मङ्गलायतनम् के द्वितीय सोपान में उनका नामकरण पुत्रोत्सव पर माता-पिता की प्रसन्नता, वर्धमान की बाल्यक्रीडाओं का हृदयहारी प्रकाशन किया गया है । द्वितीय सोपान में ही संगमदेव वर्धमान की परीक्षा लेकर स्तुति करता है । इसके पश्चात् उनके पराक्रम पूर्ण कार्यों का उद्घोष भी किया गया है । मदोन्मत्त गजेन्द्र को वश में करते हैं, जिससे उनका यश सर्वत्र विख्यात होता है । ग्रन्थकार ने इसी परिप्रेक्ष्य में वर्धमान के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का उद्घाटन भी कर दिया है - उन्हें वेद, पुराण, इतिहास, काव्य, दर्शनशास्त्र, तर्क आदि का मर्मज्ञ निरूपित किया गया है । यौवनावस्था में विवाह के अनेकों प्रस्ताव आते हैं । किन्तु सभी को अस्वीकार करके पिता के समक्ष वैराग्य धारण करने और वन गमन करने की अभिलाषा प्रकट करते हैं । माता-पिता के बार-बार समझाने पर भी राज्याभिषेक नहीं कराते । अन्ततोगत्वा पिता से आज्ञा लेकर वन प्रस्थान करते हैं, रोती हुई वृद्ध माता त्रिशला की ममता साकार करूणा के रूप में आँखों से बहती ।

'यदि त्वं वनं गच्छसि तदाऽविरल पतितैर श्रुभिः ममाञ्जचलं निरन्तरं क्लिन्नं भविष्यति। वृद्धावस्थायां त्वां विहाय किमस्ति मे सम्बलम् । रुदतीं मातरं तिरस्कृत्य न त्वया वनं गन्तव्यम्। नाहं पीड़ितानासहाया च कर्त्तव्या, इत्युक्त्वा तस्याः नेत्रकमलयोरक्षुण्णामजस्त्रधारा धरायां निपतात् ।[147]

किन्तु माता को मोहभङ्ग करने, सांसारिक बन्धनों एवं सम्बन्धों की क्षणभङ्गुरता का उपदेश देकर लोकल्याणकारी कार्य के लिए वैराग्य धारण कर लेते हैं । राजकुल और प्रजा उनके वियोग में दुःखी होती है, किन्तु अलौकिक दिव्य शक्तियां वर्धमान के वैराग्य धारण का अनुमोदन ही कराती हैं ।

इस ग्रन्थ में प्रकृति के विभिन्न रूपों रम्यरमणीय एवं उग्रदृश्यों की झांकी मिलती है । भाषा का प्रवाह और शैली की सरसता पाठकों को आद्यान्त आकृष्ट किये रखती है। वर्तमान युग के साहित्य स्रष्टाओं को यह ग्रन्थ प्रेरणादायक सिद्ध हो सकता है । भावों की उदात्तता एवं सूक्ष्मता के साथ गम्भीर दृश्यों का सरस वातावरण में वर्णन मनोहर बना हुआ है। लेखक की कल्पनाशक्ति, वर्णनवैचित्र्य, भावानुकूल अभिव्यञ्जना ही मंगलायतनम् की कीर्ति का प्रमाण हैं ।

''मङ्गलायतनम्'' का तृतीय सोपान महावीर के महनीय व्यक्तित्व का प्रेरक है। वर्धमान निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण करते हैं - यहाँ वनप्रदेश का काव्यात्मक चित्रण किया गया है । प्राकृतिक वातावरण में नवचेतना आ जाती है । प्रकृति का सुकुमार सुरम्य चित्रण किया गया है । वन्य प्राणी अपनी-अपनी वाणी में उनका स्वागत करते हैं । महावीर स्वामी आत्मचिन्तन में लीन हो जाते हैं । वे घोरतप करना प्रारम्भ करते हैं - शीतोष्णादि बाधाओं की परवाह न करते हुए हिंसक प्राणियों के बीच निर्भीक होकर निराहार ही तपस्याचरण किया । एक दिन कूलग्राम

जाकर वहाँ के नरेश की प्रार्थना पर पारणाग्रहण की और पुनः वन को प्रस्थान किया। मान-अभिमान, अपमान, सुखः-दुःख ग्राम नगर आदि के प्रति वे समभाव रखते थे। शत्रु-मित्र को समान समझते थे। कर्मार ग्राम के गोप का हृदय परिवर्तन करना महावीर की दिव्य (लोकोत्तर) प्रतिभा का ही प्रमाण है। वे अस्थि ग्राम गये। एक बार उन्हें विषम मार्ग (भयास्पद) से न जाने को गोपालकों ने कहा-क्यों कि वहाँ दृष्टिविष नामक विकराल सर्प रहता है जो पथिकों को दंशित करता है। उसी मार्ग से जाकर वे बिलद्वार पर खड़े हो गये, सर्प के काटने पर विचलित न हुए और अहिंसा के बल पर सर्प को जीत लिया। इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते हुए उन्होंने अनेक उपसर्ग सहन किये। इसके पश्चात् ब्राह्मण, ग्राम, चम्पा, कालायस, पत्रकालय, कुमाशक, चौराक, कयङ्गला, श्रीवस्ती आदि आदि स्थानों में घूमते हुए हल्वदय ग्राम में पदार्पण किया और एक वृक्ष के नीचे बैठकर समाधि लगा ली। वहाँ कुछ यात्री आये उन्होंने सूखे घास पत्रों से अग्नि प्रज्ज्वलित की। प्रातः वे आग को बिना बुझाये ही कहीं चले गये। कुछ ही क्षणों में वह आग संपूर्ण वन में फैलकर महावीर के सन्निकट पहुँच गयी, लेकिन अचल रहते हुए साहस के साथ अवस्थित ही रहे, उनके प्रभाव से अग्नि शान्त हो गयी। इसके पश्चात् अनेकों प्रदेशों का पर्यटन किया स्वयं इन्द्र ने उनकी परीक्षा ली। तत्पश्चात् चन्द्रमा नामक नवधाभक्ति से पूर्ण हृदय वाली स्त्री के द्वारा आहार ग्रहण किया और वह बन्धन मुक्त हो गयी। महावीर को ऋजूकूला के तट पर साल वृक्ष के नीचे वैशाख शुक्ल की दशमी के दिन केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उसी पवित्र स्थान पर समवशरण की स्थापना की गई।

चतुर्थ सोपान में इन्द्रभूति नामक विद्वान ब्राह्मण के द्वारा समवशरण में आकर शिष्यता स्वीकार करने का वृत्तान्त रोचक शैली में चित्रित किया गया है - भगवान् इन्द्र विप्र वटु के वेष में इन्द्रभूति गौतम से एक श्लोक का अर्थ पूछते हैं। किन्तु यह शर्त थी कि यदि आप श्लोक का अर्थ ठीक से न समझा पाये तो आपको हमारे गुरु की शिष्यता ग्रहण करनी होगी और यदि श्लोक का अर्थ सही रहस्य समझा दोगें तो मैं तुम्हारी शिष्यता जीवनपर्यन्त स्वीकार कर लूँगा। अन्ततोगत्वा गौतम श्लोक का रहस्य समझाने में असफल होते हैं। तत्पश्चात् इन्द्रभूति को जिनपति के समवशरण में प्रविष्ट कराया गया। वहाँ के वातावरण से प्रभावित इन्द्रभूति पद्मासन लगाकर विराजमान वर्धमान के अलौकिक तेज और देह की स्वाभाविक कान्ति का अवलोकन करता है। उनकी दिव्य तपश्चर्या, गम्भीरता, स्थिरता, तेजस्विता, शान्तिप्रियता से रोमांचित होकर अपने मिथ्याभिमान पर पश्चाताप करता है और जिनपति के चरणकमलों की समाराधना में अपना परमकल्याण समझकर उनकी शिष्यता सहर्ष स्वीकार कर लेता है। फिर एक बार संसार और परमार्थ के गूढ़ रहस्य को जानने की अभिलाषा करता है। भगवान् उसके प्रश्न का समाधान करते हैं। भगवान् समझाते हैं - "कदाचिदिभे मनुष्याः सहोदर भ्रातर इव निवसन्तिस्म। न कदापि स्वार्थ सिद्ध्यर्थं परस्परं कलहायतेस्म कश्चित्। न भूमेर्विभाजनं भवति, न सम्पत्तेवितरणम् न च सदनस्य विभागो दृश्यते। न कोऽपि सम्पत्यर्थं भ्रातरं हन्ति, न पितरं विरुणाद्धिन मातुराज्ञामुल्लङ् घयति, न धर्म जहाति, न मर्यादामतिक्रामति। सर्वेऽपि स्वकीयं कर्त्तव्यमेव सन्ततं परिपूरयन्ति। आचार-विचार, शिष्टाचार-शिलायाः नियमान् यथार्थं परिपालयन्ति ते। पतितस्योद्धाराय, मार्गभ्रष्टं मार्गे समानेतुं गहनान्धकार व्याकुलस्य प्रकाश, वासहीनेभ्यो वस्त्रम् भूमिहोनोस्य भूमिम्, अशरणेभ्यश्च शरणं प्रदातुमेव तेषां सकलमपि जीवनं व्यस्तमासात्।"

किन्तु प्राकृतिक और भौगोलिक परिवर्तनों के कारण मानव जीवन के समक्ष विकट परिस्थितियों आ गयी । अन्न, द्रव्य, वस्त्रों का सङ्ग्रह होने लगा, छल, कपट, राजनीति, प्रवञ्चना जैसे दुष्कर्मों का उदय हुआ । समाज में लूट-पात, शोषण, जातिवाद आदि भाव पनपने लगे। फलतः समाज अमीर और गरीब दो खण्डों में विभाजित हो गया। धनीवर्ग का प्रभाव गरीबों पर हो गया । मानवता में पशुतापन आ गया । जीवन की विषम परिस्थितियों को सहने में अक्षम लोगों ने आत्महत्या जैसे - जघन्य कृत्यों का सहारा ले लिया । दूसरी ओर सुरा और सुन्दरी के मदोन्मत्त व्यक्ति भोग-विलास के शौकीन हो गये ।

इस सोपान में लेखक ने समाज की विषमता का अत्यन्त यथार्थवादी विश्लेषण किया है । लेखक की सूक्ष्म कल्पनाशक्ति के द्वारा सामाजिक कुप्रवृत्तियों के सभी पक्ष उजागर हो गये हैं - कहीं झोपड़ी में दीपक नहीं जलता तो कहीं विलास गृह में नर्तकियाँ रत्नों से देदीप्यमान होती है । किसी के घर में पालतू श्वान भी दुग्धपान करते हैं, तो कहीं भूखे बच्चे जल पीकर ही सो जाते हैं । कहीं नूपूरों की झंकार है तो कहीं शिशुओं का हृदयद्रावक करुण क्रन्दन ।

प्रत्येक स्तर पर व्याप्त विषमता से मानव अधिकारों का हनन होता है शिक्षा, प्रशासन, राष्ट्र में भी यह व्यवहार परिलक्षित किया जा सकता है । छल, कपट, राजनीति और हथियारों के बल पर शान्ति स्थायी नहीं रखी जा सकती । इसलिए क्रान्तियाँ होती हैं - जिससे हत्यायें, लूटपाट आदि बढ़ते हैं । व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है , फलतः सुनीति का पालन करने वाले कर्णधार (राष्ट्र के) ही सभी कारणों का समाधान करते हैं । समस्याएँ हल करते हैं और उन्नति की ओर प्रेरित करते हैं । महावीर जी ने कहा कि आप जैसे तरुणों को सक्रिय होकर समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर कर शान्ति स्थापित करना चाहिए । भगवान् के सारगर्भित उपदेशों से प्रभावित इन्द्रभूति ने निर्ग्रन्थ दीक्षा लेकर महामुनि के मार्ग पर चलने का निश्चय किया ।

''मङ्गलायतनम्'' के अन्तिम सोपान मे तत्त्वोपदेश, ईश्वरस्वरूप, कर्म का स्वरूप, स्याद्वाद का स्वरूप आदि पर विचार किया गया है । अन्त में वर्धमान निर्वाण को प्राप्त होते हैं । भगवान् इन्द्रभूति आदि शिष्यों के अनुरोध पर मोक्षतत्त्व पर विचार करते हैं- ''लोकेऽस्मिन् न सर्वथा रोगार्त निवारणं, न क्लेशान्मुक्ति, न च शाश्वतिक सुखम् । विशालं साम्राज्यं तुणवत्तुच्छम् समुपार्जिताः सर्वाः सम्पत्तयश्च नाशशीलाः । अत एव रत्नत्रयं धर्ममेवाप्यैव संसार समुद्रः सन्तरणयोग्योभवति, नान्यथा ।'' जीवोऽयमेकाकी एवाऽऽगच्छति निर्गच्छति च । शरीरमपि न स्वकीयं स्वेन सह यात्यायाति वा । अतः धर्मपालनमेव श्रेयस्करम् ।''[148]

सामान्य धर्मोपदेश करते हुए वर्णन करते हैं - कि जीव के क्रिया कलाप शरीर से ही होता है - उसके 5 प्रकार हैं - औदारिक[149], वैक्रियिक[150], आहारक[151], तैजस[152] और कार्माण ।[153] यह 5 प्रकार का शरीर मनुष्य के जन्ममरण का मूल कारण है । पञ्चाणुव्रतों का प्रतिपादन करते हैं - अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण । पञ्चाणुव्रत के पश्चात् सात सहायकव्रत, जो प्रत्येक गृहस्थ को पालन करना चाहिये, निरूपित किये गये हैं - इनमें तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत सम्मिलित हैं । गुणव्रत हैं - दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत और भोगोपभोग परिमाण । चार शिक्षाव्रत ये हैं - देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैयावृत्य ।

इस प्रकार ये 3 गुणव्रत एवं 4 शिक्षाव्रत मिलकर 7 शीलव्रत कहे जाते हैं । उपर्युक्त 5 अणुव्रत और 7 शीलव्रत सहित 12 व्रत गृहस्थों के लिए उपयोगी हैं ।[154]

इसी प्रकार हिंसादि पञ्चपापों का पूर्ण परित्याग करना अहिंसादि 5 महाव्रत हैं[155] उनका पालन निर्ग्रन्थ साधुजन करते हैं । आत्मा स्वभाव से रूपादिरहित, अर्थात् अमूर्तिक है, किन्तु अनादिकाल से कर्म के संबन्ध के कारण रूपादिवान अर्थात् मूर्तिक लगता है। कर्मबन्धन का कारण आस्रव है । मोक्षार्थी अपने आपको कर्मों से विमुक्त कर शुद्धस्वरूप को प्राप्त कर लेता है । इसी अवस्था में आत्मा सर्वदर्शी, सर्वज्ञ एवं विराट् स्वरूपवाला हो जाता है । यह आत्मा 3 प्राकर की है - बहिरात्मा[156], अन्तरात्मा[157], परमात्मा ।[158] मोक्षमार्ग का विवेचन करते हुए अभिव्यक्त करते हैं कि सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के समुच्चय को मोक्षमार्ग कहते हैं । तत्त्वार्थ की श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है ।[159] तत्त्वार्थ सात हैं - जीव, अजीव, आस्रव, सम्वर, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष । जीव का लक्षण चेतनावान् है - चेतना लक्षणोजीवः । वह दो प्रकार का है - संसारी और मुक्त । संसारी में भी त्रस और स्थावर ये दो भेद हैं । फिर त्रस भी दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय के भेद से 4 प्रकार के हैं । पाँच इन्द्रिय वालों में संज्ञी और असंज्ञी होते हैं । स्थावर के 5 भेद हैं - पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति ।

''अचेतनालक्षणोऽजीवः ।'' अर्थात् चेतनारहित अजीव कहलाता है । इसके 5 भेद हैं - पुद्गल[160], धर्म, अधर्म, आकाश और काल ।[161]

कर्मों के आने के द्वार का नाम आस्रव है । यह दो प्रकार का है - भावास्रव और द्रव्यास्रव । जिन मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगरूप भावों से कर्म आता है, वे भाव भावास्रव है और कर्मों का आना द्रव्यास्रव है ।[162]

इस आस्रव का रुकना सम्वर है । यह भी दो प्रकार का है - भाव सम्वर और द्रव्य सम्वर । गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय, और चारित्ररूप भावों के आस्रव का रुकना भाव सम्वर है और द्रव्यास्रव का रुकना द्रव्यसम्वर हैं ।

सञ्चित कर्मों का एकदेश क्षय होना निर्जरा तत्त्व है । इसके भी 2 भेद होते हैं - भाव निर्जरा और द्रव्य निर्जरा । कर्म की शक्ति को क्षीण करने में समर्थ जो शुद्धोपयोग है (जो अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग तपों से परिवृहित है) वह भाव निर्जरा है तथा निःशक्तिक हुए पूर्वसञ्चित कर्मपुद्गलों का झड़ जाना द्रव्य निर्जरा है ।

लेखक सारगर्भित स्पष्टीकरण करते हुए विश्लेषित करता है - जीवप्रदेश और कर्मप्रदेशों का जो परस्पर संश्लेष है, वह बन्ध है । भाव बन्ध और द्रव्य बन्ध इसके दो मूल रूप हैं । शुभ या अशुभ, मोह, राग और द्वेष रूप परिणाम भाव बन्ध हैं और उसके निमित्त से कर्मपुद्गलों का जीव के प्रदेशों के साथ बन्धना द्रव्यबन्ध हैं । द्रव्यबन्ध 4 प्रकार है - प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध ।[163]

सम्वर और निर्जरा द्वारा समस्त कर्मों का अभाव हो जाना मोक्ष है। इस प्रकार सात तत्त्वों का यथावत् श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है और इन्हीं तत्त्वों का यथार्थज्ञान सम्यग्ज्ञान है - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अविधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान । सम्यग्ज्ञान के अन्तर्गत आते हैं । हिंसादि पाँच पापों का परित्याग करना सम्यक्चारित्र हैं ।

इस प्रकार भव्यात्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय मोक्षमार्ग को प्राप्त करके संसार सागर से पार हो जाता है। इन तीनों के बिना मोक्ष असम्भव है। जड़चेतन का विविध परिणाम ही संसार है। चेतन द्रव्य अनादिकाल से कर्मबद्ध रहा है। उन्हीं कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है और सुःख-दुःख का अनुभव करता है।

जिसके सभी कर्म नष्ट हो गये हैं वह ईश्वर है - ''परिक्षीण सकलकर्मा परमात्मा। प्रत्येक जीव पुरुषार्थ से कर्मबन्धन का नाश करके विमुक्त होकर परमात्मा हो सकता है। जो कर्म करता है वहीं कर्म का फलभागी भी है। कर्म के अनुसार पुरुष की बुद्धि भी परिवर्तित होती हैं।

ईश्वर और कर्म का स्वरूप समझाने के पश्चात् स्याद्वाद का विवेचन किया गया है। यह सिद्धांत वैज्ञानिक है। प्रत्येक पदार्थ के अनन्त धर्म होते हैं। वस्तु के विभिन्न गुणों का विभिन्न दृष्टिकोणों से पर्यवेक्षण करना चाहिये। पदार्थों में व्याप्त विविध धर्मों की सापेक्षता को स्वीकार करना ही स्याद्वाद है।

इस प्रकार ''मङ्गलायतनम्'' में विविध दार्शनिक तथ्यों का समीचीन समाधान मिलता है। ग्रन्थ के अन्त में उपसंहार स्वरूप आदर्श सिद्धांतों की व्याख्या की गई है- अहिंसा की महिमा, द्रव्य का प्रभाव, धर्म की सत्ता, तप की श्रेष्ठता, सत्य का गौरव, आत्माकी शाश्वतता आदि का विवेचन महावीर के उपदेशों में समाविष्ट किया गया है।

इस प्रकार इन्द्रभूति आदि शिष्यों सहित 30 वर्षों तक समग्र भू-मंडल पर उपदेशामृत बरसाते हुए भगवान् महावीर ने बिहार की पवित्र मध्यमा पावा की भूमि में आकर कार्तिक कृष्ण पक्ष की अमावस्या को प्रत्यूष काल में निर्वाण प्राप्त किया। उस समय रात्रि का कुछ अन्धेरा था। भगवान् का निर्वाणोत्सव मनाया गया।[164]

''मंङ्गलायतनम्'' में एक श्रेष्ठ गद्य विधा में निबद्ध महाकाव्य की सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है। सरल प्रसादगुण पूर्ण कोमलकान्त पदावली संयुक्त भाषा-शैली में सम्गुफित यह गद्यकाव्य विविध वर्णनों से परिपूर्ण लेखक की सिद्धहस्तता का ही परिचायक है।

उपसंहार :

इस शोध ग्रबन्ध के तृतीय और चतुर्थ अध्याय में जैन साधु-साध्वियों और मनीषियों द्वारा प्रणीत संस्कृत काव्यों का अनुशीलन किया गया है। इन दोनों अध्यायों में समाविष्ट सामग्री से यह ध्वनित होता है कि जैन रचनाकार संस्कृत काव्य की महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, सन्देशकाव्य, स्तोत्रकाव्य, शतककाव्य, चम्पूकाव्य, श्रावकाचार, नीतिविषयक काव्य, पूजाव्रतोद्यापन काव्य और गहन-गम्भीर दार्शनिक विषयों का अवलम्बन करके काव्य-साहित्य के सृजन में योगपूर्वक निरत हैं।

इन अध्यायों में प्रणीत टीका ग्रन्थों और गद्य रचनाओं की एक झाँकी भी दिखाई है। जो इस तथ्य को उजागर करती है कि जैन रचनाकार मौलिक काव्य रचनाओं के साथ ही काव्य के विराट् स्वरूप को चरितार्थ करने में अहर्निश सन्नद्ध है।

काव्य सृजन के लिये रचनाकार को जिन और जितनी मात्रा में अनिवार्यताओं का अनुकरण करना चाहिए, उन सभी पर जैन रचनाकार पूर्णतः ध्यान केन्द्रित किये हुए हैं।

सम-सामयिकता का प्रतिबिम्ब और अङ्कन इन रचनाओं में पर्याप्त मात्रा में निदर्शित है । इन रचनाओं का साहित्यिक एवं शैली गत अध्ययन अग्रिम पञ्चम अध्याय में किया गया है ।

फुट नोट

1. साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ, खंड 2, आत्म कथ्य पृ. 2/1-4
2. सम्यक्त्व-चिन्तामणि-प्रकाशक-वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी-5 प्रथम संस्करण-1983 ई.
3. जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष ये 7 तत्त्व हैं ।
4. जीव के दो भेद हैं - संसारी और मुक्त ।
5. संसारी जीव के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ये 5 परावर्तन हैं ।
6. मिथ्या दृष्टि, सासन, मिश्र, असंयत सम्यग्दृष्टि, देशव्रती, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मलोभ, शान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगजिन, अयोगजिन ये 14 गुणस्थान हैं ।
7. गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व और आहारक ये 14 मार्गणाएँ हैं ।
8. जीव,पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये 6 द्रव्य हैं ।
9. गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय, चारित्र और तप सम्वर के कारण हैं।
10. वीरसेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी से प्रकाशित हुआ है ।
11. सम्यक्त्व चिन्तामणि - प्रथम मयूख : पद्य 16 पृष्ठ 4
12. विस्तृत विवरण के लिए - सम्यक्त्व चिन्तामणि - प्रथम मयूख : अनुवाद, श्लोक 143 से 146 तक । पृष्ठ 23
13. ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर इन 8 बातों को लेकर मिथ्यादृष्टि मानव अहंकार करते हैं, ये ही आठ मद कहे गये हैं ।
14. कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, कुकर्मों का सेवक, दोष स्थान, अस्थान ये 6 अनायतन हैं।
15. लोकमूढ़ता, गुरुमूढ़ता, देवमूढ़ता ।
16. संशय, काक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि, अनुपमूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना से 8 दोष कहे गये हैं ।
17. सम्यक्त्व चिन्तामणि - द्वितीय मयूख, पद्य 12, पृष्ठ 55
18. सम्यक्त्व चिन्तामणि - द्वितीय मयूख, पद्य 26, पृष्ठ 59
19. नारकियों की 7 भूमियाँ ये हैं - रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तम:प्रभा, महातम:प्रभा ।
20. भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत । ये सात क्षेत्र जम्बूद्वीप में क्रम से स्थित हैं ।
21. हिमवान् महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये 6 पर्वत (कुलाचल) हैं।
22. पद्म, महापद्म, तिगिच्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये 6 सरोवर क्रम से उपरोक्त पर्वतों पर स्थित हैं ।

23. गङ्गा-सिन्धु, रोहित-रोहितास्या, हरित-हरिकान्ता, सीतासीतोदा, नारी-नरकान्ता, स्वर्णकूला-रुप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा ये महानदियाँ उपरोक्त सात क्षेत्रों में दो-दो के युगल में बहती हैं ।
24. विस्तृत विश्लेषण के लिए सम्यक्त्व चिन्तामणि, चतुर्थ मयूख, पृष्ठ 140 से 143 तक ।
25. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञान यदि मिथ्यादर्शन के साथ होते हैं तो ये मिथ्यारूप होते हैं तब ये - कुमति, कुश्रुत एवं विभङ्गाविधि नाम पाते हैं ।
26. समुद्घात के - कषायोद्भूत, वेदनोद्भूत, वैक्रियिक, मारणान्तिक आदहरक, तैजस, केवली समुद्घात । ये 7 भेद हैं ।
27. सम्यक्त्व चिन्तामणि : षष्ठम मयूख, पद्य 2,पृष्ठ 182
28. सम्यक्त्व चिन्तामणि : सप्तम मयूख, पद्य 185, पृष्ठ 236
29. सम्यक्त्व चिन्तामणि : अष्टम मयूख, पद्य 5, पृष्ठ 259
30. द्रष्टव्य, तपसा निर्जरा चेति समुक्तं पूर्वसूरिभिः ।
    तपसामेव तद्व्याख्या क्रियतेऽस्मिन्मयूखे ॥
    ''सम्यक्त्व चिन्तामणि'' : नवम मयूख ।
31. सम्यक्त्व चिन्तामणि : दशम मयूख, पद्य 2, पृष्ठ 340 ।
32. सज्ज्ञान चन्द्रिका : प्रकाशन - वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी ।
33. सम्यक्चारित्र-चिन्तामणिः प्रकाशक-मंत्री वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट, वाराणसी-5 (प्रथम संस्करण) 1988 ई.
34. विस्तृत विवरण के लिए देखिए : सम्यक्त्व चिन्तामणेः समीक्षात्मकाध्ययनम् : अनिल जैन ।
35. धर्मकुसुमोद्यान - प्रकाशक, दुलीचन्द्र परवार, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय 161/1, हरीसन रोड, कलकत्ता ।
36. धर्मकुसुमोद्यान - पद्य 34, पृष्ठ 13
37. धर्मकुसुमोद्यान - पद्य 40, पृष्ठ 14
38. धर्मकुसुमोद्यान - पद्य 64, पृष्ठ 24
39. धर्मकुसुमोद्यान - पद्य 100, पृष्ठ 37
40. सामयिक पाठ - साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन अ. ग्रन्थ 6/5-12
41. महावीर स्तवनम् - साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन अभिनन्दन ग्रंथ 6/1
42. महावीर स्तोत्रम् - साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन अभिनन्दन ग्रंथ 6/2
43. बाहुबल्यष्टकम् - साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन, अ. ग्रंथ - 6/4
44. आचार्य श्री धर्मसागर महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ : पृष्ठ 225
45. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ : अखिल भारतवर्षीय दि. विद्वत् परिषद, सागर प्रकाशन, प्रथम संस्करण ई. 1967, पृष्ठ 88-89
46. ''वर्धमान चम्पू'' काव्य में पं. मूलचन्द्र शास्त्री ने अपना जीवन-परिचय छन्दबद्ध किया है ।
47. वचनदूतम् पूर्वार्धं- पं. मूलचन्द्र शास्त्री : प्रकाशक- मन्त्री प्रबन्धकारिणी कमेटी, दिग. जैन अ. क्षेत्र महावीर जी, (महावीर भवन), जयपुर-3, प्रथम संस्करण- 1975 ई.,
48. वचनदूतम् पूर्वार्धं पद्य 7, पृष्ठ 6

49. वचनदूतम् पूर्वार्ध, पद्य सं. 10, पृष्ठ 9
50 वचनदूतम् पूर्वार्ध, पद्य सं. 18, पृष्ठ 19
51. वचनदूतम् पूर्वार्ध पद्य सं. 43, पृष्ठ 49
52. वचनदूतम् पूर्वार्ध पद्य सं. 50, पृष्ठ 56
53. वचनदूतम् पूर्वार्ध पद्य सं. 56, पृष्ठ 63
54. वचनदूतम् पूर्वार्ध पद्य सं. 59, पृष्ठ 66
55. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध - पं. मूलचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक - मंत्री प्रबन्धकारिणी कमेटी, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी महावीर भवन, सवाई मानसिंह हाईवे, जयपुर -3
56. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध, पद्य 7, पृष्ठ 15
57. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध पद्य 11, पृष्ठ 16
58. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध, पद्य 14, पृष्ठ 19
59. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध, पद्य 23, पृष्ठ 31
60. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध, पद्य 34, पृष्ठ 43
61. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध, पद्य 53, पृष्ठ 67
62. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध, पद्य 76, पृष्ठ 89
63. जैन विद्या संस्थान श्री महावीरजी द्वारा प्रकाशित, प्रकाशन वर्ष, ईसवी 1987, पृष्ठ संख्या-222, मूल्य 25/-
64. प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रस्तावना : पृष्ठ 9-10
65. विद्वत् अभिनन्दन-ग्रन्थ : अखिल भा. दि. जैन शास्त्रि-परिषद्, प्रकाशन, पृष्ठ 157.
66. वर्धमान चम्पू : वार्धक्य महिमाः, श्लोक-2
67. वर्धमान चम्पूः हेतु-प्रदर्शन श्लोक 3-4
68. श्री आचार्य ज्ञानसागर संस्तुति रचियता पं. मूलचन्द्र शास्त्री (श्री महावीर जी राजस्थान) प्र. विद्यासागर पत्रिका, जून 1985, जबलपुर ।
69. आ. ज्ञानसागर संस्तुति पद्य संख्या - 10
70. आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज स्मृति ग्रन्थ, प्रकाशक-श्रीमती सौ. भंवरी देवी पांड्या, सुजानगढ़ (राजस्थान), प्रथम संस्करण, वीर नि.सं. 2499 । पृष्ठ 40-41
71. सरस्वतीवन्दनाष्टकम् - पद्य 1-3, पृष्ठ 3
72. सरस्वतीवन्दनाष्टकम् - पद्य 2
73. सरस्वतीवन्दनाष्टकम् - पद्य 4
74. श्री गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय, वर्णी भवन, मोराजी लक्ष्मीपुरा सागर (म.प्र.) से प्राप्त, प्रथम 9 पद्यों का सारांश ।
75. सूर्यास्वैर्यदि म सजस्ततः सगुरवः शार्दूल विक्रीडितम् ।
छन्दो मञ्जरी पृष्ठ 111, द्वितीय स्तबक ।
76. श्री गणेश दिग. जैन संस्कृत महाविद्यालय, सागर से प्राप्त स्फुट रचना ।
77. पं. दयाचंद्र साहित्याचार्य, प्राचार्य श्री गणेश दिग. जैन संस्कृत महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) से प्राप्त स्फुट रचना ।
78. जिनोपदेश, पं. श्री जवाहरलाल जैन शास्त्री, प्रकाशक- चावण्ड (उदयपुर), राजस्थान, वी.नि.सं. - 2508

79. जिनोपदेश, पद्य 41, पृष्ठ 14
80. जिनोपदेश, पद्य 68, पृष्ठ 23 ।
81. पद्मप्रभस्तवनम् - स्व. नाथूराम जी की स्मृति में प्रकाशित, चावण्ड (जि. उदयपुर) राजस्थान, वी. नि. सं. - 2509
82. पद्मप्रभस्तवनम्, पद्य 2, पृष्ठ 3
83. विस्तार के लिए द्रष्टव्य - महापुराण (उत्तरपुराण), गुणभद्राचार्यकृत, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी वि. सं. 1968, पर्व 52/41-42
84. महापुराण (उत्तर पुराण) पर्व 52/57 ।
85. मोक्षपद में अकेले स्थिर होने से "एक" ।
86. अनेकनामों एवं गुणों की उपस्थिति होने से "अनेक" ।
87. आत्मा की अपेक्षा आदिरहित है अतः "अनादि" ।
88. हितोपदेशकों में तीर्थङ्कर (प्रथम) अग्रगव्य होने से "आदि" ।
89. परमार्थतः किसी की सहायता नहीं करते- असहायका ।
90. कामभात से असम्पृक्त ।
91. लोकोत्तर कीर्तिवाले ।
92. ज्ञानवान् होने से प्राज्ञ ।
93. पद्मप्रभुस्तवनम् पद्य 17 ।
94. पद्मप्रभस्तवनम् पद्य 14 ।
95. वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ - पृष्ठ 66 एवं 67 । संपादक, खुशालचन्द्र गोरावाला, प्रकाशक श्रीवर्णी हीरक जयंती महोत्सव समिति, सागर (म.प्र.), अश्विन 2476, वी.नि.सं.
96. अनेकान्त मासिक पत्र के जनवरी, फरवरी सन् 1947 ई. के पृष्ठ 354 से उद्धत। मुद्रक एवं प्रकाशक- पं. परमानन्द शास्त्री, वीर सेवा मन्दिर, सरसाना, (जि. सहारनपुर) उ.प्र.
97. श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय, अहार क्षेत्र संस्मरण-अङ्क प्रकाशक-मन्त्री, अहार क्षेत्र एवं विद्यालय, 1971 के पृष्ठ 1-2. ।
98. श्री अहारतीर्थस्तवनम्, पद्य सं. 7
99. विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ : वही, पृष्ठ 296 ।
100. श्री गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति ग्रंथ : पृष्ठ 145-147
101. पपौरा पूजन एवं पपौराष्टक पुस्तक के पृष्ठ 16-17 से संकलित, लेखक-शर्मनलाल "सरस" सकरार, झांसी, प्रकाशक-सि. रतनचन्द्र चंदैरा, मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पपौरा जी (टीकमगढ़) द्वितीय संस्करण, सन् 1981 ।
102. काव्य प्रकाशः 9/85
103. वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ - सम्पादक-खुशालचन्द्र गोरावाला, सिद्धान्तशास्त्री, प्रकाशक- श्री वर्णी हीरक जयन्ती महोत्सव समिति, सागर, पृष्ठ-68
104. गोम्मटेस थुदि (गोम्मटेश अष्टक), प्रकाशक - श्री भागचंद्र इटोरया सार्वजनिक न्यास, दमोह सन् 1989 ई.
105. वीर-वाणी-पाक्षिक पत्रिका, 18 जुलाई 1985 ई. के मुख पृष्ठ पर । प्रकाशक पं. भवरलाल जैन, श्री वीर प्रेस जयपुर - 3
106. आचार्य विद्यासागर स्तवनम् - प्रत्येक पद्य की अन्तिम पङ्क्ति ।
107. विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ : वही,पृष्ठ 240 ।
108. विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ : वही पृष्ठ 331 - 332 ।

109. विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ : वही, पृष्ठ - 229 ।
110. श्री गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ : वहीं, पृष्ठ 153-155 ।
111. विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ : वही, पृष्ठ 449 ।
112. श्री गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ : पृष्ठ 119 ।
113. ब्र. पं. चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ : पृष्ठ 146 ।
114. ब्र. पं. चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ : वही, पृ. 129 ।
115. जैन गजट - पर्वांक, वीर निर्वाण 2502, भाद्रपद शुक्ला 9 गुरुवार के पृष्ठ । से संदर्भित, संपादक - पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, सोलापुर ।
116. प्रकाशक - श्री पं. सरदारमल सच्चिदानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, सिरोंज (विदिशा) ई. 1981, पृष्ठ 96
117. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ : वही, पृष्ठ 117 ।
118. ब्र. पंडित चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ : वही, पृष्ठ 1-2
119. विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ : अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद्, ई. 1976 पृष्ठ-316
120. देखो-पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती अभिनन्दन ग्रन्थ, भा. दि. जैन महासभा डीमापुर, (नागालैण्ड), वी.नि.सं.-2510 का प्रकाशन, पृष्ठ 154-162
121. विद्वत् - अभिनन्दन ग्रन्थ : पृष्ठ 122
122. श्रीगणेशप्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ : पृष्ठ 151-152
123. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ : वही, पृष्ठ 118
124. ब्र. पंडित चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, अ.भा. दि. जैन महिला परिषद्, वी.नि.सं., 2488, प्रकाशन, पृष्ठ 155 ।
125. विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ : वही, पृष्ठ 124-125 ।
126. ब्र. पं. सरदारमल्ल सच्चिदानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ: पृष्ठ 20 ।
127. श्री गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ : वही, पृष्ठ 150-151 ।
128. श्री जैन सिद्धान्त भवन आरा, (बिहार) से प्राप्त अप्रकाशित लघु रचना ।
129. कषाय जय भावना पद्य संख्या : 18 ।
130. विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ : वही, पृष्ठ - 435 ।
131. आचार्य शिवसागर महाराज स्मृति ग्रन्थ : पृष्ठ 42-43 ।
132. आचार्य श्री शिवसागर महाराज स्मृति ग्रन्थ : वही, पृष्ठ 42 ।
133. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ : पृष्ठ 120 ।
134. विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ : पृष्ठ 195-196 ।
135. श्री चन्द्रसागर स्मृति ग्रन्थ : पृष्ठ 44-45 ।
136. पूज्य आर्यिका रत्नमती अभिनन्दन ग्रन्थ : पृष्ठ 131-132 ।
137. श्री आचार्य धर्मसागर अभिनन्दन ग्रन्थ : पृष्ठ 222 से संकलित, प्रकाशक - श्री दिगम्बर जैन नवयुवक मण्डल, कलकत्ता वीर नि.सं. 2508 ।
138. आचार्य धर्मसागर अभिनन्दन ग्रन्थ : पृष्ठ 221 से सङ्कलित, प्रकाशक - श्री दिगम्बर जैन नवयुवक मंडल, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, वीर निर्वाण, सम्वत्-2508 ।
139. मंगलायतनम्-लेखक पं. बिहारी लाल शर्मा, प्रकाशक - वीर मन्दिर सेवा ट्रस्ट, प्रकाशन-चमेली कुटीर, 1/128 डुमराव कालोनी, अस्सी, वाराणसी-5 ।
140. द्रष्टव्य, साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, परिच्छेद 6 कारिका, 315 से 325 ।

141. नायक के लिये आवश्यक सद्गुणों का होना अपेक्षित है - देखिये-दशरुपक, द्वितीय प्रकाश आरम्भिक 2 श्लोक ।
142. नायक 4 प्रकार के होते हैं-धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत । वियादि सामान्य गुणों से युक्त धीरशान्त नायक द्विज, विप्र, वणिक्, सचिवादि भी हो सकता है।
143. मम्मट शान्तरस का अस्तिव मानते हैं - निर्वेदस्थायी भावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसःकाव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास कारिका 47 पृष्ठ 93 ।
144. मङ्गलायतनम् - लेखक, बिहारी लाल शर्मा, प्रकाशक - वीर मंदिर सेवा ट्रस्ट, वाराणसी. प्रथम संस्करण 1975, प्रथम सोपान प्रथम परिच्छेद ।
145. मङ्गलायतनम् - प्रथम सोपान पृष्ठ - 4 ।
146. मङ्गलायतनम् - प्रथम सोपान पृष्ठ 20-21 ।
147. मङ्गलायतनम् - द्वितीय सोपान, पृष्ठ 41 ।
148. मङ्गलायतनम् - पञ्चम सोपान, प्रथम परिच्छेद, पृष्ठ 72 .
149. छेदन-भेदनादि धर्मों से युक्त एवं रक्त-मांस-मज्जा से समन्वित स्थूल शरीर ही औदारिक हैं ।
150. सर्वत्र विचरणशील रक्तादि रहित एवं विविध रूप धारण करने वाला शरीर वैक्रियिक कहा गया है ।
151. स्वच्छ, स्फटिक के समान निर्मल एवं सूक्ष्म आहारक शरीर होता है ।
152. तेजस पुद्गलों से निर्मित तथा उष्णताप्रद तैजस शरीर कहलाता है ।
153. ज्ञानादि को आवृत करने वाले कर्मों के समुदाय का परिणाम कार्मण शरीर है।
154. गृहस्थों के लिये उपादेय इन व्रतों का स्वरूप देखिये, "मङ्गलायतनम्" पञ्चम सोपान पृष्ठ-79-80
155. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच अणुव्रत ही महाव्रत कहलाते हैं।
156. जीव और शरीर को एक मानना बहिरात्मा है ।
157. जीव और शरीर का भेद ज्ञान होना अन्तरात्मा है ।
158. परमात्मा दो प्रकार की है - अर्हत और सिद्ध । इन श्रेणियों में आकर जीव भूख, प्यास, भय, रोगादि रहित शुद्ध-बुद्ध, घातिया कर्मों का नाशक होता है। सर्वत्र विचरणशील, एवं सम्यक्त्व गुणों से मण्डित रहता है । कर्मबन्धन से मुक्त आत्माएँ परमात्मा हैं ।
159. सम्यग्दर्शन के सातों तत्त्वों का विस्तृत विश्लेषण पं. पन्नालाल जी द्वारा विरचित "सम्यक्त्व-चिन्तामणि" ग्रन्थ में विद्यमान है । वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट वाराणसी से 1983 में प्रकाशित हुआ ।
160. यह स्पर्श, रस, गन्ध एवं वर्ण सहित हैं । मूर्तिक है, पूरण गलन स्वभावाला है। इसके अनेकों भेद हैं ।
161. विस्तृत विवेचन के लिए सम्यक्त्व-चिन्तामणि-पञ्चम मयूख द्रष्टव्य हैं ।
162. सम्यक्त्व चिन्तामणि का षष्ठ मयूख परिलक्षित कीजिए ।
163. विस्तृत विश्लेषण के लिए सम्यक्त्व-चिन्तामणि सप्तम मयूख परिलक्षित कीजिए।
164. वीरोदय, आचार्य ज्ञानसागर कृत, 128-129 तथा सर्ग में श्लोक नं.-20-21 । यह ग्रन्थ मुनि ज्ञासागर ग्रन्थमाला, ब्यावर (राजस्थान) से 1968 में प्रकाशित हुआ ।

卐卐卐

पञ्चम अध्याय

बीसवीं शताब्दी के जैन काव्यों का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन

प्रास्ताविक :

संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों के योगदान को रूपायित करने वलो प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पञ्चम अध्याय में सन्दर्भित शताब्दी में विधिवत् जैन काव्यों का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन प्रस्तुत है ।

इस शताब्दी में विरघित जैन संस्कृत काव्य में विविध प्रकार से साहित्यिक सौन्दर्य एवं शैलीगत वैशिष्ट्य विद्यमान है । काव्य शास्त्र की सभी विशेषताएँ इन ग्रन्थों में अभिव्यञ्जित हुई हैं । साहित्यिक अध्ययन के लिए इस शताब्दी के प्रत्येक रचनाकार की रचनाओं में निम्नलिखित बिन्दुओं को दृष्टिपथ में रखकर विवेचना की गई है -

1. रस, 2, छन्द, 3. अलङ्कार, 4. गुण, 5. ध्वनि, 6. काव्यशास्त्रीय विविध प्रसङ्ग, और 7. शैलीगत विशिष्ट्य ।

इस निष्कर्ष पर बीसवीं शताब्दी के संस्कृत जैन काव्यों का परीक्षण पूर्वक मूल्याङ्कन किया है । यथाक्रम वरिष्ठता और रचनाधर्मिता की प्रौढ़ता के आधार पर पूर्वोक्त तृतीय एवं चतुर्थ अध्यायों में विश्लेषित विन्यास क्रम को ही यहाँ इस पञ्चम अध्याय में भी स्वीकार किया गया है ।

सर्वप्रथम जैनमुनि आचार्य प्रवर ज्ञान सागर की रचनाओं का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन प्रस्तुत है -

आचार्य ज्ञानसागरजी की रचनाओं का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन :

आचार्य ज्ञानसागर जी की काव्यसाधना वैदुष्यपूर्ण एवं साहित्यिक तत्त्वों से मण्डित है । उनके समस्त काव्यों का अनुशीलन करने पर कहा जा सकता है कि कविदृष्टि की विशाल अनुभूति आपके चिन्तन में है । साहित्यिक दृष्टि से आ. ज्ञानसागर विरचित ग्रन्थों की समीक्षात्मक अध्ययन अग्रलिखित है -

साहित्यिक अध्ययन - साहित्यिक अध्ययन के अन्तर्गत रस, छन्द, अलङ्कार एवं वर्ण्यविषय का अध्ययन प्रस्तुत है । आचार्य श्री के संस्कृत भाषा में निबद्ध काव्यों ग्रन्थों की साहित्यिक समीक्षा प्रस्तुत है ।

रस - ''रस'' काव्य का आधारभूत तत्त्व है - साहित्य शास्त्र के विभिन्न आचार्यों ने उसे काव्य की आत्मा निरूपित किया है तथा रस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की है ।

रस की सत्ता काव्य में सर्वोपरि है । भारतीय काव्य शास्त्र में आठ रसों की गणना नाट्यशास्त्र के अनुसार की जाती रही, किन्तु आचार्यों ने शान्तरस को नवम रस के रूप

में स्वीकार करते हुए उसे भी समाविष्ट किया।[2] इस प्रकार काव्य में नौ रसों की अवस्थिति का उल्लेख मिलता है ।

भरतमुनि के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है । संसार में रति, हास, शोक, आदि भावों के जो कारण होते हैं, वे ही काव्य और नाटक में विभाव कहे जाते हैं - आलम्बन और उद्दीपन - ये विभाव के दो भेद हैं । अनुभाव हृदय के भाव को सूचित करने वाला शारीरिक और मानसिक विकार है - अनुभाव आठ हैं । व्यभिचारी भाव सभी दिशाओं में विचरण करने वाले और स्थायी मात्र में डूबने और उठने वाले होते हैं । इनकी संख्या 33 है ।

जो दूसरे भावों को अपने में समाविष्ट कर लेता है तथा विरुद्ध अविरुद्ध भावों से अविच्छिन्न नहीं होता, वह स्थायी भाव कहलाता है - आचार्य मम्मट उपर्युक्त भावों पर अपना दृष्टिकोण प्रकट करते हुए अभिव्यक्त करते हैं -

व्यक्त:स तैर्विभावाद्यै: स्थायी भावो रस: स्मृत: ।[3] अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से व्यंजित होने वाला स्थायीभाव ही रस है ।

आचार्य ज्ञानसागर जी के काव्यों में रसाभिव्यक्ति

(1) रस - आचार्य ज्ञानसागरजी कृत समस्त काव्य ग्रन्थ शान्त रस, प्रधान हैं। जयोदय महाकाव्य में शान्त रस के साथ ही शृंगार, वीर, रौद्र, हास्य, वीभत्स एवं वत्सल रसों की क्रमश: प्रस्तुति हुई है - वीरोदय में भी शान्त रस के अतिरिक्त क्रमश: हास्य, अद्‌भुत एवं वात्सल्य रसों का विवेचन हुआ है । श्री समुद्रदत्त चरित्र (भद्रोदय) में भी शान्त रस अङ्गी है और वीर, करुण, रौद्र एवं वात्सल्य का क्रमश: गौण रूप में निरूपण हुआ है । ''दयोदय'' चम्पू में प्रधान रस शान्त है किन्तु शृंगार, करुण एवं वात्सल्य भी क्रमश: आकर्षण के केन्द्र हैं । ''सम्यक्त्वसार शतक'' एवं ''प्रवचन सार'' ये दोनों कृतियाँ दार्शनिक विषयों पर रचित हैं, अत: इनमें आद्योपान्त शान्तरस की उपस्थिति होना स्वाभाविक है । आचार्य श्री के प्रमुख ग्रन्थों में विद्यमान रसों की क्रमश: सोदाहरण अभिव्यञ्जना दर्शनीय है ।

शान्त र स - निर्वेद स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस: ।[4]

1. वीरोदय - महाकाव्य वीरोदय महाकाव्य में शान्तरस आद्योपान्त विद्यमान है। भगवान् महावीर इसके नायक हैं । उनके हृदय में शम स्थायी भाव वातावरण के अनुसार उद्‌बुद्ध होकर शान्त रस को उपस्थित कर देता है । संसार की नश्वरता ने आलम्बन विभाव एवं स्वार्थ, मोह, तृष्णा आदि ने उद्दीपन विभाव का कार्य किया है । त्याग, तप, चिन्तन आदि अनुभाव हैं । इस प्रकार शान्तरस की इस काव्य में सृष्टि हुई है -

स्वीयां पिपासां शमयेत् परासृजा क्षुधां परप्राणविपत्तिभि: प्रजा ।
स्वचक्षुषा स्वार्थपरायणां स्थितिं निभालयामो जगतीद्धशीमिति ।
अजेन माता परितुष्यततीतिर्निगद्यते धूर्तजनै: कदर्थितम् ।
पिबेन्नु मातापि सुतस्य शोणितम् अहो निशायामपि अर्थमोदितम् ।।[5]

इस प्रकार यहाँ संसार की स्वार्थपरायणता तृष्णा एवं दुराचार का विवेचन है । इसी प्रकार इस काव्य में अनेक स्थलों पर भी शान्त रस की सृष्टि हुई है ।

2. जयोदय – महाकाव्य जयोदय में शान्तरस का सम्यक् विवेचन हुआ है । द्वितीय सर्ग, नवम सर्ग तथा पच्चीस से अठ्ठाईस इन तीन सर्गों में भी शान्तरस प्रमुखता के साथ अभिव्यञ्जित हुआ है । यहाँ एक उदाहरण के द्वारा शान्तरस की पुष्टि करना समीचीन है- प्रस्तुत उदाहरण में जयकुमार, रस के आश्रय हैं – संसार की नश्वरता आलम्बन विभाव, भगवान् ऋषभ देव का उपदेश उद्दीपन विभाव है तथा वनगमन, साधुवेष धारण करना दीक्षा लेना आदि अनुभाव हैं । हर्ष, दैन्य, निर्वेद आदि सञ्चारी भाव हैं।

सदाचार विहीनोऽपि सदाचारपरायणः ।
सुराजापि तपस्वी सन् समक्षोप्यक्षरोधकः ॥
हेलयैव रसाव्याप्तं भोगिनामधिनायकः ।
अहीन सर्ववत्तारत्कञ्चुकं परिमुक्तवान् ॥
मारवाराभ्यतीतस्सन्नधो नोदलतां श्रितः ।
निवृत्तिपथनिष्ठोऽसि वृत्तिः संख्यानवानभूत् ॥[6]

इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर जयकुमार के हृदय राम स्थायीभाव पूर्णतः जाग्रत होकर शान्त रस के रूप में निदर्शित हुआ है ।

3. सुदर्शनोदय – इस ग्रन्थ के विभिन्न सर्गों में यत्र-तत्र शान्त रस का विवेचन है। ग्रन्थ का अन्तिम सर्ग शान्तरस से ओत-प्रोत है – से. वृषभदास का दीक्षा ग्रहण, रानी अभयमती, कपिलाब्राह्मणी, देवदत्ता वैश्या आदि की पराजय के पश्चात् क्रमशः निर्वेदजनक वातावरण निर्मित हुआ है । सेठ वृषभदास और सुदर्शन शान्तरस के आश्रय हैं – मुनियों का उपदेश एवं उनका चिन्तन, सांसारिक दुराचार उद्दीपन विभाव हैं तथा संसार की नश्वरता एवं परिवर्तनशीलता आलम्बन विभाव हैं । वनगमन, साधुवेष धारण करना एवं दीक्षाग्रहण करना आदि अनुभाव हैं – निर्वेद, ग्लानि, घृति आदि संचारी भाव हैं – एक उदाहरण प्रस्तुत है-

सच्चिदानन्दमात्मानं ज्ञानी ज्ञात्वाङ्गतः पृथक् ।
तत्तत्सम्बन्धि चान्यच्च त्यक्त्वाऽऽत्मन्यनुरज्यते ॥[7]

यहाँ ज्ञानी के सत् (दर्शन) चित् (ज्ञान) और आनन्द (सुख) में लीन रहने और सांसारिक सम्बन्धों के प्रति निर्लिप्त होने का विवेचन है, जिससे शान्तरस की निष्पत्ति हुई है ।

4. श्री समुद्रदत्त चरित्र – इस ग्रन्थ का अनुशीलन करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि इसमें शान्तरस की प्रधानता है । रानी रामदत्ता द्वारा आर्यिका व्रत ग्रहण करना, राजा अपराजित का दिगम्बरत्व धारण करना, चक्रायुध द्वारा राज्यत्याग एवं वनगमन आदि ऐसे स्थल हैं जिनमें शान्तरस का वातावरण उपस्थित हुआ है और वहाँ इसका विवेचन भी उपलब्ध है । अर्थात् रानीरामदत्ता, भद्रमित्र, सिंहचन्द्र, राजा अपराजित, राजाचक्रायुध ऐसे पात्र हैं, जो शान्त रस के आश्रय हैं ।

जन्ममरण रूप चक्र, संसार की नश्वरता आदि आलम्बन विभाव हैं तथा मुनियों का उपदेश श्वत केश दिखाई देना आदि उद्दीपन विभाव हैं । राज्य त्याग, वनगमर, दिगम्बरत्व ग्रहण आदि अनुभाव हैं और निर्वेद, मति आदि संचारी भाव हैं । यहाँ एक उदाहरण द्वारा

शान्तरस की अभिव्यञ्जना दृष्टव्य है - यहाँ राजा चक्रायुध द्वारा संसार और जीवन की नश्वरता पर विचार किया गया है - वह राज्य भी त्याग देता है -

रुचिकरमुकुरे मुख मुच्छरन्नथ कदापि स चक्रपुरेश्वरः ।
कमपि केशमुदीक्ष्य तदासितं समवदमदूतमिवोदितम् ॥
ननु जरा पृतना यमभूपतेर्मम समीपभुवच्चितुमीहते ।
बहुगदाधिकृतेह तदग्रतः शुचि निशानमुदेति अदो ।
तरुणिमोपवनं सुमनोहरं दहति यच्छमनाग्निरतः पुरम् ।
भवति भस्मकलेव किलासकौ पलितनामतया समुदासकौ ॥[8]

इसी प्रकार षष्ठ, सप्तम, अष्टम, एवं नवम सर्गों में शान्तरस का बाहुल्य परिलक्षित होता है

5. दयोदय चम्पू - दयोदय चम्पू के द्वितीय लम्ब एवं सप्तम लम्ब में शान्तरस का विशेष वर्णन हुआ है । द्वितीय लम्ब में उपलब्ध दृश्य निम्नलिखित हैं -- मृगसेनः प्रत्युवाच, भो भद्रे, मार्गे गच्छताऽद्य मया दरिद्रेण निधिरिवैको महात्मा समवाप्तः । यस्य स्वरूपमिदं- समानसुख-दुःखः सन् पाणिपात्रो दिगम्बरः ।

समान सुख-दुःख सन् पाणिपात्रो दिगम्बर : ।
निःसङ्गों निष्पृहः शान्तो ज्ञानध्यानपरायणः ॥
सद्य श्मशानं निधनं धनं च, विनिन्दनं स्वस्य समर्चनं च ।
सकण्टकं पुष्पमयञ्च मच्च, समानमन्तःकरणे समच्चन् ॥
शरूयेयमुर्धो गगनं वितानं दीपो विधुर्मञ्जुभुजोपधानम् ।
मैत्री पुनीता खलु यस्य भार्या तमाहुख सुखिनं सदार्याः ॥[9]

यहाँ सुख-दुःख, भवन-श्मशान, स्तुति-निन्दा, धनी-निर्धनी-पुष्प कण्टक आदि के प्रति समान वृत्ति रखने वाले किसी निष्कांम तपस्वी का चारित्रिक मूल्याङ्कन किया गया है। इसी प्रकार सप्तम लम्ब में भी विवेचन है सोमदत्त ने एक मुनिवर को देखा और सत्कार करते हुए उनके प्रवचनों से प्रभावित होकर सभी परिग्रहों का त्याग कर दिया और दिगम्बर मुनि बन गया । विषा एवं वसन्तसेना शान्तरस के आश्रय हैं । यथार्थतत्त्व का ज्ञान आलम्बन विभाव, मुनिवर का उपदेश एवं उनकी वेशभूषा उद्दीपन विभाव हैं विरक्त होकर मुनि बनना अनुभाव है एवं निर्वेद, हर्ष इत्यादि सञ्चारी भाव हैं -

अहोसंसार कान्तारे चतुष्पथसमन्विते ।
मार्गत्रयन्तु संरुद्धमतीव दुरतिक्रमैः ॥

विषा - वसन्तसेने - एकमेवशाटकमात्रविशेषमार्याव्रतमङ्गींचक्रतुः ।[10] इस प्रकार दयोदय का अन्तिम भाग शान्तरस पूर्ण है ।

शृंगार रस :

यह रस वीरोदय,[11] जयोदय,[12] सुदर्शनोदय,[13] और दयोदय चम्पू,[14] में अनेक स्थलों पर आया है । यहाँ "जयोदय महाकाव्य" से अवतरित एक उदाहरण प्रस्तुत है - इसमें

स्वयंवर मण्डप में सुलोचना द्वारा लज्जावत अधोमुखी होकर जयकुमार के गले में वरमाला पहनाने और रोमाञ्चित होने का निरूपण है -

तस्योरसि कम्पकरा मालां बाला लिलेख नतवदना ।
आत्माङ्गी करणाक्षर मालामिव निश्चलामधुना ॥
सम्पुलकिताङ्ग यष्टेरुदृगीर्वाणीव रेजिरे तानि ।
रोमाणि बालभावाद् वरश्रियं द्रष्टुकुत्कानि ॥[15]

यहाँ जयकुमार और सुलोचना रस के आश्रय और आलम्बन विभाव हैं । स्वयंवर मण्डप, परस्पर सौन्दर्य दर्शन, एकान्त होना, इत्यादि उद्दीपन विभाव है । स्तम्भित, रोमाञ्चित होना लज्जा, हर्ष आदि संचारी भाव है । इस प्रकार यहाँ संयोग शृंगार है । आचार्य श्री के किसी भी ग्रन्थ में वियोग शृंगार का विवेचन नहीं हुआ है ।

अद्भुत रस :

यह रस प्रमुख रूप से वीरोदय,[16] सुदर्शनोदय[17] में ही विद्यमान है। यहाँ सुदर्शनोदय से एक पद्य उदाहरणार्थ निदर्शनीय है - अष्टम सर्ग में राजा की आज्ञानुसार जब चाण्डाल, सुदर्शन के गले में तलवार का प्रहार करता है तब वह प्रहार उसके गले की माला बनकर कोई कष्ट नहीं पहुँचाता इसे देखकर उपस्थित जनसमूह हतप्रभ रह जाता है -

कृथान्, प्रहारान् समुदीक्ष्य हाराधितप्रकाशस्तु विचारधारा ।
चाण्डाल चेतस्युदिता किलेतः सविस्मेये दर्शन सच्चयेऽतः ॥
अहो ममासिः प्रतिपद्यनाशी किलाहिराशी विष आः किमासात् ।
नृपालकल्पः सुतरामनल्प–तूलोक्ततुल्यं प्रति कोऽय कल्पः ॥[18]

यहाँ चाण्डाल और जनसमूह रस का आश्रय है । सुदर्शन आलम्बन विभाव हैं। तलवार के प्रहार का अप्रभावी होना उद्दीपन विभाव हैं । रोमाञ्च अङ्गुली दांतों पर रखना, एकटक देखना आदि अनुभाव और जड़ता, वितर्क, आवेग आदि सञ्चारी भाव हैं ।

हास्य रस :

यह रस वीरोदय, जयोदय,[19] काव्यों में भी प्राप्त होता है । उदाहरणार्थ वीरोदय के सप्तम मर्गा (जूब) में भगवान् महावीर के अभिषेक के लिए जाते हुए स्वर्ग में इन्द्र का ऐरावत हाथी सूर्य को कमल समझकर सूण्ड से उठा लेता है किन्तु उसकी उष्णता का अनुभव होने पर झटके के साथ छोड़ देता है । जिसे देखकर देवतागण हंसते हैं- यहाँ हास्य की छटा निदर्शित है -

अरविन्दधिया दधद्रविं पुनरैरावण उष्णसच्छविस् ।
धुतहस्त तयात्तमुत्यजन्ननु पद्धास्यं हो सुरव्रजम् ॥[20]

यहाँ देवगण हास्य रस के आश्रयहैं । ऐरावत हाथी आलम्बन विभाव तथा उसकी भ्रमपूर्ण चेष्टा उद्दीपन विभाव है । मुख का फैलना आदि अनुभाव तथा हर्ष, सञ्चारी भाव हैं ।

करुण रस :

यह रस वीरोदय[21] श्री समुद्रदत्त चरित्र[22], दयोदय चम्पू[23] में विभिन्न अवसरों पर निदर्शित है ।

श्री समुद्रदत्त चरित्र के चतुर्थसर्ग में सत्यघोष मरणोपरान्त सर्प का रूप पाकर राजा के भण्डार में पहुँचाता है और वहीं राजा सिंहसेन को डस लेता है, फलतः उनकी मृत्यु हो जाती है । शोकाकुल रानी रामदत्ता का मर्मस्पर्शी रुदन करुण रस की मार्मिक अभिव्यक्ति है -

कदापि राजा निज को शसद्यतः परीक्ष्य रत्नादि विनिर्व्रजन्नतः ।
निवद्धवैरेण च तेन भोगिनां वरेण दृष्टः सहसैव कोपिना ॥
मही समहेन्द्रोऽशनिद्योष सदद्विपः बभूव यच्छो कवशादिहाश्रिपत् ॥
उरः स्वकीयं मुहुरातुरा तदाऽपि रामदत्तात्मदशा वशंवदा ॥[24]

यहाँ रानी रामदत्ता रस का आश्रय है, मृतराजा सिंहसेन आलम्बन विभाव हैं । रोमाञ्च, वक्षस्थल पर आघात, अश्रुप्रवाह इत्यादि अनुभाव हैं और आवेग, मोह, स्मृति, ग्लानि, चिन्ता सञ्चारी भाव हैं ।

रौद्र रस :

यह रस जयोदय, सुदर्शनोदय, श्री समुद्रदत्तचरित्र में[25] निरूपित हैं।

यहाँ सुदर्शनोदय के अष्टमसर्ग का उदाहरण द्रष्टव्य है - चाण्डाल द्वारा सुदर्शन के गले पर किया गया तलवार का प्रहार निष्फल हो जाने के बाद राजा स्वयं क्रोधित होकर उसका वध करने को तत्पर है -

एवं समागत्य निवेदितोऽभूदेकेन भूपः सुतरां रुषोभूः ।

पाखण्डिनस्तस्य विलोकयामि तन्त्रयितत्त्वं विलयं नयामि ॥[26]

यहाँ राजा रस का आश्रय है, सुदर्शन आलम्बन विभाव है, तलवार के निष्प्रभावी हो जाने की सूचना उद्दीपन विभाव है । उग्रता, नेत्र लाल होना, सुदर्शन की ओर सक्रोध बढ़ना इत्यादि अनुभाव है और गर्व, अपर्ण, ईर्ष्या इत्यादि सञ्चारी भाव हैं ।

वीर रस :

यह रस जयोदय,[27] श्री समुद्रदत्त चरित्र[28] में विशेष स्थलों पर उपस्थित है - वहाँ जयोदय के अष्टम सर्ग से अवतरित उदाहरण में युद्ध का वर्णन होने से वीररस पल्लवित हुआ है -

यहाँ जयकुमार रस का आश्रय है, अर्ककीर्ति आलम्ब विभाव है, उसकी युद्धार्थ चेष्टाएँ, हठ, दम्भ, गर्वोक्ति उद्दीपन विभाव है, सेना परस्पर सम्मुख करना, रणभेरी बजाना आदि अनुभाव हैं । धृति, गर्व, तर्क, रोमाञ्च सञ्चारी भाव हैं - सम्पूर्ण अष्टमसर्ग वीर रस से ओतप्रोत है - यथा

चमूसमूहावथ मूर्तिमन्तौ परापराब्धौ हि पुरः स्फुरन्तौ ।
निलेतुमेकत्र समीहमानौ संजग्मतुर्गर्जनया प्रधानौ ॥[29]

वीभत्स रस :

इस रस का विवेचन जयोदय के अष्टमसर्ग में ही युद्ध में हताहतों, मृतपुरुषों का मित्रों द्वारा मांसभक्षण किये जाने का वर्णन वीभत्स रस की अभिव्यञ्जना है -

एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

चराश्च फूत्कारपराः शवानां प्राणा इवाभूः परितः प्रतानाः ।
पित्सन्सपक्षाः पिशिताशनायायान्तस्तदानीं समरो वरायाम ।।[30]

यहाँ रस का आश्रय एवं आलम्बन विभाव मृत पुरुष हैं, उनका मांस, रुधिर उद्दीपन विभाव है । मांस की खींचना, नोंच-नोंच कर खाना, चोंचमारना एवं देखने वालों को दुर्गन्ध वश नाक बन्द करना, थूकना आदि अनुभाव हैं तथा घृणा, आदि सञ्चारी भाव हैं ।

वात्सल्य रस :

इस रस की अभिव्यक्ति वीरोदय[31] जयोदय[32], सुदर्शनोदय[33], श्री समुदत्त चरित्र[34] एवं दयोदय चम्पू में सर्वतोभावेन हुई है । एक उदाहरण प्ररूपित है - दयोदय चम्पू के तृतीय लम्ब में वर्णन है कि गुणपाल से. से चालक सोमदत्त के वध का पारिश्रामिक लेकर भी उसे नहीं मारता - क्योंकि उसे बालक से स्नेह है -

अयन्तु तावद् बोधो बालःसहजतयैवोच्छिष्टा स्वाद नेन स्वोदरजलां
शमयितुं प्रवृत्तः सुलक्षणश्च प्रतिदृश्यतेऽतः कथं मारणीयत.मर्हतीति।

तत्पश्चात् जङ्गल से गोविन्द ग्वाल उसको अपने घर ले गया, उसकी पत्नी भी पुत्र पाकर प्रसन्न हो उठी, -

धनश्रीरषितेन मौक्तिकेन शुक्तिरिवादरणीयतां कामधेनुरिव
वत्सेन श्रीभरितस्तन तकुद्यामालेव वसन्तेन प्रफुल्लभावं समुद्रबेलेव
शशधरेणातीवोल्लास सद्भावभुदाज हार-हार लसित वक्षः स्थला।

प्रथम प्रसङ्ग में चाण्डाल आश्रय, सोमदत्त आलम्बन उसका सरल, सुशील सौन्दर्य उद्दीपन प्रहार न करना स्नेह से देखना अनुभाव और हर्ष, तर्क, रोमाञ्च, सञ्चारी भाव है। द्वितीय प्रसङ्ग में आश्रय, सोमदत्त आलम्बन ग्वाल का निःसन्तान होना उद्दीपन, स्नेह अनुभाव। हर्षादि सञ्चारी भाव हैं । -

छन्दो-वैविध्य :

आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने अपने काव्यामृत का रसास्वादन संस्कृत के प्रचलित एवं अप्रचलित सभी प्रकार के 46 छन्द प्रयुक्त करते हुए कराया है । इन छन्दों में 17 छन्द प्रचलित एवं 29 छन्द अप्रचलित हैं । उपजाति 61 कवि को सर्वाधिक प्रिय रहा है । इसके पश्चात् उनके काव्यों में क्रमशः अनुष्टुप्, वियोगिनी, रथोद्धता, मात्रात्मक, द्रुतविलम्बित, वंशस्थ, आर्या, स्वागता, वसन्ततिलका, उपेन्द्रवज्रा, मालभारिणी, शार्दूलविक्रीडित, इन्द्रवज्रा, भुजङ्गप्रयात आदि की प्रस्तुति है ।

यहाँ पर उनके काव्यों में प्रयुक्त प्रमुख छन्दों का सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत है।

वीरोदय महाकाव्य के 988 पद्यों के 18 प्रकार के छन्दों में निबद्ध किया है । जयोदय में 46 प्रकार के छन्द हैं, सुदर्शनोदय में 17 प्रकार के छन्द प्रयुक्त हैं, श्री समुद्रदत्त चरित्र 13 प्रकार के छन्दों में निबद्ध है। 'सम्यक्त्व सार शतकम्' अनेक प्रकार के छन्दों से संयुक्त है । 'प्रवचनसार' और 'मुनिमनोरञ्जन शतक' शार्दूलविक्रीडित छन्दों में आबद्ध ग्रन्थ हैं । उपजाति[35] यह छन्द आचार्य श्री को सर्वाधिक प्रिय था क्योंकि अपने काव्यों में उपजाति

छन्द को कवि ने सर्वाधिक प्रयुक्त किया है - वीरोदय[36], जयोदय, सुदर्शनोदय[37], श्री समुद्रदत्त चरित्र[38] ।

दयोदय चम्पू एवं सम्यक्त्व सार शतकम् में उपजाति छन्द का बाहुल्य मिलता है । छन्दशास्त्र के आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट इस छन्द के समस्त भेदों को कवि ने अपने काव्यों में कुशलता के साथ प्रयुक्त किया है ।[39] यह छन्द जयोदय काव्य के 758 पद्यों में वीरोदय के 503 सुदर्शनोदय के 138 श्री समुद्रदत्त चरित्र के 134 तथा दयोदय के 29 पद्यों में आया है। यहाँ उपजाति छन्द का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

यथा :

जिनालय स्फटिकसौधदेशे तारावतारच्छलतोऽप्यशेषे ।
सुपर्वभिः पुष्पगणस्य तन्त्रौ चितोषहारा इव भान्ति रात्रौ ।।[40]

यहाँ कुण्डलपुर के जिनालयों का रमणीय चित्रण है । वहाँ के मंदिरों की स्फटिक मणियों से सुयुक्त छतों पर नक्षत्रों का प्रतिबिम्ब मनोहारी होता है; जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे देवता पुष्पवर्षा कर रहे हों ।

यह छन्द प्रायः नगर वर्णन, सौन्दर्य वर्णन, युद्ध वर्णन, वसन्त वर्णन के प्रसङ्गों में मिलता है ।

अनुष्टुप् छन्द[४१]

यह छन्द जयोदय के 303 वीरोदय के 178 सुदर्शनोदय के 148 श्री समुद्रदत्त चरित्र के 46 दयोदय चम्पू के 108 तथा सम्यक्त्वसार शतकम् के अनेक पद्यों में प्रयुक्त हुआ है। प्रवचनसार कवि की अनूदित कृति है जिसमें प्राकृत भाषा की गाथाओं को संस्कृत भाषा में अनुष्टुप् छन्दों में निबद्ध किया है - यहाँ सम्यक्त्वसार शतकम् ग्रन्थ का एक पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

अनेन पुनरेतस्य घातिकर्म प्रणाशतः ।
आत्मनोऽस्तु च परमोपयोगी विश्वस्तुवित् ।।[42]

सभी ओर से विरक्त चित्त में विश्व के सभी पदार्थ अपने यथार्थ रूप में प्रतिबिम्बत होते हैं । प्रत्येक काव्य का एक-एक पद्य अनुष्टुप् छन्द के उदाहरणार्थ ।[43] प्रत्येक काव्य का एक

वियोगिनी छन्द :

'विषमे ससजा गुरुः समे सभरा लोऽथ वियोगिनी' ।[44] इस छन्द के प्रथम और तृतीय पाद में दो सगण, एक जगण और गुरु वर्ण होते हैं । इसे सुन्दरी छन्द भी कहते हैं । आचार्य श्री के सभी प्रमुख काव्यों में वियोगिनी छन्द अभिव्यञ्जित है । विवाहोत्सव[45], कन्या की विदाई, नदी वर्णन, पुत्रोत्पत्ति आदि प्रसङ्गों में इस छन्द के दर्शन होते हैं । एक पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

श्रियोधराऽथाष्टमदेवधाम-गता ततोऽस्या उदरं जगाम ।
परस्परस्नेहवशेन बाला जन्माभवन्नाम च रत्नमाला ।।[46]

इसमें श्रीधरा के अष्टमसर्ग में पहुँचकर देव होने का विवेचन है तथा उसके जीव का पुनः अतिवेग की रानी प्रियकारिणी के उदर से पुत्री के रूप में जन्म लेने का उल्लेख भी है । यह छन्द जयोदय के 275 वीरोदय के 42 सुदर्शनोदय के 35 श्री समुद्रदत्त चरित्र के 35 तथा दयोदय के 2 छन्दों में आया है ।

रथोद्धता :

रान्नराविह रथोद्धता लगौ ।[47]

इसके प्रत्येक पाद में रगण के परे नगण, रगण एक लघु और एक गुरु होते हैं। यह छन्द जयोदय के द्वितीय, सप्तम एवं एकविंशतितम सर्गों के 275 पद्यों में प्रयुक्त है । यहाँ दूतवार्ता, मुनि उपदेश[48], युद्धप्रयाण[49], नगरवर्णन[50] के प्रसङ्ग में दृष्टिगोचर होता है । वीरोदय और सुदर्शनोदय के एक-एक पद्य में रथोद्धता आया है - जयोदय काव्य से एक उदाहरण प्रस्तुत है -

प्रातरस्तु समये विशेषतः स्वस्थिताक्षमनसः पुनः सतः ।
देवपूजनमनर्थसूदनं प्रायशो मुखमिष्यते दिनम् ।।[51]

यहाँ मुनि के उपदेश में गृहस्थ को प्रातः कालीन देव पूजा की सार्थकता का सन्देश है ।

मात्रा समक :

''मात्रासमकं नभो त्यागान्तम् ।[52]

कवि ने इस छन्द का प्रयोग वनविहार[53], प्रेमवर्णन[54], सर्गसमाप्ति[55] आदि के प्रसङ्ग में किया है यह छन्द जयोदय के 266 वीरोदय के 12 सुदर्शनोदय के 17 श्री समुद्रदत्त चरित्र के 3 और दयोदय चम्पू के 4 पद्यों में प्रयुक्त हैं ।

यहाँ जयोदय का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

ललितालकां मूर्धभुवम स्यामुक्ता श्रितामुरजिसमस्याम् ।
अमृतमयं रदनच्छदबिम्बं लब्ध्वा चाम्बरचुम्बिनितम्बम् ।।[56]

यहाँ जयकुमार सुलोचना के परस्पर आलिंगन और प्रेम का विवेचन है ।

द्रुतविलम्बित :

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ ।[57]

इस छन्द के एक पाद में क्रमशः नगण, दो भगण एवं रगण होता है । यह 12 वर्णों के प्रति चरनवाला छन्द है ।

जयोदय के नवमें एवं पच्चीसवें सर्गों में इसका बाहुल्य है । इस ग्रन्थ के 194 वीरोदय के 9 सुदर्शनोदय के 4 श्री समुद्रदत्त चरित्र के 32 और दयोदय चम्पू को 4 पद्य द्रुतविलम्बित छन्द में निबद्ध हुए हैं । यह छन्द विशेष रूप से वैराग्य वर्णन[58] एवं भावपूर्ण दृश्यों[59] में उपस्थित हुआ है । श्री समुद्रदत्त चरित्र के सप्तमसर्ग[60] में यह विशेष रूप से प्रयुक्त है- एक उदाहरण निम्नाङ्कित है -

यमनुमारिवरेण समर्पितां तनुपुरीमनुमन्य वृथा हितां ।
अधिगतस्तदलङ्करणे मतिमचरमात्मगरादकसन्ततिं ।।[61]

इसमें शरीर रूप नगरी को यमराज बैरी द्वारा कैद बताया है फिर भी रात-दिन उसे सजाते हुए हम अनर्थ ही करते हैं ।

आर्या :

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदशः साऽऽर्या ।।[62]

यह छन्द जयोदय काव्य के 1930, वीरोदय के 26, तथा सुदर्शनोदय एवं दयोदय के एक-एक पद्य में प्रयुक्त हुआ है । कवि ने आर्या छन्द के भेद-प्रभेदों को भी प्रयुक्त किया है, यह छन्द प्रायः स्वयंवर वर्णन[63] स्वप्न विवेचन[64] को प्रसङ्ग में निदर्शित है।

वीरोदय के चतुर्थसर्ग का एक पद्य उदाहरणार्थ उद्धृत करना समीचीन है -

कल्याणाभिषवः स्यात् सुमेरुशीर्षेऽथ यस्य सोऽपि वरः ।
कमलात्मनः इत विमलो गजैर्यथा नारूपतिमिरम् ।।[65]

सुमेरू पर्वत पर इन्द्र द्वारा तुम्हारे पुत्र का अभिषेक होगा, क्योंकि इसकी सूचना आपको स्वप्न में दिखे हाथियों द्वारा अभिषिक्त लक्ष्मी से मिलती है ।

वंशस्थः :

वदन्ति वंशस्थ बिलं जतौ जरौ ।[66]

इस छन्द के एक पाद में क्रमशः जगण, तगण, जगण, रगण होते हैं ।

जयोदय काव्य के 153 वीरोदय के 25 सुदर्शनोदय तथा दयोदय के चार-चार पद्यों में वंशस्थ छन्द आया है। श्रीसमुद्रदत्त चरित्र के 36 पद्यों में वंशस्थ छन्द के दर्शन होते हैं-

एक उदाहरण प्रेक्षणीय है -

महोदयैनोदितमर्हता तु वदामि तद्वच्छृणु भव्य जातु ।
यदस्ति जातेर्मरणस्य तत्त्वं यथा निवर्तेत तयोश्च सत्त्वम् ।।[67]

इसमें जीव के जन्म और मरण को दूर करने के लिए दिव्यज्ञान के धारक अर्हन्त भगवान् द्वारा बताये गये उपाय रूप ज्ञान की समीक्षा का उल्लेख है ।

बसन्ततिलका :

ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः ।[68]

यह छन्द जयोदय के अष्टादश सर्ग में प्रभात वर्णन[69] के प्रसङ्ग में मुख्यरूप से प्रयुक्त है । वीरोदय के द्वाविंशति सर्ग में उपसंहार[70] के समय उपस्थित है : सुदर्शनोदय के 15 श्रीसमुद्रदत्त चरित्र के 2 और दयोदय के 5 पद्यों में वसन्ततिलका वृत्त दृष्टिगोचर हुआ है।

कालभारिणी :

विषमे ससजा यदा गुरु चेत् सभरा येन तु काल भारिणीयस[71]

यदि विषमपाद में दो मगण, जगण तथा दो गुरु हों और समपाद में सगण, भगण, रगण, यगण हों तो उसे कालभारिणी छन्द समझें । यह छन्द केवल जयोदय के (द्वादश सर्ग में) पद्यों में 141 बार आया है - पाणिग्रहण एवं बारात वर्णन[72] के सन्दर्भ में कालभारिणी की उपस्थिति प्रेक्षणीय है - यहाँ जयकुमार के हाथ में सुलोचना अपना दाहिना हाथ सौंपती है-

हृदयं यदयं प्रति प्रयाति सरलं सन्मम नाम मञ्जुजातिः ।
प्रतिदत्तवती सतीति शस्तं तनया तावदवाममेव हस्तम् ॥[73]

उपेन्द्रवज्रा :

उपेन्द्र वज्रा प्रथमे लघौ सा ।[74]

इन्द्रवज्रा के ही प्रथम अक्षर को लघु कर देने से उपेन्द्रवजा छन्द बन जाता है। यह छन्द जयोदय के 96 वीरोदय के 34 सुदर्शनोदय के 12 श्री समुद्रत्त चरित्र के 16 एवं दयोदय के एक पद्य में उपलब्ध है ।

इन्द्रवज्रा[७५] :

यह छन्द जयोदय के 35 वीरोदय के 54 सुदर्शनोदय के 10 श्री समुद्रदत्त चरित्र के 13 तथा दयोदय चम्पू में एक पद्य में प्रयुक्त हुआ है।

शार्दूलविक्रीडित[७६] :

यह छन्द जयोदय के 64 वीरोदय के 38 सुदर्शनोदय के 20 पद्यों में प्रयुक्त हुआ है ।

''मुनिमनोरञ्जन शतकम्'' में शार्दूलविक्रीडित छन्द का आद्योपान्त प्रयोग हुआ है।

नैषधकार के समान ही आचार्य श्री ने अपने प्रमुख काव्यों में सर्गान्त में अपना परिचय एवं प्रशस्ति शार्दूलविक्रीड्रित छन्द के माध्यम से प्रस्तुत की है ।[77] छन्द परिवर्तन एवं सर्ग का नामाङ्कन करने में भी इस छन्द का प्रयोग किया है - यहाँ दयोदय चम्पू से एक उदाहरण प्रस्तुत है - इस ग्रन्थ के सर्गान्त का प्रत्येक पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में ही है -

श्रीमान् श्रेष्ठि चतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयः
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
तत्प्रोक्ते प्रथमो दयोदयपदे चम्पू प्रबन्धे गतः
लम्बो यत्र यतेः समागम वशाद्धिंस्त्रोऽप्यहिंसां श्रितः ।[78]

इस प्रकार यहां कवि के माता-पिता और वर्णित सर्ग की कथा का सङ्केत मात्र दिया गया है कि प्रथम लम्ब में मृगसेन धीवर ने अहिंसा व्रत स्वीकार किया ।

उक्त छन्दों के अतिरिक्त भी आचार्य श्री कृत काव्यों के विविध सर्गों में कोई-कोई पद्य भुजङ्ग प्रयात, मालिनी, इन्द्रवज्रा, वैतालीय, पुष्पिताग्रा, पृथ्वी, तोटक, दोधक, स्रग्धरा, हरिगीतिका, शिखरिणी, अरल, दोहा, रोला आदि विविध छन्दों में पाये जाते हैं । किन्तु इन छन्दों का बहुत कम प्रयोग किया है । इसलिए केवल नामोल्लेख ही उपयुक्त है ।

आचार्य श्री की सङ्गीत प्रियता :

ताल एवं रागयुक्त काव्य में गेयता आ जाती है । लयबद्धता साहित्य और सङ्गीत को जोड़ने का प्रमुख साधन है । आचार्य श्री ज्ञानसागर के काव्यों में भी देशीभाषा में प्रसिद्ध रागयुक्त

गीत प्राप्त होते हैं । इनके ग्रन्थों में प्राप्त गीतों की संख्या 37 है । जयोदय के विंशातितम सर्ग में चार गीत एवं षञ्चविंशतितम सर्ग में एक गीत विद्यमान है । दयोदय चम्पू के सप्तम लम्ब में एक गीत है । सुदर्शनोदय के पञ्चम सर्ग में आठ, षष्ठ सर्ग में नौ, सप्तम सर्ग में आठ एवं नवम सर्ग में तीन गीत अभिव्यञ्जित हैं । इन काव्यों में प्राप्त गीत, काफी होलिका राग[79] सारङ्ग राग[80], श्याम-कल्याण राग[81], दैशिक सौराष्ट्रीय राग[82] और कव्वाली राग में निबद्ध हैं ।[83]

सङ्गीत के क्षेत्र में उक्त प्रभाती, काफी होलिका, सारङ्ग, श्याम कल्याण रागों का अत्यधिक महत्त्व है । दैशिकराग भी सौराष्ट्र क्षेत्र का प्रमुख राग है जबकि रसिकराग ब्रजभूमि का बहुचर्चित और प्रधान राग है । कृष्ण की रास लीलाएँ इसी से सम्बद्ध है । उर्दू भाषाप्रिय समाज में कब्बाली मनोरंजन का प्रधान साधन है । कवि ने सङ्गीत शास्त्र के नियमानुसार ही इन रागों का समय निर्धारित किया है । उनके जयोदय, दयोदय में प्राप्त रागों की शैली का ।

आचार्य ज्ञान सागर महाराज के काव्यों में आलङ्कारिक छटा:

बीसवीं शती के प्रतिष्ठित महाकवि ज्ञानसागर जी महाराज ने अपनी रचनाओं में अलङ्कारों का विवेचन किया है । आपके द्वारा प्रणीत काव्यों में प्रमुख रूप से अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास निदर्शना, स्वभावोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, असङ्गति, प्रतीप, दीपक, विभावना, एकावली आदि अलङ्कारों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन हुआ है । तथापि आचार्य श्री को अनुप्रास, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति से विशेष लगाव रहा है । यहाँ अनेक ग्रन्थों में प्रयुक्त मुख्य-मुख्य अलङ्कारों का सोदाहरण निरूपण प्रस्तुत हैं -

अनुप्रास :

अनुप्रास: शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्[84] । आचार्य श्री ने जयोदय[85], वीरोदय[86], सुदर्शनोदय[87], श्री समुद्रदत्त चरित्र[88], दयोदय चम्पू[89], सम्यक्त्वसारदशतक[90] और मुनि मनोरञ्जन शतक आदि काव्य-ग्रन्थों में अनुप्रास अलङ्कार का सर्वाङ्गपूर्ण निरूपण किया है - छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास अन्त्यानुप्रास, लाटानुप्रास की अभिव्यञ्जना भी यत्र-तत्र परिलक्षित होती है - यहाँ एक उदाहरण निदर्शित है -

सतामहो सा सहजेन शुद्धिः, परोपकारे निरतैव बुद्धिः ।
उपद्धतोऽप्येष तरू रसालं, फलं श्रषत्यङ्गभुरो त्रिकालम् ।[91]

यहाँ "स" वर्ण की तीन बार आवृत्ति है, तथा प्रथम पंक्ति के अन्तिम वर्ण की आवृत्ति द्वितीय पंक्ति के अन्तिम वर्ण में और तृतीय पंक्ति के अन्तिम वर्ण में की आवृत्ति चतुर्थ पंक्ति के अन्तिम वर्ष में हुई है । इसलिए प्रस्तुत पद्य में वृत्थानु प्रास और अन्त्यानुप्रास की छटा उपस्थित हुई है ।

लाटानुप्रास की छटा रमणीय है -

मनोरमाधिपत्वेन ख्यायाय तरुणायते
मनोरमाधिपत्वेन ख्यायाय तरुणायते ।[92]

मनोरमा के प्रति रूप में विख्यात युवक (सुदर्श) को तेरा मन लक्ष्मी के पति के रूप में प्रसिद्ध करने के लिए तरुण हो रहा है ।

यहाँ दोनों पंक्तियाँ समान हैं किन्तु प्रयोजन में भिन्नता होने से लाटानुप्रास विद्यमान है ।

यमक :

अर्थे सत्यर्थ भिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः ।[93]

आचार्य ज्ञानसागर के काव्यों में यमक के भेद-प्रभेद एकदेशज आद्य यमक[94], मुखयमक[95], युग्मयमक[96] पुच्छयमक[97], अन्त्ययमक[98] के अनेक उदाहरण बिखरे हुए हैं। जयोदय के सर्ग 24 के पद्य 55 में एकदेशज आद्य यमक, वीरोदय के सर्ग19 का बारहवें पद्य में मुखयमक, जयोदय के सर्ग 18 का अडसठवें पद्य में युग्मयमक सुदर्शनोदय के सर्ग 3 के उनतालीसवें पद्य में युग्म यमक सुदर्शनोदय के ही सर्ग 3 के अड़तीसवें पद्य में एकदेशज अन्त्य यमक निदर्शित है ।

श्लेष :

श्लिष्टैः पदैरनकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते ।[99]

जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, श्रीसमुद्रदत्त चरित्र दयोदय आदि काव्यों में श्लेष अलंकार के अनेक प्रयोग किये हैं । वीरोदय से एक उदाहरण प्रस्तुत है -

एतस्य वे सौध पदानि पश्य सुपालय त्वं कथमूर्ध्वमस्या।
इतीव वप्रः प्रहसत्यजस्त्रं शृङ्गाग्ररत्न प्रभुवद्रुचिन्वक् ॥

हे सुरालय (देवभवन/शराबघर) तुम इस कुण्डलपुर के सौध पदों (चूने के भवन/मृतस्थान) को निश्चय से देखो, फिर तुम इनके ऊपर क्यों अवस्थित हो । मानों यही कहता हुआ और अपने शिखरों के अग्रभाग पर ये लगे हुआ रत्नों से उत्पन्न हो रही कान्ति रूप माला को धारण करने वाला उस नगर का कोट निरन्तर देव भवनों की हंसी कर रहा है।

इस पद्य में आये सौध पदानि एवं सुरालय शब्दों में श्लेष से दो अर्थ व्याप्त है। जयोदय[100], श्रीसमुद्रदत्त चरित्र[101], सुदर्शनोदय[102], दयोदय[103] में अनेक स्थलों पर श्लेष अलंकार है ।

उपमा - उपमा अलङ्कार के प्रत्येक काव्य में शताधिक पद्य विद्यमान हैं ।

जयोदय[104], वीरोदय[105], सुदर्शनोदय[106], दयोदय[107], श्रीसमुद्रदत्त चरित्र[108], के प्रत्येक सर्ग में इस अलंकार की छटा दृष्टिगोचर होती है। सम्यक्त्व शतक का एक उदाहरण प्ररूपित है -

दुग्धे घृतस्येवतसदन्ययथात्वं संविद्धि सिद्धि प्रिय मोहदात्वं ।
इहात्मनः कर्मणि संस्थितस्य सूपायतः सति तथा त्वमस्य ।[109]

अर्थात् जिस प्रकार दुग्ध में विद्यमान घृत को मन्थन करके दुग्ध में विद्यमान से पृथक् करते हैं, उसी प्रकार कर्मलिप्त आत्मा को विशिष्ट उपायों के द्वारा कर्मयुक्त कर सकते हैं।

यहाँ घृतयुक्त दुग्ध उपमेय एवं कर्मयुक्त आत्मा उपमान है । यथा, तथा वाचक शब्द हैं जिनसे उपमा की पुष्टि हुई है इस प्रकार ज्ञान, दर्शन के प्रसंङ्ग में भी कवि ने उपमा का प्रयोग करके इसके प्रति अपना अनुराग दिखाया है-पूर्णोपमा[110], मालोपमा[111], भी पदे-पदे मिलते हैं ।

रूपक :

रूपक यह अलङ्कार भी जयोदय[112], वीरोदय[113], सुदर्शनोदय[114], श्रीसमुद्रदत्त चरित्र[115], दयोदयचम्पू[116], सम्यक्त्व शतकम्[117] इत्यादि के प्रत्येक सर्ग के पद्यों में प्रचुरता से प्रयुक्त हुआ है । यहाँ रूपक अलङ्कार के उदाहरण के रूप में एक पद्य द्रष्टव्य है -

स्वयंवर सभा में अर्ककीर्ति के पहुंचने पर महाराज अकम्पन उनकी अगवानी करते हुए कहते हैं - कि मेरे यौवन रूपी नदी की प्रथम तरंग मेरी पुत्री का यह स्वयंवर आपके नयन रूप मीनों का प्रसन्न करने वाला हो -

यौवनादिव सरिद्भव दुर्मे– स्यात्स्वयंवर विधिर्दुहितुर्मे ।
श्रीमतांनयनमीनं युगस्यानन्द हेतु रियमत्र समस्या ।।[118]

यहाँ यौवन, नयन उपमेय हैं जिनका क्रमशः नदी एवं मीन उपमानों के साथ अभद स्थापित किया गया है इसलिए रूपक अलङ्कार है ।

उत्प्रेक्षा :

सम्भावना स्यादुत्प्रेक्षा[119] प्रस्तुत अलङ्कार जयोदय[120], वीरोदय[121], सुदर्शनोदय[122], श्री समुद्रचरित्र[123] प्रभृति समस्त काव्यों के प्रत्येक सर्ग में विद्यमान है । दयोदय चम्पू[124], में भी उत्प्रेक्षः अलङ्कार परिलक्षित होता है । यहाँ कवि की एक सुकुमार कल्पना अधोलिखित पद्य में समाहित है - कि विधाता ने तीनों लोकों का सार ग्रहण करके सुलोचना का निर्माण किया इसलिए त्रिवली के ब्याज (बहाने) से इसके उदर पर उसने तीन रेखाएँ कर दी हैं-

लंगूहत्रं सारं जगतां तथात्रऽसौ निर्मिसासीडिधिना विधात्रा ।
इतीव क्लृप्ता हत्रुदरेऽपि तेन तिस्त्रोऽपि रेवास्त्रिबलिच्छलेना ।[125]

यहाँ उपमेय की उसके समान उपमान के साथ तादात्म्य संभावना है । अतः उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग है ।

अपन्हुति :

प्रकृतं यन्निषध्यान्थत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः ।[126]

कवि ने अपने काव्यों में अत्यन्त चमत्कार के समय अपन्हुति अलङ्कार की प्रतिष्ठा की है - जयोदय[127], वीरोदय[128], सुदर्शनोदय आदि में यह अलंकार अत्यधिक पद्यों में निदर्शित है । श्री समुद्रदत्त चरित्र के अद्योलिखित पद्य में अपन्हुति की छटा अत्यन्त आकर्षक है - जिसमें अपराजित छटा राजा ने ऋषि की पूजा की है - इनके द्वारा समर्पित पुष्पांजलि के पास मण्डराते हुए भ्रमरों के बहाने वहाँ के समस्त पाप भी विलीन हो गये-

समुद्रगमद्र भृगराम देशादुपात्त पापोन्वयसम्विलोपी ।
यस्मै किलाराम वरेण हर्षवारेण पुष्पाञ्जलिरर्पितोऽपि ।।[129]

इसमें कवि ने पुष्पों में विद्यमान भ्रमरों के मण्डराने का निषेध करके पाप समूह के विलीन होने रूप अप्रस्तुत की स्थापना की है इसलिए अपह्नुति अलंकार है ।

विरोधाभास :

विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः ।[130]

विरोध न होने पर भी ऐसा वर्णन किया जाए कि विरोध की प्रतीति होने लगे, वह विरोधभास कहलाता है ।

जयोदय[131], सुदर्शनोदय[132], और दयोदय चम्पू[133], में विरोधाभास अलङ्कार से ओत-प्रोत पद्य दृष्टिगोचर होते हैं ।

''सम्यक्त्वसार शतकम्'' का यह पद्य विरोधाभास की प्रतीति कराता है -

अदृश्यभावेन निजस्य जन्तुर्दृश्ये शरीरे निजवेदनन्तु ।
दधत्तदुद्योतन के ऽनुरज्य विरज्यतेऽन्यत्राधि या विभज्य [134]

अर्थात् इस दृश्यमान (शरीर) में जो द्रष्टा (शरीरी आत्मा) है वह अदृश्य है । देहनिष्ठ व्यक्ति अनुकूल पदार्थों पर अनुरक्त होता है और प्रतिकूल के संयोग होने पर विरक्त होता है।

यहाँ पर संसार में दृश्यमान शरीर है किन्तु वह द्रष्टा नहीं है एवं आध्यात्मिक के रूप में आत्मा ही यथार्थ द्रष्टा है परन्तु वह दृश्यमान नहीं है । इस प्रकार परस्पर विरोध प्रतीत होने से विरोधाभास अलङ्कार है ।

दृष्टान्त[१३५]

यह अलङ्कार जयोदय[136], वीरोदय[137], सुदर्शनोदय[138], दयोदय[139], सम्यक्त्वसार शतकम्[140], श्रीसमुद्रदत्त चरित्र[141] इत्यादि ग्रन्थों में यन्त्र-तन्त्र परिलक्षित होता है । एक उदाहरण से इसे सुस्पष्ट किया जाना प्रसंगोचित्त है -

सेवकस्य समुत्कर्षे कुतोऽनुत्कर्षतां सतः
वसन्तस्य हि माहात्म्यं तरूणां या प्रफुल्लता ॥[142]

अर्थात् सेवक की उन्नति में स्वामी का अपमान नहीं होता क्योंकि वृक्षों पर पुष्पों का आगमन बसन्त की महत्ता को प्रकट करता है । यहाँ उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य में उपमेय, उपमान, साधारण धर्म का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव झलक रहा है । अतः दृष्टान्त अलंकार है ।

अर्थान्तरन्यास[१४३]

जयोदय[144], वीरोदय[145], श्री समुद्रदत्त चरित्र[146], सुदर्शनोदय, दयोदय इत्यादि काव्यों में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार भी बहुतायत में है । वीरोदय का एक पद्य उदाहरणार्थ दर्शनीय है -

एवं सुविज्ञान्तिमभीप्सुमेतां विज्ञाय विज्ञारुचिवेदने ताः ।
विज्ञमुः साम्प्रतमत्र देण्यः मितो हि भूयादगदोऽपि सेव्यः ॥[147]

इस प्रकार प्रश्नोत्तर के समय ही विज्ञ देवियों ने माता को विश्राम करने की इच्छुक जानकर प्रश्न पूंछना बन्द कर दिया क्योंकि औषधि परिमित ही सेवनयोग्य होती है । इस पद्य में सामान्य कथन का समर्थन विशेष कथन से किया गया है, अतः अर्थान्तरन्यास की प्रस्तुति हुई है ।

इसके साथ ही आचार्य श्री के ग्रन्थों में मुख्यतया परिसंख्या[148], आतिशयोक्ति[149], भ्रान्तिमान[150], समासोक्ति[151], निदर्शना[152], स्वभावोक्ति[153], वक्रोक्ति[154], आदि अलङ्कार सन्निविष्ट हुए हैं ।

चित्रालङ्कार

तच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुता ।[155]

आचार्य श्री के काव्यों का परिशीलन करने से ज्ञान हुआ है कि अधोलिखित छः चित्रबन्धों का उनमें प्रयोग किया गया है (अ) चक्रबन्ध (ब) गोमूत्रिकाबन्ध (स) यानबन्ध (द) पद्मबन्ध (इ) तालवृन्त बन्ध (फ) कलशबन्ध ।

(अ) चक्रबन्ध

इसका प्रयोग ''जयोदय'' महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग उपान्त्य पद्य में हुआ है । इस प्रकार 28 चक्रबन्ध बनाये गये हैं जिनके माध्यम से कथानक की प्रमुख घटनाओं का संकेत मिलता है । यहाँ केवल चक्र बन्धों के क्रमानुसार नाम ही निदर्शित किये गये हैं । तथा एक चक्रबन्ध को सचित्र समझना भी उपयुक्त है -

जयमहीपतेः साधुसदुपारित चक्रबन्धः[156] नागपतिलम्ब चक्रबन्ध[157] स्वयंवर सोमपुत्रागम[158], स्वयंवर मति[159], स्वयंवरारम्भ[160], नृपपरिचय वरमालोप[161], समरसंचय[162], अर्तपराभव[163], भरतलम्बन[164], करग्रहारम्भ[165], सुदृशःकथन[166], करोपलम्बन[167], जयोगग्डागत[168], सरिदवलम्ब[169], निशासमागम[170], सोमरसपान[171], सुरतवासना[172], विकृतभात नभशा[173], शान्तिसिन्धुस्तव[174], भरतवन्दन[175], पुरमाप जय[176], मिथःप्रवर्तनम्[177], दम्पति विभवा[178], गजपुरनेतुस्तीर्थ विहरणम[179], जयसद्भावना[180], निर्गमनविध[181], जयकुपतये सद्धर्म देशना[182], एवं तपः परिणाम चक्रबन्ध[183]

सरिदवलम्ब चक्रबन्ध

''सकलमपि कलत्रमनुमानकम् लिखित ममूक्तं ललितमतिबलम् ।
दधत्स्वपदवलमुचितार्थभवम, बहु सञ्चरितदमवलं भुवः ।।[184]

इस चक्रबन्ध के अरों में विद्यमान प्रथम अक्षरों को क्रमशः पढ़ने से सरिदवलम्ब'' शब्द बनता है । इस सर्ग में कवि ने जयकुमार के नदी विहार का चित्रण किया है । जिसका सङ्केत भी इसमें है ।

उक्त सभी चित्र बन्धों में पाण्डित्य प्रदर्शन और सर्गानुसार कथा का संकेत प्राप्त है।

''वीरोदय'' महाकाव्य में कवि ने गौमूत्रिका बन्ध, यानबन्ध, पद्मबन्ध एवं तालवृन्तबन्ध नामक चार चित्रालंकारों को प्रयुक्त किया है । इनके उदाहरण क्रमानुसार प्रस्तुत हैं -

गौमूत्रिकाबन्ध

(वीरोदय 22/37)

रमयन् गमयत्वेष वाङ्मये समयं मनः ।
न मनागनयं द्वेष धाम वा समयं जनः ॥

इसमें श्लोक की प्रथम पंक्ति के पहले, तीसरे, पांचवें, सातवें, नवें, आदि विषम अक्षरों को चित्र की प्रथम पंक्ति में तथा श्लोक की द्वितीय पंक्ति के पहले, तीसरे आदि विषम अक्षरों को चित्र की तीसरी पंक्ति में रखा जाता है और श्लोक की दोनों पंक्तियों के बीच के दूसरे, चौथे, छठे, आठवें आदि सम अक्षरों को क्रमशः द्वितीय पंक्ति में रखा जाता है। आशय यह कि श्लोक के जिन अक्षरों को लिया जाता है उनसे चित्र की प्रथम और तृतीय

पंक्ति तैयार बनती है और छोड़े गये अक्षरों से चित्र की द्वितीय पंक्ति तैयार होती है ।इस सम्बन्ध में श्लोक के दोनों पंक्तियों के सम अक्षर एक ही होते हैं ।

यानबन्ध

(वीरोदय 22/38)

न मनोद्यमि देवेभ्योऽर्हद्भ्यः संव्रजतां सदा ।
दासतां जनमात्रस्य भवेदप्पद्य नो मनः ॥

श्लोक को वितान और मण्डप में लिखने के पश्चात् स्तम्भों और मञ्च में लिखा जाता है । उक्त श्लोक के प्रथम दो चरण मण्डप और वितान में है तथा तृतीय चरण दाहिने स्तम्भ से मञ्च की ओर और चतुर्थ चरण मञ्च से होता हुआ बांये स्तम्भ में लिखा गया है ।

पद्यबन्ध

(वीरोदय, 22/39)

"विनयेन मानहीन विनष्टैनः पुनरस्तु नः ।
मुनये नमनस्थानं ज्ञानध्यानधनं मनः ॥"

इस कमल में पंखुड़ियाँ और पराग विद्यमान हैं इसमें एक अक्षर पराग के रूप में और शेष अक्षर पंखुड़ियों के रूप में आते हैं । प्रस्तुत उदाहरण में "न" अक्षर पराग के रूप में और शेष सभी पंखुड़ियों के रूप में आये हैं । इन्हें अनुलोभ-प्रतिलोभ विधि अर्थात् पंखुड़ी से पराग में और पराग से पंखुड़ी में पढ़ा जाता है ।

तालवृन्त बन्ध

(वीरोदय 22/40)

"सन्तः सदा समा भान्ति मर्जूमति नुतिप्रियाः ।
अयि त्वयि महावीर, स्वीता कुरु मर्जूमयि ॥"

इस बन्ध में श्लोक को क्रमशः दण्ड में रखते हुए दण्ड एवं तालवृन्त को सन्धि में ले जाते हैं उसके बाद तालवृन्त में घुमाया जाता है ।

कलशबन्ध

परमागमलम्बेन नवेन सन्नयं लप ।
यन्न सन्नरमङ्गं मां नयेदितिन मे मतिः ॥

(सुदर्शनोदय 9/79)

इस बन्ध में कलश की आधार शिला से श्लोक को प्रारम्भ करते हुए कलश के बीच में दांयी और पढ़ते हुए शीर्ष स्थान तक पहुँचते हैं। पुनः बीच के बांयी ओर से पढ़कर पुनः आधार शिला पर पहुँचकर फिर बीच में और तत्पश्चात् कलश के बाहरी भाग में पढ़ा जाता है ।

भाषा एवं शैली

आचार्य श्री ज्ञानसागर के काव्यों में साहित्यक लौकिक संस्कृत भाषा प्रयुक्त हुई है। भाषा में आलङ्कारिकता भी है । संस्कृत के साथ ही उर्दू एवं फारसी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । शब्दों के सन्दर्भ दीजिए -

इस प्रकार उर्दू मिश्रित हिन्दी का प्रभाव कवि की भाषा में है । ''जयोदय'' महाकाव्य की भाषा प्रौढ़ मधुर एवं आलङ्कारिक 8 छटा से ओत-प्रोत है । वीरोदय, सुदर्शनोदय, दयोदय, श्री समुद्रदत्त चरित्र, सम्यक्त्वसार शतक्म्, प्रभृति ग्रन्थों की भाषा प्रसङ्गानुकूल सरल, सरस, और सशक्त है। श्री समुद्रदत्त चरित्र में कहीं-कहीं भाषा शैथिल्य के दर्शन भी होते हैं । किन्तु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आचार्य श्री ने विषय वर्णन के अनुरूप एवं देश काल को दृष्टिगत करते हुए भाषा का प्रयोग किया है । उनकी भाषा में सुकुमारता के साथ ही भयङ्करता भी प्रसङ्गानुकूल विद्यमान है । भाषा में मुहावरे और लोकोक्तियों की उपस्थिति भी यत्र-तत्र हुई है । यथा-नाम्बुधौ मकरतोऽरिता हिता[185] (जल में रहकर मगर से बैर)

वंशे नष्टे कुतो वंश-वाद्य स्यास्तु समुद्भवः ।[186]

न रहे बांस न बजे बांसुरी । काल करे तो आज कर ... की पुष्टि भी की है ।[187] भाषा में प्रवाहशीलता है । किसी भी घटना विशेष को सुरम्य भाषा में आबद्ध करके प्रस्तुत करना महाकवि के शिल्पचातुर्य का प्रमाण है । सुदर्शनोदय में मिट्टी का पुतला गिर जाने से टूट जाने पर द्वारपाल के समक्ष दासी का न नाटकीय विलाप भाव और भाषा के सजीव समन्वय का अङ्कन है -

अरे राम रे ।

अहं हतानिर्मिर्मितं हता चापि राज्ञी हतावत कुधित्रम निषध
मया किंम विधेयं करो तूत सा साम्प्रतं चाखेवय द तु ।[188]

भाषा में तुकान्तता, सङ्गीतात्मकता, आलंकारिकता एवं गाम्भीर्य भी विद्यमान है । दयोदय चम्पू में पद्य के अतिरिक्त गद्य शैली में भी भावानुकूल शब्दावली प्रयुक्त की गई है । आचार्य श्री ने गम्भीर एवं दार्शनिक विषयों का विवेचन भी सरल, बोधगम्य भाषा के द्वारा किया है । सम्यक्त्वसार शतकम्, प्रवचनसार, मुनिमनोरञ्जन शतकम् ग्रन्थ आध्यात्मिक विषयों पर आधारित होते हुए भी सरल, सरस, साहित्यिक संस्कृत भाषा में निबद्ध हुए हैं । यह कवि के विपुल शब्द भंडार ओर भाषा पर प्रकाम अधिकार होने की चरम् परिणिति है ।

शैली

आचार्य श्री ने अपने सभी काव्यों का प्रणयन् वैदर्भी शैली में किया है । इस शैली में माधुर्यगुण के अभिव्यञ्जक शब्दों का बहुल्य होता है और दीर्घ समासों का अभाव होता हैं यत्र-तत्र स्वल्प समास भी मिलते हैं ।[189] यही शैली प्रधान रूप से प्रयुक्त है। गौड़ी शैली में ओजगुण के अभिव्यञ्जक वर्णों की पु प्रचुस्ता और लम्बे-लम्बे समासों की उपस्थिति या पाण्डित्य प्रदर्शन रहता है ।[190] पांचाली शैली में प्रसादगुण के अभिव्यंजक वर्ण होते हैं और पाँच-पाँच तथा छःछः पदों के समास प्राप्त होते हैं । यह शैली वर्ण्य विषय को स्पष्ट करती है ।[191]

वैदर्भी शैली

आचार्य श्री के समस्त काव्यों में वैदर्भी शैली की प्रधानता है । यह शैली उपदेशात्मक व्याख्यात्मक, विवेनात्मक, संवादात्मक (प्रश्नोत्तर) इत्यादि रूपों में परिलक्षित की जा सकती है।

जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, श्री समुद्रदत्त चरित्र एवं अन्य ग्रन्थों में मुनियों के भावपूर्ण उपदेश विविध सर्गों में अंकित हैं वहाँ वेदर्भी शैली उपदेशात्मक हो गयी है। - 16 सर्ग व्याख्यात्मक वैदर्भी शैली भी समस्त काव्यों में यत्र-तत्र उपस्थित है। यहाँ व्याख्यात्मक वैदर्भी शैली का एक उदाहरण निदर्शनीय है - इसमें स्वयंवर सभा में सुलोचना को जयकुमार के सम्बन्ध में परिचित कराया गया है - (जयकुमार के गुण, शील कुल की व्याख्या है)

अवनां ये ये वीरा नीराजन मामनन्ति ते सर्वे।
यस्मै विक्रान्तोऽयं समुपैति च नाम तदखर्वे॥
सद्वंशसमुत्पन्नो गुणाधिकारेण भूरिशो नम्रः।
चाप इवाश्रितरक्षकः एष च पर तक्षकः क्रमः।[192]

अर्थात्-पृथ्वी के समस्त वीर जिसकी नित्य आरती, उतारते हैं वह यही जयकुमार है जो उत्तम वंश, गुण, विनय से सुशोभित है और आश्रितों का रक्षक तथा वैरियों का नाशक है।

विवेचनात्मक वैदर्भी शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

सुदर्शन का मित्र मनोरमा के प्रति सुदर्शन की आकुलता समझकर कहता है - (सुदर्शन को मनोरमा की प्राप्ति का विवेचन है)

सुदर्शनत्वच्चा चकोरचक्षुषः सुदर्शनत्वं गमितासि सन्तुष।
तस्या मम स्यादनुमेत्य दो श्रुता किं चन्द्रकान्त नवलावता दुंत॥[193]

अर्थात्-सुदर्शन। तुम उस चकोरनयना के सुदर्शन बनोगे हृदय में सन्तोष रखते हुए विश्वास करो। वह भी तुम से प्रभावित है क्योंकि कलावान चन्द्रमा से ही चन्द्रकान्त मणि द्रवित होती है। यहाँ माधुर्यगुण, सरलता, विवेच्यता ही विवेचानात्मक वैदर्भी का लक्षण है।

विवेचनात्मक एवं व्याख्यात्मक वैदर्भी आचार्य श्री के समस्त काव्यों में परिलक्षित की जा सकती है।

संवादात्मक वैदर्भी जयोदय[194], सुदर्शनोदय[195], श्रीसमुद्रदत्त चरित्र[196] एवं दयोदय[197] में अत्यल्प स्थलों पर प्रयुक्त हुई है। एक उदाहरण में संवादात्मक वैदर्भी शैली प्ररूपित है- दयोदय का एक रोचक संवाद प्रस्तुत-राजा-महाराज।

कथमिवि भग्यते भवता सहसैवेदमम्।

मन्त्री-महाराज -

सुनिश्चितमेवेदमिति जानन्तु भवन्तः।
विषान्न भोजनेनेदृशी दशा सञ्जाता तयोरिति।

राजा -

विषान्नमपि कुतः सञ्जातमिति ज्ञातुमर्हतिनश्चेतो वृत्तिः।

मन्त्री -

सोमदत्तनामजामातुर्मारणाय यदन्नं ताभ्यां सम्पादितं तदेव प्रमादात्स्वयमास्वादितमिति ध्येयम्।

राजा -

एंव वेदस्ति कोऽपि महापुरुषः सोमदत्तोऽत्र आगम्यतां पश्यामि तम्।[198]

इस प्रकार वैदर्भी शैली आचार्य श्री के समस्त काव्यों में विभिन्न रूपों में निदर्शित है । उक्त सभी उदाहरणों में माधुर्य गुण की उपस्थिति, अत्यल्प समास, प्रवाह, सरलता आलङ्कारिकता सभी वैदर्भी शैली की पोषक है ।

पाञ्चाली शैली

पाञ्चाली शैली के अत्यल्प पद्य आचार्य श्री के काव्यों में मिलते हैं । वीरोदय में भगवान् महावीर के जन्म के समय उनके अभिषेक हेतु आये हुए देवगणों का चित्रण पाञ्चाली शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है -

अरविन्दधिया दधद्रविं पुनरे रावण उष्णसच्छविम ।
घृतहस्ततयात्तमुत्यम जन्ननयद्धास्यम हो सुरव्रजेम् ।
षकर्कट नक्रनिर्णये वियदब्धावुत्त तारकाचये ।
कुवलयकारान्वये विधुं विर्बथाः कौस्तुममित्थ मभ्युधुः ।।[199]

यहाँ प्रवाहशीलता और दीर्घ समासपद हैं अतः पांचाली है । गौड़ी शैली का अभाव ही है क्योंकि कवि का दृष्टिकोण शब्दाडम्बर प्रदर्शन का नहीं रहा है जहाँ भी समासों के दीर्घ पद है वहाँ प्रवाह शीलता है ऐसे स्थल गौड़ी शैली को उपस्थित नहीं करते बल्कि उनमें वैदर्भी मिश्रित पाञ्चाली शैली है ।

गुण

आचार्य श्री के ग्रन्थों का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उनकी काव्य धारा माधुर्य गुण की उन्मुख हुई है । आपकी रचनाओं में कोमलकान्त पदावली तथा शान्त के साथ ही शृंगार, करुण रसों की अत्यधिक प्रस्तुति माधुर्यगुण के अस्तित्व का बोध कराती है । जयोदय[200], वीरोदय[201], श्रीसमुद्रदत्त चरित्र[202], सुदर्शनोदय[203], दयोदय चम्पू[204], सम्यक्त्वसार शतकम्[205] इत्यादि ग्रन्थों में माधुर्य गुण के सहस्त्र उदाहरण उपलब्ध होते ।

यहाँ माधुर्य गुण का एक उदाहरण प्रस्तुत है - इसमें जयकुमार और सुलोचना के (सहयोग से संयोग शृंगार) आलिङ्गन का वर्णन है -

अधस्तना रम्भं निरूदभूतलः प्रयाति कूटेः पुरुहू तपत्तनम् ।
कुतः सरन्ध्रोऽवनिभृत्सुमानि तोऽथवा पुरोः पाद समन्वयो ह्यसौं ।
वृहन्नितम्वातिलकार्ड भृच्छिखानिरन्तरोदारपयोधरा तरां4 ।
सविभ्रमापाण्डतयान्विता श्रिया विभाति भित्तिः सुभगास्यः मूर्भृतः ।[206]

इसमें संयोग शृंगार एवं कोमलकान्त पदावली, लघु समास पदों के कारण माधुर्यगुण है।

ओजगुण

यह गुण भी महाकवि के ग्रन्थों में विशेष स्थलों पर निदर्शित है ।[207] ओजगुण की उपस्थिति अद्योलिखित उदाहरण में दर्शनीय है -

गतोनृपद्धार्यपिनिष्फलत्वमेवान्व भूत्केवल मात्मु सत्वः ।
पुनः प्रतिपातरिद्रं बुवाणः बभूव भद्रः करुणे कशाणः ।[208]

भद्र मित्र ने राज दरबार में पुकार की परन्तु वहीं किसी ने उसका समर्थन नहीं किया जिससे वह प्रतिदिन सबेरे पुकारने लगता है ।

इसमें दीर्घ समासपद होने से ओजगुण की झलक मिलती है ।

प्रसाद गुण

महाकवि ज्ञानसागर जी द्वारा प्रणीत काव्यों में प्रसाद गुण विविध सर्गों में प्राप्त होता है ।[209] उनके एक ग्रन्थ से अवतरित एक पद्य उदाहरणार्थ प्ररूपित है -

जितेन्द्रिव्यो महानेष स्वदारेष्वस्ति तोषवान् ।
राजन्निरीक्ष्य ताभित्थं गृहच्छिद्रं परीक्ष्यताम् ॥[210]

यह पद्य सुदर्शन को मृत्युदण्ड से मुक्त करने के लिए आकाशवाणी के रूप में उपस्थित है । इसमें प्रसाद गुण है ।

वाग्वेदग्ध - वाग्वैदग्ध का तात्पर्य है - वाणी को विद्वतापूर्ण वक्रोक्ति अलङ्कार में भी अभिव्यञ्जित होती है और लक्षणा एवं व्यञ्जना वृत्तियों में भी कभी-कभी वाणी की शालीनता देखी जाती है । आचार्य श्री के काव्यों में जयोदय[211], सुदर्शनोदय[212], श्री समुद्रदत्त चरित्र[213], दयोदय चम्पू[214] ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें पात्रों ने वाक्चातुर्य के द्वारा प्रभावित किया है। जहाँ दयोदय के तृतीय सर्ग से एक पद्य उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है - जयकुमार के समक्ष दूत सुलोचना के सौन्दर्य का वर्णन करता है -

असौ कुमुद बन्धुश्चेद्वितैषी सुदृशोऽग्रतः
मुखमेव सरवी कृत्य बिन्दुमित्यत्र गच्छतु ।[215]

अर्थात् यह कुमुद बन्धु (चन्द्रमा) यदि सुलोचना के सम्मुख अपना भला चाहता है तो यहाँ इस के मुख को मित्र बनाकर उससे कुछ भी बिन्दु (सार भूत कान्ति) प्राप्त कर ले ।

इस प्रकार आचार्य श्री ने अपने काव्यों में वाक्चातुर्य को प्रयुक्त करके अपने काव्य नैपुण्य और गहन शब्द भण्डार की प्रतीति करा दी है ।

आचार्य विद्यासागरजी की रचनाओं का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन

आचार्य विद्यासागर जी की रचनाओं में संस्कृति, दर्शन अध्यात्म के साथ ही काव्य के विविध तत्वों का समन्वय है - उनके द्वारा प्रणीत शतक ग्रन्थों का साहित्यिक एवं शैलीगत विवेचन निम्नाङ्कित है -

रस

१. निरञ्जन शतकम्

निरञ्जन शतकम् आध्यात्म की पृष्ठभूमि पर निर्मित परमात्म की अनुपम भक्ति पूरित रचना है । तदनुरूप सांसारिक प्रपञ्चों से उदासीन और विषयों के प्रति निर्लिप्त भावना इस ग्रन्थ के अध्ययन अनुशीलन से जाग्रत होती है । परमात्मा के प्रति सदैव शाश्वत् रूप में विद्यमान रहने और उसके प्रति श्रद्धा रखने की शिक्षा भी निरञ्जन शतकम् की अप्रतिम विशेषता है । इन सब तथ्यों के विवेचन से यह प्रतिपादित हो जाता है कि इस ग्रन्थ में शान्त रस की अविरल धारा प्रवाहित होती है । आशय यह निकलता है - निरञ्जन शतकम् में शान्तरस की प्रधानता है, किन्तु तन्त्र अन्य रसों की अवस्थिति भी दर्शनीय है । शान्त रस का उदाहरण प्रस्तुत है -

"निगदितुं महिमा ननु पार्यते, सुगत केन मनो मुनिपार्य ! ते ।
वदति विश्वनुता भुवि शारदा, गणधराः अपि तत्र विशारदाः ॥

हिन्दी अनुवाद :

हे शुद्ध बुद्ध मुनि पालक बोधधारी
है कौन सक्षम कहे महिमा तुम्हारी
ऐसा स्वयं कह रही तुम भारती है
शास्त्रज्ञ पूज्य गणनायक भी व्रती है ।[216]

जिनदेव की लोकोत्तर तेजस्विता, दिव्य व्यक्तित्व के वर्णन में नक्षत्र, आकाश भानु आदि का अस्तित्व भी मलिन बना दिया गया है, इसलिए अद्‌भुत रस की झलक इस पद्य में आ गयी है ।

सति तिरस्कृत भास्कर लोहिते, महसिते जिन भुविः सकलोहिते ।
अणुरिवाज विभो ! किम देवन वियति मे प्रतिभाति सदैव न ॥

हिन्दी अनुवाद -

नक्षत्र है गगन के इक कोने में ज्यों,
आकाश है दिख रहा तुम बोध में त्यों ।
ऐसी अलौकिक विभा तुम ज्ञान की है
मन्दातिमन्द पड़ती यति, भानु की है ॥[217]

आचार्य विद्यासागर जी ने अपने इष्ट की शारीरिक लालिमा का सौन्दर्य अभिव्यञ्जित किया है । वहाँ शृंगार रस का आभास होने लगता है । परन्तु इसे संयमित शृंगार ही कहा जा सकता है - क्योंकि यह शृंगार किसी कामुक के प्रति अभिप्राय नहीं रखता बल्कि किसी महापुरुष के शारीरिक लावण्य का प्रतीक है - इसमें अन्तर्मन की पवित्रता से संयुक्त रति स्थायी भाव सहृदयों के मन में उद्‌बद्ध होने लगता है - उदाहरण द्रष्टव्य है -

तवललाट तले ललिते हन्नये ! स्थित कवखलिमित्थमहं ह्य मे ।
सरसि चोल्लसिते कमलेऽमले, सविनयं स्थितिरिष्ट सतामलेः ॥

हिन्दी अनुवाद -

ऐसी मुझे दिख रही तुम भाल पे है
जो बाल की लटकती लट, गाल पे है
तालाब में कमल पे अलि गा रहा हो
सङ्गीत ही गुण-गुणाकर गा रहा हो[218]

सरोवर में खिले कमल पर भौंरें का गुञ्जार करना सङ्गीत का सा आनन्द उत्पन्न करता है, जिनदेव के ललाम भाल पर काले बालों की लटें गालों तक बिखरी हुई सुशोभित हो रही है । इस प्रकार शृंगार रस का कारण विद्यमान है और वह घटित भी हो जाता है -

आध्यात्मिक के भाव से अनुप्राणित निरञ्जन शतक शान्तरस प्रधान कृति है, इसमें अन्य रसों की स्थिति नगण्य है ।

२. भावना शतकम्

भावना शतकम् में आध्यात्मिक और पाण्डित्य का समग्र विवेचन ''शान्तरस'' में विद्यमान है - आचार्य श्री की शान्तरस विषयक धारणा अद्योलिखित पद्य से स्पष्ट हो जाती है -

मुनितात्म निशान्तेन स्थितेन च निशेशेन निशान्तेन ।
विरवोऽपि निशान्ते नः सत्कवे कविता निशान्तेन ॥

हिन्दी अनुवाद -

बोले विहंगम, उषा मन को लुभाती
शोभावती वह निशा शशि से दिखाती
हो पूर्ण शान्तरस से कविता सुहाती
शुद्धात्म में मुनि रहे मुनिता सुहाती ॥[219]

अर्थात् सत्काव्य को सुशोभित करने वाला मुख्य तत्त्व ''शान्तरस'' ही है । मोक्ष की ओर से जाने वाली निर्मल दृष्टि आदि भावनाएँ शान्ति के सिन्धु में मानव को प्रविष्ट कराती हैं । अतः इनका विश्लेषण शान्तरस में ही आचार्यवर ने किया है । प्रवचन वत्सलता में वात्सल्य रस, संवेग में वीर रस का आभास अवश्य होता है, परन्तु इस कृति में प्रधानता शान्त रस की ही है ।

३. श्रमण शतकम्

मुनियों की जीवनचर्या पर आधारित श्रमणशतकम् पदे-पदे शान्तरस से ओत-प्रोत है- मुनियों के हृदय में प्रशम-भाव के आते ही कर्मों की श्रृंखला भग्न होने लगती है और मुमुक्षु साधक परम शान्ति का अनुभव करते हुए स्वयं में रममाण होकर स्थित रहता है -

यस्य हृदि समाजातः प्रशमभावः श्रमणो यथा जातः ।
दूरोऽस्तु निर्जरातः कदापि मा शुद्धात्मजातः ॥

हिन्दी अनुवाद -

सौभाग्य से श्रमणर जो कि बना हुआ है ।
सच्चा जिसे प्रशम भाव मिला हुआ है ।
छोड़े नहीं वह कभी उस निर्जरा को ।
जो नाशती जन्म-मत्यु तथा जरा को ॥[220]

४. सुनीतिशतकम्

''सुनीति शतकम्'' में सुन्दर नीतियों का विशद विश्लेषण ''शान्तरस'' के धरातल पर ही हुआ है । आचार्य श्री ने स्वयं समर्थन किया है कि ''शान्तरस'' के बिना कवि की कविता शोभायमान नहीं होती -

बिनाऽत्र रागेण वधूललाटे विनोद्यमेनापि न भातु देशः ।
दृष्ट्या बिना सच्च मुनेर्न वृत्तं रसेन शान्तेन कवेर्न वृत्तम् ॥[221]

इस प्रकार सुनीति शतकम् में सर्वत्र शान्तरस का विवेचन है ।

५. परीषहजय शतकम् –

आचार्य प्रवर विद्यासागर जी का यह शतक ग्रन्थ शान्तरस से ओत-प्रोत है । इस काव्य के अधिकांश पद्य आध्यात्मिक भावों को अभिव्यक्त करते हैं, किन्तु उनमें नीरसता का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ा अपितु सरसता और चित्त की तन्मयता परिव्याप्त है । प्रस्तुत पद्य द्रष्टव्य है -

निजतनो कर्मता वमतामता, मतिमता समता गमतामता
विमल बोध सुधां पिबतां जसा व्यति तं न तृक्षा सुगताज ! सा[222]

इस प्रकार तन की ममता दु:खमयी पापों का कारण होती है उसे त्याग कर मनीपिनज शम-दम धारण करते हुए समता में आस्था रखते हैं। निर्मल बौधमय सुधा का निरन्तर पान करने वाले उन्हें तृषा नहीं सताती और वे सुखी जीवन व्यतीत करते हैं । प्राकृतिक प्रकोपों से उन्पन्न भयावह स्थिति का चित्रण करते हुए कवि प्रतिपादित करता है कि ऐसी विषम परिस्थितियों में भी वे अडिग रहते हैं - इस स्थल पर भयानक रस का दृश्य चित्रित किया गया है -

नभसि कृष्णतमा अभयानका: सतडित सजलाश्च भयानका:
अशनिपात तयाप्य चलाश्चला: स्थिर मटेच्य मुनिं दयचलाचला[223]

सजल घनघोर काले बादलों की गर्जना, तड़कती बिजली, वज्रापात आदि बाधाएँ जन-जीवन को अस्त-व्यस्त कर देती हैं । अत: यहाँ भयानक रस का वातावरण निर्मित हुआ है।

इसी परिप्रेक्ष्य में बीभत्स रस की उपस्थिति भी अधोलिखित पद्य में दृष्टिगोचर होती है -

विकृत रूप शवादिक दर्शनात पितृवने च गजाहित गर्जनात ।
अरतिभावमुपैति न कञ्चन समित भाव रतो चतुकञ्चन ।।[224]

हिन्दी अनुवाद -

सड़ा-गला शव मरा पड़ा जो बिना गड़ा, अध गड़ा जला,
भीड़ चील की चीर-चीर कर जिसे खा रही हिला-हिला
दृश्य भयावह लखते, सुनते गजारगर्जन मरघट में
किन्तु ग्लानि भय कभी न करते रहते मुनिवर निज घट में ।

इस प्रकार ग्लानिपूर्ण दृश्य उपस्थित हुआ है, जिसमें बीभत्स रस की अवस्थिति है।

शृंगार रस भी परिषह जय शतकम् के कतिपय पद्यों में स्त्री परिषह जय के वर्णन करने में चित्रित हुआ है - पद्यों के शृंगारपरक अंश द्रष्टव्य हैं -

मदन मार्दव मानस हारिणी, ललित-लोलक लोचन हारिणी ।
मुदित-मञ्जु-मञ्जङ्ग विहारिणी, यदि दृशे किम सा स्व विहारिणी ।।[225]

इसी क्रम में यह पद्य भी द्रष्टव्य है -

विमलरोचन भासुर रोचिना, विलसितोत्पल भासुर रोचना ।
लाल कमल की आभा सी तन वाली है सुर वनिताएँ
नील कमल सम विलसित जिनके लोचन है सुख सुविधाएँ ।।[226]

किन्तु इन प्रति उपेक्षा भाव रखते हुए साधु शील और रूप सम्पन्न समता रूपी रमणी को ही वरण करते हैं -

श्रमणतां श्रयता श्रमणेन या त्वरमिता रमिता भुवने नया ।[227]

इस प्रकार उपरोक्त पद्यों में शृंगार रस की अभिव्यक्ति हुई है ।

साधुओं को अपार पीड़ाओं का सामना करना पड़ता है । अनन्त वेदनाओं के सहते हुए शरीर की क्षीणता (कृशता) की ओर भी ध्यान नहीं देते । यहाँ उनकी स्थिति पर सहृदय की करुणा प्रस्फुटित होती है । अतः करुणा रस इस पद्य में विद्यमान है-

यदि तृणं पदयोश्च निरन्तरं तदित लाति गतो मुनिरन्तरम् ।
तदृदितं व्यसनं सहते जसा, हमपिऽसच्चसहे मति तेजसा ॥

हिन्दी पद्य भी परिलक्षित किया जा सकता है -

तृण कण्टक पद में वह पीड़ा सतत दे रहे दुःख कर है
गति में अन्तर तभी आ रहा रुक-रुक चलते मुनिवर हैं।
उस दुस्सह वेदन को सहते-सहते रहते शान्त सदा
उसी भाँति मैं सहूँ परीषह शक्ति मिले, शिव शान्ति सुधा ।[228]

आचार्य जी अभिव्यक्ति करते हैं कि असभ्य निर्दयी और पापी जनों से त्रस्त किये गये और गालियाँ आदि मिलने पर भी साधु उन वचनों से प्रभावित नहीं होते, कठोर वचनों का उल्लेख ग्रन्थ में रौद्र रस का आभास कराता है -

कटक-कर्कश कर्णशुभेतरं प्रकलयन् स इहा सुलभेतरम्[229]

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि ''परीषह जय शतकम्'' शान्त रस सागर है । इसमें करुणा, रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों की स्थिति नगण्य है । भाव यह कि परीषहजय शतकम् शान्त रस से परिपूर्ण शतकम् काव्य है ।

छन्द

१. निरञ्जन शतकम्

इस काव्य के पद तुकान्त हैं । संस्कृत पद्य के नीचे अन्वय देकर तथा मध्य-मध्य में शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखकर भाषा को सुबोध बनाया है । इससे अल्पबुद्धि जीवी भी स्तुति-रस का पान कर सकता है। इस प्रकार कह सकते हैं आचार्य जी में संस्कृत साहित्य का पाण्डित्य भी विद्यमान है और जन सामान्य के हित की दृष्टि भी। निरञ्जन शतक द्रुतविलम्बित छन्द में निबद्ध कृति है - इस छन्द का लक्षण इस प्रकार है - द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, दो भगण और रगण होते हैं । उसे विलम्बित छन्द कहते हैं - यह 12 अक्षरों का छन्द है और प्रति चौथे अक्षर के आगे या चौथे और आठवें अक्षरों के आगे यति होती है। यथा -

चरण युग्ममिदं तव मानसः सनख मौलिक एव विमानसः ।
भृशमहं विचरामि हि हंसकः यदिह तत् तटके मुनि हंसकः ।।[231]

हिन्दी अनुवाद में आचार्य जी ने वसन्ततिलिका छन्द का प्रयोग किया है - इस छन्द का लक्षण है - ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगो गः[232] अर्थात् इस छन्द में क्रमशः प्रति पाद में तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु वर्ण होते हैं, यह 14 अक्षरों का छन्द है और अष्टम तथा षष्ठ अक्षरों के पश्चात् यति होती है । उदाहरण द्रष्टव्य है -

''हे आप दीन-जन रक्षक, साधु बाने
दावा प्रचण्ड-विधि कानन को जलाने

पञ्चेन्द्रिय गज अङ्कुश है सुहाते
हे मेघ विश्वमदताप तृषा बुझाते ।।[233]

निरञ्जन शतकम् का अन्तिम पद्य आर्या छन्द में निबद्ध हुआ है । इसमें देव देव शास्त्र गुरु का आचार्य श्री ने स्मरण किया है ।

आर्या छन्द का लक्षण यह है -

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।[234]

अतः आर्या छन्द के प्रथम और तृतीय पदों में 12 द्वितीय और चतुर्थ में 15 मात्राएँ होती हैं । उदाहरण प्रस्तुत है -

त्रै विषमयीम विद्यां विहाय ज्ञानसागरजां विषम ।
सुधा मे म्यात्मविषं नेच्छामि सुकृतनां भुविद्याम् ।।[235]

आचार्य श्री ने ग्रन्थ के अन्त में मङ्गल कामना की है ।

२. भावनाशतकम्

भावनाशतकम् रचना में आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज ने आर्या छन्द का प्रयोग अधिकांश स्थलों पर किया है - आर्या के कई उपभेद होते हैं । सबसे प्रसिद्ध भेद का लक्षण है -

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या[236]

आर्या छन्द के प्रथम और तृतीय पादों में 12, द्वितीय में 18 चतुर्थ में 15 मात्राएँ होती हैं। उदाहरण -

विराधनं न रादनं, निदानमस्य केवलं नराधनम् ।
ददाति सदाशधनं राधनं मुक्ति दाराधनम् ।।[237]

आचार्य श्री ने प्रत्येक भावना के अन्त में मुरजबन्ध[238] का प्रयोग किया है, इसलिए सौ श्लोकों के इस काव्य में 16 श्लोक मुरजबन्ध के हैं, जो अनुष्टुप छन्द में प्रयुक्त किये गये हैं - अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं इसे श्लोक छन्द भी कहते हैं इसका लक्षण गणों के द्वारा सम्भव नहीं है ।

''पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमम् द्विचतुर्थयोः ।
गुरु षष्ठं च जानीयात्त् शेषेष्वनियमो मतः ।।[239]

अनुष्टुप छन्द के सभी पादों में पञ्चम वर्ग लघु और षष्ठ वर्ग गुरु होते हैं । द्वितीय और चतुर्थ में सप्तम वर्ण भी लघु होते हैं । शेष अक्षरों के लिए विशेष नियम नहीं हैं ।

भावना शतकम् में 16 स्थलों पर अनुष्टप् छन्द की छटा बिखरी हुई है -

उदाहरण -

दिव्यालोक प्रदानेश दर्शनशुद्धिभास्करः ।
भव्यजककदा वाशस्पर्श कोऽशुभाकरः ।।[240]

भावनाशतक में अनेकार्थक शब्दों का भरपूर प्रयोग हुआ है, इसलिए साधारण व्यक्ति को यह ग्रन्थ दुरुह है किन्तु ग्रन्थ की दुरहता को कम करने की दृष्टि से प्रत्येक श्लोक का अन्वय बसन्ततिलका छन्द में हिन्दी अनुवाद किया गया है । बसन्ततिलका छन्द का लक्षण इस प्रकार है -

ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः[241]

जिसमें क्रमशः तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु वर्ण होते हैं। यह 14 अक्षरों का छन्द है और अष्टम तथा षष्ठ अक्षरों के पश्चात् यति होती है ।

उदाहरण -

''अन्धा विमोहतम में भटका फिरा हूँ, कैसे प्रकाश विन संवर भाव पाऊँ ।
हे शारदे विनय से द्वय हाथ जोड़ूँ आलोक दे विषय को विषमान छोड़ूँ ॥[242]

इस प्रकार संस्कृत पद्यों में आचार्य श्री ने आर्या छन्द एवं मुरजबन्ध में प्रयुक्त अनुष्टुप् और हिन्दी पद्यानुवाद में बसन्ततिलका छन्द का उपयोग किया । अतः यह ग्रन्थ अत्यन्त भावपूर्ण और प्रेरणास्पद बन गया है ।

३. श्रमण शतकम्

आचार्य श्री के ''श्रमणशतकम्'' काव्य में आर्या छन्द का प्रचुर प्रयोग हुआ है। यह छन्द इस रचना में आद्योपान्त विद्यमान है एक उदाहरण प्रस्तुत है -

प्रत्ययो यस्य वृत्तं जिने निज चिन्तनतो मनोवृत्तम् ।
तस्य वृत्तं हि वंत्तं कथयतीतीदमत्र वृत्तम् ॥[243]

४. सुनीतिशतकम्

सुनीतिशतकम् - उपजाति छन्द में निबद्ध रचना है -

दानेन भागी भुवि शोभते स, ध्यानेन शान्ते तथा स योगी ।
निस्सङ्ग – पात्रस्तु निरीहवृत्त्या, चेहा प्रतोली नरकस्य वोक्ता ।।[244]

इस प्रकार सुनीतिशतक के सभी पद्य उपजाति छन्दों में आबद्ध है ।

५. परीषहजय शतकम्

आचार्य श्री ने परिषय जय शतकम् काव्य के अन्तिम पद्यों में छन्द परिवर्तन किया है, तदनुसार अनुष्टुप् और आर्या वृत्तों का प्रयोग किया है ।

अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं इसे श्लोक छन्द भी कहते हैं। अनुष्टुप छन्द का लक्षण आधोलिखित है -

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
गुरु षष्ठं च जानीयात् शेषेष्वनियमो मतः ।।[245]

अनुष्टुप् छन्द246 में सभी पादों के पञ्चम अक्षर लघु और षष्ठ अक्षर दीर्घ (गुरु) होते हैं, द्वितीय और चतुर्थ पादों के सप्तम वर्ण भी लघु होते हैं । शेष अक्षरों के लिए विशेष नियम नहीं है । अनुष्टुप् के अनेक भेद भी हैं । परिषहजय शतकम् का अठान्वे वाँ पद्य अनुष्टुप् वृत्त का उदाहरण है -

''चर्च्यार्शययानिषद्या–सु वान्यतमास्तु चैकदा ।
शीतोष्णौर्भवैत्तद्व दागभानु भवादिति''॥[247]

काव्य के अन्त में संस्कृत भाषा में निबद्ध मङ्गलकामना अनुष्टुप् वृत्त में प्रस्तुत की गई है । उपर्युक्त काव्य में भावानुकूल छन्द योजना आचार्य श्री के गम्भीर चिन्तन की सफल या सजीव अभिव्यक्ति कही जा सकती है । भावों की बोधगम्यता और गौरवशालिता से ओत-प्रोत छन्द इस काव्य में प्रयुक्त हैं ।

अलङ्कारच्छटा

शब्द और अर्थ की शोभा को बढ़ाने के कारण तथा रसादि की प्रतीति के परिचायक शब्द और अर्थ के धर्म को ''अलङ्कार'' कहते हैं । अलङ्कार काव्य की श्रीवृद्धि के साधन हैं । जिस प्रकार कोई रमणीय हार आदि आभूषण धारण करने से अत्यन्त लावण्यमयीय प्रतीत होती है, इसी प्रकार कोई भी रचना अलङ्कारों के द्वारा अत्यन्त सुशोभित हो जाती हूँ । साहित्यशास्त्र में अलङ्कार का पृथक्-पृथक् विभाजन उपलब्ध होता है, शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार ।

१. निरञ्जन शतकम् –

उपर्युक्त दोनों प्रकार के अलङ्कार ''निरञ्जनशतकम्'' में समाविष्ट है, इसलिये ग्रन्थ में चारुता आ गई है ।

अनुप्रास अलङ्कार का लक्षण विख्यात आचार्य मम्मट ने इस प्रकार किया है - वर्ण साम्यमनुप्रासः[248] इस लक्षण के अनुसार स्वरों में असमानता रहने पर भी व्यजनों के सादृश्य को वर्ण साम्य मान लेते हैं । यह रस शाश्वतादि के अनुकूल होना अपेक्षित है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ निरञ्जन शतकम् में अनुप्रास अलङ्कार प्रायः सर्वत्र ही प्रयुक्त हुआ है। निरञ्जनशतक में अचार्य श्री की उल्लेखनीय उपलब्धि यह कही जा सकती है कि उन्होंने संस्कृत में तुकान्त पद्यों का प्रयोग किया है । इस प्रकार उनके गूढ़ भाषा ज्ञान और अगाध साहित्य सर्जना करने की क्षमता का भी अनुमान लगाया जा सकता है ।

अनुप्रास अलङ्कार का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

गतिगतिः सगतिश्च स दगति मर्म तपो नलदीप्ति सद्रा गति ।
भव भवोप्य भवो भव हानये निज भवो गतमोहमहानये ॥

इसी का हिन्दी पद्यानुवाद भी अनुप्रास से ओत-प्रोत है ।

चारों गति मिट गयी, तुम ईश शम्भू,
हो ज्ञान पूर निजगम्य, अन्तः स्वयम्भू ।
ध्यानाग्नि दीप्त मम हो, तुम वात हो तो,
संसार नष्ट मम ये, तुम हाथ हो तो ॥[249]

श्लेष अलङ्कार[250] का भी अधिकाधिक प्रयोग निरञ्जनशतक में मिलता है । प्रत्येक पद्य में श्लेष का प्रयोग आचार्य श्री के पाण्डित्य और कल्पनाशक्ति की द्योतक है - शब्द श्लेष का लक्षण काव्य प्रकाश में इस प्रकार है -

वाच्यभेदेन भिन्ना युगपद्भाषणस्पृशः ।
श्लिष्यन्ति शब्दाः शेषोऽसावक्षरादिभिरष्टिधा ॥[251]

अर्थात् परस्पर भिन्न-भिन्न अर्थ रखने वाले भी शब्दों में एकरूप्य अभेद की प्रतीति ही श्लेष है । प्रस्तुत लक्षण को निम्न पद्य पर छटा सकते हैं -

मम मतिः क्षणिका ह्यपि चिन्मयी, तद्धदिता न चितो यदतन्मयी ।
ननु न वीचिततिः सरसा विना, भवतु वा न सरश्च तया विना ॥
मेरी भली विकृति पे, मति चेतना है चैतन्य से उदित है, जिनदेशना है ।
कललोल केबिन सरोवर तो मिलेगा कल्लोल वो बिन सरोवर क्या मिलेगा ॥[252]

यमक अलङ्कार और श्लेष अलङ्कार का मणिकाञ्चन समन्वय निरञ्जन शतक में अनेकों स्थलों पर हुआ है । यमक का सुप्रसिद्ध लक्षण यह है - सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः, यमकम्[253] ।

प्रस्तुत लक्षण के अनुसार जिसमें अर्थ के होने पर भिन्न -भिन्न अर्थ वाले वर्ण अथवा वर्ण समूह की पूर्वक्रमानुसार आवृत्ति हुआ करती है, उसे यमक अलंकार कहते हैं -

यमक का स्वरूप प्रस्तुत पद्य में उपस्थित हुआ है -

समयसारत ईश नसारतः सविकलो विषयाज्जऽसारतः ।
जगति मक्षिक व सदा हितं, ममलं भ्रमरेण सदाहत ॥

हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत है -

स्वादी तुम्हीं, समयसार स्वसम्पदा के आदी बुधी सम नहीं जड़ सम्पदा के ।
औचित्य है भ्रमर जीवन उच्च जीता, मक्खी समा मल न पुष्प पराग पीता ॥[254]

सदाहत (ईश्वर) सदा एवं आहतम् अर्थात् भक्षण करना । ''साधर्म्यमुपमा भेदे[255] आशय यह कि उपमेय और उपमान का, उनमें भेद होने पर भी, परस्पर साधारण धर्म से सम्बद्ध रहना उपमा है । हिन्दी के किसी कवि का मन्तव्य है ।

उपमा अलङ्कार आचार्य श्री के काव्य ग्रन्थों में सुनियोजित रूप में समन्वित है। प्रस्तुत शतक में भी उपमा के विभिन्न स्थल मनोहर बन पड़े हैं -

शिरसि भाति तथा लमलेतरा कवततिः कुटिला धवले हराः ।
मलय चन्दनशाखिनि विश्रुते, विषधराश्च यथा जिन विश्रुतेः ॥

हिन्दी में भावार्थ प्रस्तुत है -

काले, घने, कुटिल चिकने पेश प्यारे ऐसे मुझे दिख रहे, शिर के तुम्हारे ।
जैसे कहीं मलय चन्दन वृक्ष से हो कृष्ण नाग लिपटे अयि दिव्य देही ॥[256]

प्रस्तुत पद्य की अन्तिम पंक्ति उत्प्रेक्षा अलङ्कार का आभास होने लगता है -

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्[257] प्रकृत (उपमेय) की उसके समान अपकृत (उपमान) के साथ तदात्म्य सम्भावना करना उत्प्रेक्षालङ्कार है ।

इस काव्य में उत्प्रेक्षा अलङ्कार की छटा यत्र-तत्र बिखरी हुई शोभायमान हो रही है- अनुप्रास मिश्रित उत्प्रेक्षालङ्कार का उदाहरण द्रष्टव्य है -

निजनिधे निलयैन सताऽतनो, मतिमता वमता ममता तनोः ।
कनकता फलतो ह्युदिता तनौ, यदसि मोहतमः सविताऽतनो ॥[258]

भाव यह निकलता है कि हे अतनो ! (अशरीरा परमात्मन्) तुमने शरीर से भिन्न आत्मनिधि की विलीनता से देह की ममता का वमन कर दिया है इसी कारण आपके शरीर में स्वर्ण की आभा प्रकट हुई । आप मोहाधन्कार के लिए सूर्य हो । इस प्रकार यहाँ भगवान देह के लिए की गई स्वर्ण जैसी आभा की उत्प्रेक्षा सहेतुक है ।

निरञ्जन शतकम् में अपह्नुति अलङ्कार की झलक भी मिलती है - अपह्नुति का लक्षण आचार्य मम्मट अपने काव्य प्रकाश में निबद्ध किया है । प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः[259] आशय यह है कि जहाँ प्रकृत का निषेध करके अप्रकृत (उपमान) की सिद्धि वर्णित की जाती है वहाँ अपह्नुति अलङ्कार विद्यमान रहता है ।

नीचे प्रस्तुत पद्य में आचार्य श्री का अभिप्राय है - कि जिनदेव के शिर पर बने काले केश नहीं बल्कि ध्यानाग्नि में स्वयं को जलाने पर उत्पन्न राग ही बना धुआँ बनकर निकल आया है ।

असित कोटिमिता अमिताः तके, न हि कचा अलिमास्तव तात ।
वर तपोऽनलतो बहिरागता, सघन धूम्रमिषेण हि रामता ॥

हिन्दी अनुवाद भी दर्शनीय है -

काले घने भ्रमर से शिर से तुम्हारे
ये केश हैं नहि विभो ! निज जिनदेव प्यारे ।
ध्यानाग्नि से स्वयम् को तुमने जलाया
लो ! सान्द्र द्रुम मिष बाहर राग आया[260]

यहाँ प्रकृत उपमेय केशों का निषेध करके अप्रकृत जपमानराग की प्रतिष्ठा की गई है । विरोधाभास अलङ्कार का लक्षण जो काव्य प्रकाश में विद्यमान है - विरोधः सोऽविरोधे विरुद्धत्वेन यद्वचः[262] जहाँ दो वस्तुओं का उनमें किसी प्रकार का विरोध न रहने पर भी ऐसा वर्णन किया जाय कि विरोध भी प्रतीति उत्पन्न दो वहाँ विरोधाभास अलङ्कार होता है। प्रस्तुत लक्षण निरञ्जनशतकम् के कतिपय पद्यों में सार्थक होता है। प्रस्तुत पद्य में यमक के साथ-साथ विरोधाभास की स्थिति भी निहित है -

गुणवतामिति चासि मतोऽक्षरः, किलस्तथा पिनचितबतोऽवसरः ।
न हि जिनाप्यसि सैन विनासितः स्तुतिरियं च कृतात्र विना शितः ॥

हिन्दी में अनुवाद है -

हो मृत्यु से रहित अक्ष हो बहाते हो शुद्ध जीव जड़ अक्षर हो न तातें ।
तो भी तुम्हें न बिन अक्षर जान पाया स्वामी ! अतः स्तवन अक्षर से रचाया ॥[262]

आशय है कि हे भगवान तुम्हें लोग अक्षर (अविनाशी) कहते हैं तथापि तुम अक्षर नहीं (शब्दरूप) नहीं हो । यहाँ अर्थ करने पर विरोध का परिहार हो जाता है तथापि आपका ज्ञान करने और कराने के लिए जो अक्षर वाणीरूप जड़ भूत है उनका आश्रय मैंने भी लिया है ।

इसी आधार पर कहा जा सकता है कि निरञ्जन शतकम् में अक्षर (अविनाशी) निरञ्जनपरमात्मा की स्तुति ही आचार्य श्री ने आध्यात्मिक एवं भक्तिपूरित हृदय से प्रस्तुत की है ।

उपर्युक्त वक्तव्य में अलङ्कारों का स्वरूप, लक्षण तथा निरञ्जन-शतक में उनकी यथा स्थान उपस्थित पर प्रकाश डाला है । प्रस्तुत विश्लेषण से यह तथ्य प्रकट हो जाता है कि निरञ्जन शतक एक भावप्रधान तथा अलङ्कारिक सौन्दर्य की परिधि में आबद्ध शतक-काव्य कृति है । इस ग्रन्थ में शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार का सम्यक् समन्वय मिलता है । कोमलकान्त शब्दावली में समानता है किन्तु अर्थों में गम्भीरता और परस्पर भिन्नता देखी जा सकती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि निरञ्जन शतकम् के 100 पद्य जिनमें अकलंक और सिद्ध परमात्मा की स्तुति की गई है, आलंकारिक सौन्दर्य से अनुप्राणित है ।

२. भावनाशतकम्

भावनाशतकम् में प्रत्येक भावना के अन्त में एक मुरजबन्ध का प्रयोग किया गया है । मुरजबध चित्रालङ्कार[263] का एक अङ्ग है । मुरजबन्ध कई प्रकार का होता है, किन्तु इस काव्य में सामान्य मुरजबन्ध लिखा गया है ।

सर्वप्रथम श्लोक के पूवार्ध को पंक्ति के आकार में लिखकर उत्तरार्ध को भी पंक्ति के आकार में उसके नीचे लिखें । इस अलङ्कार में प्रथम पंक्ति के प्रथम अक्षर को द्वितीय पंक्ति के द्वितीय अक्षर के साथ और द्वितीय पंक्ति के प्रथम अक्षर को प्रथम पंक्ति के द्वितीय अक्षर के साथ मिलाकर पढ़ना चाहिये । यही क्रम श्लोक के अन्तिम अक्षर तक जारी रहता है । भावनाशतकम् में मुरजबन्ध के 16 श्लोक हैं उदाहरण -

दिव्यालोक प्रदानेन दर्शनशुद्धिभास्करः ।
नव्याव्यककदावाशस्पर्श कोऽशु भाकारः ॥[264]

मुरजाकृति भी देखिये[265]

दि व्या लो क प्र दा ने श द र्श न सि द्ध भा स्क र :
भ व्या व्य क क दा वा श स्प र्स कौ शु शु भा क र

भावनाशतकम् आचार्य श्री की प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है । इसमें आद्योपान्त यमकालङ्कार विद्यमान है । एक पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

विराधनं न राधनं निदानमस्य केवलं नराधनं ।
ददाति सदाराधनं राधनं मुक्तिदाराधनं[266]**॥**

इस कृति में अनुप्रास अलङ्कार का प्रयोग भी मिलता है ।

साधव इह समाहितं नमन्ति सतां समाधुता संमहितम्[267]

इस प्रकार भावनाशतकम् में शब्दालाङ्कारों की प्रधानता है । अर्थालङ्कारों में से उपमा और रूपक ही इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होते हैं । उपमा अलङ्कार का बहुविध प्रयोग किया गया है । उदाहरण -

अवनितल इव पावन प्रसङ्गाद् भवति शीतलः पावनः ।
श्रुतिमननात स्वपावन प्रदायिन्नुपयोगः पावनः ॥

ज्यों वात जो सरित् ऊपर हो चलेगा ।
हो शीत, शीघ्र सबके मन को हरेगा[268] ॥

रूपक अलङ्कार भी भावनाशतकम् के विभिन्न श्लोकों में उपलब्ध होता है । रूपक का लक्षण है - तद्रूपकमभेदो यः उपमानोपमेययो[269] अर्थात् उपमेय और उपमान का जो अभेद अभेदारोप या काल्पनिक अभेद है वह रूपक अलङ्कार कहलाता है । उदाहरण-

''ज्ञानरूपी करे दीपोऽमनोऽचलो यतेऽस्त्यमय
सन्तरूपी हरेऽपापो जिनोऽवलोक्यते स्पयम्''।[270]

इस प्रकार भावना शतकम् में उक्त अलङ्कारों के प्रयोग से अर्थ सौन्दर्य में भी श्री वद्धि हुई है ।

३. श्रमण शतकम् :

आचार्य श्री ने यमक अलंकार का प्रचुर प्रयोग किया है । श्रमण शतकम् में यमक अलङ्कार का बाहुल्य है ।

श्री वर्धमान माऽयं आलकय्य नत–सुराप्तमानमाय ।
विधीश्चामानमाय–मचिरेण कलयामानमाय ॥[271]

प्रस्तुत पद्य में ''मानमाय'' पद्य की आवृत्ति प्रत्येक पद्य के अन्त में हुई है और प्रत्येक पाद में भिन्न अर्थ की प्रतीती होती है अत- इसमें सर्वपादान्त यमक अलंकार प्रयुक्त हुआ है।

श्रमणशतक के प्रायः सभी पद्यों में यमक अलङ्कार का प्रयोग हुआ है ।

४. सुनीति शतकम्

सुनीति शतकम् में अनुप्रास, उपमा और यमक अलङ्कारों के प्रयोग से सौन्दर्य उपस्थित हुआ है । अनुप्रास एवं उपमा का संयुक्त प्रयोग द्रष्टव्य है -

अर्थेन युक्तं नर जीवनं न, चार्थे नियुक्तं मुनिजीवनं चेत् ।
खपुष्पशीलं च भवीक्षुपुष्पवदेव बन्धं न विदुर्विमाना ।।[272]

धनहीन गृहस्थ और धन में अनुरक्त श्रमण का जीवन ईखपुष्प एवं आकाश पुष्प के समान निरर्थक है । अतः उपमा अलङ्कार का प्रयोग है। अन्तिम पंक्ति में ''व'' वर्ण की आवृत्ति होने से अनुप्रास अलङ्कार का आगमन भी हुआ है । इस ग्रन्थ में अनुप्रास की योजना सफलता के साथ प्रस्तुत हुई है ।

५. परिषह जय शतकम्

यह रचना ''ज्ञानोदय'' शीर्षक से प्रकाशित है । परिषह जय शतकम् ग्रन्थ में अनेक अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है । अनुप्रास अलङ्कार की छटा ''परिषह जय शतकम्'' में यत्र-तत्र परिलक्षित होती है । ''परिषह जय शतकम्'' के प्रस्तुत पद्य में अनुप्रास की हृदयहारी छटा दर्शनीय है -

मदन मार्दव मानस हारिणी, ललित–लोलक–लोचन हारिणी ।
मुदित–मञ्जु–मतङ्ग–विहारिणी, यदि दृशे किमु सा स्वविहारिणी ।।[273]

यमक अलङ्कार भी इस काव्य में चमत्कारिक रूप में विद्यमान है। प्रस्तुत शतक में यमक अलङ्कार से ओत-प्रोत अनेक पद्य उपलब्ध हैं - प्रस्तुत पद्य उदाहरण स्वरूप प्ररूपित है -

पतित पत्रक –पादप राजितं, प्रतिवनं रवि–पादप–राजितम् ।
मुनि मनो नु ततोस्त्वपराजितं नमति वैप तक स्वपराजितम् ।।[274]

प्रथम पंक्ति "पादपराजित" विशेषण पत्र-फूलरहित वृक्ष के लिये है। किन्तु द्वितीय पंक्ति में सूर्य की तेजस्विता के लिए प्रतीक स्वरूप पादपराजितम् का प्रयोग किया गया है। सूर्य के प्रचण्ड ताप में भी मुनियों का मन पराजित नहीं होता अपितु वे अपनी जितेन्द्रियता के कारण राजित (सुशोभित) होते हैं । इस प्रकार स्वपराजितम् विशेषण के द्वारा स्व और पर को जोड़ने का भाव स्पष्ट होता है । "परिषहय शतकम्" आचार्य श्री की यमकालङ्कार प्रधान रचना है ।

इसी प्रकार अर्थालङ्कारों का बाहुल्य भी प्रस्तुत काव्य में दृष्टिगोचर होता है – परीषह जय शतकम् में उपमा अलङ्कार अनेक पद्यों में प्रस्तुत हुआ है, जिससे इस काव्य के सौन्दर्य में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है । प्रस्तुत पद्य उपमा से परिपूर्ण है –

विमलरोचन भासुररोचना लिसितोत्पलभासुर रोचना ।[275]
लाल कमल की आभा सी तनवाली हैं सुर वनिताएँ ।
नील कमल सम विलसित जिनके लोचन हैं सुख सुविधाएँ ॥

इसी प्रकार –

यदि यमी तृषित सहसा गरेड वत्ररतीव शशी किल सागरे ।।[276]

यदि मुनि का मन कभी तृष्णा की ओर प्रेरित भी हो तो वे अन्तरात्मा में उसी प्रकार अवगाहन करते हैं जिस प्रकार सिन्धु में चन्द्रमा विलीन हो सुख पाता है ।

सन्देह अलङ्कार भी कतिपय पद्यों में प्रयुक्त हुआ है । परिषह जय शतकम् में आचार्य श्री की दृष्टि काव्य-सौष्ठवोन्मुखी मालूम पड़ती है ।

सन्देह अलङ्कार का लक्षण काव्यप्रकाशकार के अनुसार अधोलिखित है –

स सन्देहहस्तु चेदोक्तो तदनुक्तौ च संशयः ।।[277]

सन्देह अलङ्कार में उपमेय और उपमान के साथ एकरूपता में एक सादृश्य मूलक संशय रहता है, जो एक भेदोक्ति अर्थात् उपमेय उपमान में भिन्नता के कथन और भेदानुक्ति अर्थात् इन दोनों में भिन्नता के अकथन दोनों प्रकार से सम्भव है ।

आशय यह कि प्रकृत वस्तुओं में अन्य वस्तु सम्बन्धी सन्देह की कल्पना से सन्देह अलङ्कार होता है । परिषहजय शतकम् का एक पद्य उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है –

तृण शिला कलके च सकारण भुवि तरीययौन्ति कारणम् ।[278]
भू पर अथवा कठिन शिला पर काष्ठ फलक पर या तृण पे
शयन रात में अधिक याम कि दिन में नहिं संयम तन पे ॥

अर्थान्तरन्यास अलङ्कार –

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यतु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येतरेण वा ।।[279]

जिसे साधर्म्य और वैधर्म्य की दृष्टि से सामान्य का विशेष द्वारा और विशेष का सामान्य द्वारा समर्थन कहते हैं, वह अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

''परीषहजय शतकम्'' में विभिन्न स्थलों पर अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का प्रयोग हुआ है । इस प्रकार आचार्य श्री के काव्य कौशल, वैदग्ध्य एवं पाण्डित्य का परिचय प्राप्त होता है - निम्नोक्त पद्य अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का उदाहरण है -

कठिन साध्य तपोगुण वृद्धये, मति महाहतये गुणवृद्धये ।
पद विहारिण आगमनेत्रकाः हतदया विमदा भुवनेत्र काः ।।[280]

हिन्दी पद्य में उपर्युक्त भाव की सजीव अभिव्यंजना हुई है -

कठिन कार्य है खरतर तपना करने उन्नत तप गुण को,
पूर्ण मिटाने भव के कारण चंचल मन के अवगुण को।
दयावधू को मात्र साथ ले वाहन बिन मुनि पथ चलते,
आगम को ही आँख बनाये निर्मद जिनके विधि हिलते ।।

विशेषोक्ति अलङ्कार भी परीषहजय शतकम् में प्रयुक्त हुआ है - सम्पूर्ण कारणों के उपस्थित रहने पर कार्य न होने के कथन को विशेषाक्ति अलङ्कार कहते हैं - आचार्य मम्मट ने भी इस प्रकार लक्षण किया है -

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः ।[281]

परीषहजय शतकम् से उद्धत प्रस्तुत पद्य में विशेषोक्ति अलंकार सन्निविष्ट है -

उपगता अदयैरुपहासतां कलुषितं न मनो भवहा ! सताम् ।
शमवतां किम् तत् बुधवन्दनं न हि मुदैप्यमुदैजऽनिन्दनम् ।।[282]

असभ्य, पापियों के द्वारा ऋषियों का उपहास और निन्दा किये जाने पर भी उनकी उज्ज्वलता का नाश नहीं होता, मुनियों को दुष्टों के वचनों से क्रोध भी नहीं आता वे तो समानता को धारण करते हैं और अपने प्रशंसकों द्वारा वन्दि होने पर भी चित्त को चञ्चल नहीं करते । इस प्रकार मुनि मन को चञ्चल करने के कारणों के रहने पर भी कार्यरूप उनका मन अडिग रहता है । अतः यहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार प्ररूपित है।

परीषहजय शतकम् में दृष्टान्त अलङ्कार के दर्शन भी हमें यत्र-तत्र होते हैं । दृष्टान्त का सफल और सटीक लक्षण काव्य प्रकाश में इस प्रकार प्रतिपादित हुआ है - दृष्टान्तः पुरेरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम् ।[283]

अर्थात् जिसमें उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य दोनों वाक्यों में इन सबका (उपमेय उपमान और साधारण धर्म) बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव झलका करता है, वह दृष्टान्त अलङ्कार होता है । परीषहजय शतकम् काव्य में समाविष्ट यह पद्य दृष्टान्त अलङ्कार से ओत-प्रोत है -

न हि करोति तृषा किल कोपिनः शुचि मुनीम नितरो भुवि कोपि न ।
विचलितो न गजो गज भावतः श्वगणकेन सहापि विभावतः ।।[284]

भाव यह कि मुनि लोग स्वाबलम्बी होकर जीवन यापन करते हैं, तृषणा या अन्य किसी भौतिक बाधाओं से अपने को सम्पृक्त न करते हुए आत्मचिन्तन में विलीन रहते हैं। हाथियों के समूह को उनकी चाल से विचलित करने में सौ-सौ कुत्ते पीछे-पीछे भौंककर भी समर्थ नहीं होते। इस प्रकार यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार प्रयुक्त हुआ है ।

तद्रूपकमनैदो य उपमानोपमेययो:[285]

उपमेय और उपमान का अत्यन्त साम्य के कारण जो अभेद या अभेदारोप है वह रूपक अलङ्कार कहा जाता है। परीषहजय शतकम् के विविध पद्यों में रूपक अलङ्कार दृष्टिगोचर होता है - इस अलङ्कार को अधोलिखित पद्यों में सार्थक कर सकते हैं -

श्रमणतां श्रयतां श्रमणेन या त्वरमिता रमिता भुवने नया ॥[286]

अर्थात् शील और रूप सम्पन्न समतारूपी रमणी से रमण करके श्रमण (साधु) अपनी पराकाष्ठा कायम रखते हैं ।

अशुचि-धामनि चैव निसर्गतः कारणमेव विधेरुपसर्गतः ।[287]

आचार्य श्री ने शरीर को रोगों का मन्दिर निरूपित किया है । कर्म के द्वारा सभी रोग दूर किये जा सकते हैं । इस प्रकार उपमेय में और उपमान का आरोप होने के कारण यहाँ रूपक अलंकार प्रयुक्त हो गया है ।

भाषा शैली

१. निरञ्जन शतकम्

भाषा के द्वारा कवि या लेखक के भावों की अभिव्यक्ति होती है । भाषा हृदय के भावों को प्रकट करने का श्रेष्ठ साधन कही जाती है । इस प्रकार विभिन्न भाषाओं के द्वारा अभिव्यक्त विभिन्न जातियों, धर्मों, संस्कृतियों, इतिहासों आदि उत्थान-पतन का समग्र विवेचन साहित्य जगत में सम्मिलित हुआ है । संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है और यह भाषा देववाणी है । वर्तमान समय में भी संस्कृत में विपुल साहित्य निर्मित हो रहा है । और प्राचीन संस्कृत साहित्य तो विशालता एवं सर्वोत्कृष्टता की दृष्टि से अग्रगण्य माना जाता है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में संस्कृत भाषा का शुद्ध परिमार्जित स्वरूप परिलक्षित होता है, आचार्य श्री कोमलकान्त पदावली का सरस प्रयोग भावविभोर होकर किया है । आचार्य श्री की लेखनी से आलङ्कारिक सौन्दर्य में सम्पन्न भावातिरेक का प्रसार करने वाली भाषा नित्यप्रति नया वातावरण निर्मित करती हुई स्वरूप धारण करती है । वैसे तो आचार्य श्री की मातृभाषा कन्नड़ है तथापि विशाल संस्कृत और हिन्दी में निबद्ध पद्य रचनाएँ अत्यन्त मनोहर हैं। उनके नित्य प्रति के प्रवचनों से अभिव्यंजित होती हुई भाषा माधुर्य बरसाती हुई साहित्यिकता में आबद्ध होती जाती है । आपकी कृतियों में आध्यात्मिक वातावरण व्याप्त रहते हुए भी भाषा में सजीवता और ऊर्जा है ।

विभुरसीहसताम् जिन सङ्गतः प्रयगसीश सुखीचित सङ्गता ।
ननु तथापि मुनि स्वत सङ्गतः सुखमहं स्मय एष हि सङ्गता ।
सर्वज्ञ हो इसलिए विभु हो कहाते निःस्सङ्ग हो इसलिए सुख चैन पाते ।
मैं सर्वसङ्ग तज के तुम सङ्ग से हूँ आश्चर्य आत्म सुख लीन अनङ्ग से हूँ ।।[288]

कहीं-कहीं कोमलकान्त पदावली अत्यन्त रमणीय रूप में उपस्थित होकर अनुप्रास का सौन्दर्य अपनाये हुए हैं -

परपदं ह्यपदं विपदास्पदम्, निजपदं निपदं च निरापदम् ।
इति जगाद जनाब्ध रविर्भवान्, ह्यनुभवन स्वभवान भववैभवान् ।।[289]

निरञ्जन शतकम् में तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। भाषा आधुनिक पंक्ति की उच्चकोटि की साहित्यिक है । शब्दावली में समानता रहते हुए अर्थभेद पाया जाता है । अर्थभेद को सूचित करने वाली समान शब्दावली प्रत्येक पद्य में निमयपूर्वक दो-दो बार मिलती है । इस कठिनाई को हल करने के लिए संस्कृत पद्यों के नीचे अन्वय दिया गया है और हिन्दी पद्यों में अनुवाद कर दिया है । कविता को बोधगम्य बनाकर जन-जन के अन्तर्मन में उसका स्थायी प्रभाव अंकित करना कवि का प्रधान कर्तव्य है । इसी उद्देश्य के प्रतिफलित करने के लिए निरंजन शतकसार निरन्तर सचेष्ट हैं ।

संस्कृत भाषा और साहित्य में अपनी आस्था रखने वाले काव्य प्रणेता शैली की उत्कृष्टता और सुगमता पर अपना समग्र चिन्तन केन्द्रित करते हैं । भाषा और शैली का स्वरूप जानने के लिये गुण और रीति को समझना भी आवश्यक होता है, क्योंकि काव्य में गुणों की अचल स्थिति होती है। ये रस के धर्म कहे जाते हैं । आचार्य वामन ने काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणः अर्थात् (काव्य में शोभा उत्पन्न करने वाले शब्दार्थ के धर्म गुण हैं) उन्होंने 10 गुण माने हैं[290] किन्तु आचार्य मम्मट ने ''माधुरमोजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश'' कहकर उनके मत का खण्डन किया है और इस प्रकार माधुर्य, ओज, प्रसाद इन काव्य गुणों की सत्ता काव्य शास्त्र में स्वीकार की है।[291]

प्रस्तुत गुणों की सार्थकता के आधार पर ही किसी काव्य की शैली का सच्चे अर्थों में विवेचन किया जा सकता है ।

माधुर्य गुण उस गुण को कहते हैं, जो चित्त को द्रवीभूत सा करते हुए प्रसन्न कर देता है । शृंगार करण, शान्त रसों में उसकी स्थिति देखी जा सकती है ।[292]

प्रस्तुत ग्रन्थ निरञ्जन शतकम् में स्थान-स्थान पर माधुर्य गुण विद्यमान है । शान्तरस के वातावरण में माधुर्य की सुरम्यता निखर गयी है ।

चरण युग्ममिदं तव मानसः सनखमौक्तिक इव विमानसाः ।
भृशमहं विचरामि हि हंसक ! यदिह तत् तटके मुनि हंसके ॥

श्रीपाद मानस सरोवर आपका है होते सुशोभित जहाँ नख मौलिका है ।
स्वामी तभी मनस हंस मदीय जाता प्रायः वही विचरता, चुग मोती खाता ॥[293]

औज गुण चित्त को विस्तृत सा करता प्रदीप्त कर देता है । यह वीर वीभत्स एवं रौद्र रसों में पाया जाता है ।[294]

निरञ्जन शतकम् में ओज गुण के दर्शन किये जा सकते हैं -

परमवीरक आत्मजयीह त इति शिखोहदि लोकजयी हतः ॥
हो वीर वीर तुम चूंकि निजात्म जेता ।
मारा कुमार तुमने ''शिव'' साधु नेता ॥[295]

यहाँ जिनदेव को वीर, आत्मजयी कामदेव का नाश करने वाला निरूपित किया गया है । अतः ओजगुण निर्देशित है ।

प्रसाद गुण वह है, जो सूखे ईंधन में अग्नि के समान तथा कपड़े में जल के समान सामाजिक के चित्त को व्याप्त कर देता है । सभी रसों में और रचनाओं में होती है ।[296]

निरञ्जन शतकम् में प्रसाद गुण अनेक पद्यों में प्रयुक्त हुआ है । एक उदाहरण दर्शनीय है -

ननु नरेश सुख सुरसम्पदं, न मुनिरिच्छ इहापि चसम्पदम् ।
जडतनोर्वहनं द्रुतमेत्विति भज ! मतिः खरवत् किल मेत्विति ॥
चाहुँ न राज सुख मैं सुरसम्पदा भी,
चाहुँ न मान यशदेह नहीं कदापि ।
स्वामी ! गधे सम निज तन भार ढोना,
कैसे मिटे कब मिटे मुझको कहो ना ?[297]

इस प्रकार तीनों प्रकार के काव्य गुणों की अवस्थिति निरञ्जन शतकम् में है। इस कृति में शैली का स्वच्छ एवं सुरम्य रूप विद्यमान है । शैली के अन्तर्गत काव्य रीति पर भी दृष्टिपात करना समीचीन होगा । रीति काव्य का महत्वपूर्ण तत्त्व है । वामन के अनुसार- रीति काव्य की आत्मा है ।[298] वे गुणों से निष्पन्न हुई विशिष्टता को रीति मानते हैं - ''विशिष्टा पदरचना रीतिः'' ये इस प्रकार की हैं - वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली, गुणों के समान ही इनका वर्गीकरण किया जाता है - समग्र गुणोपेता वैदर्भी - अर्थात् औज, प्रसाद और माधुर्य इन गुणों को वैदर्भी गुम्फित करती है ।

गौड़ी रीति में ओजगुण से सम्बद्ध वर्णन समाविष्ट है । माधुर्य की सुकुमारता पाञ्चाली में व्याप्त रहती है ।

इस प्रकार काव्य में रीतियों का महत्त्व भी गुणाश्रित रहता है । उपर्युक्त जो उदाहरण निरञ्जनशतकम् से गुणों के विश्लेषण में उद्धृत किये गये हैं, वहीं रीतियों की पृष्ठभूमि में अभिव्यंजित किये जा सकते हैं । सारांश यह कि निरञ्जन शतकम् में रीतियों का अस्तित्व भी गुणों के समान पाया जाता है । इस प्रकार गुण-रीति का अद्वितीय समन्वय आचार्य श्री की काव्य सृजन शैली में पाया गया है ।

उपर्युक्त समीक्षा के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि शैली का उत्कृष्ट रूप निरञ्जन शतकम् में विद्यमान है ।

भाषा शैली का प्राञ्जल, उज्ज्वल रूप आचार्य श्री के ग्रन्थ को गौरवान्वित करने में सक्षम है । शैली में काव्य का सौन्दर्य समाहित हो गया है । भाषा शैली में शब्द शक्तियों का अद्वितीय योगदान रहता है । इनके माध्यम से ही भाषा और शैली परिष्कृत हो जाती है ।

ये शक्तियाँ शब्द के अर्थ को उपस्थित करती हैं । साहित्य में वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक ये तीन भेद शब्द के होते हैं । इन्हीं के अनुसार वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य ये तीन भेद अर्थ के होते हैं ।[299]

वाच्यार्थ को अभिव्यक्त करने वाली अमिधा शब्द शक्ति कहलाती है। मुख्यार्थ के अशक्त होने पर उससे सम्बन्धित अन्य अर्थ को प्रसिद्धि या प्रयोजन वश उपस्थित करने

वाली (वृत्ति) या शक्ति लक्षणा है । अभिधा और लक्षणा के विरत हो जाने पर व्यञ्जना नामक वृत्ति से एक नया अर्थ उपस्थित किया जाता है । इसे व्यंग्यार्थ भी कहते हैं ।[300]

इस प्रकार उपर्युक्त पंक्तियों में बीसवीं शती के अग्रगण्य दिगम्बर जैन आचार्य श्री विद्यासागर जी मुनि द्वारा विरचित निरञ्जन शतकम् ग्रन्थ की विषयवस्तु और वैशिष्ट्य का विश्लेषण करने के उपरान्त उसके भावपक्ष और कलापक्ष पर भी समीक्षात्मक सोदाहरण विशद प्रकाश डाला गया है।

२. भावनाशतकम्

भावनाशतकम् का साहित्यिक अध्ययन करने से सुस्पष्ट होता है कि भावना शतकम् आधुनिक संस्कृत साहित्य का एक प्रौढ़ तथा प्राञ्जल शतक काव्य ग्रन्थ है । इसकी आध्यात्मिक विवेचना, आत्मोत्कर्म की विशद व्याख्या, प्राचीन आदर्शों और काव्य के मानदण्डों को साम्प्रतिक परिवेश में विश्लेषित करने की अद्‌भुत क्षमता प्रत्येक पद्य से प्रस्फुटित होती है ।

भाव प्रधान इस ग्रन्थ ने अपनी भावाभिव्यक्ति और मौलिक चिन्तना एवं प्रतिपादन शैली से संस्कृत काव्य साहित्य को एक अभिराम रत्न प्रदान किया है । आचार्य श्री की सारगर्भित शब्दावली के माध्यम से उनकी गम्भीर काव्य साधना एवं सुस्पष्ट चिन्तन की झलक मिलती है । भावनाशतकम् की पद योजना में लालित्य है - माधुर्य की विस्तृत विवेचना है -

साधो समाधिकरणं सुखकरं च गुणनामाधिकरणम् ।
न कृतागमाधिकरण करणो न नु कामाधिकरणम् ।।[301]

उक्त पद्य में माधुर्य गुण की छटा के दर्शन सहज ही हो रहे हैं । भावना शतकम् में पाँचाली रीति का अनुपम निदर्शन है - प्रसङ्गानुकूल समासों का प्रचुर प्रयोग और यमकमयी क्लिष्ट पदावली आदि के कारण ग्रन्थ साधारण व्यक्ति की समझ से परे है, अर्थात् इसमें दुरुहता आ गई है । समास बहला-पाञ्चाली रीति का अनूठा प्रयोग है । उदाहरणार्थ पद्य प्रस्तुत है -

चिदानन्द दोषाकरोऽयमशेष दोषो न सदोषाकरः ।
विकसत्वदोषाकरो दोषायां न तु दोषाकरः ।।[302]

अदोषाकरः, दोषाकरः में समास पदों का प्रयोग है तथा दोषाकरः में यमकालङ्कार के माध्यम से माधुर्य की अभिव्यञ्जना की गई है । इस ग्रन्थ के गाम्भीर्य को कोश ग्रन्थों (विश्वलोचन कोष आदि) की सहायता से समझा जा सकता है । इसी आधार पर पं. पन्नालाल साहित्यचार्य ने "भावनाशतकम्" की संस्कृत टीका तैयार की है । भावों को बोधगम्यता प्रदान की दृष्टि से आचार्य श्री ने हिन्दी पद्यानुवाद भी किया है । किन्तु उक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि यह कृति आचार्य श्री के गम्भीर चिन्तन पाण्डित्य और वैदुष्य का उचित प्रतिनिधित्व करती है ।

३. श्रमण शतकम्

श्रमणशतकम् की भाषा शैली की प्रमुख विशेषताओं के क्रम में यह विचारणीय है कि मधुर पर योजना से युक्त, सहृदयों के हृदय में मधुरिमा की मधुवृष्टि करने में नितान्त समर्थ है । - माधुर्यगुण का प्रसार अद्योलिखित पद्य में निदर्शित है -

''सुधीतात्मसुधारसः संयमी सुधीर्यश्च सदाऽरसः ।
ऋषे ! विषयस्य सरसः किल किं वार्वाञ्छति नरः सः ।।[303]

इसमें सुधा रस, अरस और सरस की पद योजना विशेष रूप से माधुर्य की अभिव्यक्ति में सहायक है ।

श्रमणशतकम् के अनेक पद्यों में प्रसाद गुण समन्वित है, उदाहरणार्थ एक पद्य प्रस्तुत है-

''तथा जितेन्द्रियोगतो, निस्पृहोऽभवं योगी च योगतः ।
पक्वपूर्णचयोऽगतो, यथा पतन मा चल योगत ''।।[304]

अर्थात् - ब्रह्मविद् योगी ब्रह्ममय हो जाता है, देह से वह सभी प्रकार निस्पृह हो जाता है जिस प्रकार पक्वपूर्ण वृक्ष से ।

बाणभट्ट की रीति के अनुरूप श्रमण शतकम् में आचार्य श्री ने पाञ्चाली रीति का आश्रय लिया है । शतक परम्परा की प्रथम कृति होने के कारण इसमें विकट वर्णों, समास बहुत क्लिष्ट पदों के प्रयोग प्रायः नहीं मिलते हैं । अल्पसमासा-मृदुपदा शैली का उपयोग अधोलिखित पद्य में परिलक्षित हो रहा है -

सुकृतैनोभ्यां मौनमिति व्रज मत्वाहं देहमौ न !
धुवौ धर्मावमौन राग द्वेषौ च ममेमौ नः ।।[305]

कवि ने छन्द और अर्थ के समन्वय पर समान रूप से ध्यान केन्द्रित किया है। संस्कृत की सरस और सरल पदावली के माध्यम से भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की है । श्रमणशतकम् में भाषा की सजीवता, सुस्पष्टता पदे-पदे दृष्टिगोचर होती है । भाषा में दुरुहता का अभाव है । शैली में नवीनता आकर्षण और रोचकता आ गयी है । श्रमण शतकम् के पदों में गेयता, सङ्गीतात्मकता पाई जाती है । यह कृति रचनाकार की प्रतिभा वैदुष्य और रचना कौशल की परिचायक है ।

४. सुनीतिशतकम्

''सुनीतिशतकम्'' में सरल संस्कृत पदावली प्रयुक्त है -

सुनीति शतकम् का माधुर्य भी चित्त को द्रवीभूत करते हुए परमाल्हाद में निमग्न कर देता है - एक पद्य में यथामति तथागति-यथागति तथामति का भाव सौन्दर्य हृदय को मधुरस से सिंचित कर रहा है -

यथा मतिः स्याच्च तथा गतिः सा यथा गतिः स्याच्च तथा मति सा।
मतेरभावातु गतेरभावो, द्वयोरभावात् स्थितिराश शैवे ।।[306]

उक्त पद्य की पद योजना सराहनीय है । प्रसाद गुण युक्त सुनीतियों के सङ्ग्रह इस ग्रन्थ में रोचकता आ गई है ।

अविवाहित रहकर व्यभिचारी का जीवन यापन करना निन्दनीय और घृणित है- इससे शुभाचारी गृहस्थ होना श्रेयस्कर है -

विवाहित– संश्च वरो गृही सोऽ, विवाहिताद्वा व्यभिचारिणोऽदि ।
पापस्य हानिश्च वृषे मतिः स्यात् तथैतरस्यात् श्रुणु पापमेव ।।[307]

भर्तृहरि की नीतिशतकम् शैली के अनुरूप ''सुनीतिशतकम्'' की शैली में भी सहजता, सरलता के दर्शन होते हैं । यह शतक माधुर्यमण्डित और प्रसादगुण से परिपूर्ण है - शैली में सुबोधता पदे-पदे विद्यमान है । इस ग्रन्थ में वैदर्मी रीति का उपयोग आद्योपान्त किया गया है - इनके पद्यों में महाकवि कालिदास की शैली की स्पष्ट छाप अंकित है । सुकोमल पद शय्या से सुसज्जित एक पद्य द्रष्टव्य है -

विशेष सामान्य चित्तं सदस्त चितिद्वयेनाकलितं समं वै ।
एकेन पक्षेण न पक्षिणस्ते, समुत्पतन्तोऽत्र कदापि दृष्टाः ।।[308]

उक्त पद्य में दृष्टान्त शैली के दर्शन होते हैं ।

५. परिषहजय शतकम्

''ज्ञानोदय'' के नाम से प्रकाशित परीषह जय शतकम् का अनुशीलन करने यह कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ मनोवैज्ञानिक भावाभिव्यंजना का प्रतिनिधित्व करता है । इस शतक में बाईस परीषहों का सरस और सुरम्य चित्रण किया गया है । इसमें भाववली की क्रमबद्धता और प्रभावित करने वाली सहजता आद्योपान्त व्याप्त है । कविवर आचार्य श्री के भाव अल्प बुद्धिजीवी को भी निरन्तर साध्य (बोधगम्य) है । उनके भावों में कृत्रिमता का लेश भी नहीं, स्वाभाविकता और सहजता सर्वत्र समाविष्ट हुई है । उनका कवित्व काल्पनिक उड़ानों से पूर्णतः मुक्त है । उन्होंने यथार्थता के सांचे में ढले हुए और प्रसङ्गानुकूल शब्दों का चयन किया है ।

परिषहजय शतकम् में भाषा का प्रभावशाली और मर्यादित प्रयोग है। भाषा में उच्चकोटि की संस्कृत है जिसे साधारण मनुष्य आत्मसात कर सकता है । संस्कृत के साथ ही तत्सम शब्दों की प्रचुरता परिलक्षित होती है । इस प्रकार परिष्कृत एवं श्रेष्ठ भाषा का मनोरम रूप ज्ञानोदय में मिलता है । भाषा के साहित्यिक परिवेष में आबद्ध उसका उज्ज्वल और सार्थक प्रयोग करना आचार्य श्री को स्वीकार है । अपनी सशक्त और भावानुकूल भाषा के माध्यम से उन्होंने सभी परिषहों का सजीव वर्णन किया है । शब्दावली में तुकान्तता आ गयी है जिससे पद्यों के प्रति सहृदयों को अत्यन्त आकर्षण होता है । यहाँ एक पद्य प्रस्तुत है - जिसमें भावसाम्य की मनोहर भाषा के द्वारा सफल अभिव्यंजना हुई है -

स्वर्णिम, सुरभित, सुभग, सौम्यतन सुरपुर में सुर सुख,
उन्हें शीघ्र से मिलता शुचितम शाश्वत भास्वत शिवसुख है ।

संस्कृत पद्य भी - अनंघतां लघुनैति सुसङ्गता,
सुभगतां भगतां गत सङ्गताम्[309]

भाषा के समान ही शैली में भी एकात्मकता आ गयी है शैली के आधार पर ही किसी भी रचना की समीक्षा की जा सकती है । इसलिए परीषहजय शतक में भाषा और शैली की अवस्थिति पर दृष्टिपात करना आवश्यक है ।

आचार्य श्री द्वारा विरचित यह ग्रन्थ आलङ्कारिक और प्रसादगुणपूर्ण शैली में निबद्ध है । सहृदय को तन्मय कर देना माधुर्य गुण की पराकाष्ठा है । इसमें माधुर्य गुण के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं -

त्रिपथगाम्ब सुचन्दन वासितं शशिकलां सुमणि ह्यथवा सिता।
प्रकल्यन्ति न धर्मसुशान्तये भुवि मता मनयो जिनशान्त ये ।।[310]

ऋषियों के लिए गङ्गाजल और मलयागिरि का चन्दन तथा आनन्द प्रदायिनी शरद कालीन चन्द्रमा की शीतल और शुभ्रकिरणें ही सुरमा, काजल मणिमाला आदि शृंगारिक साधन हैं ।

आचार्य विद्यासागर जी की शैली की एक विशेषता यह भी है कि उनकी रचनाओं में प्रसादगुण पदे-पदे मिलता है । परीषहजय शतकम् में से एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

नहि करोति तृषाकिल कोपिनः शुचि मुनीम नितरो भुवि कोपि न।
विचलितो न गजो गजभावतः श्वगणेकन सहापि विभावतः ।।[311]

कवि के कहने का अभिप्राय है कि स्वालम्बी होकर मुनिवर तृषा आदि के वश में न हरते हुए जीवन यापन करते हैं किसी कारण से कुपित न होने वाले ये उस मतवाले हाथी के समान अपने पथ पर चलते हैं जिसके पीछे सौ-सौ श्वान भौंकते हैं, किन्तु वह उनकी और देखता भी नहीं ।

''परिषहजय शतक'' में अभिधा शक्ति की विपुलता परिलक्षित होती है । भावार्थ का सहज और स्पष्ट वर्णन ही अभिधा वृत्ति को उपस्थित कर देता है -

विरमित श्रुततो ह्यधकारतः वचसि ते रमते त्वविकारतः ।
स्मृतिपथं नयतीति न भोगकान् विगत भावितकांश्च विबोधकान् ।।[312]

कवि का अभिप्राय यह है कि साधुजन पाप से लिप्त करने वाले (विषय वासना प्रधान) शास्त्रों से दूर रहते हैं तथा वैराग्य बढ़ाने वाले ग्रन्थों को पढ़ने में संलग्न रहते हैं। अतीतकाल में भोगे गये भोगों को न सोचते हुए वर्तमानकाल के प्रति सचेत रहते हैं ।

इसी प्रकार लाक्षणिक शब्द के अर्थ को अभिव्यक्त करने लक्ष्यार्थ उपस्थित होता है। यह लक्ष्यार्थ लक्षणा शक्ति के द्वारा प्रकट होता है । लक्षणा शक्ति का प्रतिपादन परीषहजय शतकम् के कतिपय पद्यों में दर्शनीय है । आचार्य श्री प्रसङ्गानुकूल आचार्य श्री प्रसङ्गानुकूल लक्षणा के आधार पर अपने भावों को अभिव्यञ्जित किया है, उदाहरण के रूप में अधोलिखित पद्य प्रस्तुत है -

पद विहारिण आगमनेत्रकाः धृतदया विमदा भुवनैत्र काः[313]

''दया-बन्धु'' और ''आगमनैत्र'' इनमें लाक्षणिक प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार के प्रयोग निम्न पद्य में भी आये हैं ।

लसति मां परितो मुदितां सती तदसहेति तृषा कृपिां उसती[314]

अर्थात् मुक्ति रमा उनके सम्मुख मुदित होकर नाचती है इसीलिए ही मानो तृषा ईर्ष्या करती हुई जलने लगती है और कुपित होती है । यहाँ लक्षणिक प्रयोग हुए हैं, जिनमें लक्षणा प्ररूपित हुई है ।

परीषह जय शतक में अनेक स्थलों पर व्यञ्जना व्यापार की सजीव अभिव्यक्ति हुई है - अन्तिम वृत्त में स्पष्ट किया गया है कि सभी ऐश्वर्यों के प्रति उदासीन हो आत्मा को देखने की दीर्घकाल से प्यास थी । उसे मिटाने के लिए ज्ञानसागर से उत्पन्न विद्या के प्याले को पान कर संतुष्ट हो जाऊँगा -

वै विषयमीयविद्यां विहाय ज्ञानसागरजा विद्या ।
सुधा मैम्यत्मविद्यां नैच्छामि सुकृजां भुविधाम ।।[315]

यहाँ मुख्यार्थ के अतिरिक्त भी एक गूढ़ अर्थ अभिव्यञ्जित हो रहा है कि विषम अविधा रूपी होली का त्याग कर अपने गुरू ज्ञान सागर से प्राप्त समानता रूपी विद्या सुधा का सेवन करूँ, जिससे कल्याण प्राप्त हो सके । अत: यहाँ व्यंग्यार्थ भी समाविष्ट हो गया है ।

परीषह जय शतक के विभिन्न पद्यों में काव्य रीतियों के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। गुणों के वर्गीकरण में प्रयुक्त उदाहरण भी रीतियों के सन्दर्भ में प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर परिषहजय शतककार की भाषा शैली की समीक्षा और भावाभिव्यक्ति का समीचीन निदर्शन किया गया है ।

इनके अतिरिक्त आचार्य विद्यासागर जी द्वारा प्रणीत अन्य रचनाओं में भी साहित्यिक, शैलीगत उपर्युक्त सभी सामग्री विद्यमान है । आचार्य श्री निरन्तर काव्य साधना करते हुए बीसवीं शताब्दी में संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि कर रहे हैं -

आचार्य कुन्थुसागर की रचनाओं का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन

मुनिवर कुन्थुसागर की रचनाओं में अध्यात्म, नीति, दर्शन, संस्कृति और आचार शिक्षा की प्रतिष्ठापना है । आचार्य श्री की प्रमुख कृतियों का साहित्यक एवं शैलीगत विवेचन विचारणीय है ।

शान्ति सुधा सिन्धु

रसानुभूति

''शान्तिसुधा सिन्धु'' अध्यात्म, ज्ञान, वैराग्य और शाति पर आधारित रचना होने के कारण इसमें शान्त रस की प्रधानता है ।

मुनिमार्ग की महनीयता के निदर्शन में शान्तरस की अनुभूति अधोलिखित पद्य में प्रेक्षणीय है -

स्वानन्द तृप्ताय मुनीश्वराय देवेन्द्रलक्ष्मी र्धरणेन्द्रसम्पत्,
नरेन्द्र राज्यं वरकामधेनु चिन्तामणिः कल्पतरोवनादि ।
सुभोग भूमि स्तृणवद्विभाति तथा मनोवाञ्छितभोजनादिः,
कथैव साधारण वस्तुनः का लोके मुनीनां महिमाह्यचिन्त्या ।।[316]

इस ग्रन्थ में शान्तरस का आद्योपान्त विवेचन है ।

सुरापान करने से मनुष्य बुद्धिभ्रम वश बहिन, माता तथा अन्य किसी भी स्त्री को अपनी पत्नी समझ लेता है - इस आशय की अभिव्यक्ति में अद्‌भुत रस का परिणाम सजीव बन पड़ा है -

सुरादिपानेन हतात्म बुद्धि–नरो यथा को भगिनीमपीह ।
सुमन्यते मातरमेव मूढो, भार्यावरां मन्यत एव देवीम् ।[317]

यहाँ मनुष्य के नैतिक पतन पर सहृदय आश्चर्यान्वित हो उठता है। मानव शरीर को मांस, रुधिर, मूत्र और विष्टा का पात्र (भण्डार) कहकर उसके प्रति उपेक्षा भाव रखने की प्रेरणा बीभत्सरस की सिद्धि करती है-

संसर्गतो देहमलीनस्य, शुद्धः पदार्थोऽपि भवेदशुद्धः ।
वस्त्रान्नपानं च विलेपनादि रत्यन्तनिन्द्यञ्च विर्वजनीयः ।।[318]

इस प्रकार शान्तिसुधासिन्धु में अन्य रसों की उपलब्धि भी होती है किन्तु प्रमुख रूप से शान्तरस ही अभिव्यञ्जित है ।

छन्दयोजना

''शान्तिसुधा सिन्धु'' ग्रन्थ विविध छन्दों में निबद्ध रचना है । इसके 163 श्लोकों में अनुष्टुप्, 348 पद्यों में उपजाति, इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा तथा 20 पद्यों में वसन्ततिलका छन्द परिलक्षित होता है ।[319]

वसन्ततिलका छन्द में निबद्ध एक पद्य प्रस्तुत है -

संसार ताप शम का निजामात्म निष्ठाः संसार दुःख सुखदाः परमापवित्राः ।।[320]

आलङ्कारिक छटा

शान्ति सुधा सिन्धु में प्रायः सभी प्रसिद्ध अलंकारों की प्रस्तुति है । इस काव्य में प्रयुक्त अलंकार काव्य सौन्दर्य को परिष्कृत किये हुए हैं ।

इस कृति में अनुप्रास अलंकार प्रचुरता के साथ प्रयुक्त हुआ है । कतिपय उदाहरणों से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है -

मातापि मान्या चतुरः पितापि ।
स्वप्तम् सुशीला प्रिय बान्धवोऽपि ।।[321]
वादन्न चानि सततं स्वपिति स्वपन्न,
कुर्वन् करोति न भवन् भवति ह्यहो न ।।[322]

अनुप्रास के अतिरिक्त विरोधाभास, स्वभावोक्ति प्रतीप, व्यतिरेक, दृष्टान्त, उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, अपन्हनुति, आदि को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है । किन्तु श्लेष, यमक का सर्वथा अभाव ही है । शान्तिसुधा सिन्धु ग्रन्थ में अनेक अवसर विरोधाभास अलङ्कार सहित उपस्थित हैं - विरोधाभास अलङ्कार[323] के उदाहरण अधोलिखित पद्यों में हैं -

ग्रस्तोस्ति यः कामखलेन जीवः स्वानन्द साम्राज्य विनाशकेन ।
दक्षः स कुण्ठश्चचतुरोपि मूर्खः कोपी क्षमान् भयवांश्च शूरः ॥
ज्येष्ठः कनिष्ठः सृजनोपि दुष्टस्तीव्रोपि मन्दः प्रबलोप्यशक्तः ।
नीचो कुलीनः विवशोवशः स्यादबुदध्वेति तत्त्याग विधिर्विधेयः ।।[324]

कामदेव के वशीभूत पुरुष चतुर होने पर मूर्ख तीव्र बुद्धि भी मन्दबुद्धि, क्षमावान होने पर भी क्रोधी, शूरवीर भी भयभीत, बड़ा भी छोटा सज्जन भी दुष्ट एवं कुलीन भी नीच कहलाता है । आशय यह कि यहाँ परस्पर विरोधी गुणों की प्रतीति है, जिससे विरोधाभास दृष्टिगोचर होता है । इसी प्रकार निरधमी को सत्कार्य करने पर भी पापी, चतुर होने पर मूर्ख, धनी होने पर दरिद्र और सज्जन होने पर दुष्ट कहने से विरोधाभास की प्रतीत होती है । -

निरुद्यमी स्यान्नरजन्म लब्ध्वा सत्कर्मकार्ये सुखदे सदा यः ।
स एव पापी चतुरोपि मूर्खः श्रीमान् दरिद्रः सुजनोऽपि दुष्टः ।।[325]

किन्तु उपर्युक्त उदाहरण में विरोधाभास का (समाधान) परिहार किया गया है एक-एक ही अवगुण के कारण इन पुरुषों के समस्त सद्गुण लुप्त हो गये हैं ।

इसी प्रकार एक पद्य में राज्य, स्वर्ग, सेना, इन्द्रिय, परिवार आदि से प्राप्त सुखों को दु:खदायी बताना विरोधाभास की प्रस्तुति ही है -

राज्योद्भवं नामभवं नरोयं सैन्योद्भवं कामपिशाचजातम् ।
आदोप्रिय प्राण हरंपलान्ते ह्यक्षोद्भव बन्धुकलत्रजातम् ।।[326]

इस कृति में स्वभावोक्ति अलङ्कार भी विविध अध्यायों में परिलक्षित किया जा सकता है । यहाँ के उदाहरण के द्वारा स्वाभाविक शत्रुभाव के द्वारा स्वभावोक्ति उपस्थित हुआ है-

मूर्खस्य शत्रुः प्रबलश्च विद्वान् लोकोस्ति भिक्षु कृपणस्य शत्रुः ।
चौरस्य शत्रुर्नृपतिः सदैवाऽधर्मस्या शत्रुश्च निजात्मधर्मः ।।[327]
जारास्त्रियः शीलवती च शत्रुः दृष्टस्य शत्रु सृजनश्च तिर्यक् ।
स्वर्गस्य मोक्षो नरकस्य शत्रुः पूर्वोक्ति रीतिश्च निसर्गतोस्ति ॥

इसी प्रकार कुछ अन्य पद्यों में स्वभावोक्ति के उदाहरण विद्यमान है किन्तु चतुर्थ अध्याय में यह अलंकार विशेषरूप में आया है ।

शान्ति सुधा सिन्धु ग्रन्थ में प्रतीत अलंकार[328] भी यत्र-तत्र प्राप्त होता है -

प्रस्तुत पद्य में उपमेय मुनिजनों के लिए अन्य सभी प्रसिद्ध उपमान इन्द्र की विभूति धरणेन्द्र की सम्पदा, साम्राज्य सुख, कामधेनु, चिन्तामणि, कल्पवृक्ष युक्त कानन, उत्तम भोगभूमि एवं आहार आदि तृण के समान उपेक्षणीय है ।

स्वानन्दतृप्ताय मुनीश्वराय देवेन्द्रलक्ष्मीधर्रणेद्रसम्पत् ।
नरेन्द्रराज्यं वरकामधेनुश्चिन्तामणिः कल्पतरो बनादि ।
सुभोगभूमिस्तृणवद्विभान्ति तथा मनोवाञ्छितभोजनादि,
कथैव साधारण वस्तुनः का लोके मुनीन महिमाह्यचिन्त्यः ।।[329]

यहाँ उपमेय की अपेक्षा समस्त उपमानों के तिरस्कृत रूप में वर्णित किया है, अतः प्रतीप अलङ्कार है ।

इसी प्रकार अनेक स्थलों पर व्यतिरेक अलङ्कार[330] भी प्रस्तुत हुआ है - ऐसे अनेक पद्य हैं जिनमें उपमेय का उत्कर्ष और उपमान का नगण्य रूप में उपस्थित किया है- अधोलिखित पद्य में व्यतिरेक अलङ्कार के दर्शन होते हैं -

चिन्तामणिः कल्पतरुः सुरेशो दासो नरेशोऽपि भवेत्फणीशः ।
सुभोगभूमिर्वर कामधेनुः सुखप्रदौ स्वर्गमही स्वदासी ॥
अध्यात्मविद्याकृपया तथा स्यात् स्वानन्द साम्राज्य सुखं समीक्ष्य ।
ज्ञात्वेत्यविद्यां प्रविहाय भव्यैरध्यात्मविद्या हृदि धारणीया ।।[331]

दृष्टान्त अलङ्कार[332] की छटा भी इस काव्य में विद्यमान है । एक पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत है - इसमें विद्या, बुद्धि सरोवर बाबडी एवं लक्ष्मी आदि दृष्टान्त के द्वारा यह प्रतिपादित किया है कि जैन सिद्धान्तों की प्रसिद्धि एवं वृद्धि उनका व्यय (प्रचार) करने में है -

विद्यादिबुद्धेः सरसश्च वाप्याः सुलब्ध लक्ष्म्याश्च ऽव्यये ।
समूलहानिश्च जिनागमस्य व्ययात्समन्तात्परिवर्द्धते कौ ॥
ज्ञात्वेत्यवश्यं धनबुद्धि लक्ष्म्याः व्ययश्च कार्यो न च रक्षणीयः ।
यतः स्वबुद्धश्च धनं सुविद्या धर्मोऽपि वर्द्धन्त सदैव लोके ।।[333]

इसके साथ ही शान्तिसुधा सिन्धु ग्रन्थ में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति के दर्शन भी किये जा सकते हैं । उपमा अलंकार का प्रयोग अत्यधिक पद्यों में किया गया है सम्भवतः अपने मौलिक सिद्धान्त और चिन्तन को उपमा के माध्यम से ही सुस्पष्ट किया है -

यथैव मेधाः पवन प्रसङ्गातप्रजा स्तथा दुष्ट नृपस्य सङ्गात ।
मिथाः प्रबोधादिति तेपि शान्ति लब्धालभन्ते समयं स्वराज्यम् ।।[334]

भावार्थ यह कि जिस प्रकार पवन के, संयोग से बादल एवं दुष्ट राजा के संयोग से प्रजा गिर जाती है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव भयानक भवसिन्धु में गिर जाते हैं । यहाँ बादल व प्रजा, उपमेय एवं अज्ञानी जीव उपमान हुए । यह अन्य उदाहरण में कहते हैं। जैसे सूर्य के बिना दिन उसी प्रकार गुरु के बिना यह संसार ही शून्य है -

यथार्थ तत्त्व प्रविदर्शकेन, स्वानन्दंभूर्त्यागुरुणा विना हि ।
सम्पूर्ण विश्वं प्रमिभाति शून्यं, सूर्येण हीनं च दिनं यथा को ।।[335]

इसी प्रकार रूपक अलङ्कार[336] भी विभिन्न अध्यायों में प्रयुक्त हुआ है । रूपक से सम्बद्ध एक पद्य अधोलिखित है । यहाँ कर्मरूपी चोर द्वारा महादुःखरूपी समुद्र को बढ़ाने वाले मोहरूपी रस्सी से समस्त जीवों के बाँधे जाने का विवेचन हुआ है -

दृढ़ प्रगाढेन च मोहरज्जु-नान्त्य दुःखाब्धि विवर्द्धकेन ।
बध्वेति जीवान खलकर्मचौरा, दृठान्नयन्त्यैव च यत्र-तत्र ।।[337]

यहाँ उपमेय कर्म, दुःख, मोह में उपमान क्रमशः चोर, समुद्र, रस्सी का अभेद वर्णन किया गया है । एक अन्य उदाहरण द्वारा कर्मरूपी शत्रु की प्रबलता का वर्णन किया है -

मोहोद्भवः कर्मरिपुर्हणत्कौ राजानमेवापि करोति रङ्कम्
रङ्कं तथा राज्यपदान्वितं च करोति मूढं चतुरं क्षणाति[338]

इसके पश्चात् उत्प्रेक्षा अलङ्कार भी विभिन्न दृश्यों में आया है । यहाँ एक उदाहरण में उत्प्रेक्षा के साथ अपन्हुति अलङ्कार का भी प्रयोग दर्शनीय है - मायाचार (दुराचार) पूर्वक उपार्जित धन को धन ही पापों का समूह कमाना ही कहा है -

मन्ये ततो धनं न स्यात् पापपुञ्जमुजार्ज्यते[339]

मानो वह धन नहीं कमाता पापों का समूह ही कमाता है ।

इस प्रकार शान्ति सुधा सिन्धु काव्य में पदे-पदे आलङ्कारिक सौन्दर्य की आवृत्ति हुई है।

शैलीगत विवेचन

प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा शुद्ध साहित्यिक एवं परिष्कृत संस्कृत है । इसमें प्रसङ्गानुकूल भाषा के अनेक रूप परिलक्षित होते हैं । कुन्थुसागरजी की यह भाषा भास एवं कालिदास की बोधगम्य भाषा के समान ही सर्वजनग्राह्य है । इसमें जैन दर्शन के गुढ़ सिद्धान्तों को सजीवता के साथ प्रस्तुत किया गया है । सम्पूर्ण ग्रन्थ में सरस पदावली की अभिव्यंजना है । पदान्त में चतुर्थी विभक्ति के प्रयोग से युक्त एक पद्य प्रस्तुत है -

तपो जपध्यान दयान्विताय, स्वानन्द तृप्ताय निजाश्रिताय ।
दत्वा यथायोग्य पदाश्रिताय, पात्राय दानं नवधापि भक्त्या ।।[340]

यहाँ भाषा ने भावों को जन सामान्य तक पहुँचाने में सन्देशवाहक का कार्य किया है और कवि अपने उच्च जीवनदर्शन तथा अध्यात्म से अनुप्राणित भावों को अलंकृत शुद्ध, साहित्यिक संस्कृत के द्वारा व्यक्त करने में पूर्णतः सफल रहा है -

क्षमया शोभते विद्या, कुलं शीलेन शोभते ।
गुणेन शोभते रूपं, धनं त्यागेन शोभते ।।[341]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत कृति की भाषा और भावों में पूर्ण समन्वय है । यह रचना आलङ्कारिक छटा एवं सरस, सरल, और प्रसादगुण पूर्ण भाषा के कारण लोकप्रिय हुई है ।

शैली

आचार्य श्री ने अपनी प्रसादगुण पूर्ण संवाद शैली में ही सम्पूर्ण ग्रन्थ का प्रणयन किया है । इस शैली में कवि की मौलिक प्रतिभा और मनोवैज्ञानिक वर्णन शक्ति अंकित है इस ग्रन्थ में वैदर्भीरीति की विपुलता है । प्रत्येक विषय को जिज्ञासापूर्वक प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किया गया है तत्पश्चात् विस्तार से सरस पद्यों में उनका उत्तर समाहित है । कवि ने प्रश्नोत्तर शैली में ही अगाध पाण्डित्य एवं अद्वितीय कवित्व का निरुपण किया है । कहीं-कहीं शैली में व्याख्यात्मक और विवेचनात्मक स्वरूप भी धारण कर लिया है ।

प्रश्नोत्तर (संवाद शैली - प्रश्न - कस्यास्तित्वादगुरो ब्रूहि सर्व विश्वो वशीभवेत्?

उत्तर – करणा शान्तिदा शक्तिः भक्तिश्च भवनाशिनी ।
वीरता चोद्यमः शान्ति शौर्य च दक्षता शुचिः ।।
तत्त्वज्ञतात्मबुद्धिः स्यान्मिथः मैत्री सुखप्रदा ।
इत्यादि भावना यत्र–तत्र विश्वो वशी भवेत् ।। [342]

इसके साथ ही भाषा शैली में प्रसाद माधुर्य शब्दगुण भी विविध पद्यों में विद्यमान हैं यह रचना प्रसादगुण प्रधान ही है । पदे-पदे इसके दर्शन होते हैं । वैदर्भी रीति की उपस्थिति भी दर्शनीय है और इसी के अनुरूप अभिधा शक्ति का निदर्शन भी है ।

इस प्रकार शैलीगत अध्ययन करने पर कहा जा सकता है कि यह रचना साहित्यिक एवं काव्यशास्त्रीय समस्त तत्वों से परिपूर्ण एक नीतिविषयक ग्रन्थ है । जिसमें समाज कल्याण, जन जागरण, सदाचार, दर्शन आदि को भाव प्रवणता के साथ प्रस्तुत किया गया है । इसमें आलंकारिकता भावानुकूल है - आचार्य श्री का चिन्तन और दर्शन उससे अप्रभावित ही है वैदर्भीरीति का बाहुल्य है और संगीतात्मकता आ गई है ।

श्रावक धर्म प्रदीप

रस

विवेच्य ग्रन्थ की विषय सामग्री शान्तिप्रिय श्रावकों के स्वरूप, आचार विचार, दिनयचर्या तथा आदर्शों पर आधारित है । इसलिए यह शान्त रस प्रधान ग्रन्थ है । शान्तरस के अनुक पद्य विद्यमान है । एक पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत है जिसमें श्रावकों की धार्मिक प्रवृत्ति का विवेचन हुआ है -

सद्धर्मसंस्कारवशालि येन यज्ञोपवीतोऽपि धृतस्त्रिरत्नः
दानार्चनादौ च कृता प्रवृत्तिः स पाक्षिकस्ययासुखशान्तिर्भूतिः[343]

जो रत्नत्रय के प्रतीक त्रिसूत्रात्मक यज्ञोपवीत को धारण करता है सद्धर्म के प्रति आस्थावान होता है । वह दान, पूजा में दत्तचित्त शांति और सुख की प्रतिमा ही होता है ।

यहाँ श्रावक आश्रय और आलम्बन है यज्ञोपवीत दान, पूजा आदि उद्दीपन विभाव है । मंत्रोच्चारण, जाप अनुभाव है तथा निर्वेद, त्याग, सञ्चारी भाव है । अतः शान्तरस प्ररूपित है।

इस ग्रन्थ में शान्त रस अत्यधिक पद्यों में परिलक्षित होता है -

वीभत्स रस भी कतिपय पद्यों में विद्यमान है । एक उदाहरण से इसे स्पष्ट किया जा सकता है - यहाँ मृत पुरुष के गले हुए रोग युक्त दुर्गन्धमय शरीर का वर्णन घृणाभाव उत्पन्न करता है -

मृतस्य देहसंसर्गात् वस्त्रपात्रगृहादिकम् ।
स्याद् दुर्गन्धमयं हेयं तच्चबद्धचै सूतकस्य वा ।।[344]

इसमें मृतपुरुष रस का आश्रय एवं आलम्बन, उसके गले हुए अङ्ग, रोगग्रस्त होना उद्दीपनविभाव है । नाक, बन्द करना, दृष्टि फेरना आदि अनुभाव है, ग्लानि, घृणा आदि सञ्चारी भाव हैं ।

श्रावकधर्म का विवेचन होने से इस रचना में प्रधान रस शान्त ही है, अन्य रसों की स्थिति नगण्य है । इस प्रकार अन्य रसों की प्रस्तुति नगण्य ही है । श्रावकों के धर्म का वर्णन होने से शान्त रस की प्रधानता है ।

छन्द

इस कृति में कवि ने अनुष्टुप्[345], वसन्ततिलका[346], उपजाति[347], इन्द्रवज्रा[348] और आर्या[349] छन्द का प्रयोग किया है । सम्पूर्ण ग्रन्थ का सर्वेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि अनुष्टुप् कवि का प्रिय छन्द है । यह छन्द उनकी अन्य रचनाओं में भी बहुलता से आया है ।

श्रावक धर्म प्रदीप में अनुष्टुप् 159 श्लोकों में, वसन्ततिलका 39 पद्यों में, उपजाति 24 पद्यों में, इन्द्रवज्रा 11 श्लोकों में और आर्या । पद्य में प्रयुक्त किये गये हैं ।

अलङ्कार

इस श्रावकाचार में अनुप्रास, उपमा, सन्देह, विरोधाभास इत्यादि अलङ्कार परिलक्षित होते हैं -

छेकानुप्रास का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

सद्धर्मसंस्कार वशाद्धि येन, यज्ञोपवीतोऽपि घृतस्त्रिरत्नः ।
दानार्चनादौ च कृता प्रवृत्तिः स पाक्षिकास्त्यात्सुखशान्तिमूर्तिः ।।[350]

यहाँ स, य, न, स, वर्णों की बार-बार आवृत्ति हुई है ।

अन्त्यानुप्रास की छटा - अधोलिखित पद्य में है, जिसमें उक्त समय श्रावक को मौन धारण करने का निर्देश किया है -

भोजने मैथुने स्नाने, मल-मूत्र-विमोचने ।
सामायिकेऽर्चने दाने, वमने च प्रलायने ।।[351]

यहाँ प्रत्येक शब्द के अन्त में न वर्ण की बार-बार आवृत्ति अन्त्यानुप्रास का सौन्दर्य उपस्थित करती है ।

उपमा

इस कृति में भी यत्र-तत्र देखा गया है कि उदाहरण निदर्शनीय है -

यतो भवेते विमलैव कीर्तिः, स्वराज्यलक्ष्मीश्च सदा स्वदासी ।[352]

यदि श्रावक प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव रखे तो उसकी निर्मल कीर्ति फैले और स्वराज्यरूपी लक्ष्मी सदाकाल दासी के समान उसकी सेवा करे ।

यहाँ लक्ष्मी उपमेय है और दासी उपमान । ऐसे श्रावकों की सेवा सेविका के समान लक्ष्मी करे । इस भाव की प्रतीती होने से उपमा है ।

सन्देह अलङ्कार की झलक भी हमें इस पद्य में होती है - इस पद्य में ग्राम में अथवा नगर में या वन में मार्ग रेल, मोटर नदी तट या अन्यत्र भी छोड़े हुए या गड़े हुए या रखे धन को ग्रहण करना चोरी माना है-

ग्रामपुरे वनपथे पतितं न दत्तम्, कौ स्थापितं परधनं यदि विस्मृतं वा।
तत्त्यागं एवं सुखदं व्रतमुत्तमं स्यात्, श्राद्धस्य धर्मरसिकस्य किलैकदेशम् ।।[353]

यहाँ कौ, वा अथवा आदि वाचक शब्दों से संदेह अलङ्कार की प्रतीती होती है क्योंकि कवि ने किसी निश्चित स्थान को न बताकर विकल्प से स्थानों का चयन किया है ।

विरोधाभास

इस पद्य में मात्र विरोध की प्रतीती होती है -

नेत्रवानपि चान्धः स, बुधोऽपि मूर्ख एवं स्तः ।
स कलहप्रियो महन्ये, स्वमोक्ष सौख्यदुरगः ।।[354]

अर्थात् धर्म से विमुख व्यक्ति नेत्रयुक्त होने पर भी, अन्धा विद्वान होने पर भी मूर्ख है और उसे हम कलहप्रिय एवं स्वर्ग, मोक्ष के सुख से दूर मानते हैं । इसमें विरोध की प्रतीती केवल यही है कि नेत्रवान को अंधा और विद्वान को मूर्ख कहा है किन्तु विरोध का परिहार भी कह दिया है । इसके साथ ही "मन्ये" के कारण उत्प्रेक्षा का भी आभास हो जाता है ।

इस प्रकार विवेच्य श्रावकाचार में अलंकारों का विशेष प्रयोग नहीं हुआ है, केवल सिद्धान्तों और आचार-विचार सम्बन्धी उपदेशों को अंकित किया गया है ।

गुण

आचार्य कुन्थुसागर का कृतित्व प्रसादगुण प्रधान माना जाता है । उन्होंने अपने सभी ग्रन्थों में अपने विचारों से जनजीवन को प्रभावित करने और उनका बौद्धिक उन्नयन करने के लिए सरल, सरस रचनाएँ की । यह श्रावकाचार भी अत्यन्त सटीक है इसमें प्रसादगुण की छटा सर्वत्र विद्यमान है, ओजगुण का सर्वथा अभाव है -

प्रसाद से परिपूर्ण एक पद्य द्रष्टव्य है -

स्वधर्मे सुखदे प्रीतिरधर्मे दुःखदेऽरुचिः ।
भावो यस्येति स्यातस्य संवेगः सुखदो गुणः ।।[355]

अपने धर्म में सुखद प्रीति और अधर्म में अरूचि ही संवेग नामक गुण है । अपना धर्म आत्मप्रधान है । उसके क्षमा, दयादि अनेक गुणों में प्रीति होती है किन्तु सांसारिकता दुःखद अधर्म की प्रतीक है ।

इस प्रकार यहाँ सरल शब्दों में भावों का स्पष्टीकरण होने से प्रसादगुण है ।

माधुर्य गुण भी किन्हीं-किन्हीं पद्यों में परिलक्षित होता है - एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर रहा हूँ -

मोहादिभुक्तमनुजो लभते स्वधर्म, मूर्खो न सत्यपि सुवस्तुनि सौख्यदे हि ।
गङ्गावगाह न वशाद्वदतीति धर्मो–लोकस्य तस्य भवदा भुवि मूढता स्यात् ॥[356]

मिथ्यात्व के कारण पञ्चेन्द्रिय विषयों में मग्न है और उनका त्याग न करते हुए सुखदायी सुमार्ग पर नहीं चलता, वह मूर्खतावश गङ्गादि नदियों में स्नान करने मात्र से अपने को पापमुक्त मान लेता है किन्तु उसे विचार करना चाहिये कि आत्मा के रागद्वेष तो इससे दूर नहीं होंगे। इस पद्य में म, स, ग, भ, आदि माधुर्य वर्णों का प्रयोग होने से माधुर्य गुण की उपस्थिति हुई है ।

भाषा

आचार्य कुन्थुसागर जी निष्णात साहित्यकार और साधना पथ के सफल पथिक रहे। आपने सरल, सरस, प्राञ्जल शुद्ध संस्कृत भाषा के द्वारा जन-जन को प्रभावित किया। आपके प्रवचनों में सरस, सरल, संस्कृत को सुनकर श्रोता मुग्ध होते थे । आपके ग्रन्थों में भी यही भाषा प्रतिपालित है । प्रस्तुत श्रावकाचार "श्रावकधर्मप्रदीप" के गम्भीर और दार्शनिकता से परिपूर्ण विषय को कवि ने अपनी मौलिक सरस, सरल, सुबोध, लेखनी के द्वारा बोधगम्य बना दिया है । इस ग्रन्थ की विषय सामग्री कवि की वर्णनशक्ति से अभिभूत हुई है और उसमें सम्प्रेषणीयता भी आ गई है । आपकी हृदयग्राही भाषा में पदमैत्री, सुस्पष्ट शब्दावली, सुगम भावप्रणता/परिलक्षित होती है – आद्योपान्त सरल, सरस, शुद्ध साहित्यिक संस्कृत भाषा पल्लवित है ।

शैली

शैली के माध्यम से कवि की विचारधारा स्पष्ट होती है । शैली के द्वारा ही काव्य के भावात्मक एवं कलात्मक पक्षों में समन्वय स्थापित होता है ।

आचार्य श्री की शैली वैदर्भी प्रधान है । इस शैली की विशेषता यह है कि इसमें लम्बे-लम्बे समासों का अभाव होता है और माधुर्य गुण की अभिव्यंजना होती है । गौड़ी और पांचाली शैलियों का प्रयोग अत्यल्प है। कवि ने वैदर्भी शैली के माध्यम से ही भावों को सुस्पष्ट किया है । इस शैली में कवि को प्रश्नोत्तर शैली अत्यधिक प्रिय है। इसमें प्रसंगानुकूल जिज्ञासु प्रश्न उपस्थित करता है । और तत्पश्चात् उसके प्रश्न का उत्तर पद्य में निबद्ध किया जाता है । आचार्य श्री के अनेक काव्यों में प्रश्नोत्तर शैली बहुलता से अभिव्यंजित हुई है- एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

प्रश्न – मद्यपानाद् भवेत् किं मे वदात्मशान्तये प्रभो

हे प्रभो मद्यपान से क्या हानि होगी, मेरी आत्मशान्ति के लिए समझाइये।

उत्तर – चातुर्य प्रवरा बुद्धिर्लज्जापि मद्यपायिनाम् ।
कुलजातिपवित्रत्वं नश्यति धर्मभावना ॥
स्वैराचाराः स्पृहा दुष्टा वर्धन्ते भवदुःखदाः ।
त्यक्त्वेति मद्यपानादि पिबन्तु स्वात्मनो रसम् ॥[357]

अर्थात् – चतुर होने पर भी मद्यपान करने वाले की बुद्धि लज्जा, कुल, जाति, नष्ट हो जाती है उसकी पवित्रता समाप्त हो जाती है । धर्म के प्रतिभावना नष्ट होती है । सांसारिक

कष्ट बढ़ते जाते हैं । इसलिए दु:खदायी मद्य का सेवन त्याग देना ही कल्याणकारी है । इस प्रकार विवेच्य श्रावकाचार में आद्योपान्त वैदर्भी प्रधान प्रश्नोत्तर शैली विद्यमान है ।

इसके साथ ही प्रस्तुत ग्रन्थ में अभिधाशब्द शक्ति[358] प्रमुखता के साथ प्रयुक्त है लक्षणा व्यञ्जना के दर्शन नहीं होते । इस कृति में प्रसादगुण, वैदर्भी रीति[359] एवं अभिधा शक्ति (वृत्ति) ही आद्योपान्त दृष्टिगोचर होती है ।

सुवर्ण सूत्रम्

रस :

''सुवर्णसूत्रम्'' चारपद्यों में निबद्ध विश्वधर्म के स्वरूप को प्रतिबिम्बित करती है । इसके सभी पद्यों में शान्त रस विद्यमान है -

विश्व में शांति की कामना करते हुए मुनि कुन्थुसागर जी धर्म की उपयोगिता प्रतिपादित कर रहे हैं -

परम्पराचार्य विभोः कृपाब्धेः, स्वर्मोक्ष दातुश्च सुधर्म शान्तेः ।
शिष्यस्य चास्यास्ति सदेति भावः, सद्ग्रन्थकर्तुर्वर कुन्थुनाम्नः ।।[360]

इस प्रकार सुवर्ण सूत्रम् शान्ति पर आधारित कृति होने के कारण इसमें शान्त रस की प्रस्तुति हुई है ।

छन्द

इस लघु रचना के सभी 4 श्लोक उपजाति छन्द में निबद्ध किये गये हैं ।

अलङ्कार

सुवर्णसूत्रम् में अनुप्रास और उपमा अलंकार दृष्टिगोचर होते हैं ।

भाषा शैली

आचार्य प्रवर कुन्थुसागर महाराज की यह लघु रचना प्रसादगुणपूर्ण सरल, सरस भावों की सजीव अभिव्यक्ति कराती है । इसमें विश्वकल्याणकारी जैनधर्म के स्वरूप को सरल संस्कृत शब्दावली में अभिव्यंजित किया है - भावों में सजीवता है -

वनस्य बुद्धेः समयस्य शक्तेर्नियोजनं प्राणिहिते सदैव ।
स जैनधर्मः सुखदोऽसुशान्ति ज्ञात्वेति पूर्वोक्त विधिर्विधेयः ।।[361]

इस प्रकार भावों को सरल, भाषा में व्यक्त किया गया है । वेदर्भी रीति आद्योपान्त विद्यमान है । यह ग्रन्थ कुन्थुसागर के प्रवचनों पर आधारित रचना है ।

आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी की रचनाओं का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन

आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माता जी की रचनाएँ साहित्यिक तत्त्वों से ओत-प्रोत उत्कृष्ट काव्य का प्रतिनिधित्व करती है ।

रसाभिव्यक्ति

आर्यिका श्री ने अपनी सभी रचनाएँ मुनियों के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में अर्पित की हैं- अत: प्रत्येक कृति में आद्योपान्त शान्तरस विद्यमान है । उदाहरणार्थ एक पद्य प्रेक्षणीय है-

ध्यानी विवेकी, परतपस्वी ज्ञानी, व्रती प्राणिहितोपदेशी ।
यः काम जेता शिवसौख्यकारी, वन्दे मुनीश शिवसागरं तं ।।[362]

मुनि श्री शिवसागर की शान्ताकृति मुद्रा पर श्रद्धालु की नमोऽस्तु क्रियाएँ निर्वेद भाव जाग्रत करती है अतः शान्तरस प्ररूपित है ।

छन्द विधान

आर्यिका सुपार्श्वमती जी ने वसन्ततिलका, उपजाति, अनुष्टुप् आदि प्रसिद्ध वृत्तों में अपने काव्य का सृजन किया है । आचार्य अजितसागर जी पर लिखित पूजा और जयमाला वसन्ततिलका छन्द में निबद्ध है -

आचार्य श्री धर्मसागर स्तुति एवं आचार्य शिवसागर स्तुति भी वसंततिलका एवं उपजाति छन्दों से आबद्ध रचनाएँ हैं।

अलङ्कार

आर्यिका श्री की कृतियों में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षादि अलङ्कारों का बाहुल्य है । - उपमा और रूपक का एक प्रयोग दृष्टव्य है -

संसार तापवननाशन वैनतेयं तं धर्म सागरमहं प्रणमामि भक्त्या ।

आचार्यवर अजितसागर की पूजा एवं जयमाला के पद्यों में उक्त अलङ्कार पदे-पदे विद्यमान है ।

भाषा शैली

आर्यिका सुपार्श्वमती का रचना संसार काव्यात्मक साहित्यिक कसौटी पर खरा सिद्ध हुआ है । संस्कृत तत्सम पदावली में एकरूपता बोधगम्यता और सरसता है । उनकी भाषा सरस, भावानुकूल और प्रसादगुणपूर्ण है । शब्द चयन प्रशंसनीय है -

जीर्ण जन्म मृत्यु रोग शोक ताप नाशकं ।
यजे सदाजिताब्धि सूरि मुद्रा सुखप्रदम् ।।[363]

छन्दों में गेयता एवं सङ्गीतात्मकता आ गई है । शैली में नवीनता और गवेष्णात्मकता है । प्रसादगुण पूर्ण वैदर्भी रीति के कारण शैली प्रवाहशील, सम्प्रेषणीय है ।

उनकी कृतियों में समाज शैली के दर्शन भी होते हैं -

यथा -

कल्याणवल्लि जलदं जितकाम कल्लम ।
श्रद्धानुबोध चरणात्मक योग शुद्धम् ।।[364]

इस प्रकार आर्यिका श्री का साहित्य बीसवीं शती का प्रतिनिधि साहित्य है ।

आर्यिका ज्ञानमती माता जी की रचनाओं का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन

रस

आर्यिका श्री की रचनाएँ शान्तरस प्रधान हैं । इनमें महनीय जैनाचार्यों के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित किये गये हैं, अतः रचनाओं में केवल शान्तरस के ही दर्शन होते हैं ।

छन्द

आर्यिका श्री की रचनाओं में अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, उपजाति वृत्तों का प्रयोग हुआ है । उनकी छन्दयोजना सशक्त और प्रभावशाली है - इनकी रचनाओं में

भुजङ्गप्रयात छन्द भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुआ है। रचयित्री के प्रिय छन्द अनुष्टुप का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

''महाव्रतधरो धीरो, गुप्तिसमिति नायकः ।
आवश्यक क्रियासक्तो, भक्तेर्जीवनदायकः ।।[365]

अलङ्कार

इनकी रचनाओं में अनुप्रास, उपमा, रूपक आदि अलङ्कारों का निदर्शन है ।

भाषा शैली

आर्यिका श्री की सभी रचनाएँ वैदर्भी रीति और प्रसादगुण प्रधान है। इनमें सरल, सरस संस्कृत शब्दों का चयन करके रचयित्री ने भावों को बोधगम्यता प्रदान की है और आचार्यों के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत की है । इनकी कृतियों में विशेषणों के विविध प्रयोग परिलक्षित होते हैं । जैसे -

मुनीन्द्र, यतीन्द्र, दिगम्वस्त्रधारी, गुणाब्धे । महाधीर वीर, मुनिचन्द्र, मुनिसूर्य, विज्ञानी, सहिष्णु, महाध्यानिन, सुधीर आदि ।

''स जयतु गुरुवर्यः'' रचना में आचार्य धर्मसागर मुनि महाराज का सम्पूर्ण जीवन परिचय दर्शन और दिनचर्या का विवेचन किया है तथा मालिनी छन्द का (अन्तिम पद्य में) प्रयोग करते हुए रचना समाप्त की है ।

इस प्रकार आर्यिका ज्ञानमती जी बीसवीं शताब्दी की विदुषी, रचयित्री जैन साध्वी है । उनका रचना संसार अत्यन्त व्यापक है ।

डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य की रचनाओं का साहित्यक एवं शैलीगत अध्ययन

सम्यक्त्व चिन्तामणि –

रसाभिव्यक्ति –

''सम्यक्त्व चिन्तामणि'' का प्रथम मयूख शान्तरस प्रधान है ।[366] सम्यग्दर्शन का माहात्म्य और मोक्ष का विवेचन पढ़कर सहृदय पाठक की मनोवृत्ति में निर्वेद जाग्रत हो जाता है, वैराग्य भावना पुष्ट होती है । द्वितीय मयूख में भी शान्तरस की प्रधानता है । तृतीय मयूख में विभिन्न गतियों के विवेचन में भयानक और वीभत्स रसों की उपलब्धि होती है ।

यथा -

वाहयन्ति ततो यानं भूरिभार भृतं चिरात् ।
छेदयन्ति पुनः केचिन्नासिकां तर्क संचयैः ।
क्वचित्प्रदीप्त हव्याश कुण्डे पातयन्ति हा ।
ततः कटुक तैलेन निषिच्यन्ति कलेवरम् ।।[367]

इसमें नरकगति के घृणित और भयोत्पादक कार्यों के कारण जुगुप्सा और भय नामक स्थायी भाव विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों से पुष्ट होकर रस निष्पत्ति कर रहे हैं।

चतुर्थ मयूख में मानवशरीर की नियामक इन्द्रियों का विवेचन शान्त रस की निष्पत्ति करता है ।

क्रोध नामक स्थायी भाव को जाग्रत करने वाला ''रौद्र रस'' अधोलिखित पद्य में परिलक्षित है -

"क्रोध कर्मोदयाज्जातो रक्तलोचनयुग्मकः ।
आत्म–प्रशंसनोद्युक्तो वागा रोषविधायकः ॥
उत्तालताल संलीनश्चरण स्फाल नोद्यतः ।
क्रोधोऽवस्थान्तरो जीवस्योच्यते परमात्मभिः ॥[368]

पञ्चम मयूख में आकाश द्रव्य की विस्तृत विवृत्ति में "अद्भुत रस" आश्चर्य भाव को सुदृढ़ कर रहा है –

यत्रान्तरीक्षमेवास्ते सर्वतो बहु विस्तृतम् ।
अलोक व्योम सम्प्रोक्तं तदनन्तत प्रदेशकम् ॥
लोकाम्बरस्य सम्प्रोक्तोऽवगाहः स उपग्रहः,
अलोक गगन स्याप्यवगा हो जिन सम्मतः ॥[369]

षष्ठ मयूख में विभिन्न आरमणों का वीभत्स और भयानक रस में विवेचन है।

सप्तम मयूख में बन्ध तत्त्व का निदर्शन शान्तरस में हुआ है । अष्टम मयूख में संवर तत्त्व शान्तरस का केन्द्र है ।

नवम और दशम मयूख में भी शान्तरस की प्रधानता है । –

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि धर्मपरक इस दार्शनिक ग्रन्थ में शान्तरस का प्राधान्य है किन्तु प्रसंगानुकूल अन्य रसों की अवस्थिति भी निदर्शनीय है।

छन्द योजना

"सम्यक्त्व चिन्तामणि" में उन्नीस प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है । दार्शनिक विषयों (तत्वों) को उपयोगी बनाया गया है – इसमें मालिनी, स्वागता, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, आर्या, अनुष्टुप्, प्रमदानन, वसन्ततिलका, शालिनी, शिकारिणी, रथोद्धता, गीतिका शशिकला, भुजङ्ग प्रयात, द्रुतविलम्बित, वंशस्थ, स्त्रग्धरा और शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त हैं।

रचनाकार ने छन्दों वैविध्य के माध्यम से प्रगाढ़ पांडित्यपूर्ण गम्भीर दार्शनिक विषयों को आबद्ध किया है और विषय को रोचकता प्रदान की है । कतिपय प्रमुख छन्दों के उदाहरण अधोलिखित हैं –

ग्रन्थ का प्रथम पद्य "मालिनी छन्द" में निबद्ध है –

"जयति जन सुबन्धश्चिच्चमत्कार नन्द्यः
शम सुख–भर–कन्दो उपास्त कर्मरि वृन्दः ।
निखिल मुनि गरिष्ठः कीर्ति सत्ता वरिष्ठः,
सकल सुरपूज्य श्री जिनो वासुपूज्यः ॥[370]

इस ग्रन्थ में प्रसिद्ध छन्द "उपजाति" का बाहुल्य है ।

उदाहरणार्थ एक पद्य प्रस्तुत है –

"काले कलौ येऽत्र प्रशान्तरूपं सुखस्वभावं मुनिमाननीयम् ।
सम्यक्त्व भावं दधति स्वरूपं, नमामि तान् भक्तियुतः समस्तान् ॥[371]

यह इन्द्र वज्रा और उपेन्द्र वज्रा के पादों केमेल से निर्मित उपजाति छन्द है । "आर्या" छन्द का प्रचुर प्रयोग किया गया है –

स जयति जिनपति वीरो वीरः कर्मारि सैन्य संदलने ।
हीरा निखिला जनानां धीरो वर मोक्ष लाभाय ॥

अनुष्टुप, का प्रयोग अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है -

यस्या लोके लसकीर्त्या पूर्ण चन्द्रोऽपि लज्जितः ।
जयाताच्छुभचन्द्रोऽयं, चिरं चारु गुणालयाः ॥[372(अ)]

इस प्रकार अन्य छन्दों की प्रस्तुति भी "सम्यक्त्व चिन्तामणि" ग्रन्थ को सम्पूर्णता प्रदान करती है । पं. पन्नालाल जी का विविध छन्दों में एकाधिकार है, छन्द विषयक रचना कौशल के कारण ही कवि ने अनेकानेक छन्द लेकर विषय को उपयोगी बनाया है ।

अलंकार

"सम्यक्त्व चिन्तामणि" में शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों का मणिकाञ्चन समन्वय हुआ है । इस ग्रन्थ के प्रत्येक मयूख में अलङ्कारों का बाहुल्य है । अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, प्रतिवस्तपमा, अर्थान्तरन्यास, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति, निदर्शना आदि अलङ्कारों ने इस कृति में आकर्षण उत्पन्न किया है । सत्य के माहात्म्य विवेचन में अनुप्रास अलङ्कार की छटा दर्शनीय है -

सत्येन मुक्तिः सत्येन भुक्ति, स्वर्गेऽपि सत्येनपद प्रसक्तिः ।
सत्यात्परं नास्ति यतः सुतत्त्वं, सत्यं ततो नौमि सदा सभक्तिः ॥[372(ब)]

मेघ, समुद्र, चन्दन, शाल्य आदि अन्योक्तियों के माध्यम से विषय को रोचक बनाया है । कुछ लोग धनवान होकर भी परोपकार नहीं करते- ऐसे लोगों को खजूर वृक्ष की अन्योक्ति प्रयुक्त की है ।

रे खर्जूरा नो कह । किमेव मुत्तग्ड मान मुद्वहसि ।
छायापि ते न भोग्यां पान्थानां कि फलैरभिः ॥[372(स)]

इस प्रकार सम्यक्त्व चिन्तामणि में सर्वत्र आलंकारिकता का प्रभाव परिलक्षित होता है । काव्यत्व में श्रीवृद्धि हुई है ।

भाषा शैली

सम्यक्त्व चिन्तामणि की भाषा परिष्कृत साहित्यक संस्कृत है । इसमें दुर्बोधिता का अभाव है । भाषा के भावानुकूल प्रयोग से शब्द चित्रों में निखार आ गया है । प्रसादगुण पूर्ण भाषा शैली के माध्यम से अपना मन्तव्य जन-जन तक पहुँचाना कवि का लक्ष्य रहा है । गूढ़ विषयों में भाषा शैली सञ्जीवनी के समान क्रियाशील है । द्वितीय मयूख में प्रतिपाद्य शैली के द्वारा दार्शनिक तत्त्वों को प्रभावशाली ढंग से स्पष्ट किया है । सूक्ष्म विषय को तर्क-वितर्क या वादी-प्रतिवादी के द्वारा समझा जा सकता है । प्रत्येक मयूख में लेखक के व्यक्तित्व की छाप अङ्कित हो गई है । इस ग्रन्थ में कोमलकान्त पदावली ने काव्यसौन्दर्य में चार-चाँद लगा दिये हैं । इस ग्रन्थ में सुकुमार वर्णों का प्रयोग हुआ है । माधुर्य गुण की छटा अधोलिखित पद्य में प्रेक्षणीय है -

हार स्वभावेन भूतः स कश्चिच् । चामीकरो मेखलया प्रजातः ।
नितम्ब बिम्बेषु नितम्बिनीनां, विशोभते यद्यपि मन्द्रारावः ॥[372(द)]

रचनाकार का शब्द भण्डार व्यापक है । धर्मपरक और दार्शनिक विषय में भावुकता उत्पन्न करना काव्यकौशल का जीवन्त प्रतीक है । दुर्बोध प्रसंगों को सरल बनाने के लिये दृष्टान्तों, अन्योक्तियों, उपमाओं का आश्रय लिया है । प्रश्नोत्तरों की पद्धति अपनाकर रचनाकार ने मन्त्रमुग्ध किया है । प्रस्तुत ग्रन्थ में दृष्टान्त प्रधान ललित शैली बोधगम्य है ।

सम्यक्त्व चिन्तामणि में शैली के विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं ।

1. दृष्टान्त शैली ।
2. संवाद शैली ।
3. व्याख्यात्मक शैली ।
4. विवेचनात्मक शैली ।
5. समास शैली ।

प्रस्तुत रचना के विभिन्न मयूखों में उक्त शैलियों का विवेचन मिलता है । वस्तु स्थिति और वातावरण का सजीव चित्रण करने में रचनाकार पारङ्गत हैं ।

भाषा शैली की दृष्टि से सम्यक्त्व चिन्तामणि पं. पन्नालाल साहित्यचार्य की लोकोत्तर प्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन है । इस कृति में प्रसाद गुण पूर्ण सरस पदावली सर्वत्र ही उच्चकोटि के काव्य का सा आनन्द प्रदान करती है ।

इस काव्यकृति में वैदर्भी रीति की प्रधानता है । इसमें साहित्यिक एवं शैलीगत सभी तत्त्वों का समुचित प्रयोग किया गया है ।

सज्ज्ञान चन्द्रिका

रस

प्रस्तुत कृति "सज्ज्ञान चन्द्रिका" में आद्योपान्त शान्तरस विद्यमान है - शान्तरस के सागर में मानव मन अवगाहन करने लगता है - वैराग्य वृत्तियाँ उठने लगती हैं ।

छन्द

प्रस्तुत ग्रन्थ विविध अठारह छन्दों में निबद्ध है - ग्रन्थ में प्रस्तुत प्रयुक्त छन्दों की नामावली अन्त में दी गई हैं - तदनुसार - अनुष्टुप्, आर्या, आर्यागीति, इन्द्रवज्रा, उपजाति, द्रुतविलम्बित, भुजङ्गप्रयात, मञ्जुभाषिणी, मन्दाकान्ता, रथोद्धता, वंशस्थ, स्रग्धरा, स्वागता, शार्दूलविक्रीडित, शालिनी, शिखरिणी, हरिगीतिका और हिन्दी गीतिका का प्रयोग विभिन्न प्रकाशों में हुआ है ।

अलङ्कार

इस रचना में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, विशेषोक्ति, अनुप्रास, श्लेष, यमक इत्यादि अलङ्कारों का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है।

भाषा

प्रस्तुत ग्रन्थ सरल संस्कृत भाषा में लिखा गया है - इससे साधारण संस्कृत जानने वाले भी पाठक आसानी से समझ सकते हैं जैसे -

मतिज्ञानं श्रुतज्ञानम्, अवधिज्ञानमेव च ।
मनःपर्ययसंज्ञानं, केवल ज्ञान च ॥

इस प्रकार विषय के प्रतिपादन हेतु लेखक ने संस्कृत के सरल, बोधगम्य, सुकोमल वर्णों का प्रयोग करके ग्रन्थ को सरलता और सरसता प्रदान की है । भाव सजीव हो उठे हैं।

शैली

ग्रन्थकार ने भावों का अभिव्यक्ती करण विवेचनात्मक और समाहार शैली में किया है । इसके साथ ही दृष्टान्त शैली, समास शैली, प्रश्नोत्तर शैली का निदर्शन भी विभिन्न प्रस्थलों पर है ।

सज्ज्ञान चन्द्रिका आद्योपान्त प्रसाद गुण से सङ्गुम्फि है । किन्तु ग्रन्थ में कहीं-कहीं माधुर्य गुण की छटा भी परिलक्षित होती है । वेदर्भी रीति का सातिशय प्रयोग हुआ है ।

समीक्षा

प्रस्तुत ग्रन्थ का अनुशीलन करने पर हम कह सकते हैं - श्रद्धेय पण्डित जी ने सम्यग्ज्ञान जैसे सिद्धान्त के विषय को भी अपनी लेखनी से रोचक और सरस बना दिया है । उन्होंने इसमें धर्म, न्याय, साहित्य और व्याकरणादि विषयों का सामञ्जस्य किया है । प्रत्येक प्रकाश के प्रारम्भ के माङ्गलिक पद्यों की साहित्यिक छटा द्रष्टव्य है । जैसे-

दीपः किं नैव दीपः किमिति स नियतं क्षुद्रवायो प्रणश्येत्,
चन्द्रः किं नैव चन्द्रः किमिति स दिव से दीन दीनो विभाति ।
सूर्यः किं नास्ति सूर्यः किमिति सनियतं सायमस्तं प्रयाति,
त्वेवं ध्वस्तोपमानं जगति विजयते केवलज्ञानमेतत् ॥[373]

भावार्थ/सारांश

इस जगत में यह अनुपम केवल ज्ञान सबसे उत्कृष्ट है । यह अनुपम इसलिए है कि इसके लिए कोई एक भी उपमान नहीं है । उपमान तो वही हो सकता है जो उपमेय से उत्कृष्ट हो । यदि कहा यह जाय कि केवल ज्ञान अन्धकार को दूर करता है तो दीपक, चन्द्रमा, सूर्य भी तो अन्धकार मिटाते हैं - इस दृष्टि से इनको उपमान क्यों न माना जाय? यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि दीप, चन्द्र और सूर्य केवल बाह्य-अन्धकार को ही मिटा सकते हैं, जबकि केवल ज्ञान निविड आभ्यन्तर अज्ञान-अंधकार का सर्वथा विनाश करता है, और एक बात यह भी है कि दीपक जरा सी हवा के झोंके से बुझ जाता है, चन्द्रमा दिन में अत्यन्त दीन प्रतीत होता है और सूर्य प्रतिदिन शाम होते ही छिप जाता है, परन्तु केवल ज्ञान पर प्रचण्डतम वायु का भी प्रभाव नहीं पड़ सकता । दिन हो या रात, दोनों में ही यह समान रूप से प्रकाशित होता रहता है। सूर्य प्रतिदिन अस्त होता है, पर केवल ज्ञान कभी एक बार भी अस्त नहीं होता - उत्पत्ति के बाद वह अनन्तकाल तक ज्यों का त्यों प्रकाशमान रहता है । अतः केवल ज्ञान सर्वथा अनुपम है । उसे मेरा शत-शत नमन। यहाँ 'जयति'' क्रिया से नमन व्यङ्ग्य है । इसी तरह अन्य पद्यों में भी साहित्यिक छटा विद्यमान है ।

सम्यक्चारित्र चिन्तामणि

रसाभिव्यक्ति

''सम्यक् चरित्र'' पर आधारित रचना के शीर्षक से ही प्रतिभासित हो जाता है कि यह रचना शान्त रस प्रधान होनी चाहिए और अनुशीलन करने के उपरान्त हमारी यह अवधारणा पुष्ट भी हो जाती है । दार्शनिक तत्वों के विवेचन में शान्त रस की आश्रय किया है ।

शान्त रस प्रधान इस कृति में अन्य रसों का प्रयोग, प्रसङ्गानुसार ही हुआ है ऐसा लगता है । शान्त रस में रसों को आक्रान्त कर लिया है । शान्त रस का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

भगवन् । संन्यासदानेन मज्जन्मसफली कुरु ।
इत्थं प्रार्थयते साधु निर्यापक मुनीश्वरम् ॥
क्षपकस्य स्थितिं ज्ञात्वा दद्यान्निर्यापको मुनिः ।
स्वीकृतिं स्वस्य सन्यास विधि सम्पादनस्य वै ॥[374]

शृंगार रस युक्त पद्य रचना द्रष्टव्य है -

लेखव्य लीला विजितेन्द्र भार्या, भार्याः परेष्यां सहसा विलोक्य ।
वसन्त हेमन्तमुखर्तुमध्ये, कन्दर्प चेष्टा कुलितो बभूव ।।[375]

भाव यह कि सौन्दर्य से प्रभावित करने वाली वर स्त्रियों को देखकर वसन्त, हेमन्त आदि श्रतुओं में कामुक चेष्टाओं से आकुल हो जाने के कारण रति जाग्रत होने की यथार्थता स्वीकार की है अतः उक्त पद्य में शृंगार रस माना जा सकता है ।

इस प्रकार अन्य रस भी इस रचना में प्रयुक्त हुए हैं ।

छन्दो–वैविध्य

साहित्याचार्य डॉ. (पं.) पन्नालाल जैन विरचित "चिन्तामणि-त्रय" के छन्दों में बड़ा लालित्य है । इनमें एक महान् समर्थ कवि की भांति भाषा का सहज व्यवस्थापन दिखाई देता है ।

साहित्याचार्य महोदय द्वारा प्रणीत "सम्यक् चारित्र-चिन्तामणि" में सत्रह प्रकार के छन्द बद्ध 1072 पद्य हैं । छन्दों में -

(1) अनुष्टुप्,	(2) आर्या,	(3) इन्द्रवज्रा,
(4) उपेन्द्रवज्रा,	(5) उपजाति,	(6) तोटक,
(7) द्रुतबिलम्बित,	(8) प्रमणिका,	(9) भुजङ्गप्रयात,
(10) मन्दाकान्ता,	(11) मालिनी,	(12) वसन्ततिलका
(13) शार्दूलविक्रीडित,	(14) शालिनी,	(15) स्त्रग्धरा,
(16) स्वागता,	(17) हरिणी ।	

प्रमुख छन्दों के उदाहरण अद्योलिखित हैं -

वसन्ततिलका छन्द

यह छन्द इस ग्रन्थ में अनेक पद्यों में प्रयुक्त हुआ है -

संसार कारण निवृत्ति परायणानां ।
या कर्मबन्धन निवृत्तिरियं मुनीनाम् ।
सा कथ्यते विशदबोध धरैर्मुनीन्द्रै,
श्चारित्रमत्र शिव साधन मुख्य हेतुः ।।[376]

अनुष्टुप् छन्द

यह पण्डित जी का प्रिय छन्द है और यह छन्द इस ग्रन्थ के सर्वाधिक पद्यों में दृष्टिगोचर होता है ।

आत्मनो वीरतागत्वं स्वरूपं यादृशं मतम् ।
तादृशं यत्र जायेत तद् यथाख्यातमुच्यते ।।[377]

उपजाति छन्द

उपजाति छन्द का प्रयोग भी इस रचना के पद्यों में प्रयुक्त है -

ध्यानानले येन हुताः समस्ता, रागादि दोषा भवदुःखदास्ते ।
आर्हन्त्यविभ्रा जितमत्र वन्दे, जिनं जितानन्त भवोग्रदाहम् ।।[378]

इसी प्रकार विवेच्य रचना के विविध पद्यों में मालिनी, शालिनी, द्रुतविलम्बित, तोटक, शार्दूलविक्रीडित प्रभृति 17 प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं ।

अलङ्कारच्छटा

साहित्याचार्य पण्डित जी अलङ्कृत शैली के प्रमुख अभिनव कवि हैं। उनके ग्रन्थ-त्रय में अलङ्कारों की मनोहर छटा द्रष्टव्य है । प्रायः प्रत्येक श्लोक में अलङ्कार विद्यमान है । केचित् श्लोकों में अनेक अलङ्कारों का समावेश स्वतः हो गया है । इनके ग्रन्थों में शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का प्रयोग पर्याप्त में हुआ है । अनुप्रास के प्रयोग से काव्य में पदलालित्य आ गया है । तथा अर्थालङ्कारों की स्वाभाविक योजना के कारण सरसता आ गयी है । उपमा, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, रूपक अर्थान्तर न्यास, स्वाभावोक्ति, काव्यलिङ्ग, निदर्शना, आदि का समुचित और सरस प्रयोग किया गया है। पं. जी द्वारा अत्यन्त कुशलता पूर्वक प्रयुक्त अलंकारों में नवीनता एवं मनोहरता का समावेश है ।

"सम्यकचारित्र चिन्तामणि" में प्रयुक्त कुछ अलङ्कारों के उदाहरण निम्नलिखित हैं।

अनुप्रास

पृथिवी पृथिवीकायः पृथिवी कायिक एव च ।
पृथिवी जीव इत्येतत् पृथिवीकाय चतुष्टयम् ।।[379]

उपर्युक्त पद्य में प, थ, व, क, एवं य वर्णों की आवृत्ति होने के कारण अनुप्रास अलङ्कार है ।

श्लेष अलङ्कार का प्रयोग अनेक पद्यों में हुआ है । उदाहरणार्थ एक पद्य प्रस्तुत है-

मूलतोऽविद्यमानेऽर्थे तत्सदृशो निरूपणम् ।
अश्वाभावे खरस्याश्व कथनं क्रियते यथा ।।[380]

अर्थात् मूल वस्तु के न रहने पर उसके सदृश वस्तु का कथन करना जैसे अश्व के न रहने पर गृहस्थ को भार ढ़ोने की अपेक्षा अश्व कहना । "अश्व" में श्लेष की अभिव्यञ्जना है ।

इस ग्रन्थ में यमक अलङ्कार का बहुत प्रयोग हुआ है -

ररक्ष कुन्थुप्रमुखान् सुजीवान् दयाप्रतानेन दयालयो यः ।
स कुन्थुनाथो दयया सनाथः करोतु मां शीघ्रमहो सनाथम् ।।[381]

उक्त पद्य में "कुन्थु" शब्द की दो बार आवृत्ति हुई है - प्रथम बार कुन्थु शब्द का अर्थ "जीव विशेष" से है और दूसरी बार "कुन्थु" शब्द का अर्थ सत्रहवें तीर्थङ्कर कुन्थुनाथ जी हैं । अतः उक्त पद में यमकालङ्कार प्रयुक्त हुआ है ।

शब्दालङ्कारों की भांति ही इस ग्रन्थ में अर्थालङ्कारों का विपुल प्रयोग हुआ है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यासादि अलङ्कारों की प्रचुरता ने काव्य सौन्दर्य में श्री वृद्धि की है - उपमा का नयनाभिराम प्रयोग द्रष्टव्य है -

यथा कृषीवलाः क्षेत्ररक्षार्थं परितो वृतीः ।
कुर्वन्ति व्रत रक्षार्थं समितीश्च तथर्षयः ।।[382]

रूपक की छटा अधोलिखित पद्य में विद्यमान है -

एते हृषीकहरयः संयम कवकापर प्रयोगेण ।
दान्ता यैहि समनत्ते मुनिराजाः सदा प्रणम्या मे ।।[383]

इसमें, संयमी रूपी लगाम के उत्कृष्ट प्रयोग से इन्द्रिय रूपी अश्वों का सब ओर से दमन करने वाले मुनिवरों अर्थात इन्द्रिय विजयी साधुओं को प्रणाम किया गया है।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा, निदर्शना, दृष्टान्त अर्थातर न्यास, काव्यलिङ्ग, प्रभृति अलङ्कारों की छटा भी निदर्शित है ।

भाषा शैली

श्रद्धेय पं. जी की भाषा प्रभावपूर्ण होने के साथ माधुर्य गुणमयी है। इनके पद्यों के भाव तुरन्त बोधगम्य हो जाते हैं । जिससे विषय के स्वाभाविक विकास में बाधा उपस्थित नहीं होती है । पं. जी ने इस कृति में इनकी प्रखर प्रतिभा और कोमल पदावली के निजी माध्यम से अपनी छाप बना ली है । पं. जी की सबसे बड़ी विशेषता है कि मानव के उदात्त गुणों के प्रकर्ष को उसके अभ्युदय के योग्य बनाकर धार्मिकता का विन्यास करना। इस ग्रन्थ में मोक्ष मार्ग परार्थ को काव्य के धर्म के साथ प्रकट किया है । इससे दार्शनिक और धार्मिक तत्वों का ग्रहण सहज ढङ्ग से हो गया है । विद्वान् कवि आप्त कथनों के प्रति नितान्त सहिष्णु है । इन्होंने अपने स्वतंत्र विचारों के साथ प्राचीन साहित्य के प्रति अपनी अभिरूचि भी प्रकट की है । पौराणिक आख्यानों का सङ्केत इस ग्रन्थ में उचित स्थानों पर वर्णित है । इस ग्रन्थ के पद्य सरलता के साथ ही उत्कृष्ट प्रभावशालिता है । जिससे मानवता का अभ्युदय और मुक्ति का सन्देश मिलता है । वे अपने निजी आध्यात्मिक ज्ञान को अदम्य उत्साह वितरित करना चाहते हैं। उनके विचारों पर उनके व्यक्तित्व की छाप पद-पद पर मिलती है। इनके इस काव्य की परिधि में निम्नलिखित शैलियों का समावेश हो जाता है-

(1) दृष्टान्त शैली, (2) उपदेशात्मक शैली,
(3) अध्यात्मिक शैली, (4) विवरणात्मक शैली,
(5) तार्किक शैली, (6) विवेचानात्मक शैली,
(7) निवेदनात्मक ।

रचना शैली की विविधता के परिप्रेक्ष्य में यह उल्लेखनीय है कि उक्त सभी शैली रूपों में वैदर्भी रीति की प्रधानता है, यह कृति प्रसाद और माधुर्य, गुणों से ओत-प्रोत है। श्लोकों में सङ्गीतात्मकता और गेयता विद्यमान है ।

धर्मकुसुमोद्यानः

विवेच्य रंचना ''धर्मकुसुमोद्यान'' समस्त साहित्यिक तत्त्वों से मण्डित है -

रसानुभूति

इसमें मानव मन के दस आदर्श भावों को धर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। अतः आद्योपान्त शान्तरस की अभिव्यञ्जना है, दूसरे रसों कहीं उपलब्धि नहीं होती। एक उदाहरण से शान्तरस को स्पष्ट किया जा सकता है -

सन्तोषामृत तुष्टा स्त्रिलोक राज्यं तृणाय मन्यते ।
अपि भोः ? कष्ट सहस्त्रां, पतिता दुःखं लभन्ते न ।।[384]

अर्थात्-सन्तोष के अमृत से सन्तुष्ट मानव को त्रिलोकी का राज्य तृणवत् है, ऐसे व्यक्ति हजारों विपत्तियों में भी दुःखी नहीं होते ।

यहाँ सन्तुष्ट व्यक्ति रस का आश्रय एवं-राज्य आलम्बन है सन्तोष गुण उद्दीपन विभाव है उसका पान करना, राज्य के प्रति उदासीनता, सुख-दुःख में उत्तेजित न होना आदि अनुभाव है और निर्वेद, वैराग्य त्याग आदि सञ्चारी भाव है । इनसे संयुक्त होकर यहाँ शान्त रस विद्यमान है । इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ में शान्तरस की अभिव्यक्ति हुई है ।

छन्द सौष्ठव

यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा के सुप्रसिद्ध छन्दों में निबद्ध है । इसके 49 पद्यों में आर्या[385], 30 पद्यों में अनुष्टुप्[386], 15 पद्यों में उपजाति[387] इन्द्रवज्रा[388], उपेन्द्रवज्रा[389], 7 पद्यों में द्रुतविलम्बित[390], 4 पद्यों में वसन्ततिलका[391], एक-एक पद्य में रथोद्धता[392] और स्वागता[393] तथा दो पद्यों में स्रग्धरा छन्द[394] का प्रयोग निदर्शित है । इस प्रकार उक्त छन्दों में धर्मकुसुमोद्यान के 109 पद्य सङ्कुम्फि हुए हैं ।

आलङ्कारिक छटा

इस रचना में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, अन्योक्ति, एवं अर्थान्तरन्यास अलङ्कार विद्यमान हैं ।

अनुप्रास अलङ्कार के अनेक प्रयोग हैं । यहाँ म, ज, त, वर्णों की बार-बार आवृत्ति का प्रयोग अधोलिखित त पद्यांशों में दृष्टव्य है -

मार्दव मण्डिते मर्त्ये प्रसीदन्ति जगज्जनाः ।[395]
तीव्रं तपः प्रभावं दृष्ट्वा जैनेतरे जना जैनाः ।।[396]

उपमा अलङ्कार

धर्मकुसुमोद्यानम् के अनेक पद्य उपमा से मण्डित है - अधोलिखित पद्य प्ररूपित है-

पन्नग वैष्ठित वित्तं न लाभाय कल्पेत् पुंसाम् ।
मायाचारयुतस्य तथा न विद्या धनच्चापि ।।[397]

यहाँ सर्प द्वारा रक्षित धन की उपमा मायावी की विद्या से की गई है । क्योंकि इनका लाभ मनुष्यों को नहीं मिलता । इसमें पद्य पन्नगवेष्टितधन उपमेय है और मायावी की विद्या उपमान है तथा वाचक है जिससे उपमा की प्रतीती होती है ।

रूपक अलङ्कार की छटा भी अनेक पद्यों में व्याप्त है - यहाँ भी एक उदाहरण प्रतिपादित है ।

मार्दव धनाधनोऽयं मान दावाग्नि प्रदीप्त भवकक्षम् ।
सत्प्रीति वारिधारां मुच्चन्निभिषेण सान्त्वयति ।।[398]

अर्थात्-मार्दव रूपी मेघ प्रीतिरूपी जलधारा को छोड़ता है, जिससे अहङ्कार रूपी वनवन्हि से दीप्त संसार रूपी कानन की रक्षा होती है ।

यहाँ क्रमशः मार्दव, प्रीति, अहङ्कार, संसार उपमेय हैं जिनमें क्रमशः मेघ, जलधारा, वनवह्नि, कानन उपमानों का अभेद वर्णन किया गया है अतः रूपक अलंकार विद्यमान है।

उत्प्रेक्षा अलङ्कार

यह अलङ्कार भी इस ग्रन्थ के कतिपय पद्यों में उपलब्ध होता है। यहाँ एक उदाहरण

प्ररूपित है - जिसमें कवि ने रोहण पर्वत से शोक त्याग करने और घन गर्जन से रत्नों की प्राप्ति होने की सम्भावना व्यक्त की है -

मा कुरु । मा कुरु शोकं रत्नसमूह व्ययेच हे रोहणः ।
झगिति पयोधर रावो दास्यति रत्नानि ते बहुतराः ।।[399]

यहाँ उपमेय रोहण भूधर के शोक को दूर करने उपमान रूप पयोधर से रत्न प्राप्ति की सम्भावना उत्प्रेक्षा का सङ्केत करती है ।

धर्म कुसुमोद्यान के आठ पद्य अन्योक्ति अलङ्कार से सुसज्जित हैं और प्रभावित करते हैं । इनमें पर्वत, मेघ, सागर, चन्दन, खजूर को सम्बोधित करते हुए भी अन्य अर्थ का आभास होता है - जिससे कहीं-कहीं श्लेष की सलक भी मिल जाती है एक उदाहरण निरूपित है -

किमिति कठोरं गर्जसि वर्षसि सलिलस्य शीकरं नैव ।
मा मा वर्षाम्भोधर । त्यजतुकठोरं तु गर्जनं सद्यः ।।[400]

अर्थात् जल से रिक्त हे मेघः तुम व्यर्थ गर्जन, क्यों कर रहे हो ? वर्षा नहीं परन्तु कठोर गर्जना को छोड़ दो ।

अम्भोधर (मेघनाथ) रावण के पुत्र के पक्ष में द्वितीय गूढ़ अर्थ अन्योक्ति की सिद्धि करता है ।

अर्थान्तरन्यास

की अभिव्यञ्जना कुछ पद्यों में है एक पद्य द्रष्टव्य है -

संसारसिन्धुतरणे सत्यं पोतायते चिरं पुंसाम् ।
सत्येन विना लोका ध्रुवं बुडन्तीह भवसिन्धौ ।।[401]

अर्थात् संसार समुद्र के पार होने के लिए सत्य जहाज के समान है । मनुष्य सत्य के बिना भव सागर में डूब जाता है । यहाँ सामान्य कथन का विशेष कथन से समर्थन किये जाने के कारण अर्थान्तरन्यास की प्रतिष्ठा हुई है ।

इस प्रकार उक्त उदाहरणों के द्वारा विवेच्य ग्रन्थ में आलङ्कारिक छटा का आकलन किया जा सकता है ।

शैलीगत विवेचन

डॉ. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य की काव्य-कुशलता अनुपम और स्तुत्य है । बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध कालीन साहित्यकारों में गणमान्य

भाषा

साहित्याचार्य जी सरस, सरल, बोधगम्य, भाषा के द्वारा मानवमात्र धरातल से सम्बद्ध हैं तथा जनसामान्य की श्रद्धा के पात्र हैं । "धर्मकुसुमोद्यान" में ही सरल, बोधगम्य प्रसादगुण पूर्ण भाषा और शैली ने प्रत्येक धर्म प्रेमी मानव को प्रभावित किया है । आपकी अनुप्रासमयी शब्द रचना और पदावली निःसन्देह सराहनीय है - मानव मन के अन्तरंग भावों का स्पर्श करने वाली शुद्ध, परिष्कृत सरल संस्कृत "धर्मकुसुमोद्यान" में प्रतिफुल्लित हुई है । क्षमा,

शौच, सत्य, संयम्, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य जैसे शुद्ध और सात्विक भावों को अत्यन्त सरसता, तुकान्त शब्दावली में पिरोकर कवि ने अपनी सूक्ष्म विश्लेषण शक्ति का परिचय दिया है।

शैली

इस कृति में मनोवैज्ञानिक तथा प्रसाद गुण पूर्ण मार्मिक शैली का निष्पादन हुआ है। प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है -

विद्याविभवयुक्तोऽप्यहङ्कारी जनतेश्वरः ।
दूरादेव जनैस्त्याज्यो मणियुक्त फणीन्द्रवत् ॥[402]

अहङ्कारी राजा विद्यावान होने पर भी मणि युक्त भुजङ्ग के समान त्याज्य है ।

इसके साथ ही धर्मकुसुमोद्यानम् के कतिपय पद्यों में माधुर्य गुण की अभिव्यञ्जना हुई है । जिनमें कोमल कान्त पदावली और दृष्टान्त शैली ने जन-जन को आकृष्ट किया है -

हे हो मत्यज मूले सदा निणष्णान् भुजङ्ग मनुवारय ।
येन तव सुरभिसारं भोक्तुं शक्नोतु जगदेतत् ॥[403]

यहाँ पर चन्दन से उसमें लिपटे सर्पों को दूर करने की कहा गया है, जिससे उसकी सुगन्ध का लाभ मानव मात्र प्राप्त कर सके ।

इसी प्रकार शैली में प्रसाद माधुर्य के साथ ही अत्यन्त रोचकता आ गयी है । अमिधा शब्दशक्ति भी उपस्थित हैं और अन्योक्तियों के प्रसङ्ग में दृष्टान्त शैली और लक्षणा-व्यञ्जना भी विद्यमान है जहाँ मुख्यार्थ गौण हो गया है और प्रतीयमान अर्थ ने चमत्कार या आकर्षण उत्पन्न किया है - अद्योलिखित पद्य में शब्दार्थ गौण है किन्तु प्रतीयमान अर्थ प्रमुख हो गया है - रे खर्जुरा नोकह ? किमेवमुतङ्गमानमुदवहसि ।

छायापि तेन भोग्या पान्थानं किं फलैरेभिः ॥

इसमें धनी और घमण्डी मनुष्य का अर्थ प्रधान है जिसका आश्रय किसी को नहीं मिलता । इसी प्रकार वैदर्भी रीति भी मुख्य रूप से विद्यमान है । साहित्यिक एवं शैलीगत दृष्टि से अध्ययन करने के पश्चात् मैं कह सकता हूँ कि यह कृति जन सामान्य को प्रेरणास्पद एवं दिशानिर्दिष्ट करने में पूर्णतः सक्षम है । और जन सामान्य में आदर प्राप्त है ।

''पं. मूलचन्द्र शास्त्री की रचनाओं का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन''

रसाभिव्यक्ति

रस काव्य की आत्मा माना गया है । इसीलिए किसी भी काव्यरचना का परीक्षण करने के लिए रस की अभिव्यक्ति जानना अत्यन्त आवश्यक है । वचनदूतम्-काव्य में रसोत्कर्ष परिलक्षित होता है । इसमें शृंगार और शान्तरस की प्रमुखता है । शृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों ही रूपों का इस ग्रन्थ में निदर्शन है । शृंगार रस का उदाहरण द्रष्टव्य है - नायिका राजुल गिरिनार पर्वत पर जाकर नेमि से कहती हैं -

''पूर्वसत्रा कतिपय भवे त्वं प्रभो । मामनैषीः,
योऽन्तः स्नेहस्त्वयि मयिमिथोऽभूच्चिरं तं स्मर त्वम् ।
तस्य स्मृत्या मनसि मम सा सङ्गमाशाऽभवद् या,
सद्यः पाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।[404]

किन्तु इस काव्य में, सर्वत्र वियोग शृंगार का प्रभाव छाया हुआ है। राजीमति की विरहावस्था अप्रतिम है, जैसे - सखियाँ नेमि से राजुल की दीनदशा का वर्णन करती हैं -

"अस्या कान्तं नयनयुगलं चिन्तया स्पन्दशून्यं,
कद्धा पागं चिकुरनिकरै रंजन भ्रूविलासैः ।
दीनं मन्ये त्वदुपगमनात्तवदा स्वष्टलाभात्,
मीनक्षो भा च्चलकुवलय श्री तुला मेष्यतीति ।[405]

निर्वेद स्थायी भाव शान्तरस का है । नेमि की वैराग्य भावना का चित्रण शान्तरस के धारतल पर है । इस काव्य में शृंगार का पर्यावसान शान्तरस में हैं । राजुल अपने पिता के समक्ष साधना पथ पर चलने का सङ्कल्प लेती है -

"कल्ये दीक्षामहमपि च पितः । धारयिष्यामि नूनम्
आज्ञां दत्वा सफलय मनोभावमेवं विदित्वा,
कार्या कार्ये पितु पदसमाध्यासिना नात्र बाधा
शोकं मोहं विगलयनमे कोऽपि कस्यापि नाहम् ।।[406]

राजीमती के माता-पिता, नेमि के समक्ष अपनी पुत्री की वियोगावस्था का मर्मस्पर्शी बखान करते हैं, अतः यहाँ प्रस्तुत पद्य में वात्सल्य रस की प्रतिष्ठा हुई है -

"सा मे पुत्री व्यथितहृदया प्रत्यहं दुर्विकल्पैः,
त्वच्चित्तोत्थैः स्वपिति न मनाग् निर्विमेषक्षियुग्म् ।
वक्त्रं तस्या हिमकरनिभं त्वद्वियोगेऽसत् शौभम्,
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वाभिमुख्याम् ।।[407]

नेमि ने राजीमती के द्वार पर आकर एकाएक वैवाहिक सामग्री का परित्याग कर वैराग्य धारण किया । राजुल द्वार से लौटते हुए, नेमि को देखकर शान्संतृप्त भी है और आश्चर्यचकित भी, अतएव इस वर्णन में करुणरस और अद्‌भुत रस की सफल अभिव्यंजना हो गई है -

"द्वारा ऽज्ञयातंप्रतिगत ममुं स्वामिनं वीक्ष्य बाला,
हा हा । जातं किमिदमशुभं मे विधेर्दुर्विपाकात् ।
लब्धे स्त्रीणां न भवति सुखं सत्यपीष्टे प्रदथ्यौ,
कण्ठाश्लेष प्रणयिनि जने किं पुनर्दूर संस्थे ।"[408]

छन्द योजना

वचन दूतम् में कवि ने अपने भावों को मन्दाक्रान्ता छन्द और तोटक छन्द में अभिव्यञ्जित किया है । मन्दाक्रान्ता वृत्त का लक्षण इस प्रकार है -

"मन्दाक्रान्ताऽम्बुधि रस नगैर्मो भनौ तौगयुग्मम् ।[409]

मन्दाक्रान्ता छन्द के प्रतिपाद में क्रमशः मगण, भगण, नगण, दो तगण और अन्त में दो गुरु वर्ण होते हैं । 17 अक्षर के इस छन्द में चतुर्थ षष्ठ और सप्तम अक्षरों के पश्चात् यति होती हैं । उदाहरण -

"याचेऽहं त्वां वुक मपि कृपां मास्मभूर्निर्दयस्त्वम् ।
नास्तीदं ते गुणगणममे । साधुयोग्यं शरीरम् ।
सौरव्यैः सेव्यं विरम तपसो नाथ ! सेव्या पुरी मे,
बाह्योधानस्थितहरशिरश्चद्रिका धौतहर्म्या ।।[410]

उक्त पद्य का हिन्दी पद्यानुवाद भी मन्दाक्रान्तावृत्त में निबद्ध है -

मांगू भिक्षा घर पर चलो नाथ ! हो ओ दयालु,
क्यों होते हो मुझ पर प्रभो ! व्यर्थ में आप कष्ट ।
सींचो सींचो विपुल करुणा–धार से स्वान्त मेरा,
सोचो–सोचो गुणगणपते ! आपका मंजु देह ॥
दीक्षा के है नहिं यह प्रभो ! योग्य, सौख्य प्रसेव्य,
छोड़ो–छोड़ो तपकरण की भावना को, पधारो,
जल्दी–जल्दी मम नगर में है जहाँ हर्म्य माला,
शंभूमाल – स्थिर शशि प्रभा से सदा ॥''

तोटक छन्द का लक्षण है - वद तोटकमब्धिसकारयुतम् ।[411] अर्थात् तोटक छन्द के प्रत्येक पाद में चार सगण होते हैं । तथा प्रत्येक पाद में 30 मात्राएँ होती हैं, जिनमें 16 और 14 पर यति होती हैं । उदाहरण-

नाथ ! आपको छूकर आयी वायु उसे जब छूती है,
तो वह अति प्रसन्न हो करके उसमें, तुम्हें ढूंढती है ।
पर वह मुग्धा नाथ ! नहीं जब तुम्हें वहाँ पर पाती है ।
तो वह द्विगुणित मनस्ताप से हाय ! दग्ध हो जाती है ।[412]

इस प्रकार उक्त छन्दों में निबद्ध वचनदूतम् श्रेष्ठ रचना है ।

अलङ्कारच्छटा

प्रस्तुत ''वचनदूतम्'' काव्य में शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों का मणिकाञ्चन, समन्वय मिलता है । वचनदूतम् में अनुप्रास अलङ्कार पदे-पदे विद्यमान है -

''गन्तव्या ते यदुकुलपते । भामिनीनां विलासै,
र्हास्यैर्लास्यैर्मुनिवरचयैः सम्भृता दारिकेयम् ।[413]

एक अन्य पद्य भी प्ररूपित है -

शान्ते कान्ते निवस निलये नाथ ! सार्धं मयैव,
धर्म्यध्यानं त्वमिह भज ते सर्वचिन्तां विमुच्य ।[414]

वचनदूत में यत्र-तत्र यमकालङ्कार आया है । प्रस्तुत उदाहरण में यमक के अलावा पुनरुक्ति प्रकाश अलङ्कार के भी दर्शन होते हैं -

''श्यामा श्यामा विरहविफला दुःखदावाग्निदग्धा,
तन्वी तन्वी शिथिलगमना मन्द–मन्द प्रजल्पा ।[415]

सखियों के द्वारा नायिका राजुल की वियोगजन्य स्थिति की व्याख्या नायक (नेमि) के समक्ष की गयी है - यद्यपि वह यौवनवती (श्यामा) है, फिर भी विरह से विकल और दुःखरूपी दावानल से दग्ध होने के कारण श्यामा (काली) हो गयी है । उसकी शारीरिक हालत अत्यंत कमजोर है । इस कारण वह ठीक से चल नहीं पाती और बहुत धीमे स्वर में बोलती है । यहाँ श्यामा-श्यामा में यमक अलंकार आ गया है, किन्तु एक से अधिक बार शब्द ज्यों के त्यों आ गये हैं, इसलिए पुनरुक्ति प्रकाशनामक अलङ्कार भी हो जाता है।

वचनदूतम् में उपमा अलङ्कार अत्यन्त समृद्धि के साथ प्रयुक्त हुआ है। वचनदूतम् पदे-पदे उपमाएँ आयी हैं - जैसे -

"रात्री रम्या न भवति यथा नाथ ! चन्द्रेण रिक्ता,
कासार श्रीःकमल रहिता नैव वा संविभाति ।
लक्ष्मी र्व्यक्ता भवति न यथा दानकृत्येन हीना,
नारी मन्या भवति न तथा स्वामिना विप्रमुक्ता ॥[416]

कवि ने पति द्वारा छोड़ी नारी की दीन स्थिति स्पष्ट करने के लिए अनेक सार्थक उपमाएँ प्रस्तुत की हैं । उत्प्रेक्षा अलङ्कार भी इस काव्य में अनेक पद्यों में प्रयुक्त हुआ है, जैसे -

"कष्टं कष्टं किमहमवदं साम्प्रतं मन्दिरं तत्,
लक्ष्मीशून्यं पितृवननिभं भाति ते विप्रयोगात् ।
पूर्वं यन्मे परिणयविधेरीदृशं रोचते स्म,
शैषैः पुण्येर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥[417]

राजुल नेमि से आत्मविश्लेषण करती है कि हे नाथ ! जो राज भवन मुझे परिणय से पूर्व ऐसा लगता ता मानो मेरे ही अवशिष्ट पुण्य प्रताप से आकाश का गिरा हुआ कान्तिमय खण्ड ही है वही अब (वियोग की स्थिति में) आपके बिना शोभाहीन श्मशान जैसा प्रतीत होता है ।

रूपक अलङ्कार में शास्त्री जी ने अपनी अनूठी कल्पनाएँ अभिव्यक्त की हैं - रूपक के अन्यतम् प्रयोग "वचनदूतम्" में मिलते हैं । राजुल अपने पिता से कहती है - हे पिता, इस त्याग के कारण अभुक्त मेरे सौभाग्य को मेरी सौत मुक्ति ने विरहमयी अग्नि में भस्म कर दिया है -

मत्सौभाग्यं विरहदहने तात दग्धं सपत्न्या,
मुक्त्याऽभुक्तं विगलितमिदं नैव वाञ्छामि भूयः ।[418]

इस प्रकार रूपक अलङ्कार प्रस्तुत काव्य में अनेक पद्यों में प्रयुक्त हुआ है । अर्थान्तरन्यास अलङ्कार भी वचनदूतम् के काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने में सहायक है । अर्थान्तरन्यास अलङ्कार की छटा अधोलिखित पद्य में परिलक्षित है -

नारी प्रायो विरहविधुरा दुःखभागेव बुद्ध्वा,
आगच्छेच्चेदिह मम गृहं बोधनार्थं स आर्यः" ।
मार्गः शुष्क स्तरणिकिरणो मेघ ! कार्यो न चेत्सः,
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ।[419]

हृदय में स्थिर असह्य दुःख भी दूसरों के सामने प्रकट कर देने पर वह अल्पसह्य हो जाता है, इसी भाव की अभिव्यक्ति दृष्टव्य है -

"प्रोक्तं स्वीयं बृहदपि यतो दुःखमल्पत्वमेति ।"[420]

"वचनदूतम्" काव्य में प्रेम की गहराइयों और मार्मिक भावों से पूर्ण हैं। स्मरण अलंकार के दृश्य भी सजीव रूप से अंकित हुए हैं । स्मरण अलङ्कार का लक्षण है-

"यथाऽनुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः ।[421] स्मरणम् - किसी पूर्वानुभूत वस्तु की, उसके समान किसी दूसरी वस्तु के अनुभव से उद्बुद्ध स्मृति हो, स्मरण अलंकार कहलाती है । राजुल की सखियाँ नेमि के पास जाकर कहती हैं - कि राजुल बगीचे में जाकर आपके पास से गये हुए मयूरों को देखकर ख्यालों में डूब जाती है -

"अन्तस्तापं प्रशमितुमसौ नाथ ! सार्धं सखीभि,
रम्यारामं व्रजति च यदा हन्त ! तत्रापि तस्याः ।
त्वत्सान्निध्यात् सुखित शिखिनो वीक्ष्य दुःखातिरेकात्,
मुक्ता स्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ।।[422]

इस प्रकार "वचनदूतम्" काव्योचित समस्त लक्षणों से समन्वित भावप्रधान काव्य है । उपरोक्त अलङ्कारों के अलावा अन्य अलङ्कार भी इसमें खोजे जा सकते हैं ।

"भाषा–शैली"

वचनदूतम् की भाषा-शैली उच्चकोटि के साहित्यक गुणों से सम्पन्न है, यथा स्थान काव्यरीतियाँ भी उपस्थित हुई हैं - हिन्दी में अर्थ एवं पद्यानुवाद देकर विषय वस्तु को अधिक जनोपयोगी बनाया गया है । एक समस्यापूर्ति काव्य में कल्पनाओं को रूपायित करना कवि का कर्त्तव्य है, उसका निर्वाह शास्त्री जी ने गौरव के साथ किया है । नारी हृदय की अपार वेदनाओं से परिचित कराने के लिए कम संस्कृत जानने वालों के लिए भी यह काव्य समर्पित किया है - राष्ट्रभाषा में किया गया पद्यानुवाद सरल, सरस और कोमलकांत पदावली से परिपूर्ण है । कहीं-कहीं संस्कृत पद्यों में समासों के दर्शन भी किये जा सकते हैं । भाषा और शैली की दृष्टि से काव्यरोचक और सर्वजनग्राह्य है। इस प्रकार वैदर्भी रीति का आद्योपान्त प्रभाव है । प्रसादगुण के अतिरिक्त माधुर्यगुण का निदर्शन और रसोद्रेक के प्रवाह में भावों का परिष्करण भी हो गया है । काव्यगुणों का निदर्शन द्रष्टव्य है-

गुण

"वचनदूतम्" काव्य में माधुर्यगुण का प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है । इस गुण की अभिव्यंजना के परिप्रेक्ष्य में कहीं मेघ, कहीं वायु, कहीं नाथ आदि सम्बोधनों का सहारा लिया गया है - राजुल की सखियाँ नेमि के पास जाकर राजुल का मार्मिक संदेश सुनाती है -

"स्वामिन् रात्र्या सह निवसनादेव चन्द्रश्चकास्ते,
भास्वत्कान्त्या रविरपि तथा सत्तडागोऽब्जात्मक्ष्म्या ।
एवं मर्त्यः शुभ कुलजया धर्मपत्न्येति मत्वा,
तां स्वीकृत्याचर गृहिवृषं स्यास्ततस्त्वं मुनीन्द्रः ।।[423]

"वचनदूतम्" में ओजगुण के दर्शन किये जा सकते हैं - यथा -

सर्वोत्कृष्टं तव वपुरिदं नाथ । सौम्याऽऽकृतिस्ते,
हे हे सत्वं प्रबल सुभटैरप्यजय्यं च शौर्यम् ।[424]

यहाँ पर नेमि के शौर्य और बल का उद्घोष किया गया है । वचनदूतम् में प्रसादगुण के अनेक उदाहरण मिलते हैं । सखियाँ नेमि को सरल शब्दों में समझाती हैं कि राजुल ने सब कुछ छोड़ दिया है किन्तु (नेमि को) नहीं छोड़ा है, आपको भी उसकी चिन्ता होना चाहिये -

सर्वमुक्तं परमिह तया त्वं न मुक्तोऽसि नाथ ।
वाक्यं नो नो धरति हृदये "नाथ ! कुत्रासि वक्ति ।"
वच्मः किञ्चिद्विरम तपसो भो दयालो ! प्रबोध्य,
तामित्वाऽत्र त्वमनुचरतात्वसर्वभद्रां तपस्याम् ।।[425]

इस प्रकार साहित्यिक दृष्टि से "वचनदूतम्" काव्य अन्यतम है ।

आ. ज्ञानसागर – स्तुति

साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन

रस – इस भक्तिभावपूर्ण स्तोत्र में आद्योपान्त शाञ्चितरस विद्यमान है । एक पद्य उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है –

ताख्यं विगणैरयगण्य कृतिनाऽरण्यापगाम्भः सर्म,
आयुष्य जल लोन बिन्दु चपलं संचिन्त्य संख्यावता ।
हित्वा सर्वसुखं विहाय जननीं तातं तथा बान्धवान्,
स्वात्मोत्थान कृते दधौ यमियमं कर्मारिसंवारणम् ।।[426]

इसमें आचार्य ज्ञानसागर द्वारा माता-पिता, भाई-बन्धु, और सांसारिक सुखों को त्यागकर, वन में जाकर वैराग्य धारण करने का विवेचन है । यहाँ रस के आश्रय और आलम्बन, आचार्य श्री हैं, भौतिकसुख एवं पारिवारिक ममता की असारता एवं मोहादि बन्धन उद्दीपन विभाव हैं । वन प्रस्थान करना, आसन लगाना आदि अनुभाव हैं और निर्वेद, समता, आदि सञ्चारी भाव हैं ।

छन्द

कवि ने ग्यारह पद्यों के इस लघुस्तोत्र काव्य में 9 पद्यों में शार्दूलविक्रीडित एवं एक पद्य में मन्दाक्रान्ता तथा अन्तिम पद्य में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया है । शार्दूलविक्रीडित छन्द का एक उदाहरण निदर्शित है –

गंगोत्तुंगतरंगसंगिसलिलप्रान्तस्थितो विश्रुतः,
श्री स्याद्वाद पदांकितो भुविजनैर्मान्योऽस्ति विद्यालयः ।
तत्राधीत्य विशिष्ट संस्कृतमयी भाषाभूदद्भुतः,
विद्वान्मान्य विशिष्ट काव्य रचना मूलेन्दुना स्तूयते ।।[427]

इसमें स्याद्वाद संस्कृत विद्यालय का गौरव पूर्ण वर्णन करते हैं । यही आचार्य श्री के विद्यार्जन का केन्द्र है ।

मन्दाक्रान्ता का प्रयोग देखिये –

चित्रं चित्रं तव मुनिपते ! वृत्तमेतत्पवित्रं,
यत् त्वं गोभिः कुवलयमिदं सन्तनोषि प्रबुद्धं ।
एवं कृत्ये वद कथमिर्गे सूरभावं विभर्षि ।
सूरितत्त्वे वा भवति भवतः कौमुदः किं प्रबुद्धः ।।[428]

इस पद्य में आचार्य श्री के विचित्र पवित्र जीवनवृत्त को सर्वोत्कृष्ट निरूपित करते हुए कवि ने अपनी अल्पज्ञता ज्ञापित की है । इस स्तोत्र का अंतिम श्लोक अनुष्टुप् छंद में है, जिसमें रचनाकार ने स्तोत्र रचने का प्रयोजन भी स्पष्ट किया है –

ज्ञानसिन्धोर्मुनीन्द्रस्य भक्त्या मूलेन्दुना कृता ।
संस्तुति सर्वजीवानां कुर्यान्मङ्गलमञ्जसा ।।[429]

इस प्रकार कवि ने प्रसंणोपत्ता छन्द योजना प्रतिपादित की है ।

अलङ्कार

विवेच्य स्तोत्र रचना में अनुप्रास, रूपकादि अलङ्कार आये हैं । अनुप्रास अलङ्कार प्रत्येक पद्य में परिलक्षित होता है । यथा -

यस्माद् बोधमयी महोदयमयी कार्याय मुद्रामयीम् ।
धर्माधमरहस्यदर्शनमयीतत्त्व व्यवस्थामयीम् ॥[430]

इसमें ज्ञानसागर की वाणी के लिये उक्त विशेषणों का प्रयोग हुआ है । जिसमें, ''म'', ध, द, य इत्यादि वर्णों की आवृत्ति होने पर अनुप्रास हैं । रूपक का एक चित्र देखिये - जिसमें अनुप्रास भी आया है -

भव्यानन्दकरीं भवाब्धितरिणीं वाणीं सुधासारिणीम् ।
श्रुत्वा ज्ञानसमुद्रतः गुरुपदे नागत्य के के नताः ॥[431]

इसमें भवाब्धितारिणी - पद (संसार रूपी समुद्र से मुक्त करने वाली) में रूपक हैं। संसार उपमेय और समुद्र उपमान का अभेद वर्णन होने से रूपक हैं । तथा भ, ण, स की आवृत्ति से अनुप्रास भी हैं ।

भाषा एवं शैली

भाषा

इस स्तोत्र में कवि ने सरल, साहित्यिक, परिष्कृत संस्कृत् भाषा का प्रयोग किया है। भाषा में सुबोधता है, जिससे अर्थ भी सहजता से समझा जा सकता है । आचार्य श्री शिक्षा, दीक्षा, वैराग्य जीवनदर्शन, कृतित्व, शिष्यपरम्परा, आदि की झांकी अपनी कोमल कांत पदावली द्वारा कवि ने प्रस्तुत की है । उक्त स्तोत्र की बोधगम्य भाषा व्याकरण सम्मत और शुद्ध है। इसमें आलङ्कारिकता ने भी आकर्षण उत्पन्न किया है ।

शैली

प्रस्तुत स्तोत्र में वैदर्भी प्रधान गवेषणात्मक शैली आद्योपन्त आयी है । भक्तिपूर्ण रचना होने से शैली में गयता आयी है जिससे गवेषणात्मक शैली की प्रतिष्ठा हुई है। यहाँ सभी पद्यों में सरसता एवं मधुरता विराजमान है ।

विद्यासागर सद्गुरो ! मुनियते ! वैदुष्यमत्रातुलं,
यावच्चन्द्रदिवाकरौ वितनुतं वक्ष्यन्ति खे स्वां गतिम् ।[432]

अर्थात् - है विद्यासागर के सद्गुरु । आपका वैदुष्य अतुल है, जब तक सूर्य चन्द्र आकाश में है, आपकी गति (महिमा) को कहते हैं ।

इस प्रकार शैली माधुर्य गुणयुक्त, दीर्घसमास रहित तथा अल्पसमास से युक्त है, इसलिए वैदर्भी शैली अभिव्यंजित हुई हैं ।

गुण

इस रचना में सर्वत्र माधुर्य एवं प्रसादगुणों की अवस्थिति है । ओजगुण का सर्वथा अभाव है । उदाहरण - आचार्य शिवसागर की धर्मामृत वाणी से प्रभावित होकर सांसारिक भोग और शरीर के प्रति ममता त्यागकर बन्धनों से मुक्त हुए ।

भव्यानन्दकरी निपीय नितरां सद्देशनां योऽभवत् ।
निर्विण्णे भवभोगदेहममताकाराग्रहान्निर्गतः ॥[433]

इसमें माधुर्य और प्रसादगुण की छटा विद्यमान हैं ।

''गणेश स्तुतिः

इसमें सन्त गणेश प्रसाद वर्णी जी की स्तुति शार्दूलविक्रीडित छन्दों में निबद्ध हैं। अनुष्टुप् छन्द में रचनाकार ने अन्तिम पद्य में अपना परिचय देकर रचना का समापन कर दिया है। प्रसाद माधुर्य गुणों की छटा, अनुप्रास, उपमा अलङ्कारों के सङ्गम और बोधगम्य तुकान्त सरल संस्कृत के सहयोग से रचना आकर्षक बन गयी है । भावों में सजीवता है । शास्त्री की वर्णनात्मक शैली ने रचना में स्फूर्ति उत्पन्न कर दी है । कवि के भाव उत्कृष्ट, सशक्त और प्रभावशाली है, वैदर्भी रीति और माधुर्य गुण के कारण रचना अत्यन्त रोचक हैं ।

पं. मूलचन्द्र जी शास्त्री की अन्य रचनाओं अभिनव स्तोत्रम्, वर्धमान चम्पू आदि में भी उक्त सभी साहित्यिक एवं शैलीगत विशेषताएँ विद्यमान हैं ।

पं. जवाहर लाल शास्त्री के प्रमुख ग्रन्थों का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में पं. जवाहर लाल शास्त्री का कृतित्व प्रकाश में आया। आपके द्वारा विरचित जिनोपदेश, पद्मप्रभस्तवनम् सहित अनेक ग्रन्थ साहित्यक तत्त्वों से मंडित हैं ।

रस

शास्त्री जी के काव्य शान्तरस से ओत-प्रोत हैं । जिनोपदेश जैनदर्शन से ओत-प्रोत रचना होने के कारण शान्तरस प्रधान है । और पद्मप्रभस्तवनम्[434] में भी आद्योपान्त शांतरस की प्राप्ति होती है, क्योंकि कवि की अपने आराध्य के प्रति अनन्य भक्ति भावना है । यहाँ उदाहरणार्थ एक पद्य प्रस्तुत है इसमें मोक्ष का स्वरूप प्रतिपादित है -

मोक्ष्यते चास्यते येनाऽसन मात्रं स वा भवेत् ।
सर्वकर्मक्षयो मोक्षो रागादि नाशनं स वा ॥[435]

अर्थात् कर्मों का क्षय और रागादि भावों की निवृत्ति मोक्ष है । जीव का मोक्ष के पश्चात् उस मुक्त परमात्मा के लिए अनन्तगुण युक्त एवं सांसारिक दुःखों से मुक्त कहते हैं।

यहाँ रस का आश्रय और आलम्बन पाठक और कर्मक्षयवाला जीव है । रागादि भावों की निरसारता, भोगों के प्रति अरुचि, उद्दीपन विभाव है, कर्मों का क्षीण होना, आत्मचिन्तन में रमण अनुभाव हैं तथा निर्वेद आदि संचारी भाव है । इन सबके संयोग से शान्तरस पुष्ट हुआ है । उक्त रचनाओं में अन्य रस का प्रयोग नहीं मिलता ।

छन्द

पं. जवाहरलाल शास्त्री का सर्वाधिक प्रिय छन्द अनुष्टुप् है । यह छन्द जिनोपदेश के समस्त श्लोकों में प्रयुक्त हुआ है । तथा पद्मप्रभस्तवनम्[436] के अन्तिम तीन पद्यों में भी अनुष्टुप छन्द का प्रयोग मिलता है । उदाहरणार्थ अद्योलिखित पद्य द्रष्टव्य है -

''प्रणमामि महावीरमनन्तांश्च मुनीश्वरान्,
जिनवाणीं तथा वन्दे सर्वलोकोपकारिणीम् ॥[437]

इसमें महावीर सहित जैनमुनियों की स्तुति की है, जिनकी वाणी लोकोपकार में सक्षम है । पद्मप्रभस्तवनम् में बसन्ततिलका छन्द का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है : स्तुति के अन्तिम 3 पद्यों को छोड़कर सर्वत्र पद्यों में बसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त किया है - एक पद्य निदर्शित है-

कौशाम्बिनाम्नि नगरेऽर्जितपुण्यराशेः,
जातं सुजन्म धरणेश्वर मन्दिरे ते ।
माता विभो तव बभूव शुभा सुसीमा,
भक्त्या स्तुतिं जिनपतेर्भवतो विधास्ये ।।[438]

इसमें पद्मप्रभु का परिचय दिया है कि कौशम्बी नगरी में (धरणेश्वर) धारण राजा की पत्नी सुसीमा के गर्भ से उत्पन्न हुए । इस प्रकार कवि ने जिनोपदेश में अनुष्टुप् और पद्मप्रभस्तवनम् में बसन्ततिलका वृत्त के माध्यम से भावों को अनुरूप गति प्रदान की है।

अलङ्कार

शास्त्री जी के काव्यों शब्दालङ्कारों एवं अर्थालङ्कारों की बहुरङ्गी छटा विद्यमान है । उनमें अनुप्रास, उपमा, रूपक, विरोधाभास, अतिशयोक्ति, इत्यादि अलङ्कारों का परिपाक हुआ है । अनुप्रास के विविध प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं ।

छेकानुप्रास – सोऽत्रैव सद्गतिसुखं प्रददातु सर्व ।[439]
अन्त्यानुप्रास – वस्त्रैः शस्त्रैः एवं दीन्भक्तान् ।
लाटानुप्रास – संसारदुःख हरणाय नमोऽस्तु तस्मै,
मोक्षस्य मार्गकरणाय नमोऽस्तु तस्मै ।

पद्य के दोनों चरणों में पदसाम्य होने से लाटानुप्रास हुआ । इसके पूर्व की पंक्तियों में स्त्र, न, स, द, वर्णों की आवृत्ति होने से अनुप्रास अलङ्कार आया है ।[440] जिनोपदेश में भी अनुप्रास अलङ्कार परिलक्षित होता है ।

उपमा

''जिनोपदेश'' में उपमा का प्रयोग अत्यल्प है । पद्मप्रभस्तवनम् में उपमा अलङ्कार परिलक्षित होता है - एक उदाहरण प्ररुपित है -

यद्वत्प्रफुल्लकमलेन जलस्य शोभा,
तद्वत्त्वयाऽपि भुवनस्य विशिष्टशोभा ।[441]

अर्थात् - जैसे - विकसित कमल के द्वारा जल की शोभा होती है, वैसे ही आप (पद्मप्रभु) संसार की शोभा है । क्योंकि जिस प्रकार कमल जल की सुन्दरता की अभिवृद्धि करता हुआ उससे उपर (निर्लिप्त) है । उसी प्रकार आप भी संसार में रहते हुए भी उससे उपर (निर्लिप्त) हैं - जग में रहते जग से न्यारे ।

यहाँ पद्मप्रभु एवं कमल उपमेय है, और संसार और जल उपमान है । जिनमें क्रमशः समानता का वर्णन होने से उपमा अलंकार है । पद्मप्रभु संसार में वैसे ही है, जैसे जल में कमल ।

सन्देह

यह अलङ्कार जिनोपदेश ग्रन्थ के अनेक पद्यों में प्रयुक्त हुआ है । एक पद्य उदाहरणार्थ दर्शनीय है -

द्रवत्यदुद्व पधच्चा, द्रोष्यत्यं शास्तदुच्यते ।
द्रव्यमित्यथवा वस्तु सद्वाऽन्वयोऽपिना विधिः ।।[442]

अर्थात् - जो अंशों (स्वभाव) या विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा और होचुका है, उसे द्रव्य या वस्तु वा सत् या अन्वय अथवा विधि कहते हैं । प्रस्तुत उदाहरण में सन्देह अलङ्कार की प्रतीती या, वा, अथवा आदि वाचक शब्दों से होती है ।

विरोधाभास

इस अलङ्कार के दर्शन पद्मप्रभस्तवनम् के अनेक पद्यों में होते हैं । क्योंकि इस ग्रन्थ में पद्मप्रभु को परस्पर विरोधाभासी विशेषणों एवं संज्ञाओं से सम्बोधित किया गया है और फिर व्याख्या में उनका समाधान भी किया है । एक पद्य उदाहरण के रूप द्रष्टव्य है -

शुद्धो विकल्पविदुरोऽपि हि निर्विकल्पो,
लोकेश्वरः परतरो जन सेवकोऽपि ।
विज्ञान-धी-धन-युतः खलु निर्धनोऽपि,
त्वन्नाम नाथ ! जननन्दन ! काम हास्ति ॥[443]

भावार्थ यह है कि - नाथ परमशुद्ध आप समस्त विकल्पों के ज्ञाता होते हुए भी निर्विकल्प हैं । आप विश्व में सर्वप्रधान होते हुए भी जनसेवक भी हो और हे जननन्दन ! आप आत्मविज्ञान रूप बुद्धिधन से युक्त होते हुए भी निर्धन हैं ।

इस प्रकार परस्पर विरोधाभास पदों में है, किन्तु पद्मप्रभु के बहुमुखी व्यक्तित्व, माहात्म्य आदि में इसका परिहार हो जाता है ।

अतिशयोक्ति

इस अलङ्कार का अत्यल्प प्रयोग पद्मप्रभस्तवनम् में है, किन्तु जिनोपदेश अध्यात्मिक कृति हैं । उसमें इसके विद्यमान होने का अवसर ही नहीं है। "पद्मप्रभुस्तवनम्" में अतिशयोक्ति अलङ्कार की झलक वहाँ मिलने लगती है, जहाँ पद्मप्रभु को कवि ने इन्द्रादि देवताओं से श्रेष्ठ प्रतिपादित करते हैं - उनकी लोकोत्तर महिमा का भावोद्रेकमय विवेचन भी सातिशय हैं- पद्मप्रभु को नारायण, कामदेव, चक्रवर्ती से श्रेष्ठ अधोलिखित पद्य में निरूपित करते हैं -

पद्मस्थितोऽसि जगतो त्वमतो हि भिन्नो,
नारायणोऽपि च विभोऽनु महामुनि त्वाम् ।
श्री मन्मादिरपि ! नाथ तवानुसारी,
लोकेश ! कामद सुधी सुकृतिन्नमस्ते ॥[444]

इस प्रकार प्रस्तुत पद्यों में अन्य देवों, कामदेव जैसे प्रसिद्ध उपमानों को तिरस्कृत सिद्ध करने से प्रतीप अलङ्कार का आगमन भी हुआ है । कवि की भावुकता का परिचय मिलता है ।

भाषा

शास्त्री जी ने काव्य रचना करने में अपने नूतन और मौलिक प्रयोगों से पाठकों को प्रभावित किया है । संस्कृत भाषा पर आपका एकाधिकार है । जिनोपदेश के शुष्क, गूढ़ और दार्शनिक सिद्धान्तों को मनोरम, सुकुमार, बोधगम्य, शुद्ध संस्कृत के माध्यम से जनोपयोगी बनाना आपके काव्य-कौशल, शब्दचयन एवं भाषा पर गहरा आधिपत्य की प्रामाणिकता है। आपकी भाषा भावों को सरलता के साथ अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं। आपके ग्रन्थों में प्राप्त भाषा, बोधगम्य, गतिशील, सजीव एवं कहीं-कहीं अलङ्कृत भी हैं । जिनोपदेश में जटिल विषयों में भी भाषा सारल्य हैं ।[445]

किन्तु पद्यप्रस्तवनम् की भाषा में अधिक मधुरता एवं तुकान्ता या पदमैत्री परिलक्षित होती हैं । इस स्तोत्र की भाषा अलङ्कृत, आकर्षक एवं भावानुकूल है - यथा -

नित्यं विमत्सर – विराग विभुं नमामि ।
निःशेषसङ्गसुविविक्त – विभुं – नमामि ।।

इस प्रकार कवि भाषा में सहज सारल्य उत्पन्न किया है ।

शैली

कवि की रचनाएँ वैदर्भी प्रधान सुललित शैली में निबद्ध हैं । जिनोपदेश में वैदर्भी शैली की सफलता उल्लेखनीय है, क्योंकि आध्यात्मिक पर आधारित होते हुए भी इसमें नीरसता नहीं आ सकी है - इस शैली के द्वारा विषम को सरलता से स्पष्ट करना कवि का प्रधान लक्ष्य प्रतीत होता है - यथा -

यो व्यवहार कालः स नरक्षेत्रे तु सम्भवः ।
नर क्षेत्र–समुत्थेनाऽन्यत्र व्यवहृतिर्भवेत् ।।[446]

इस पद्य में काल द्रव्य के अन्तर्गत व्यवहार काल की विवेचना है। कि वह मनुष्य क्षेत्र में सक्रिय है । इस क्षेत्र उत्पन्न काल से ही अन्यत्र काल व्यवहार कहलाता है । इस प्रकार इस ग्रन्थ में सर्वत्र व्याख्यात्मक वैदर्भी शैली के दर्शन होते हैं ।

वैदर्भी शैली का अपर आलङ्कारिक रूप ''पद्यप्रभस्तवनम्'' में परिलक्षित होता है। इस स्तोत्र की शैली सुललित, आनुप्रासिक है । उसमें पदमैत्री के कारण सर्वत्र माधुर्य एवं गेयता आ गयी है - यह स्तोत्र की सफलता के लिए आवश्यक भी है ।[447] दर्शनीय है - इस प्रकार कवि का कृतित्व वैदर्भी शैली प्रधान है ।

गुण

कवि ने अपनी रचनाओं में प्रसाद गुण को प्राथमिकता दी है । जिनोपदेश[448] एवं पद्मप्रभस्तवनम्[449] के अधिकांश श्लोकों में प्रसादगुण की अभिव्यञ्जना है । एक उदाहरण प्ररूपित है -

ज्ञानाऽज्ञाने हि जानीयान्मोक्षसंसारकारणे ।
तस्मात्स्वसर्वसारेण ज्ञानमाराध्यमेव नः ।।[450]

अर्थात् मनुष्य के लिये ज्ञान और अज्ञान ही क्रमशः मोक्ष और संसार का कारण है- अतः हमारे लिए सर्वस्वसारमय यह ज्ञान ही आराध्य है। यह पद्य पढ़ते ही अर्थ की प्रतीती हो जाने के प्रसादगुण हैं ।

इस गुण के पश्चात् दूसरे स्थान पर माधुर्यगुण शास्त्री जी के काव्यों में देखा जा सकता है ।[451] एक उदाहरण द्वारा माधुर्य गुण निदर्शित है- इसमें पद्मप्रभु सर्वसुखों का दाता, रक्षक और संसार में जब- के निर्लिप्त कमल के समान सुशोभित होने का उल्लेख है-

पद्मत्वमेव हि महेश्वर । नाथ विज्ञ ।
त्रातासि सर्वसुखदो भविक त्वमेव ।
यद्वत्प्रफुल्लकमलेन जलस्य शोभा,
तद्वत्त्वयाऽपि भुवनस्य विशिष्ट शोभा ।।[452]

यहाँ कोमलकान्त पदावली तथा ''सर्वसुखद'' पद में समास प्रयोग होने से एवं मधुर वर्णों का प्रयोग होने से माधुर्यगुण विद्यमान है । शास्त्री जी की रचनाओं में ओजगुण का सर्वथा अभाव है ।

वृत्ति - कवि की रचनाओं में प्रसङ्गानुकूल अमिधा, लक्षणा एवं व्यञ्जना वृत्तियाँ खोजी जा सकती है । जिनोपदेश अमिधा प्रधान ग्रन्थ है ।[453] यह वृत्ति पद्मप्रभ्स्तवनम् में भी है ।[454] इसके साथ ही पद्मप्रभस्तवनम् के विशेषण प्रयोगों में लाक्षणिक प्रयोग होने से लक्षणा वृत्ति का सौन्दर्य उपस्थित हो गया है - जैसे - संसारदु:ख, विश्वैकरूप, आदि ।[455]

व्यञ्जना वृत्ति की झलक पद्मप्रभु के लिये प्रयुक्त परस्पर विरोधपूर्ण विशेषणों या नामों में घटित होती है, क्योंकि इसमें शब्दार्थ की प्रधानता न होकर, प्रतीयमान अर्थ की मुख्यता का आभास हुआ है । विनाथ, पृथ्वीपति, आत्मज्ञ, सर्वज्ञ, अनेक एक इत्यादि।[456] जिनोपदेश में लक्षणा, व्यञ्जना वृत्तियों की उपस्थिति नगण्य ही हैं ।

इस प्रकार पण्डित जवाहरलाल शास्त्री का साहित्य समस्त साहित्यिक एवं शैलीगत तत्त्वों से मण्डित है ।

पं. गोविन्द राय शास्त्री की रचना का साहित्यिक अध्ययन

रसाभिव्यक्ति

''बुन्देलखण्डं सद्गुरु: श्रीवर्णी च'' - रचना में बुन्देलखण्ड के गौरवपूर्ण ऐतिहासिक महत्त्व की प्रशस्ति वीररस में निबद्ध है । यह वीर रस प्रधान कृति है -

यस्य प्रताप तपनात् किल शत्रुवर्गो,
धू कोपमः समभवद्, गिरिगहरस्थः ।
वीराग्रणीः सुभट संस्तुत् युद्धकारी,
यत्राभवज्जिनमतो नृपतुङ्गधुङ्ग ।।[457]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उक्त रचना बुन्देलखण्ड एवं श्रीवर्णी की गौरवशाली प्रशस्ति के रूप में होने के कारण वीररस प्रधान कृति है।

छन्द विधान

प्रस्तुत रचना का प्रथम एवं अन्तिम पद्य अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है। इस कृति के शेष सभी पद्य उपजाति छन्द में लिखे गये हैं । अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध प्रथम पद्य द्रष्टव्य है -

यस्यारण्येषु शार्दूला, नरसिंहाः पुरेषु च ।
वसन्ति तत्प्रियं भाति, विन्ध्येला मण्डलं भुविः ।।[458]

उपजाति छन्द में निबद्ध पद्य भी उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

तुलसी–बिहारी–रइधू कवीशाः, श्री मैथिली केशवदास तुल्याः ।
अङ्के हि यस्या नितरां विभान्ति, सरस्वती सा सफलैव यत्र ।।[459]

अलङ्कार

''बुन्देलखण्ड सद्गुरु श्री वर्णी च'' रचना में आद्योपान्त उपमा अलङ्कार विद्यमान है । इस अलङ्कार की उपस्थिति से रचना आकर्षक बन पड़ी है - महाराज छत्रसाल बुन्देलभूमि के मस्तकस्थ तिलक तुल्य है -

सः वीरवर्यो नृपवीर सिंहो, विन्ध्येल भालो तिलकेन तुल्यः ।[460]

अन्यत्र - एक पद्य में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को शक्ति की प्रतीक भवानी जैसे पराक्रमी बताया है ।

''लक्ष्मी भवानीव विचित्रवीर्या ।''[461]

इस प्रकार उक्त रचना में उपमा अलङ्कार सर्वत्र विद्यमान है ।

''पं. जुगलकिशोर मुख्तार'' की रचना का साहित्यिक शैलीगत विवेचन

जैनादर्श

''जैनादर्श'' शीर्ष रचना शान्त रस प्रधान है । इसके सभी दस पद्य अनुष्टुप् छन्द में आबद्ध है । इसमें जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या प्रस्तुत है - सरस, सरल, बोधगम्य संस्कृत शब्दावली में रचनाकार ने गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति कुशलता के साथ की है। आलंकारिक सौन्दर्य उपस्थित है । शब्दालङ्कार उपलब्ध है ।

प्रसादगुण पूर्ण वैदर्भी रीति का रचना में प्रभाव विद्यमान हैं ।

दया–दानपरो जैनो जैनः सत्यपरायणः,
सुशीलोऽवञ्चको जैनः शान्तिसन्तोषधारकः ॥[462]

ध्यातव्य

इस अध्याय में बीसवीं शताब्दी में रचित ''संस्कृत जैन काव्यों'' में से प्रतिनिधि रचनाओं को ही साहित्यिक तथा शैलीगत अध्ययन के लिये आधार बनाया गया है । उन्हीं को लक्ष्य में रखकर उन्हें काव्यशास्त्र के निकष पर मैंने सुपरीक्षित किया है और उसकी निष्पत्तियाँ विस्तारपूर्वक यथास्थान उल्लिखित हैं ।

ऐसा करते समय यह तथ्य सदैव ध्यान में रहा है कि - उपरि विवेचित रचनाओं के अतिरिक्त सामान्य रचनाओं में भी यही साहित्यिक अलङ्करण की पद्धति भूयो - भूयः निदर्शनीय है । शैलीगत अध्ययन करते समय भी उपर्युक्त मान्याताओं को प्राथमिकता के आधार पर चरण किया गया है । यदि इस शताब्दी के समस्त संस्कृत जैन काव्यों का साहित्यिक और शैलीगत अध्ययन का विचार बनाता भी तो शोधप्रबन्ध के सीमित विचार पृष्ठों में कदाचित् वह अनुपयुक्त ही होता । इसीलिए मैंने प्रतिनिधि काव्य रचनाओं को ही बीसवीं शताब्दी का प्रतिबिम्ब मानकर इस शताब्दी के प्रतिनिधि प्रमुख जैन संस्कृत काव्यों को ही लक्ष्य में रखकर साहित्यिक तथा शैलीगत अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

उपसंहार

उपर्युक्त विश्लेषण में संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं-शताब्दी के जैन मनीषियों की रचनाओं का साहित्यिक और शैलीगत अनुशीलन करते हुए कलापक्ष को उद्घाटित किया है। कलापक्ष के विविध उपादानों - रस, छन्द, अलङ्कार, गुण, ध्वनि और रीतियों का प्रसङ्गानुकूल प्रयोग हुआ है। इन उपादानों के निकष पर परीक्षण करने से स्पष्ट होता है कि ये सभी रचनाकार काव्यशास्त्र के प्रयोगधर्मा, मर्मज्ञ उत्कृष्ट मनीषी हैं । आचार्य ज्ञानसागर जी जैसे- निःस्पृह जैन आचार्य की रचनाओं को पूर्ववर्ती किसी भी सर्वश्रेष्ठ कृतिकार के समकक्ष, प्रत्युत कतिपय क्षेत्रों में उनसे भी आगे प्रतिष्ठित किया जा सकता है । आचार्य विद्यासागरजी, आचार्य कुन्थुसागर जी, आर्यिका सुपार्श्वमती, साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जी प्रभृति मनीषियों का भाव गाम्भीर्य, काव्यशास्त्रान्विति और तदनुरूप प्रस्तुतिकारण सर्वतोभावेन प्रशस्य हैं । इन सभी रचनाकारों ने अपने भाव प्रसूनों और रचना कौशल से वाग्देवी के भव्यप्रासाद का अभिराम अलङ्करण किया है ।

फुट नोट

1. नाट्य शास्त्र-भरतमुनि अध्याय 6 कारिका 16 (काव्यप्रकाश उल्लास 4 कारिका 44.
2. काव्य प्रकाश उल्लास 4 कारिका 47
3. काव्य प्रकाश, चतुर्थ उल्लास, कारिका 43 पृष्ठ 65
4. काव्य प्रकाश कारिका 4. 47
5. वीरोदय 9/3-4
6. जयोदय - 28/5-6 एवं 10
7. सुदर्शनोदय 4/11/66
8. श्री समुद्रदत्त चरित्र 7/1-3
9. दयोदय 2/8-10
10. दयोदय, 7/28-38
11. वीरोदय, 6/20
12. जयोदय, 6/120-126 एवं सम्पूर्ण सर्ग 17
13. सुदर्शनोदय, 3/34-37
14. दयोदय चम्पू 4/14-25
15. जयोदय 6/125-126
16. वीरोदय 13/25-30
17. सुदर्शनोदय 8/5-6
18. सुदर्शनोदय, 8/5-6
19. जयोदय, 12/119
20. वीरोदय, 7/10
21. वीरोदय, 1/37
22. श्री समुद्रदत्त चरित्र, 3/35-38
23. दयोदय चम्पू, षष्ठलम्ब पद्य 6 के पहले के गद्यभाग से पद्य 9 के वाद के गद्य भाग तक ।
24. श्री समुद्रदत्त चरित्र सर्ग 4 पद्य 11 एवं 15
25. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र, 3/19/29
26. सुदर्शनोदय 8/7
27. जयोदय, सम्पूर्ण अष्टमसर्ग
28. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र 2/24-25
29. जयोदय, 8/1
30. वही, 8/1
31. वीरोदय, 8/8-9
32. जयोदय, 13/9-10
33. सुदर्शनोदय, 3/26-27
34. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र 3/6-10-15 एवं 6/15-17
35. लक्षणद्रष्टव्य - छन्दोमञ्जरी 2/3/34
36. वीरोदय 2/35

37. सुदर्शनोदय 2/12/
38. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र - 6/17/18
39. जयोदय का अष्टम एवं सुदर्शनोदय का प्रथम सर्ग द्रष्टव्य है ।
40. वीरोदय 2/36
41. छन्दोमञ्जरी 2/21-25
42. सम्यक्त्वसार शतकम् 94 पद्य
43. (अ) वीरोदय 8/5
    (ब) जयोदय, 3/57
    (स) सुदर्शनोदय 4/37
    (द) दयोदयचम्पू 1/18
44. छन्दोमञ्जरी 3/6/142
45. जयोदय 10/9
46. श्री समुद्रदत्त चरित्र 6/26
47. वृत्तरत्नाकर 3/38, केदार भट्ट, प्रकाशन - मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, सन् 1966 ।
48. जयोदय 2/1 से 100 तथा 113, 119, 120, 122, 124, 126 तथा 129
49. वही 7/55 से 104 तक
50. वही 21/1 से 66 तक
51. वही 2/23/70
52. वृत्तरत्नाकार 2/32
53. वीरोदय 14/1 से 82 तक
54. जयोदय 22/1 से 82, 88, 81
55. वीरोदय 1/39
56. जयोदय 22/25
57. छन्दोमञ्जरी 2/10/53
58. जयोदय 25/1 से 86
59. जयोदय 9/1 से 86 तक
60. समुद्रदत्त चरित्र 7/1 से 30 तक
61. श्री समुद्रदत्त चरित्र 7/11/79
62. (अ) श्रुतबोध 4 (ब) छन्दो मंजरी 5/1-2/151-152
63. जयोदय 6/1, 3 से 131 तक
64. वीरोदय 4/34-36, 38-56
65. वीरोदय 4/44/72
66. छन्दोमञ्जरी 2/2/48
67. श्री समुद्रदत्तचरित्र 8/1/66
68. छन्दोमञ्जरी 2/2/72
69. जयोदय, 18/1-86
70. वीरोदय 21/1-27
71. छन्दोमञ्जरी 3/12/145 से 118

72. जयोदय 12/1-139
73. जयोदय 12/61/503
74. छन्दोमञ्जरी 2/2/34
75. छन्दोमञ्जरी 2/1/33
76. छन्दोमञ्जरी 2/3/111 पृष्ठ
77. जयोदय 1/113
78. दयोदय 1/27/15
79. सुदर्शनोदय 5/पृष्ठ 80
80. सुदर्शनोदय 5/पृष्ठ 100
81. वही, 5/88
82. 6/115 पृष्ठ .....
83. प्रत्येक गीत के स्वर, लय, ताल, वादी, संवादी, गायनसमय आदि सूक्ष्म परिचय के लिए ये, ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं -
(अ) रागविज्ञान, विनायक राव पट वर्धनकृत, प्रकाशक - सङ्गीत गौरव ग्रन्थमाला पुणे-2 (महाराष्ट्र) सप्तम संस्करण, 1967 (ब) सङ्गीत प्रवीण दर्शिका, पं. नारायण लक्ष्मण गुणे, पुरा, ढाकू, कीटगञ्ज, इलाहाबाद 3. द्वितीय सं. 1972 (स) सङ्गीत विशारद, बसन्त, प्रकाशक - सङ्गीत कार्यालय, हाथरस, सन् 1968. (द) सङ्गीत कौमुदी, क्रमादित्य सिंह निगम, हरिनगर (लखनऊ) चतुर्थ संस्करण 1967 (इ) सङ्गीत शास्त्र दर्पण, शान्तिगोवर्धन पाठक पब्लिकेशन 27 महाजनी टोला इलाहाबाद 3 द्वितीय संस्करण सन् 1973 ई.
84. साहित्य दर्पण 10/3 विश्वनाथ चौलम्बा विद्याभवन, वाराणसी सन् 1969
85. जयोदय 5/33/23
86. वीरोदय 9/17/141
87. सुदर्शनोदय 1/15/6
88. श्री समुद्रदत्त चरित्र 2/20/19
89. दयोदय चम्पू 2/9/24
90. सम्यक्त्वसार शतक - पद्य सं. 48 पृष्ठ 93
91. वीरोदय 1/12/5
92. सुदर्शनोदय 6/21
93. काव्यप्रकाश वनम उल्लास का 83
94. (अ) ''पाद द्विधा, वा त्रिधा विभज्य तत्रैकदेशजं कुर्यात
आवर्तयेत्तमशं तत्रान्यत्राति वा भूयः - रुद्रट काव्यालङ्कारः, प्रकाशक वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण सन् 1965-3/20
95. पर्यायेणान्येषामावृत्तानां सहादिपादेन
मुखसंदंशावृत्तयः क्रमेश यमका निजयते
रुद्रट काव्यालंकार 3/3
96. ''पिरिवृत्तिर्नाम भवेद्यमकं गर्भावृत्ति प्रयोगेण ।
मुख पुच्चयौश्च योगाद् युग्मरूमिति पादर्ज नवमम् ॥''
रुदट काव्यालंकार, 3/13

97. अन्योन्यं पश्चिमयोरावृत्या पादगौर्भवेत्पुच्छः ।
रुद्ट काव्यालंकार 3/10 का पूर्वार्ध ।
98. पादं द्विधा व त्रिधा विभज्य तत्रैकदेशज कुर्यात् ।
रुद्रटकृत काव्यालङ्कार 3/20
99. साहित्य दर्पण 10/12
100. जयोदय 7/73/363 एवं 1/61/35
101. श्री समुद्रदत्त चरित्र 6/10/64
102. सुदर्शनोदय 4/4/63
103. दयोदय 1/11/5
104. जयोदय, 6/26/281
105. वीरोदय 10/2/153
106. सुदर्शनोदय, 2/9/27
107. दयोदय, 7/19/139
108. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र 6/20/68
109. सम्यक्त्वसार शतकम् पद्य 7/18 पृष्ठ
110. जयोदय 24/60/280
111. सुदर्शनोदय 2/5-6/25-26
112. जयोदय 24/60/280
113. वीरोदय 4/5 एवं 6/13
114. सुदर्शनोदय, 1/9/4
115. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र 7/2/76
116. दयोदय चम्पू 7/29-30/145
117. सम्यक्त्वसारशतकम् पद्य 1/1
118. जयोदय, 4/19/198
119. कुवलयानन्द 32 अप्पयदीक्षित चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1963
120. जयोदय 14/10/711
121. वीरोदय, 3/11
122. सुदर्शनोदय 3/31/54
123. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र, 9/16/114
124. दयोदय चम्पू, 7/34/146
125. जयोदय, 5/80/254
126. काव्यप्रकाश 10/196/364
127. जयोदय, 3/47/156
128. वीरोदय, 21/10/328
129. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र, 6/32/71
130. काव्य प्रकाश, 10/166/395
131. जयोदय, 1/41/25
132. सुदर्शनोदय 1/23/10
133. दयोदय चम्पू 4/14/81

134. सम्यक्त्वसार शतकम्, 14 पद्य, पृष्ठ 29
135. काव्यप्रकाश 10/155/378
136. जयोदय, 3/57/161
137. वीरोदय 1/18/8
138. सुदर्शनोदय 6/1/112
139. दयोदय 6/7/116
140. सम्यक्त्वसारशतकम् पद्य 35 पृष्ठ 76
141. श्री समुद्रदत्त चरित्र 3/3-5/24-25
142. जयोदय 7/36/347
143. काव्यप्रकाश 10/109
144. जयोदय 28/83/284
145. वीरोदय, 5/22
146. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र 3/44/37
147. वीरोदय 5/34/89
148. काव्यप्रकाश 10/119 (अ) सुदर्शनोदय 1/33/16 (ब) वीरोदय 2/39-48 एवं 49 (स) श्री समुद्रदत्त चरित्र 6/3/61
149. काव्यप्रकाश 10/153/375 (अ) वीरोदय 3/12/43 (ब) जयोदय 10/46/478
150. काव्यप्रकाश 10/200/435 (अ) जयोदय, 8/8/285 (ब) वीरोदय 2/30/28
151. काव्यप्रकाश 10/148/367 (अ) वीरोदय 4/23/65 (ब) जयोदय 8/65/409
152. काव्यप्रकाश 10/149/368 (अ) सुदर्शनोदय 9/52/181
153. काव्यप्रकाश 10/168/398 (अ) सुदर्शनोदय 3/26/52 (ब) जयोदय 13/72/648
154. काव्यप्रकाश 9/103/307 (अ) जयोदय 5/18/226 (ब) वीरोदय 10/12/56
155. काव्यप्रकाश 9/85
156. जयोदय 1/113
157. वही, 2/160
158. वही, 3/116
159. वही, 4/68
160. वही, 5/106
161. वही, 6/134
162. वही, 7/115
163. वही, 8/95
164. वही 9/95
165. वही 10/121
166. वही 11/115
167. वही 12/157
168. वही 13/116
169. वही 14/99
170. वही 15/108
171. वही 16/84

172. वही 17/142
173. वही 18/100
174. वही 19/120
175. वही 20/19
176. वही 21/97
177. वही 22/91
178. वही 23/97
179. वही 24/148
180. वही 25/80
181. वही 26/107
182. वही 27/66
183. वही 28/71
184. वही 14/99
185. जयोदय, 2/70/9-
186. दयोदय, 3/4/57
187. दयोदय, 4/27/84
188. सुदर्शनोदय 7/5/124
189. साहित्य दर्पण - 9/2 का उत्तरार्द्ध एवं 3 का पूर्वार्ध ।
190. साहित्य दर्पण, 9/3 का उत्तरार्द्ध 4 के पूर्वार्ध का अर्द्धभाग ।
191. साहित्य दर्पण, 9/4
192. जयोदय 6/103-104/316-317
193. सुदर्शनोदय, 3/41/58
194. जयोदय 3/23-92
195. सुदर्शनोदय 6/3-14
196. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र 3/2-14
197. दयोदय 2/पद्य 13 के पूर्व के गद्यभाग से 22 पद्य के बाद के गद्य भाग तक
198. दयोदय, 7/1 पद्य के बाद से 124 पृष्ठ पर
199. वीरोदय 7/10-11
200. जयोदय 11/1-36
201. वीरोदय, 6/29 एवं 4/10
202. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र 6/3-4/61-62
203. सुदर्शनोदय, 2/5-6 तथा 2/43
204. दयोदय चम्पू 7/23
205. सम्यक्त्वसार शतकम् पद्य 28.
206. जयोदय 24/51-52 पद्य ।
207. (अ) जयोदय 8/5 से 15 (ब) वीरोदय 2/46 तथा 7/31 (स) श्रीसमुद्रदत्त चरित्र 2/2/13 (द) सुदर्शनोदय 7/31 (स) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र 2/2/13 (द) सुदर्शनोदय 7/31 पद्य
208. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र 3/33/34

209. (अ) जयोदय, 3/54-57 (ब) वीरोदय 8/37 तता 89 पद्य (स) सुदर्शनोदय 4/15-16 पद्य एवं छठवाँ पद्य (द) श्री समुद्रदत्त चरित्र 3/29/32 (इ) दयोदय 1/12-14 तथा 1/4 (फ) सम्यक्त्वसार शतकम् पद्य 96
210. सुदर्शनोदय 8/10/147
211. जयोदय 3/38 एवं 92 तथा 6/36 एवं 118 तथा 7/35 से 43 और 9/11 से 49 पद्य
212. सुदर्शनोदय 3/37
213. श्रीसमुद्रदत्त चरित्र 3/3-14 पद्य
214. दयोदय चम्पू, 7/2 पद्य से 9 तक
215. जयोदय 3/51. .....
216, निरञ्जन शतकम् पद्य 9
217. निरञ्जन शतकम्, पद्य 19
218. निरञ्जन शतकम्, पद्य 90
219. भावना शतकम् पद्य 30
220. श्रमण शतकम् पद्य 36
221. सुनीतिशतकम् पद्य 20
222. ज्ञानोदय (परीषह जय शतकम्) पद्य 10
223. ज्ञानोदय पद्य 18
224. ज्ञानोदय पद्य 33
225. ज्ञानोदय पद्य 36
226. ज्ञानोदय पद्य 38
227. ज्ञानोदय पद्य 39
228. ज्ञानोदय पद्य 71
229. ज्ञानोदय पद्य 71
230. छन्दोमञ्जरी पृष्ठ 53-54
231. निरञ्जन शतकम् पद्य 45
232. छन्दोमञ्जरी पृष्ठ 72-73
233. निरञ्जन शतकम् पद्य 42
234. काव्यशास्त्र दीपिका, सम्पादक डॉ. विश्वनाथ भट्टाचार्य एवं मिश्र प्रकाशक रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद पृष्ठ 69-70
235. निरञ्जन शतकम् पद्य 100
236. काव्यशास्त्र दीपिका, सम्पादक डॉ. विश्वनाथ भट्टाचार्य एवं मिश्र, प्रकाशक रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, 1978, पृष्ठ 69-70
237. भावनाशतकम् पद्य 8
238. मुरजबन्द चित्रालङ्कार का एक भेद है । इसकी आकृति मुरज के आकार की हो जाती है, इसलिए इसका यह नाम सार्थक है ।
239. काव्यशास्त्र दीपिका पृष्ठ 62
240. भावना शतकम्, टीकाकार डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्रकाशक निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति, कलकत्ता, प्रथम संस्करण 1979 पद्य 10
241. छन्दोमञ्जरी पृष्ठ 72

242. भावनाशतकम् पद्य 3
243. श्रमणशतकम् पद्य 45
244. सुनीति शतकम् पद्य 49
245. काव्य शास्त्रदीपिका सं. विश्वनाथ भट्टाचार्य एवं मिश्र प्रकाशक रामनारायण बेनीप्रसाद माधव इलाहाबाद-2 1978 ई. पृष्ठ 62 पर से संदर्भित
246. अनुष्टुप् छन्द के सम्यक् विवेचन के लिए दृष्टम छन्दोमञ्जरी पृष्ठ 151
247. ज्ञानोदय पद्य 98
248. काव्यप्रकाश, नवम् उल्लास कारिका 104
249. निरञ्जनशतकम् पद्य 43
250. श्लेष दो प्रकार का है - शब्द श्लेष और अर्थ श्लेष, यहाँ शब्द श्लेष का विवेचन है क्योंकि यही निरंजन शतक में प्रस्तुत हुआ है ।
251. विस्तृत परिचय के लिए देखिये काव्य प्रकाश नवम उल्लास
252. निरञ्जन शतकम् पद्य 83
253. काव्यप्रकाश टीकाकार डॉ. सत्यव्रतसिंह चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी नवम उल्लास कारिका 117
254. निरञ्जन शतकम् पद्य 64
255. काव्य प्रकाश दशम उल्लास कारिका 125
256. निरञ्जन शतकम् पद्य 92
257. काव्यप्रकाश, दशम् उल्लास, कारिका 137
258. निरञ्जन शतकम् पद्य 10
259. काव्य प्रकाश दशमउल्लास कारिका 146
260. निरञ्जन शतकम् पद्य 14
261. काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, कारिका 166
262. निरञ्जन शतकम् पद्य 99
263. तच्चित्र यत्र वर्णानां खड्गाकृति हेतुता । अर्थात् चित्र वह अलङ्कार है जिसे वर्ण विन्यास में खड्गादि वस्तुओं की आकृतियों का प्रकाशन कहा करते हैं । काव्यप्रकाशन नवम उल्लास कारिका 121
264. भावना शतकम् पद्य क्रं. 10
265. यह सामान्य मुरजबन्ध का चित्र है । इसमें पूर्वार्ध के विषम संख्या के अक्षरों के उत्तरार्ध के सम संख्याक अक्षरों के क्रमशः साथ मिलाकर पढ़ने मे श्लोक बन जाता है । अनुस्वार विषम का अन्तर मान्य नहीं होगा ।
266. भावना शतकम् पद्य 8
267. भावना शतकम् पद्य 1
268. भावना शतकम् पद्य 86
269. काव्यप्रकाश दशम् उल्लास कारिका 139
270. भावना शतकम् पद्य 28
271. श्रमण शतकम् पद्य 1
272. सुनीति शतकम् पद्य 24
273. ज्ञानोदय पद्य 36

274. ज्ञानोदय पद्य 22
275. ज्ञानोदय पद्य 38
276. ज्ञानोदय पद्य 13
277. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, कार्यकारिका 138
278. ज्ञानोदय पद्य 49
279. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, कारिका 165
280. ज्ञानोदय पद्य 40
281. काव्यप्रकाश दशम उल्लास कारिका 163
282. ज्ञानोदय पद्य 53
283. काव्य प्रकाश दशम उल्लास कारिका 155
284. ज्ञानोदय पद्य 12
285. ज्ञानोदय पद्य 39
286. ज्ञानोदय पद्य 68
287. ज्ञानोदय पद्य 68
288. निरञ्जन शतकम् पद्य 34
289. निरञ्जन शतकम् पद्य 3
290. काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति 3, (1-2-3-4)
291. काव्यप्रकाश अष्टम उल्लास, कारिका 89
292. आह्लादकत्वं माधुर्यं चितस्य द्रतकारणम् काव्य प्रकाश, अष्टम उल्लास
293. निरञ्जन शतकम् पद्य 45
294. चित्तस्य विस्ताररूपदीप्तत्वजनकमौजः । काव्य प्रकाश अष्टम उल्लास
295. निरञ्जन शतकम् पद्य 87
296. शुष्केन्धनातिनवत स्वच्छ जलवस्साह सेन यः व्योप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितिः (काव्य प्रकाश अष्टम उल्लास)
297. निरञ्जन शतकम् पद्य 92
298. काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति (आचार्य वामनकृत) 1-2-6-13
299. विस्तार हेतु देखिये, काव्यप्रकाश द्वितीय उल्लास कारिका 5, 9, 11, 12
300. व्यञ्जना का स्वरूप देखिये काव्यप्रकाश द्वितीय उल्लास कारिका 32
301. भावना शतकम् पद्य 47
302. भावना शतकम् पद्य 32
303. श्रमण शतकम् पद्य 17
304. श्रमण शतकम् पद्य 83
305. श्रमण शतकम् पद्य 52
306. सुनीति शतकम् पद्य 60
307. सुनीति शतकम् पद्य 71
308. सुनीति शतकम् पद्य 67
309. ज्ञानोदय पद्य संख्या 9 पृष्ठ
310. ज्ञानोदय पद्य 21
311. ज्ञानोदय पद्य 12
312. ज्ञानोदय पद्य 34

313. ज्ञानोदय पद्य 40
314. ज्ञानोदय पद्य 11
315. ज्ञानोदय पद्य 100
316. शान्तिसुधासिन्धु 3/276-277/225-226
317. शान्तिसुधा सिन्धु 1/22/15
318. शान्तिसुधा सिन्धु 1/61/51
319. छन्दों के लक्षण के लिए देखिये - छन्दोमञ्जरी (द्वितीयस्तबक)
320. शान्तिसुधा सिन्धु 4/303/248
321. शान्तिसुधा सिन्धु 2/158/123
322. शान्तिसुधा सिन्धु 3/215/272
323. काव्य प्रकाश 10/166/395
324. शान्तिसुधा सिन्धु 3/241/242/193/194
325. शान्तिसुधा सिन्धु 3/267/218
326. शान्तिसुधा सिन्धु 5/438/359
327. शान्तिसुधा सिन्धु 4/337-338/276
328. काव्य प्रकाश 10/201/436
329. शान्तिसुधा सिन्धु ३/201/436
330. काव्य प्रकाश 10/159/383
331. शान्तिसुधा सिन्धु 4/309-310/253
332. काव्य प्रकाश 10/155/378
333. शान्तिसुधा सिन्धु 3/284-285/231
334. शान्तिसुधा सिन्धु 5/471/382
335. शान्तिसुधा सिन्धु 2/181/146
336. काव्य प्रकाश 10/139/357
337. शान्तिसुधा सिन्धु 1/31/23
338. शान्तिसुधा सिन्धु 4/335/274
339. शांतिसुधा सिन्धु 1/47/39
340. शान्तिसुधा सिन्धु 1/44/36
341. शान्तिसुधा सिन्धु 3/298/243
342. शान्तिसुधा सिन्धु 4/364-365/298
343. श्रावकधर्म प्रदीप 1/9/10
344. श्रावकधर्म प्रदीप 4/155/145
345. श्रावकधर्म प्रदीप 1/3/2
346. वही, 1/10/13
347. वही, 2/59-62/64-65
348. वही, 4/133/127
349. वही, 5/180/165
350. वही 1/9/10
351. वही 4/147/138
352. श्रावक धर्म प्रदीप 1/12/18

353. वही 5/171/157
354. वही 4/158/146
355. श्रावक धर्म प्रदीप 2/68/69
356. वही 2/34/47
357. श्रावक धर्म प्रदीप 2/82-83/86
358. वही 5/164/150
359. वही, 2/86/79
360. सूवर्ण सूत्रम् 4/23
361. सूवर्णसूत्रम् 2/9
362. आचार्य शिवसागर स्तुतिः पद्य 10
363. आचार्य अजितसागर पद्य 1
364. आचार्य धर्मसागर स्तुतिः पद्य 5
365. श्री महावीर कीर्त्याचार्य स्तुतिः पद्य-2
366. सम्यक्त्व चिन्तामणि, 1/22-23/5
367. सम्यक्त्व चिन्तामणि, 3/31-32/91-92.
368. सम्यक्त्व चिन्तामणि, 4/78-79/138
369. सम्यक्त्व चिन्तामणि 5/30-31/173.
370. सम्यक्त्व चिन्तामणि 1/1.
371. सम्यक्त्व चिंतामणि 1/281
372. सम्यक्त्व चिंतामणि 2/1
372. (ब) सम्यक्त्व चिन्तामणि 8/88/274
372. (स) सम्यक्त्व चिन्तामणि 8/124/281
372. (द) सम्यक्त्व चिन्तामणि 5/40/175
373. सज्ज्ञान चन्द्रिका-7/1
374. सम्यक् चारित्र चिन्तामणि 11/25
375. सम्यक् चारित्र चिन्तामणि 6/84
376. सम्यक् चारित्र चिन्तामणि 1/9
377. सम्यक् चारित्र चिन्तामणि 2/27
378. सम्यक् चारित्र चिन्तामणि 1/1
379. सम्यक् चारित्र चिन्तामणि 3/14
380. सम्यक् चारित्र चिन्तामणि 3/49
381. सम्यक् चारित्र चिन्तामणि 6/50.
382. सम्यक् चारित्र चिन्तामणि 4/2
383. सम्यक् चारित्र चिन्तामणि 5/1
384. धर्मकसुमोद्यान, पद्य 38
385. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 10.
386. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 27
387. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 73.
388. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 53.
389. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 49.

390. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 58.
391. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 63.
392 धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 59.
393. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 60.
394. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 105 एवं 106
395. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 16.
396. वही पद्य 71.
397. वही पद्य 29
398. वही,पद्य 22 पृ. 8
399. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 87.
400. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 84.
401. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 48.
402. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 19.
403. धर्मकुसुमोद्यान, पद्य 86.
404. वचनदूतम् पूर्वाध पद्य 9.
405. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध, पद्य 23.
406. वचनदूतम उत्तरार्द्ध पद्य 77.
407. वचनदूतन् उत्तरार्द्ध पद्य 2.
408. वचनदूतम् पूर्वार्ध पद्य 3.
409. छन्दोमञ्जरी, पृष्ठ 96.
410. वचनदूतम् पूर्वार्ध पद्य 7.
411. छन्दोमञ्जरी, पृष्ठ 51.
412. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध, पद्य 37.
413. वचनदूतम् पूर्वार्ध पद्य 13.
414. वचनदूतम् पूर्वार्ध पद्य 26.
415. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध पद्य 47.
416. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध पद्य 14.
417. वचनदूतम् पूर्वार्ध, पद्य 28.
418. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध पद्य 79.
419. वचनदूतम् पूर्वार्ध पद्य 38.
420. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध पद्य 31.
421. काव्यप्रकाश, दशम् उल्लास कारिका-199
422. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध पद्य 39.
423. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध, पद्य 13.
424. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध पद्य 15.
425. वचनदूतम् उत्तरार्द्ध पद्य 43.
426. आचार्य ज्ञानसागर संस्तुति, पद्य 4.
427. वही पद्य 1.
428. श्री आ. ज्ञानसागर संस्तुति, पद्य 10.
429. वही पद्य 11.

430. वही, पद्य 9 पूर्वार्द्ध
431. वही, पद्य उत्तरार्द्ध
432. श्री आचार्य ज्ञानसागर संस्तुति, पद्य 5.
433. वही, पद्य 3.
434. पद्मप्रभुस्तवनम् पद्य -3, 7, 8, 16,
435. जिनोपदेश, पद्य-18.
436. पद्मप्रभुसतवनम् पद्य-1.
437. जिनोपदेश, पद्य -1.
438. पद्मप्रभुस्तवनम् पद्य -2.
439. वही, पद्य-17
440. जिनोपदेश पद्य-13,16,18,84,99,
441. पद्मप्रभुस्तवनम् पद्य-13.
442. जिनोपदेश, पद्य 4.
443. पद्मप्रभुस्तवनम् पद्य संख्या-16. पृष्ठ -11 एवं 12.
444. वही, पद्य संख्या-24 पृष्ठ 19.
445. जिनोपदेश, पद्य 13, 16, 18.
446. जिनोपदेश पद्य-39.
447. पद्मप्रभुस्तवनम् पद्य 7, 8, एवं 14.
448. जिनोपदेश, पद्य 3, 13, 16.
449. पद्मप्रभुस्तवनम् 3, 24.
450. जिनोपदेश पद्य 10.
451. जिनोपदेश पद्य 83.
452. पद्मप्रभुस्तनम् पद्य 13
453. जिनोपदेश पद्य 41. 66
454. पद्मप्रभुस्तवनम् पद्य 2.
455. पद्मप्रभुस्तवनम् पद्य 7.
456. पद्मप्रभुस्तवनम् पद्य 12.
457. वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ-सम्पादक-खुशालचन्द्र गोरावाला, प्रकाशक श्रीवर्णी हीरक जयन्ती महोत्सव समिति, सागर, (म. प्र.) आश्विन, 2476 वीर नि. संवत् के पृष्ठ 66-67 से सन्दर्भित पद्य 11.
458. ''बुन्देलखण्ड सद्गुरुः श्री वर्णी च''-पद्य 1.
459. वही-पद्य 10.
460. ''बुन्देलखण्ड सद्गुरुः श्री वर्णी च''-पद्य-14.
461. वही-पद्य 19.
462. जैनादर्श-पद्य-3

षष्ठ अध्याय

बीसवीं शताब्दी के संस्कृत जैन काव्यों का वैशिष्ठ्य प्रदेय तथा तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अनुशीलन

(अ) बीसवीं शताब्दी के संस्कृत जैन काव्यों का वैशिष्ठ्य

विवेच्य शोध विषय का समग्रतया अनुशीलन करने पर शोधकर्त्ता को बीसवीं शताब्दी में रचित जैन काव्यों में रचनातन्त्र, कथानक, नायक चयन, कवि कल्पना में अवतरित तत्त्वों, भावपक्ष कलापाक्ष आदि के आधार पर निम्नलिखित विशेषताएँ प्राप्त हुई हैं ।

(1) संस्कृत जैन काव्यों की आधारशिला द्वादशांग वाणी है । इस वाणी में आत्मविकास द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है । रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की साधना द्वारा मानव मात्र चरम सुख को प्राप्त कर सकता है । संस्कृत भाषा में रचित प्रत्येक जैन काव्य उक्त सन्देश को ही पुष्पों की सुगन्ध की भांति विकीर्ण करता है ।

(2) जैन संस्कृत काव्य स्मृति अनुमोदित वर्णाश्रम धर्म के पोषक नहीं है । इनमें जातिवाद के प्रति क्रांति निदर्शित है । इनमें आश्रम व्यवस्था भी मान्य नहीं है । समाज-श्रावक और मुनि इन दो वर्गों में विभक्त है । चतुर्विध सङ्घ-मुनि, आर्यिका श्रावक, श्राविका को ही समाज माना गया है। इस समाज का विकास श्रावक और मुनि के पारस्परिक सहयोग से होता है ।

तप, त्याग, संयम एवं अहिंसा की साधना के द्वारा मानव मात्र समान रूप से आत्मोत्थान करने का अधिकारी है । आत्मोत्थान के लिए किसी परोक्ष शक्ति की सहायता अपेक्षित नहीं है । अपने पुरुषार्थ के द्वारा कोई भी व्यक्ति अपना सर्वाङ्गीग विकास कर सकता है ।

(3) संस्कृत जैन काव्यों के नायक, देव, ऋषि, मुनि नहीं है, अपितु राजाओं के साथ सेठ, सार्थवाह, धर्मात्मा, व्यक्ति, तीर्थङ्कर शूरवीरिया सामान्य जन आदि हैं ।

नायक अपने चारित्र का विकास इन्द्रिय दमन और संयम पालन द्वारा स्वयं करता है । आरंभ से ही नायक त्यागी नहीं होता, वह अर्थ और काम दोनों पुरुषार्थों का पूर्णतया उपयोग करता हुआ किसी निमित्त विशेष को प्राप्त कर विरक्त होता है और आत्मसाधना में लग जाता है । जिन काव्यों के नायक तीर्थङ्कर या अन्य पौराणिक महापुरुष हैं उन काव्यों में तीर्थङ्कर आदि पुष्य पुरुषों की सेवा के लिए स्वर्ग से देवी-देवता आते हैं। पर वे महापुरुष भी अपने चरित्र का उत्थान स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा ही करते हैं ।

(4) जैन संस्कृत काव्यों के कथा-स्त्रोत वैदिक पुराणों या अन्य ग्रन्थों से ग्रहण नहीं किये गये हैं, प्रत्युत वे लोक प्रचलित प्राचीन कथाओं एवं जैन पपम्परा के पुराणों से संङ्गह किये गये हैं । कवियों ने कथावस्तु को जैन धर्म के अनुकूल बनाने के लिए उसे पूर्णतया जैन धर्म के सांचे में ढालने का प्रयास किया है । रामायण या महाभारत के कथांश जिन

काव्यों के आधार हैं उनमें भी उक्त कथाएँ जैन परम्परा के अनुसार अनुमोदित ही है । इनमें बुद्धि सङ्गत यथार्थवाद द्वारा विकारों का निराकरण करके मानवता की प्रतिष्ठा की गई है।

(5) संस्कृत जैन काव्यों के नायक जीवन-मूल्यों, धार्मिक निर्देशों और जीवन तत्त्वों की व्यवस्था तथा प्रसार के लिए "मीडियम" का कार्य करते हैं । वे संसार के दु:खों एवं जन्म-मरण के कष्टों से मुक्त होने के लिए रत्नत्रय का अवलम्बन ग्रहण करते हैं । संस्कृत काव्यों के "दुष्ट-निग्रह" और शिष्ट अनुग्रह" आदर्श के स्थान पर दु:ख निवृत्ति ही नायक का लक्ष्य होता है । स्वयं की दु:ख निवृत्ति के आदर्श से समाज को दु:ख निवृत्ति का सङ्केत कराया जाता है । व्यक्ति हित और समाजहित का इतना एकीकरण होता है कि वैयक्तिक जीवनमूल्य ही सामाजिक जीवन मूल्य के रूप में प्रकट होते हैं । संस्कृत जैन काव्यों के इस आन्तरिक रचना तंत्र को रत्नत्रय के त्रिपार्श्व सम त्रिभुज द्वारा प्रकट होना माना जा सकता है । इस जीवन त्रिभुज की तीनों भुजाएँ समान होती हैं और कोण भी त्याग, संयम,-एवं तप के अनुपात से निर्मित होते हैं ।

(6) जैन संस्कृत काव्यों के रचना तन्त्र में चरित्र का विकास प्राय: लम्बमान...। (वरटीकल) रूप में नहीं होता जबकि अन्य संस्कृत काव्यों में ऐसा ही होता है ।

(7) संस्कृत के जैन काव्यों में चरित्र का विकास प्राय: अनेक जन्मों के बीच में हुआ है । जैन कवियों ने एक ही व्यक्ति के चरित्र को रचना क्रम से विकसित रूप में प्रदर्शित करते हुए वर्तमान जन्म में मोक्ष (निर्वाण तक) पहुँचाया है । प्राय: प्रत्येक काव्य के आधे से अधिक सर्गों में कई जन्मों की परिस्थितियों और वातावरणों के बीच जीवन की विभिन्न घटनाएँ अङ्कित होती हैं । काव्यों के उत्तरार्द्ध में घटनाएँ इतनी जल्दी आगे बढ़ती हैं - जिससे आख्यान में क्रमश: क्षीणता आती-जाती है । पूर्वार्ध में पाठक को काव्यानन्द प्राप्त होता है जबकि उत्तरार्द्ध में आध्यात्मिकता और सदाचार ही उसे प्राप्त होते हैं । इसका कारण यह भी हो सकता है कि शान्त रस प्रधान काव्यों में निर्वेद की स्थिति का उत्तरोत्तर विकास होने से अन्तिम उपलब्धि अध्यात्म तत्त्व के रूप में ही सम्भव होती है । चूंकि संस्कृत जैन काव्यों की कथावस्तु अनेक जन्मों से सम्बन्धित होती है अत: चरित्र का विकास अनुप्रस्थ (हारी-जेन्टल) रूप में ही घटित हुआ है । जीवन के विभिन्न पक्ष, विभिन्न जन्मों की विविध घटनाओं में समाहित हैं।

(8) संस्कृत जैन काव्यों में आत्मा की अमरता और जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों की अनिवार्यता दिखलाने के लिए पूर्व जन्म के आख्यानों का संयोजन किया गया है। प्रसंगवश चार्वाक आदि नास्तिकवादों का निरसन कर इनमें आत्मा की अमरता और कर्म संस्कार की विशेषता का विवेचन किया गया है । पूर्व जन्म के सभी आख्यान नायकों के जीवन में कलात्मक शैली में गुम्फित हुए हैं । दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन से यत्र-तत्र काव्य रस में न्यूनन्ता आ गई है । पर कवियों ने आख्यानों को सरस बनाकर इस न्यूनता को संभाल भी लिया है।

(9) संस्कृत के जैन कवियों की रचनाएँ श्रमण संस्कृति के प्रमुख आदर्श-स्याद्वाद विचार समन्वय और अहिंसा के पाथेय को अपना सम्बल बनाते हैं । इन काव्यों का अंतिम लक्ष्य प्राय: मोक्ष-प्राप्ति है । इसलिए आत्मा के उत्थान और चरित्र-विकास की विभिन्न कार्य-भूमिकाएँ स्पष्ट होती हैं ।

(10) व्यक्तियों की पूर्ण-समानता का आदर्श निरूपित करने और मनुष्य-मनुष्य के बीच जातिगत भेद को दूर करने के लिए काव्य के रस-भाव मिश्रित परिप्रेक्ष्य में कर्मकाण्ड,

पुरोहितवाद एवं कर्तृत्ववाद का निरसन किया गया है । वैभव के मद में निमग्न अशान्त संसार को वास्तविक शान्ति प्राप्त करने का उपचार परिग्रह-त्याग एवं इच्छा नियन्त्रण निरूपित करके मनोहर काव्य शैली में प्रतिपादन किया है ।

(11) मानव सन्मार्ग से भटक न जाये, इसलिए मिथ्यात्व को विश्लेषण करके सदाचार परक तत्त्वों का वर्णन करना भी संस्कृत जैन कवियों का अभीष्ट है । यह सब उन्होंने काव्य की मधुर शैली में ही प्रस्तुत किया है ।

(12) जैन संस्कृत कवियों की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि वे किसी भी नगर का वर्णन करते समय उसके द्वीप, क्षेत्र एवं देश आदि का निर्देश अवश्य करेंगे।

(13) कलापक्ष और भावपक्ष में जैन काव्य और अन्य संस्कृत काव्यों के रचना तंत्र में कोई विशेष अन्तर नहीं है पर कुछ ऐसी बाते भी हैं जिनके कारण अन्तर माना जा सकता है । काव्य का लक्ष्य केवल मनोरञ्जन कराना ही नहीं है, प्रत्युत किसी आदर्श को प्राप्त कराना है । जीवन का यह आदर्श ही काव्य का अन्तिम लक्ष्य होता है । इस अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति काव्य में जिस प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होती है । यह प्रक्रिया ही काव्य की टेकनीक'' है । श्री कालिदास, भारवि, माघ आदि संस्कृत के कवियों की रचनाओं में चारों और से घटना, चरित्र और संवेदन सङ्गठित होते हैं तथा यह सङ्गठन वृत्ताकार पुष्प की तरह पूर्ण विकसित होकर प्रस्फुटित होता है और सम्प्रेषणीयता केन्द्रीयप्रभाव को विकीर्ण कर देती है । इस प्रकार अनुभूति द्वारा रस का संचार होने से काव्यानन्द प्राप्त होता है । और अंतिम साध्य रूप जीवन आदर्श तक पाठक पहुँचने का प्रयास करता है । इसलिए कालिदास आदि का रचना तन्त्र वृत्ताकार है । पर जैन संस्कृत कवियों का रचनातन्त्र हाथी दांत के नुकीले शङ्कु के समान मसृण और ठोस होता है । चरित्र, संवेदन और घटनाएँ वृत्त के रूप में संगठित होकर भी सूची रूप को धारण कर लेती है तथा रसानुभूति कराती हुई तीर की तरह पाठक को अंतिम लक्ष्य पर पहुँचा देती हैं

(14) जैन काव्यों में इन्द्रियों के विषयों की सत्ता रहने पर भी आध्यात्मिक अनुभव की संभावनाएँ अधिकाधिक रूप में वर्तमान रहती हैं । इन्द्रियों के माध्यम से सासांरिक रूपों की अभिज्ञता के साथ काव्य प्रक्रिया द्वारा मोक्ष तत्त्व की अनुभूति भी विश्लेषित की जाती है । भौतिक ऐश्वर्य, सौन्दर्य परक अभिरूचियाँ शिष्ट एवं परिष्कृत संस्कृति के विश्लेषण के साथ आत्मोत्थान की भूमिकाएँ भी वर्णित रहती है ।

(ब) बीसवीं शताब्दी के संस्कृत जैन काव्यों का प्रदेय

बीसवीं शताब्दी में संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि करने में जैन-विषयों पर प्रणीत साहित्य का भी विशिष्ट योगदान है । जैन विषयों पर संस्कृत में काव्य रचनाएँ करने वाले बीसवीं शताब्दी के रचनाकारों ने काव्य की प्राय: सभी विधाओं को अपनी लेखनी से समृद्ध बनाया है । संस्कृत जैन काव्यों के अन्तर्गत-महाकाव्य, खण्डकाव्य गीतिकाव्य, शतककाव्य, दूतकाव्य, चम्पूकाव्य, स्तोत्रकाव्य, श्रावकाचार तथा नीतिविषयक काव्य ग्रन्थों के साथ ही साथ पूजाव्रतोद्यापना काव्य और दार्शनिक काव्य रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। इन विधाओं के अतिरिक्त स्फुट रचनाओं के माध्यम से भी मनीषियों ने अपनी प्रतिभा का प्रकाशन मुक्तक शैली में किया है । इस शती के रचनाकारों की लेखनी पर बीसवीं शताब्दी की हीयमान प्रवृत्तियों का कोई भी प्रभाव परिलक्षित नहीं होता है सम-सामयिक समस्याओं के दुश्चक्र में साहित्यकार

की लेखनी नहीं उलझी है, प्रस्तुत कवियों की रचनाधर्मिता, जीवन के उच्चादर्शों और मूल्यों पर आधारित है । जैन परम्परा और जैनेतर परम्परा में जन्में रचनाकारों ने समान रूप से जैन काव्यों रचना के प्रमुख आधार द्वादशाङ्ग वाणी को आत्मसात करके संस्कृत में काव्यों प्रणयन किया है । विवेच्य शताब्दी के जैन काव्यों की रचनाधर्मिता और रचनाकारों के आश्रय -पार्थक्य को रेखांकित करते हुए विवेचन किया है । परन्तु प्रस्तुत शताब्दी में जैन साधु-साध्वियों और जैन गृहस्थ मनीषियों के साहित्य पर समान रुप से आध्यात्म, भारतीय संस्कृति, दार्शनिक चिन्तन, न्याय, सदाचार, विश्वशान्ति, नैतिकता और कैवल्य (मोक्ष) का प्रभाव अङ्कित है ।

बीसवीं शताब्दी के अग्रगण्य महात्मा आचार्य श्री ज्ञानसागर जी मुनि-महाराज के काव्यों में मानवता, वर्णव्यवस्था, स्वावलम्बन पुनर्जन्म आदि भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों का समग्रतया उद्घाटन हुआ है । सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए आत्मचिन्तन का आश्रय लेना उचित है । श्री समुद्र दत्त'' का नायक सत्यप्रियता के कारण प्रख्यात हुआ । ''दयोदय-चम्पू'' में एक हिंसक के हृदय परिवर्तन की कहानी है । ''जयोदय'' का नायक राजा होकर भी अन्त में ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता है । ''वीरोदय और ''सुदर्शनोदय'' आदि ग्रन्थ रत्नत्रय की सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करते हैं ।

आचार्य विद्यासागर महाराज का रचना संसार आध्यात्मिकता, दार्शनिक चिंतन परब्रह्म परमात्मा पर आधारित है । लाक्षणिक प्रयोगों में गूढार्थ है। जहाँ एक और साधारण मनुष्य की बुद्धि से परे ''भावना शतकम्'' ग्रन्थ को ''कोशं पश्यन् पदे-पदे'' की सहायता से ही प्रबुद्ध व्यक्ति समझ सकता है वहीं दूसरी और ''सुनीतिशतकम्'' जैसे ग्रन्थों की प्रतिपाद्य शैली सरल है । ''मुक्ति मार्ग'' की सार्थकता समझायी गई है । चित्रालङ्कारों में मुरजबंध को अपनाया है । चरित्रशुद्धि, आत्मोत्थान का सम्यक् निदर्शन पदे-पदे किया है ।

आचार्य कुन्थुसागर की रचनाओं में नैतिक उत्थान, जन जागृति और बौद्धिक विकास के साथ ही पापाचार की विकरालता से मानव मात्र को अवगत कराते हुए इससे दूर रहने का उपदेश दिया है । इनके ग्रन्थों में जीवन के आदर्श सिद्धान्तों एवं मोक्ष के रहस्य को समझाया गया है । शांति सुधा-सिन्धु, श्रावकधर्मप्रदीप, सुवर्णसूत्रम्, आदि ग्रन्थों में विश्व शांति की व्याख्या की गई है और स्पष्ट किया है कि विश्वशान्ति ही अतीत, वर्तमान एवं भविष्य विषयक सभी समस्याओं का समाधान खोजने में सक्षम है । आचार्य श्री के काव्यों में कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य, सत्सङ्गति, समाजसुधार, जैन संस्कृत और जैनधर्म का बीसवीं शताब्दी में महत्तव आदि का सम्यक् निदर्शन है ।

समस्या प्रधान विश्व संस्कृति के उत्थान में आचार्य कुन्थुसागर जी के ग्रन्थों का अध्ययन मानव मूल्यों के रक्षार्थ उपयोगी है ।

पूज्य आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी, आर्यिका ज्ञानमती माता जी, आर्यिका विशुद्धमती माता जी, आर्यिका जिनमती माता जी प्रभृति साध्वियों की रचनाओं में भी उपयोगी सिद्धान्तों की समीक्षा की गई है ।

डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य जी की रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय सम्यक् रत्नत्रय है। जैनदर्शन के आधारभूत एवं मोक्षमार्ग की प्रतिपादक इनकी रचनाएँ दार्शनिक चिन्तन की प्रतिनिधि हैं। इनमें भावपक्ष के साथ-साथ कलापक्ष की प्रधानता समान रूप से निदर्शित है । इनके

ग्रन्थों की रचना शैली जहां एक और वाल्मिकी, कालिदास, और अश्वघोष का अनुसरण करती है वहीं दूसरी और श्री हर्ष, माघ, भारवि से भी प्रभावित प्रतीत होती है । संस्कृत साहित्य की श्री वृद्धि करने के साथ ही जैन-दर्शन के प्रचार-प्रसार की दिशा में पं. जी का योगदान स्मरणीय है- धर्म-कर्म, आचार-विचार, राष्ट्रप्रेम आदि की शिक्षाओं से ओत-प्रोत पण्डित जी की रचनाएं आचार-संहिताएँ ही हैं ।

मानवीय भावों की सुकुमार अभिव्यक्ति करने के लिए विख्यात पं. मूलचन्द्र जी शास्त्री का साहित्य प्राचीन भारतीय संस्कृति की भव्यता को प्रतिबिम्बित करता है- मेघदूत की शैली पर आधारित 'वचनदूतम्' काव्य में नायिका की प्रणय-भावना एवं निराशा को आध्यात्मिकता की ज्योति किरण से आलोकित किया है । शास्त्री जी के ग्रन्थों में जीवनादर्शों की सजीव अभिव्यक्ति हुई है ।

इसी प्रकार पं. दयाचन्द्र साहित्याचार्य जी की कृतियों में आत्मोत्थान, चिन्तन त्याग, संयम आदि तत्त्वों की विशद् व्याख्या है ।

पं. जवाहर लाल शास्त्री जी ने भी जैनदर्शन के गूढ़ विषयों को जिनोपदेश, पद्मप्रभस्तवनम् आदि ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित किया है । आपकी रचनाएं ब्रह्म 'सत्यं जगन्मिथ्या' को चरितार्थ करती प्रतीत होती हैं । राग द्वेष, पाप त्याग पर बल दिया गया है ।

इसी प्रकार बीसवीं शताब्दी के अनेक रचनाकारों - जिनमें पं. गोविन्द राय शास्त्री, पं. जुगल किशोर मुख्तार, पं. बारेलाल जी राजवैद्य, प्रो. राजकुमार साहित्याचार्य, डा. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' डा. नेमिचन्द्र शास्त्री, पं. भुवनेन्द्र कुमार शास्त्री, डा. दामोदर शास्त्री प्रभृति रचनाकार प्रमुख हैं इन तथा ऐसे सभी कवियों की रचनाओं में मानवीय गुणों, आदर्शों और उदात्त जीवन मूल्यों की सफल अभिव्यंजना हुई है । इन रचनाकारों ने उत्कृष्ट जीवन दर्शन की प्रतिष्ठा के लिये सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि का पालन करने और सामाजिक बुराइयों को दूर करने के सिए सम्यक्रत्नत्रय का आश्रय लेने पर बल दिया है। इनके ग्रन्थों में मानव का एकमात्र लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति निरूपित किया गया है । स्वस्थ समाज की रचना हेतु इन्होंने क्षमा, विनयशीलता, सरलता, पवित्रता, सत्य, संयम, तप, त्याग और परोपकारिता के गुणों को प्राणिमात्र के लिए आवश्यक निरूपित किया है ।

वर्तमान समय में जब मानवता पर सङ्कट के बादल मण्डरा रहे हैं। निरन्तर आणविक अस्त्र-शस्त्रों की प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है । केवल भारत राष्ट्र ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व में परस्पर ईर्ष्या भाव एवं अविश्वास विद्यमान है और वैज्ञानिक विकास की उपलब्धियों ने मानवीय भावनाओं एवं आत्मचिंतन की प्रवृत्ति को आघात पहुंचाया है । विश्व पर्यावरण प्रदूषित हो चुका है, विश्व विनाशोन्मुख है । ऐसे वातावरण में आत्मशांति, अहिंसा, सदाचार, प्रेम, परोपकार, ममता, करूणा, दया आदि मानवीय गुणों के साथ-साथ नैतिक उत्थान की विशेष आवश्यकता है । अतः उक्त मानवीयगुणों और आदर्शों की प्राप्ति के लिए बीसवीं शताब्दी के जैन-काव्यों का अध्ययन-अनुशीलन अनिवार्य है, क्योंकि विवेच्यग्रन्थों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्', सत्यमेव जयते, अहिंसा परमो धर्मः, क्षमावीरस्य भूषणम् आदि प्राचीन सिद्धान्त पुष्पित, पल्लवित और फलीभूत भी हुए हैं । मानव मन का कालुष्य दूर करके उसे आदर्श नागरिक बनाने की अभूतपूर्व क्षमता संस्कृत जैन काव्यों में सन्निविष्ट है ।

संस्कृत जैन काव्य स्वान्तः सुखाय होकर भी लोकानुरञ्जन तथा लोकहितैषिता के उदात्त मूल्यों से सम्वेष्टित हैं । इनका प्रतिपाद्य अभिधेय नित नूतन, नव-नवोन्मेषशालिनी

कला वीथियों से नितरां भव्य और अभिराम है । ये समस्त काव्य अपने उद्देश्य की प्राप्ति में पूर्णतः सक्षम है । सदाचार-प्रवण व्यक्ति की इकाई से प्रारम्भ होकर स्वस्थ समाज की दहाई के सृजन में अपनी महनीय भूमिका का निर्वाह करना ही जैन संस्कृत काव्यों का सर्वोपरि प्रदेय है और वस्तुतः यही साहित्य की इष्टापत्ति स्वीकार की गयी है ।

(स) बीसवीं शताब्दी के संस्कृत जैन काव्यों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अनुशीलन :

बीसवीं शताब्दी में जैन और जैनेतर मनीषियों ने संस्कृत में जैन विषयों पर विपुल मात्रा में काव्य सृजन करके संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है । इन रचनाओं में कवियों की मौलिक प्रतिभा, कल्पना शक्ति, पाण्डित्य प्रदर्शन, अर्थ-गौरव, अध्यात्म, दर्शन, आत्मचिंतन आदि का समग्रतया निदर्शन हुआ है । इस शताब्दी के प्रमुख कवियों के काव्यों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अनुशीलन अग्रिम शीर्षकों में प्रस्तुत है :-

१. आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के काव्य :

जैन पुराणों और कोश ग्रन्थों के आधार पर रचित आचार्य ज्ञानसागर जी मुनि के काव्यों में कथावस्तु, प्रसङ्गानुकूल, संशोधित, परिवर्तित होकर नवीन रूप में प्रस्तुत हुई है । वीरोदय, जयोदय, सुदर्शनोदय, श्री समुद्रदत्तचरित्र, दयोदय चम्पू आदि ग्रन्थों के नामकरण कथा वस्तु के आधार पर न होकर नायकों के आधार पर किये गये हैं। आचार्य श्री का कवित्व भी कालिदास, शूद्रक, भारवि, माघ, भट्टि, श्री हर्ष आदि कवियों के समकक्ष है । उनके 'वीरोदय' काव्य में अश्वघोष की दार्शनिक शैली और कालिदास की वैदर्भी शैली प्रतिबिम्बत होती है । शिशुपाल वध के वर्षा वर्णन और वीरोदय के वर्षा वर्णन में भाव साम्य है । पुराणेतिहास, धर्म-दर्शन से समन्वित इस ग्रन्थ की संवाद योजना अप्रतिम है । ऋतु वर्णन के दृश्यों में प्राकृतिक सौन्दर्य के नयनाभिराम दृश्य प्रस्तुत हुए हैं ।

जयोदय में अङ्कित पर्वत, वन विहार, सन्ध्या, प्रभात आदि के प्रसङ्ग शिशुपाल वध के वर्णनों से मेल रखते हैं । जयोदय में अङ्कित चित्राललङ्कारों में ज्ञानसागर जी की प्रतिभा, भारवि, माघ, श्रीहर्ष की तुलना मे प्रभावशाली सिद्ध हुई है । जयकुमार के स्वयंवर दृश्य में नैषधीय चरित, स्त्रियों के दुर्गुण विवेचन में मृच्छकटिक, अनवधमती के सदुपदेश में किरातार्जुनीयम् के प्रसङ्गों की स्मृति होने लगती है । पात्रों के वाक्चातुर्य के माध्यम से कवि के असीमित शब्दभण्डार का परिचय सहज ही प्राप्त होता है ।

'सुदर्शनोदय' में शृंगार रस पर शान्तरस की विजय का विवेचन है। कपिला की कामुकता, अभयमती की चालें और देवदत्ता की कुचेष्टाएं नायक सुदर्शन की परीक्षा के केन्द्रस्थल हैं। साहित्य, संगीत, राग-रागनियों, अन्तर्द्वन्दों, विविध भावों और शैलीरूपों में आबद्ध सुदर्शनोदय जयदेव के गीतगोविन्द की पूरक रचना मालूम पड़ती है । सुदर्शन के व्यक्तित्व के माध्यम से संयम, ब्रह्मचर्य की शिक्षाओं से ओत-प्रोत इस ग्रंथ में शासक वर्ग को सोच-विचार कर निर्णय लेने की प्रेरणा दी गई है। यह ग्रन्थ वादीभसिंह सूरि की क्षत्र चूड़ामणि, श्रुतसागर सूरि के चारित्रपाहुड़ और योगीन्द्र देव के श्रावकाचार से प्रभावित प्रतीत होता है ।

श्री समुद्रदत्त चरित्र 'सत्यमेव जयते नानृतम्' - सिद्धांत पर आधारित काव्य है। इसमें पुनर्जन्म से वर्तमान जन्म का तारतम्य स्थापित करते हुए कर्मफल की सर्वोच्चता स्वीकार की गई है । यह चरित प्रधान काव्य है ।

''दयोदय चम्पू'' में एक हिंसक के हृदय परिवर्तन की कहानी को मुहावरेदार भाषा में निबद्ध किया है । इसमें अन्तर्द्वन्द्व और संवादों में सजीवता है । अहिंसा की महत्ता प्रतिपादित की है- अपने कथ्य के समर्थन में दयोदयकार ने विभिन्न शास्त्रों, पुराणों, नीतिग्रन्थों काव्यों आदि से उद्धरण देकर और अनेक उपकथाएँ जोड़कर प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति को समन्वित किया है । धीवरी-धीवर के तर्क-वितर्कों में संवाद शैली की रोचकता विद्यमान है । इस चम्पू में नल चम्पू के समान बौद्धिक विलास नहीं है।

''सम्यक्त्व सार शतकम्'' दार्शनिक विषय पर रचित काव्य ग्रन्थ है। इसमें जैन दर्शन के आधारभूत रत्नत्रय एवं चेतन-अचेतन आदि का विवेचन प्रसाद-गुण-पूर्ण वेदर्भी शैली में हुआ है ।

आचार्य श्री की अन्य रचनाओं में भी साहित्य, दर्शन, अध्यात्म आदि का सम्पुट विद्यमान है । आचार्य श्री ने अपने ग्रन्थों में अन्त्यानुप्रास प्रधान पद्य रचना का नूतन प्रयोग करके प्राचीन कवियों से अपनी भिन्नता प्रकट की है । आचार्य श्री के काव्यों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि - आपके काव्यों में जहाँ एक ओर संस्कृत साहित्य के कवियों का प्रभाव है वहीं दूसरी और आपके स्वतन्त्र चिन्तन और लेखन शैली में नवीनता है । संस्कृत काव्य की प्रायः सभी विधाओं को लेखन कला का आधार बनाकर अपनी उत्कृष्ट कृतित्व शैली का परिचय दिया है - इनकी रचनाओं का विद्वानों में समादर इस तथ्य का द्योतक है कि उनकी रचनाएँ विश्वसाहित्य की अमूल्य धरोहर हैं । इसमें आदर्श और यथार्थ का सुमधुर समन्वय है । काव्यशास्त्रीय एवं व्याकरणात्मक सभी बिन्दुओं को प्रश्रय मिला है ।

२. आचार्य विद्यासागर जी महाराज के काव्य

आचार्य विद्यासागर जी मुनि महाराज ने दार्शनिक आध्यात्मिक विषयों पर काव्य रचनाएँ की हैं । उनके काव्यों में मौलिक चिन्तन समाहित है। और भाव पक्ष के साथ ही साथ कला पक्ष भी प्रभावशाली बन पड़ा है।

आचार्य श्री ने संस्कृत काव्यों में अधिकांशतः शतक काव्यों का प्रणयन किया है- संस्कृत साहित्य में शतक साहित्य गीति काव्य के अन्तर्गत समाविष्ट है । शतक की परिधि में ही रचनाकार अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है ।

इन्होंने निरंजन शतकम्, भावनाशतकम्, श्रमणशतकम्, सुनीतिशतकम्, परीषह जय शतकम् के माध्यम से अपने कथ्य को अभिव्यंचित किया है।

जहाँ एक ओर ''निरञ्जन शतकम्'' में अतीत, अनागत और वर्तमान की निरञ्जन (विकार रहित चेतना) आत्माओं का स्तवन किया है वहीं दूसरी ओर ''भावना शतकम्'' के माध्यम से तीर्थङ्करत्व की कारणभूत षोडश भावनाओं की विशद व्याख्या प्रस्तुत की है और इन भावनाओं के सतत चिन्तन से तीर्थङ्करत्व की प्राप्ति संभव सिद्ध की है।''श्रमणशतकम्'' में श्रमणों की चर्या का काव्यात्मक शैली में निदर्शन है । श्रमणों की विशेषताओं का प्रकाशन भी किया है ।''सुनीतिशतकम्'' सुन्दर नीतियों का अनुपम संग्रह ही है । इस ग्रन्थ में उपजाति वृत्त में निबद्ध अध्यात्म और दर्शन का नीतिगत निरूपण है ।''परीषह जय शतकम्'' में दिगम्बर जैन परम्परा में मान्य मुनियों के बाईस परीषहों और उन पर विजय प्राप्त करने के उपायों का काव्यात्मक वर्णन है ।

आचार्य श्री के शतक काव्यों में शान्तरस की प्रधानता है और उपजाति, आर्या वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित वृत्तों का प्रयोग है । शब्दालङ्कारों और अर्थलङ्कारों के बहुविध प्रयोग सर्वत्र सुलभ है । प्रसाद और माधुर्य गुणों की उपस्थिति है । उक्त शतकों में यमकालङ्कार का प्राधान्य है।

शतक काव्यों का कथ्य महाकाव्य के समान कथात्मक/वर्णनात्मक नहीं होता । इसी कारण उपर्युक्त शतकों की कथावस्तु में गतिहीनता और घटनाओं का अभाव है। आचार्य श्री के शतकों का कथ्य पूर्णतः अमूर्त्त भाव ही है । निरञ्जन, भावना, सुनीति, परीषह जय- ये सभी अन्तरात्मा में अनुभूत भाव ही आपके कथाविन्यास के सूत्रधार है । अतः इनके काव्यों में नायक-नायिका की कल्पना नहीं की गई है - पुरुष और स्त्री पात्रों का सर्वथा अभाव ही है ।

आचार्य प्रवर ने जैनदर्शन और अध्यात्म से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद हिन्दी भाषा की कविता में प्रस्तुत करके उन्हें बोधगम्य बनाया है । दक्षिण भारत में जन्म और शिक्षा ग्रहण करने पर भी आचार्य श्री का राष्ट्रभारती पर असाधारण अधिकार है । इनका ''मूकमाटी'' बहुचर्चित हिन्दी महाकाव्य है ।

इस प्रकार आचार्य प्रवर विद्यासागर जी महाराज के ग्रन्थों में काव्यशास्त्र के सभी तत्त्वों का सम्यक् निदर्शन है । वे बीसवीं शताब्दी के राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त दि. जैनाचार्य है उनके ग्रन्थों में धर्म, दर्शन, नीति, अध्यात्म के तत्त्वों का सामञ्जस्य है । वे विश्व शांति के प्रतीक बन गये हैं । वर्तमान समय में उनकी कृतियाँ अज्ञानान्धकार में दबी हुई मानव जाति को ज्ञान की दीपशिखायें सिद्ध हो रही हैं । यही कारण है कि आचार्य श्री के वचनामृत से लाभान्वित होने के लिए श्रद्धालुओं के साथ-साथ विचार प्रवण प्रत्येक मानव उनके प्रवचनों को श्रवण करते हैं और आत्मोत्थान के पथ पर अग्रसर होते हैं।

३. आचार्य कुन्थुसागर के काव्य

आचार्य कुन्थुसागर जी मुनि महाराज ने शान्तिसुधा सिन्धु, श्रावक धर्म प्रदीप, सुवर्णसूत्रम् आदि ग्रन्थों में सदाचार, नीति, वैराग्य, अध्यात्म, दर्शन, मानवता, विश्वकल्याण से सम्बन्धित विषयों का विवेचन प्रस्तुत किया है। आचार्य प्रवर के काव्य-संसार पर संस्कृति साहित्य के प्राचीन कवियों का स्पष्ट प्रभाव है । इनकी कृतियाँ अनेक दार्शनिकों और मनीषियों से पूर्णतः प्रभावित हैं। आपके चिन्तन, अभिव्यक्ति और साहित्य पर समयसार, ज्ञानार्णव, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ऋग्वेद, श्रीमद्भगवत् गीता, मनुस्मृति, पञ्चतन्त्र, नीतिशतक, वैराग्यशतक, रामचरितमानस और विनयपत्रिका आदि ग्रन्थों का प्रभाव पदे-पदे परिलक्षित होता है। सांख्यदर्शन को सांसारिक दुःखों की व्याख्या में प्रतिबिम्बित किया है ।

आचार्य श्री के ग्रन्थों में विश्वबन्धुत्व, मानवता, तृष्णा त्याग आदि पर बल दिया गया है।

शान्तिसुधा सिन्धु - आचार्य श्री के लोककल्याणकारी विचारों से ओत-प्रोत रचना है । इसमें पांच अध्यायों में आत्म तत्त्व, जिनागम, रहस्य, वस्तुस्वरूप, मानवीय आदर्शों और हेयोपदेय स्वरूप और समग्र शांति की कामना की गई है । यह ग्रन्थ आचार संहिता ही है । वसुधेव कुटुम्बकम्, बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय, अहिंसा परमोधर्म, आदि सिद्धान्तों का विश्लेषण किया है।

इसमें अनुष्टुप् इन्द्रवज्रा उपजाति, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडितादि प्रसिद्ध छन्दों का प्रयोग है, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, विरोधाभासादि अर्थालङ्कार तथा अनुप्रास, श्लेष

यमकादि शब्दालङ्कारों का समन्वित प्रयोग हुआ है । भाषा सरल, सरस, प्रसादगुण पूर्ण और वैदर्भी शैली है । भावानुकूल अभिव्यञ्जना की गई है ।

''श्रावक धर्मप्रदीप'' में श्रावकों के आचार विचारों का प्रस्तुतीकरण हुआ है । श्रावकों की परिभाषा, उनके भेद, क्रियाकलाप, कर्त्तव्यादि का निरूपण है ।

यह ग्रन्थ द्वितीय विश्वयुद्ध के समय की रचना है इसमें विश्वशान्ति की कामना रचनाकार ने की है ।

दुष्टस्य रोधकरणं सुजनस्य रक्षा,
सम्पूर्ण विश्व निलये सुख शान्ति हेतोः ।[1]

कवि ने पराधीनता के कष्टों से अवगत कराया है । जिससे प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार ब्रिटिश साम्राज्य में हुए दुराचारों में पीड़ित मानवता एवं शोषण के कारण हार्दिक रूप से दु:खी था । इस ग्रन्थ पर तत्कालीन परिस्थितियों और सम-सामायिक प्रवृत्तियों की छाप अंकित है ।

प्रश्नोत्तर शैली में निबद्ध यह रचना प्रसादगुण अभिधा वृत्ति, सरल संस्कृत शब्दावली से सुसज्जित है । इसी कारण ''श्रावक धर्म प्रदीप'' जन-जन का प्रिय ग्रन्थ है ।

सुवर्ण-सूत्रम् केवल 4 पद्यों में निबद्ध विश्वधर्म के प्रचार-प्रसार हेतु रचितकाव्य है। इसमें जैनधर्म की महत्ता का विवेचन है और उपजाति छन्द में बोधगम्य सरल संस्कृत के माध्यम से भावों को प्रकट किया है ।

आचार्य श्री कुन्थुसागर जी की रचनाओं में मानव मनोविज्ञान, भारतीय संस्कृति सभ्यता, शरीर और आत्मा का समीचीन निरूपण है । अन्यसिद्धान्तों पर यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है ।

रचनाकार का सुदीर्घकालीन अनुभव ग्रन्थों में पदे-पदे समाहित है । चित्रालङ्कारों का अभाव है । सुस्पष्ट स्वतन्त्र मौलिक चिन्तन को काव्यत्त्व से सुसिज्जत करके प्रस्तुत किया गया है ।

४. बीसवीं शती के अन्य साधु–साध्वियों की रचनाएँ –

बीसवीं शताब्दी में उक्त मुनियों के अतिरिक्त संस्कृत में स्फुट रचनाएँ और स्तोत्रादि का प्रणयन आचार्य अजित सागरजी महाराज, आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी, आर्यिका ज्ञानमती माताजी, आर्यिका विशुद्धमती माताजी, आर्यिका जिनमती माता जी प्रभृति अनेक साधु-साध्वियों ने किया है । इनकी रचनाओं में आद्योपान्त शान्तरस की प्रस्तुति है । प्रसादगुण पूर्ण सरस शब्दावली में अपने हृदयस्थ भावों को साधुवृन्दों ने आचार्यों की श्रद्धांजलि रूप में प्रस्तुत किया है । इनसे संस्कृत के स्तोत्रककाव्यों और स्फुट काव्यों की परम्परा में श्रीवृद्धि हुई है और निरन्तर इस परम्परा में जैन साधु-साध्वियाँ सन्नद्ध है । उनकी वाणी से नि:सृत भगवती वाग्देवी के भव्य भंडार की महिमा का संकीर्तन हो रहा है। इन स्फुट काव्यकृतियों के मूल्याङ्कन क्रम में हम कह सकते हैं कि सृजन से संस्कृति साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। इनकी कृतियों में काव्यशास्त्र, भाषाशास्त्र के सभी तत्त्व विद्यमान है ।

५. डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य के काव्य

श्रद्धेय पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने अपने अनवरत स्वाध्याय, गम्भीर चिन्तन और उत्कृष्ट मनन के आधार पर जिनागम के प्रतिपाद्य और जैनदर्शन के आधारभूत रत्नत्रय के व्यवस्थित विवेचन हेतु संस्कृत साहित्य को तीन ग्रन्थ रत्न प्रदान करके उपकृत किया है।

(१) सम्यक्त्व चिन्तामणि

''सम्यक्त्व चिन्तामणि'' के दश मयूखों में (186 पद्य हैं) क्रमशः सम्यग्दर्शन, जीवतत्त्व, गतिमार्गणा, द्वीप समुद्र, चौदह मार्गणाएँ, अजीव तत्त्व, आस्त्रव, बन्ध संवर, निर्जरा तथा मोक्ष का विवेचन है । प्रसङ्गानुसार जीव के भेद, संसारी जीव के पञ्च परावर्तन, चौदह गुणस्थान और उसमें बन्धव्युच्छिति आदि का वर्णन है । अन्त में सिद्धों के स्वरूप का निदर्शन है। ''सम्यक्त्व चिन्तामणि'' की रचना शैली प्राचीन परम्परा के अनुरूप है। ग्रन्थ का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है जिसमें पंच बाल यति तीर्थंकरों को नमस्कारपूर्वक पूर्वाचार्य तथा स्वकीय गुरुस्मरण के साथ ग्रन्थ रचना की प्रतिज्ञा की गई है । प्रत्येक मयूख के अंत में ''इति सम्यक्त्व चिन्तामणि सम्यग्दर्शनोत्पत्ति माहात्म्य वर्णनो नाम प्रथमो मयूखः समाप्तः'' इत्यादि रूप से पुष्पिका वाक्य में उस-उस मयूख के विषय का अतिसंक्षेप एवं समारोप बताया गया है। ग्रन्थ के अन्त में शुद्धि पत्र दिया गया है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में उन्नीस प्रकार के छन्दों - जिनमें मालिनी, स्वागता, आर्या, अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, प्रमदानन, वंशस्थ, रथोद्धता, शालिनी आदि प्रमुख हैं, - का प्रयोग किया गया है । सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों पर भी रचनाकार की सूक्ष्म दृष्टि ने गहराई से विवेचना की है और चमत्कार दिखाया है । शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों का विपुल प्रयोग हुआ है । इस धर्मग्रन्थ में काव्य का आनन्द है, इस रचना का विद्वत्समाज में समादर हुआ है। जैनदर्शन में सुप्रसिद्ध तत्त्वार्थसूत्र, गोम्मटसार, पञ्चाध्यायी, आदि ग्रन्थों के विषयों को एकत्र समावेश करके पं. साहित्याचार्य जी ने ''सम्यक्त्व-चिन्तामणि का सृजन किया है। इसमें विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, संवादात्मक दृष्टान्त आदि शैली रूपों की अभिव्यञ्जना हुई है । भावानुकूल भाषा का प्रयोग है । सरल, सरस, कोमलकान्त पदावली के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति की है ।

(२) सज्ज्ञान चन्द्रिका

''सज्ज्ञान चन्द्रिका'' दश प्रकाशों के 797 पद्यों में निबद्ध दार्शनिक रचना है । इसमें सम्यक्ज्ञान की विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचना की है । रचनाकार ने प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर विषय वस्तु ग्रहण करके उसे नवीन शैली में सम्यक्ज्ञान का लक्षण, स्वरूप, पांच भेद-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान तथा ज्ञान में सहयोगी धमर्म्यध्यान एवं शुक्ल ध्यान का साङ्गोपाङ्ग विश्लेषण विविध छन्दों में निबद्ध किया है । विषय के प्रतिपादन में लेखक ने सुबोध संस्कृत भाषा के अनुरूप सहज बोधगम्य भावावली प्रस्तुत की है । इस रचना में समाहार शैली, विवेचनात्मक शैली दृष्टान्त शैली, समास शैली और प्रश्नोत्तर शैली निदर्शित है । यह रचना प्रसाद-माधुर्य गुणों से ओत-प्रोत है । इसमें वेदर्भी रीति बहुधा प्रयुक्त है । शांतरस का आद्योपान्त प्राधान्य है। कवि को अनुष्टुप छन्द अतिप्रिय है । इसके अलावा अन्य सोलह प्रकार के छन्दों का प्रयोग भी हुआ है। इस प्रकार इस रचना में पदे-पदे साहित्यिक छटा विद्यमान है, इसमें पं. साहित्याचार्य जी की प्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन हुआ है ।

(३) सम्यक्चारित्र चिन्तामणि

रत्नत्रय के तृतीय अङ्ग के रूप में रचित "सम्यक्चारित्र चिंतामणि" ग्रन्थ 13 प्रकाशों में सम्गुफित 1072 पद्यों में निबद्ध है । इसमें सकल चारित्र के विविध अङ्गों का वर्णन करते हुए अन्तिम परिच्छेद में श्रावकाचार का भी विशद् वर्णन है । ग्रन्थ का प्रारम्भ मंगलाचरण से हुआ है - इसमें जिनेन्द्रदेव को नमस्कार पूर्वक ग्रन्थारम्भ किया है । इसके पूर्व विषयानुक्रमणिका है उसके पहले ग्रन्थ में प्रयुक्त 15 प्रकार के छन्दों की सूची दी गई है। अन्त में अकारादि क्रम से पद्यों की सूची तथा शुद्धि पत्रक संलग्न है। इस प्रकार सम्यक्चारित्र के अङ्गों-उपाङ्गों पर सुविस्तृत विवेचन इस रचना में उपलब्ध है । भाषा की दृष्टि से रचना में सरलता और सुबोधता है। व्याख्यात्मक, विवेचनात्मक दृष्टि से रचना में सरलता और सुबोधता है । व्याख्यात्मक, विवेचनात्मक दृष्टान्त और संवाद शैली रूपों का निदर्शन है। प्रसाद गुण पूर्ण इस रचना में वेदर्भी रीति का सर्वत्र प्रभाव है । इसमें शान्तरस की प्रधानता है, काव्यशास्त्र और भाषाशास्त्र के सभी तत्त्वों की उपलब्धि भी होती है ।

(४) धर्मकुसुमोद्यानम्

"धर्मकुसुमोद्यानम्" के 110 पद्यों में सम्यक्त्व चिन्तामणि के संवर प्रकरण में आगत दशधर्मों का विवेचन हुआ है । श्लोकों का हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है । इसमें "गागर में सागर" सन्निविष्ट है । अध्यात्म, दर्शन, नीति, धर्म आदि की व्याख्या सरल, सरस, बोधगम्य भाषाशैली में विद्यमान है । मनुस्मृति के समान यह धर्मशास्त्र ही है, जो मानव मात्र को धार्मिक आचार-विचारों और धर्मगत रहस्यों की शिक्षा देता है । यह कृति सदाचार की सेतु और चारित्रिक उत्थान की प्रतिनिधि है । इसमें अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, रथोद्धता, आर्या, द्रुतविलम्बित प्रभृति अनेक छन्दों का समावेश हुआ है। इस रचना में माधुर्य और प्रसाद गुणों के साथ ही साथ वेदर्भी रीति का सर्वत्र प्रयोग हुआ है । भाषा बोधगम्य, प्रवाहशील एवं सरल संस्कृत है, भावों में सजीवता है । पर्वराज पर्यूषण में दशधर्मों के विवेचन हेतु इस रचना का अनेक जगह उपयोग होता है । त्याग, धर्म के वर्णन में अन्योक्तियों का समावेश है ।

(५) सामायिक पाठ

सामायिक के काल में व्यक्ति के द्वारा किये गये पाप-क्रिया-कलापों की आलोचना 'निर्जरा' का कारण होती है । इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए पं. जी ने "सामयिक पाठ" का प्रणयन किया है । इसमें आत्मन्तिन-परक, प्रेरक, सुश्राव्य 73 पद्य हैं । इनमें अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपजाति, आर्या, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित प्रभृति अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है । यह रचना भावपूर्ण, सरस एवं गेय है । इसमें सामयिक के विविध अङ्गों-प्रत्याख्यान कर्म, सामायिक कर्म, स्तुति कर्म और कायोत्सर्ग कर्म का विशद वर्णन है ।

(६) मुक्ताहार

पं. जी ने चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति परक रचना "मुक्ताहार" 24 छन्दों में आबद्ध की है । आदिनाथ एवं संभवनाथ का स्तवन वसंततिलका छन्द में किया है । अजित, अभिनन्दन, श्रेयांस, अनन्त, नेमि जिन का स्तवन उपजाति छन्द में किया है । पद्मप्रभ पार्श्वनाथ, वर्धमान जिन को इन्द्रवज्रा छन्द के माध्यम से स्मरण किया गया है । सुपार्श्वनाथ का स्तवन भुजङ्गप्रयात, सुविधि, नेमि जिन का द्रुतविलम्बित में, वासुपूज्य का मालिनी, विमलनाथ अरहनाथ का तोटक, शान्ति जिन का दोधक, कुन्थुनाथ का उपेन्द्रवज्रा, मल्लिजिन का स्वागता, मुनिसुव्रत का शालिनी

छन्द में प्रशस्त स्तवन कर "मुक्ताहार:" सोऽयं विज्ञ पुरुषाणां कण्ठे विराजताम् नित्यम्" के द्वारा भी विज्ञ पुरुषों के कण्ठ में यह मुक्ताहार मोतियों से गुम्फित हार की तरह सुशोभित हो, ऐसी मङ्गलकामना के साथ इसकी समाप्ति की है । प्रसादगुण और वैदर्भी रीति में निबद्ध यह काव्य गुच्छक प्रत्येक सुहृदय पाठक और श्रोता के चित्त को द्रवीभूत कर देता है ।

(७) वृत्तहार

"वृत्तहार" - शीर्षक रचना 32 पद्यों में निबद्ध है । ये पद्य जिन छन्दों में रचे गये हैं । उनके नाम उन्हीं पद्यों में दिये गये हैं । सभी छन्दों का नाम प्रतिपाद्य विषय से जुड़ा हुआ है - यही इस रचना का चमत्कार है । छन्दों से सम्गुफित हार गुरुणां गुरु: पंडित प्रवर गोपालदास जी बरैया को समर्पित किया गया है । तीस प्रकार के छन्दों में निबद्ध यह रचना पं. जी के छन्दशास्त्र पर उत्कृष्ट ज्ञान की निदर्शक है ।

(8) महावीर स्तोत्रम्
(9) महावीर स्तवनम्
(10) बाहुबल्यष्टकम्
(11) आ. शान्तिसागर स्तुति:
(12) आ. धर्मसागर वन्दना
(13) आ. विद्यासागराष्टकम्
(14) आ. देशभूषण वन्दना

प्रभृति स्फुट रचनाएँ पण्डित जी के अद्वितीय काव्यकौशल और प्रशस्त रचनाधर्मिता की जीवन्त प्रतीक हैं । संस्कृत भाषा में इतना अधिक मौलिक लेखन बीसवीं शताब्दी में करके पण्डित जी ने काव्य साहित्य की सभी विधाओं को अपनी लेखनी से अभिमंडित किया है । उनकी रचनाओं में अध्यात्म, दर्शन, साहित्य, काव्य, काव्यशास्त्र और छद्रोशास्त्र आदि फलीभूत हो रहे हैं ।

उनकी कृतियों में कालिदास, भारवि, माघ, जिनसेन, सोमदेवसूरी, आशाधर, श्री हर्ष का प्रभाव अङ्कित है । वे राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार है । उनके काव्यों का मूल्यांकन काव्यशास्त्र, भाषाशास्त्र के निकष पर करने से हमें ज्ञात होता है कि साहित्याचार्य जी के ग्रन्थ बीसवीं शताब्दी के वास्तविक प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं । उनके कृतित्व को अनेकश: राष्ट्रीय, एवं प्रादेशिक शासन द्वारा तो सम्मानित और पुरस्कृत तो किया ही गया है, राष्ट्र की अनेक अखिल भारतीय संस्थाओं के द्वारा भी उन्हें सम्मानित और पुरस्कृत किया है।

साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन को अन्तर राष्ट्रीय पुरस्कार अहिंसा परक साहित्य सम्वर्द्धन हेतु 1990 में अर्पित किया गया है । उनका बहु आयामी साहित्य, संस्कृति, समाज और राष्ट्र सेवा के उपलक्ष्य में उनका अखिल भारतीय अभिनन्दन 1990 में सम्पन्न हुआ और इस अवसर पर उन्हें 862 पृष्ठ का एक विशाल अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया, जिसमें उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर सांगोपांग विश्लेषण है ।

६. पं. मूलचन्द्र शास्त्री के काव्य

वचनदूतम् - पं. मूलचन्द्र जी शास्त्री के द्वारा प्रणीत "वचनदूतम्" प्रणय-भावना के उदय के अनन्तर गिरनार पर्वत पर अविचल नेमिनाथ के प्रति वाग्दत्ता राजीमती (राजुल) की मानवीय अनुभूति का काव्य है । मेघदूत के यक्ष ने जिस प्रकार मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रियतमा यक्षिणी के पास अपना सन्देश भेजा है, उसी प्रकार "वचनदूतम्" में भी राजसुता

राजीमती ने अपने वचनों द्वारा अपने प्राणनाथ नेमि को अपनी आन्तरिक वेदना सुनायी है ।

जैन साहित्य संस्कृति और कला में सुविख्यात नेमिकुमार - राजीमती के ऐतिहासिक वृत्त को शास्त्री जी ने अपनी मनोरम कल्पनाओं और सुकुमार भावों के माध्यम से इस काव्य में सुगुम्फित किया है ।

रचनाकार ने राजीमती के प्रेम का कारण पूर्वजन्म के वासना जन्य संस्कार को माना है, जो जैनदर्शन के कर्मसिद्धान्त के अनुसार सहज एवं स्वाभाविक है । कविता की प्रथम पङ्क्ति अतीव सुन्दर बन पड़ी है -

''पूर्व स्नेह स्मृति वश भव प्रेमलीनान्त रङ्गा ।[2]

विवाह की माङ्गलिक बेला पर सुकुमार नारी हृदय की निराशा का अनन्त पारावार इस काव्य में उल्लसित है -- केवल ज्ञान श्लाध्य नहीं पर राजुल का अपने भावी पति के प्रति स्वाभाविक प्रणय भाव भी कम श्लाध्य नहीं है । इस काव्य को पढ़ते-पढ़ते राजीमती की विरह-संवेदना अत्यन्त सान्द्र हो उठती है, भावुकता के तीव्र वेग में कविता निखर गई है - वचनदूतम् का अन्तस्तत्त्वभी यही है । इस रचना में राग के उदय और विराग में अवसान की कल्पना स्तुत्य है । वचनदूतम् में ललितोचित सन्निवेश रमणीय है, इसमें कोमलकान्त पदावली विद्यमान है - माधुर्य और प्रसाद गुणों का आद्योपान्त प्रभाव छाया हुआ है ।

''वामा – वामा भवति यदि सा स्वामिनोपेक्षिता स्यात् ।''[3]

इसी क्रम में निदर्शनीय है -

''नारी प्रेयो विरह–विधुरा दुःख भागेव बुद्धा ।''[4]

इस प्रकार कवि ने सुन्दर कल्पनाओं की उड़ाने भरी हैं । वचनदूतम् में अनुप्रास, श्लेष, उपमा, रूपक, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, सन्देह आदि अलङ्कारों का बाहुल्य है । मन्दाक्रान्ता, वसंततिलका, उपजाति आदि वृत्तों में निबद्ध यह रचना एक ''विरह गीत'' ही है । पद्यों में गेयता सङ्गीतात्मक पदे-पदे निदर्शित है । इस ग्रन्थ में शृङ्गार के वियोग-पक्ष का उद्घाटन है । ग्रन्थ का पर्यवसान शान्तरस में होता है जब नायक का अनुकरण करते हुए नायिका भी साधना पथ ग्रहण कर लेती है ।

वर्धमान चम्पू

''वर्धमान चम्पू'' शास्त्री जी की प्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन है । इसमें चौबीसवें जैन तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामी के पाँचों कल्याणकों का आठ स्तवकों में वर्णन है । इस चम्पू में उनके जन्म, शैशव, गृहत्याग, ज्ञान प्राप्ति, उपदेशों आदि का सम्यक् निरूपण है। कैवल्य-प्राप्ति का महत्व भी प्रतिपादित है । इस ग्रन्थ में पं. मूलचन्द्र शास्त्री ने अपना सम्पूर्ण जीवन परिचय, पारिवारिक, सामाजिक जीवन की झांकी प्रस्तुत की है। यह रचना प्रसादगुण एवं वैदर्भी रीति प्रधान, सरल, बोधगम्य संस्कृत भाषा में निबद्ध है । इसमें अङ्गी रस के रूप में शान्तरस की प्रतिष्ठा की गई है । इसमें भारत के प्रसिद्ध नगरों-वैशाली, हस्तिनापुर आदि की भौगोलिक स्थिति का आकलन भी हुआ है ।

लोकाशाह महाकाव्य

''लोकाशाह महाकाव्य'' शास्त्री जी के मौलिक सृजन की आधारभूत रचना है। अपनी भावपूर्ण कल्पनाओं को इस महाकाव्य के चौदह सर्गों में साकार किया है । प्रसादमाधुर्यं

गुणों से ओत-प्रोत, विभिन्न शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों से मण्डित यह ग्रन्थ अनेक छन्दों में निबद्ध है । इसके अतिरिक्त प्राञ्जल और प्रौढ़ संस्कृत में रचित -

अभिनव स्तोत्रम्,

गणेश स्तुतिः,

आचार्य ज्ञानसागर संस्तुतिः,

आचार्य शिवसागर स्तुतिः

प्रभृति अनेक स्तोत्रों एवं स्फुट रचनाओं के माध्यम से संस्कृत साहित्य के भव्य भंडार को समग्रतया पूर्णता प्रदान की है ।

''सोऽयं दरबारीलाल इह भोः स्थेयाच्चिरं भूतले'' -

प्रस्तुत रचना के माध्यम से न्यायाचार्य डॉ. दरबारी लालजी कोठिया का अभिनन्दन किया है ।

उपर्युक्त रचनाओं में काव्य सौन्दर्य की मनोहर झांकी पदे-पदे चित्ताकर्षक है । भाषा प्रवाहशील सरस, बौधगम्य है । कोमलकान्त पदावली में भावों की अभिव्यंजना की है - शब्द चयन करने में शास्त्रीजी पारङ्गत हैं । उपर्युक्त स्तोत्रों में ''गागर में सागर'' उक्ति सार्थक हुई है । कवि-हृदय से उद्भूत श्रद्धाभाव स्तोत्रों में शब्दायमान हो उठा है । शास्त्री जी की रचनाओं में वैदर्भी रीति का प्राधान्य है ।

इस प्रकार शास्त्री जी की काव्य साधना उत्कृष्ट और सुदीर्घ है ।

७. डॉ. (पं.) दयाचन्द्र साहित्याचार्य के काव्य

सागर के श्री गणेश जैन संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. (पं.) दयाचन्द्र साहित्याचार्य ने संस्कृत-भाषा में निबद्ध अनेक स्फुट रचनाओं का प्रणयन करके संस्कृत साहित्य जगत् को समृद्धि प्रदान की है ।

सरस्वती वन्दनाष्टकम्

''सरस्वती वन्दनाष्टकम्'' सरस संस्कृत के आठ पद्यों में रचित रचना है । इसमें वाग्देवी की गुणस्मरणपूर्वक वन्दना की है ।

दीपावली वर्णनम्

''दीपावली वर्णनम् शीर्षक रचना में दीपावली पर्व का यमकालङ्कारमय चित्रण है ।

रक्षाबन्धन पर्व

रक्षाबन्धन पर्व पर रचित यह एक पद्यीय रचना शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध की है -1

''नक्तन्दिनं दहति चित्तमिदं जनानाम्''

प्रस्तुत पंक्ति का प्रयोग समस्यापूर्ति के रूप में संस्कृत पद्यों में सरल, सरस भाषा और वैदर्भी प्रधान शैली में किया है ।

''विपत्तिरेवऽभ्युदयस्य मूलम्''

प्रस्तुत पंक्ति का प्रयोग समस्या पूर्ति के रूप में संस्कृत पद्यों में सरल, सरस, भाषा और वैदर्भी प्रधान शैली में किया है ।

''भाऽतुलाभारतस्य''

प्रस्तुत पंक्ति भी समस्या पूर्ति के रूप में सरल, संस्कृत श्लोकों में प्रयुक्त की है ।

''वर्णी गणेशी जयताज्जगत्याम्''

उक्त शीर्षक रचनाँ में सन्त गणेशप्रसाद वर्णी के बहुमुखी लोकत्तर व्यक्तित्व और कृतित्व का सङ्कीर्तन भावपूर्ण सरस, रोचक शैली में किया गया है।

संस्कृत गद्य लेखन में भी आप निष्णात हैं । उपर्युक्त सभी रचनाएँ शांतरस प्रधान हैं । इनमें प्रसादगुण और वैदर्भी रीति का आद्योपान्त प्रभाव अङ्कित है । उक्त रचनाओं की भाषा सरल, बोधगम्य, परिष्कृत संस्कृत है । रचनाकार के चिन्तन, अनुभूति, एवं दृष्टिकोण की विवेचना उक्त रचनाओं में पदे-पदे अभिव्यंजित है । पं. जी अपने गुरुवरों से पूर्णतः प्रभावित हुए हैं ।

वास्तव में डॉ. (पं.) दयाचन्द्र जी साहित्यचार्य बीसवीं शताब्दी के मूर्धन्य साहित्यकार हैं । भाव और भाषा में समन्वय उनके काव्य कौशल का परिचायक है आपने संस्कृत के प्रसिद्ध छंदो का प्रयोग किया है ।

८. पं. जवाहर लाल ''सिद्धान्तशास्त्री'' के काव्य :

जिनोपदेश

''जिनोपदेश'' की विषयवस्तु डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य कृत ''सम्यकत्व चिन्तामणि की विषयवस्तु से पूर्णतः मिलती है । सम्यक्त्व चिन्तामणि विशाल ग्रन्थ है, जिसमें जैनदर्शन के प्रत्येक सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की गई है । किन्तु इसमें सिद्धान्तों का संक्षिप्त प्रतिपादन हुआ है । सम्यक्त्व चिन्तामणि में छन्दोवैविध्य एवं अलंकारों का बाहुल्य है। किन्तु प्रस्तुत रचना में आद्योपान्त अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है उपमा, अनुप्रासादि प्रमुख अलङ्कार निदर्शित हैं । इस प्रकार शतक काव्य होने के कारण विषय वस्तु का संक्षिप्त विवेचन हुआ है, प्रत्येक सिद्धांत की परिभाषा, भेद, स्वरूप आदि का विवेचन है । किन्तु प्राचीन ग्रन्थों सर्वार्थसिद्धि आदि पर ही बीसवीं शती के जैनदर्शन के परिपूर्ण ग्रन्थ प्रभावित (आश्रित) हैं । इसके साथ ही जिनोपदेश की विषयसामग्री का साम्य आचार्य ज्ञानसागर कृत ''सम्यक्त्वसार शतकम् से भी है । परन्तु भावपक्ष में साम्यता होते हुए भी कलापक्ष में भिन्नता है।''सम्यक्त्व चिन्तामणि'' की वैदर्भी प्रधान शैली जिनोपदेश में भी प्रतिबिम्बित है यही शैली ''सम्यक्त्वसार शतकम् में विद्यामान है । इस प्रकार भाव, भाषा, शैली की दृष्टि से जिनोपदेश अन्य जैनदर्शन, सिद्धान्तों के विशेषज्ञों की कृतियों से प्रभावित है ।

''पद्मप्रभस्तवनम्''

''पद्मप्रभस्तवनम्'' स्तोत्र काव्य भी बीसवीं शती के अन्य जैन कवियों कृत स्तोत्र काव्यों से समानता रखता है-पं. भुवनेन्द्र कुमार जैन कृत श्री 108 श्री आचार्य विद्यासागर स्तवनम्, पं. मूलचन्द्र शास्त्री कृत आचार्य 108 श्री ज्ञानसागर संस्तुतिः इसी परम्परा की श्रृंखला में गणनीय हैं । इन स्तोत्रों में परस्पर भाव, भाषा, शैली का अद्‌भुत सामञ्जस्य दृष्टिगोचर होता है । इस प्रकार उक्त स्तोत्रों में सङ्गीतात्मकता, मधुरता के साथ ही आराध्य के प्रति कवियों की तन्मयता, तल्लीनता हमें भावविभोर करती है । उनका यह अनन्य प्रेम सूरदास के चरितनायक कृष्ण और तुलसीदास के राम जैसा ही कहा जा सकता है । पद्मप्रभस्तवनम्

में कवि ने पद्मप्रभु को सर्वस्व समर्पित करते हुए उनकी शरण में रहने की ऑकांक्षा की है यही दास्य भाव प्रेम रामचरित मानस में तुलसीदास का है। इस प्रकार स्वामी-सेवक का संबन्ध पद्मप्रभुस्तवन में कवि ने भी अंकित किया है । अन्य स्तोत्रकाव्यों में भी इस अनन्य भक्ति की झलक मिलती है । इसमे अन्य स्तोत्रों के समान गेयता, माधुर्य, एवं भावाभिव्यञ्जना का सफल संयोजन हुआ है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पं. जवाहर लाल शास्त्री बीसवीं शती के प्रतिष्ठित प्रतिनिधि काव्य रचयिता हैं ।

९. पं. गोविन्द राय शास्त्री का काव्यः

''बुन्देलखण्डं श्री वर्णी च''

''बुन्देलखण्डं श्री वर्णी च'' रचना संस्कृत के 31 पद्यों में निबद्ध ऐतिहासिक महत्त्व का काव्य है । इसमें वीर रस के माध्यम से बुन्देलखण्ड के गौरवशाली इतिहास का निदर्शन है । इस रचना का प्रथम और अन्तिम पद्य अनुष्टुप् छन्द में है और शेष पद्यों में उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है । इस रचना में पदे-पदे अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों का प्रयोग काव्यसौन्दर्य की श्री वृद्धि करने में सहायक है । प्रसाद गुण पूर्ण वैदर्भी रीति का प्रभाव सम्पूर्ण रचना में है । भाषा सरल, परिष्कृत और भावानुकूल है । भाव और भाषा में समन्वय स्थापित किया गया है ।

पं. गोविन्द राय शास्त्री की लेखन शैली समृद्ध और समुन्नत है । उनकी रचनाएँ बीसवीं शताब्दी में जन-जन को लाभान्वित कर रही है । देश, समाज तथा संस्कृति की रक्षा में पं. गोविन्द राय का प्रशान्त योगदान है ।

१०. बीसवीं शताब्दी की अन्य प्रतिनिधि रचनाएँ

उपरि विवेचन रचनाकारों और उनकी रचनाओं के अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी में रचित अन्य रचनाओं में भी तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक अनुशीलन के लिए उपयोगी साहित्यशास्त्र के समस्त तत्व विद्यमान हैं- विवेच्य शती के प्रमुख रचनाकारों में जहां एक ओर साधु-साध्वियों द्वारा रचित साहित्य है और इनमें भी आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी, आर्यिका ज्ञानमती माता जी, आर्यिका जिनमतीमाता जी, क्षुल्लिका राजमती माता जी प्रभृति साध्वियाँ प्रमुख हैं- जिन्होंने अपनी कृतियों में सभी साहित्यिक मानदण्डों को अपनाया है । और संस्कृत भारती की सेवा की है, वहीं दूसरी ओर पं. जुगल किशोर मुख्तार, पं. बारेलाल जी राजवैद्य, ठाकुरदास जी शास्त्री, प्रो. राजकुमार साहित्याचार्य, डॉ. भागचन्द्र जैन ''भागेन्दु'' पं. भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री, डॉ. दामोदर शास्त्री, पं. अमृतलाल शास्त्री, साहित्य-दर्शनाचार्य, ब्र पं. सच्चिदानन्द वर्णी, पञ्चराम जैन प्रभृति अनेकानेक मनीषी गण हैं जिन्होंने अपनी स्फुट/स्तोत्र रचनाओं के माध्यम से संस्कृत साहित्य की अभिराम श्रीवृद्धि की है । इनका रचना संसार समृद्धशाली है - इनके चिंतन, विचारधारा, नव नवोन्मेष शालिनी भावाभिव्यक्ति और रचनाधर्मिता में सजीवता है । उक्त विद्वानों की रचनाओं पर दृष्टिपात करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इनकी कविता में अध्यात्म, दर्शन, धर्म, संस्कृति और नीतिशास्त्र का प्रतिपादन हुआ है । प्रसादमाधुर्य गुणों से ओत-प्रोत वैदर्भी शैलीमय इनकी रचनाएँ देश, समाज, साहित्य की अमूल्य निधि हैं । इनमें भाषा शास्त्र, काव्यशास्त्र, के सभी तत्त्वों का प्रसङ्गानुकूल निदर्शन

हुआ है । उपर्युक्त सभी रचनाकारों की काव्य रचनाओं को दृष्टिपथ में रखते हुए इस शोधप्रबन्ध में मूल्याकंन किया गया है इससे ज्ञात हुआ है कि बीसवीं शताब्दी में संस्कृत में जैन विषयों पर रचित काव्य की शृंखला बहुत लम्बी है । इनमें रचनाकारों का अनुभव, ज्ञान, पाण्डित्य, एवं प्रतिभा व्यक्तित्व की छाप अंकित है ।

अन्त में - अपने अनेक वर्षों के अध्ययन अनुशीलन के पश्चात् शोधकर्त्ता गौरव पूर्वक यह उल्लेख करना चाहता है कि -जैन विषयों पर काव्य रचना करने वाले बीसवीं शताब्दी के काव्यकारों ने भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, चेतना, भाव प्रवणता, नैतिक आदर्शों, जीवन मूल्यों और उदात्त सिद्धान्तों के प्रतिपादन हेतु संस्कृत काव्य की धारा को अंगीकार किया है । उन्होंने अपनी अभिराम प्रतिभा, उच्चकोटि वैदुष्य और सतत् काव्य की धारा को अंगीकार किया है । उन्होंने अपनी अभिराम प्रतिभा, उच्चकोटि वैदुष्य और सतत् काव्य सृजन से-बीसवीं शताब्दी में भी अपने पूर्ववर्ती आचार्यों और मनीषियों के आदाय को न केवल अक्षुण्य रखा है प्रत्युत उसे सु व्यवस्थित ढङ्ग से समुन्नत भी किया है । इन सभी का काव्य कौशल भारतीय काव्यशास्त्र के मान दंडों को चरितार्थ करता है । इनकी संस्कृत भाषा प्रौढ़, प्राञ्जल तथा कोमलकान्त पदावली से अभिमण्डित है । काव्यशैली में अपने प्राचीन आदर्शों से सरंक्षण के साथ ही साथ युगानुरूप नवीनता का भी उल्लेख है। रचनाकार युग सापेक्ष्य आवश्यकताओं की सम्पूर्ति हेतु भी संस्कृत में काव्य प्रणयन करता है ।

ये सभी रचनाएँ भारत राष्ट्र, राष्ट्रियता, संस्कृत भारती, काव्य का इतिहास, भाषा शास्त्र, और संस्कृति के उदात्त आदर्शों और रूपों को अभिव्यक्त्व करती हैं ।

मेरा यह अध्ययन-अनुसन्धान प्रयत्न ''संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शती के जैन मनीषियों के योगदान'' को रूपायित करने में सक्षम होवे, इस अन्तरंग भावना के साथ अपना यह प्रबन्ध सविनय अर्पित करता हूँ ।

फुट नोट

1. श्रावक धर्म प्रदीप, पद्य 11, पृ.. 14
2. वचनदूतम्, पूर्वार्ध, पद्य 17
3. वचनदूतम्, पूर्वार्ध, पद्य 36
4. वचनदूतम्, पूर्वार्ध पद्य 38

''परिशिष्ट एक''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये : भारतीय विद्या ग्रन्थावली प्रका. भारतीय विद्या भवन, बम्बई 1945 ई.
2. श्री अनिल जैन : सम्यक्त्व चिन्तामणे : समीक्षात्मकाध्ययनम् डॉ. भागचन्द्रजी जैन ''भागेन्दु'' द्वारा निर्देशित लघु-शोध प्रबन्ध 1989 ई

3.	(पं.) अभिनन्द	:	रामचरित, प्रका. गायकवाड् ओरियण्टल सीरीज, अहमदाबाद ।
4.	(पं.) अप्पय दीक्षित	:	कुवलयानन्द, प्रका.- चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
5.	(आ.) उमास्वामी	:	तत्त्वार्थ - सूत्रम्, संपा.-पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य, प्रका.- मूलचन्द्र किशनदास कापड़िया, सूरत, 2472 वी.नि.
6.	(पं.) केदारभट्ट	:	वृत्तरत्नाकर, प्रका. - मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1966 ई.
7.	(आ.)कुन्थुसागर	:	शान्ति सुधा-सिन्धु, प्रका.-आ. कुन्थुसागर ग्रन्थमाला, सौलापुर
8.	(आ.) कुन्थुसागर	:	श्रावक धर्म प्रदीप, प्रका.- श्री गणेश प्रसाद वर्णी, जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, 2481 वी.नि.
9.	(आ.) कुन्थुसागर	:	सुवर्ण-सूत्रम्, प्रका.- आ. कुन्थसागर ग्रन्थमाला, सोलापुर, 1941 ई.
10.	(आ.) कुन्दकुन्द	:	प्रवचनसार, संपा.-डा. ए. एन. उपाध्ये, प्रका.- श्री परम श्रुत प्रभावक मंडल, अगास, 1944 ई.
11.	(पं.) कपिलदेव द्विवेदी	:	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, प्रका.- शान्ति निकेतन, ज्ञानपुर, वाराणसी, 1979 ई.
12.	(डा.) कावेल तथा नील	:	अवदान शतक, प्रका.-कैम्बिल, 1886 ई.
13.	(पं.) खुशालचन्द्र गौरावाला	:	वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, प्रका. श्री वर्णी हीरक जयन्ती महोत्सव समिति, सागर, 2476 वी. नि.
14.	(पं.) गङ्गादास	:	छन्दो मञ्जरी, प्रका. चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी 1959 ई.
15.	(महाकवि) गुणाढ्य	:	बहत्कथा, प्रका. चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी,
16.	(आ.) गुणभद्र	:	उत्तरपुराण, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1968 वि.सं.
17.	(आ.) गुणभद्र	:	महापुराण प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी, 1968 वि. सं.
18.	(पं.) जुगलकिशोर मुख्तार ''युगवीर''	:	जैनादर्श, प्रका. अनेकान्त (मासिक पत्र) वीर सेवा मन्दिर, सरसावा, 1947 ई.

19. (डॉ.) जर्मादन स्वरूप अग्रवाल : संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रका. स्टुडेण्ट्स स्टोर्स, बरेली 1971 ई।

20. (डॉ.) जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल : संस्कृत नाट्य साहित्य, प्रका. विनोद पुस्तक भण्डार, आगरा, 1976 ई.

21. (महाकवि) जयदेव : गीतगोविन्द्र प्रका. चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी,

22. (पं.) जवाहरलाल जैन शास्त्री : जिनोपदेश, प्रका. चावण्ड, उदयपुर 2508 वी. नि.

23. (पं.) जवाहरलाल जैन शास्त्री : पद्मप्रभस्तवनम्, प्रका. पं. नाथूराम स्मृति समिति चावण्ड, उदयपुर, 2509 वी. नि.

24. (महाकवि) दण्डी : काव्यदर्श प्रका. चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

25. (पं.) दयाचन्द्र जैन : सरस्वतीवन्दनाष्टकम् प्रका. ''ऋचा'' वार्षिकी, शासकीय स्नातकोत्तर : महाविद्यालय, दमोह

26. (डॉ.) देवस्थली : इन्ट्रोडक्सन टू दी स्टडी आफ मुद्राराक्षस, बम्बई, 1948 ई.

27. (पं.) धर्मचन्द्र ज्योतिषाचार्य : आचार्य धर्मसागर महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ, प्रका. आ. श्री धर्मसागर महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, कलकत्ता

28. (पं.) नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य : गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ, प्रका. अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत, परिषद, सागर, 1967 ई.

29. (डॉ.) नेमिचन्द्र शास्त्री : प्राकृत और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,

30. (पं.) नारायण लक्ष्मण गुणे : सङ्गीत प्रवीण दर्शिका, प्रका. कीटगञ्ज, इलाहाबाद, 1972 ई.

31. (आ.) पूज्यपाद : सर्वार्थ-सिद्धि प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, देहली.

32. (डॉ.) पी. डी. गुणे : एन इन्ड्रोडक्शन टूकम्परेटिव फिलालॉजी,

33. पाण्डेय एवं व्यास : संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, प्रका. साहित्य कला निकेतन, कानपुर, 1977 ई.

34. (आ.)पाणिनी : अष्टाध्यायी, संपा.-नारायण मिश्र, प्रका. गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी

35. (डॉ./पं.)पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य : धर्मकुसुमोद्यानम्, प्रका-जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता

36. (डॉ./पं) पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य : रत्नकरण्ड-श्रावकाचार, प्रका. वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी

37. (डॉ./पं.) पन्नालाल जैन, : सम्यक्त्व चिन्तामणि, साहित्याचार्य प्रका. वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी 1983 ई.

38. (डॉ./पं) पन्नालाल जैन : सज्ज्ञान चन्द्रिका, साहित्याचार्य प्रका. वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी

39. (डॉ./पं.) पन्नालाल जैन, : सम्यग्चारित्र -चिन्तामणि, साहित्याचार्य प्रका. वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी, 1988 ई.

40. (डॉ./पं) पन्नालाल जैन, : श्री पं. सरदारमल्ल सच्चिदान्द अभिनन्दन ग्रन्थ साहित्याचार्य प्रका. श्री पं. सरदारमल्ल सच्चिदानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, सिरोंज 1981 ई.

41. (आ.) पतञ्जलि : महाभाष्य
पूना, 1960 ई.

42. (डॉ.) प्रमिला जैन : परम पूज्य 108 आचार्य अजित सागर जी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ प्रका. परम पूज्य 108 आचार्य अजितसागर जी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, गौहाटी, 2044 वि. सं.

43. (डॉ.) बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रका. शारदा, मन्दिर, वाराणसी

44. (पं.) बारेलाल जी ''राजवैद्य'' : श्री अहार तीर्थस्तवनम् प्रका. श्री शान्तिनाथ दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय, अहारक्षेत्र 1971 ई.

45. (श्री) बसन्त : सङ्गीत-विशारद, प्रका. सङ्गीत कार्यालय, हाथरस, 1968 ई.

46. (पं.) बिहारीलाल शर्मा : मङ्गलायतनम् प्रका. वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी

47. (डॉ.) भागचन्दर जैन ''भागेन्दु'' : गोम्मटेस थुदि, प्रका, श्री भागचन्द्र इटोरया, सार्वजनिक न्यास, दमोह, 1989 ई.

48. (डॉ.) भागचन्द्र जैन ''भागेन्दु'' : साहित्यचार्य डॉ. पन्नालाल जैन अभिन्दन ग्रन्थ प्रका. पं. पन्नालाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ समारोह समिति, दमोह 1990 ई.

49. (आ.) भरतमुनि : नाट्यशास्त्र, प्रका. चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी,

50. (पं.) भुवनेन्द्र कुमार शास्त्री : आचार्य विद्यासागर स्तवनम्, प्रका. -वीर-वाणी (पाक्षिक पत्रिका) वीर प्रेस, जयपुर, जुलाई 1985 ई.

51. (महाकवि) भवभूति : उत्तररामचरितम् संपा. कपिलदेव द्विवेदी, प्रका. रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद

52. (आ.) मम्मट : काव्यप्रकाश संपा. आनविश्वेश्वर प्रका. ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी 1960 ई.

53. (श्री) मूलचन्द्र किशनचन्द्र कापड़िया : जैन मित्र साप्ताहिक पत्र प्रका. जैन मित्र कार्यालय, सूरत 24.4.1966 ई.

54. (पं.) मूलचन्द्र शास्त्री : वचनदूतम् प्रका. प्रबन्धकारिणी कमेटी, श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीर जी, 1975 ई. (जयपुर)

55. (पं.) मूलचन्द्र शास्त्री : वर्धमान चम्पू, प्रका. जैन विद्या संस्थान श्री महावीर जी, जयपुर 1987 ई.

56. (पं.) मूलचन्द्र शास्त्री : आचार्य ज्ञानसागर संस्तुति, प्रका. विद्यासागर पत्रिका, जबलपुर, जून 1985ई.

57. (आ.) मेरुतुङ्गाचार्य : प्रबन्ध चिन्तामणि, प्रका. सिन्धी जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद

58. यास्क : निरुक्त, प्रका. चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

59. (महाकवि) रूद्रट : काव्यालङ्कार, प्रका. चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी,

60. (श्री) रामचरण चक्रवर्ती : चित्र चम्पू, प्रका. काशी, 1940 ई.

61. (डॉ.) रामजी उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रका. रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, 2018 वि. सं.

62. (डॉ.) रामजी उपाध्याय : आधुनिक संस्कृत नाटक, प्रका. रामनारायण बेनीमाधव, इलाहाबाद

63. (पं.) रामदास गौड़ : हिन्दुत्व, प्रका. शिवप्रसाद गुप्त, काशी, 1995 वि. सं.

64. (डॉ.) लालबहादुर शास्त्री : जैन-गजट, (साप्ताहिक पत्र) प्रका. जैन गजट, रङ्गमहल, अजमेर 2.9.1971 ई.

65. (श्री) विक्रमादित्य सिंह निगम : सङ्गीत कौमुदी, हरिनगर, (लखनऊ) 1967 ई.

66. (आ.) विद्यासागर जी महाराज : निरञ्जन शतकम् प्रका. श्री सिद्धक्षेत्र कमेटी, कुण्डलपुर (दमोह) 1977 ई.

67. (आ) विद्यासागर जी महाराज : भावनाशतकम् प्रका. निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति, कलकत्ता, 1979 ई.

68. (आ.) विद्यासागर जी महाराज : मूकमाटी, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 1988 ई.

69. (आ.) विद्यासागर जी महाराज : श्रमण शतकम् प्रका. निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति कलकत्ता.

70. (आ) विद्यासागर जी महाराज : सुनीति शतकम् प्रका. विद्यासागर बाड़ी, ब्यावर, 2044 वि. सं.

71. (आ.) विद्यासागर जी महाराज : ज्ञानोदय (परीषह जय शतकम्) प्रका. श्री दि. जैन मुनिसङ्घ समिति सागर, 1982ई.

72. (डॉ.) विन्टरनित्स : दी जैनस् इन दी हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, अहमदाबाद, 1946 ई.

73. (पं.) विनायक राव पटवर्धन : रागविज्ञान प्रका. सङ्गीत गौरव ग्रन्थमाला, पुणे 1967 ई.

74. (पं.) विमलकुमार सौंरया : विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ, प्रका. अखिल भारतवर्षीय शास्त्रीय परिषद गौहाटी

75. (आ) वामन : काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति, प्रका. चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

76. वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत-हिन्दी-कोश प्रका. मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 1977 ई.

77. (महाकवि)वाल्मीकि : रामायण, प्रका. गीता प्रेस, गोरखपुर

78. (आ) विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, संपा. डॉ. सत्यव्रत सिंह प्रका. चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1969ई.

79. (डॉ.) विश्वनाथ भट्टाचार्य : काव्यशास्त्र दीपिका, प्रका. रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद 1978 ई.

80. (पं.) शांति गोवर्धन : संगीत शास्त्र दर्पण प्रका. पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1973 ई.

81. (श्री) शर्मनलाल "सरस" : पपौराष्टकम् प्रका. दि. जैन अतिशय क्षेत्र, पपौरा जी, 1981 ई.

82. आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी : आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ,

83. आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी : आचार्य चन्द्रसागर स्मृति ग्रन्थ,

84. आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी : दिगम्बर जैन साधु परिचय,

85. आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी : आचार्य धर्मसागर अभिनन्दन ग्रन्थ प्रका. श्री दि. जैन नवयुवक मण्डल कलकत्ता, 2508 वी. नि.

86. आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी : आचार्य महावीर कीर्ति स्मृति ग्रन्थ

87. आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी : रत्नत्रय की अमरबेल, प्रका. अ. भा. शान्तिवीर दि. जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा, श्री महावीर जी, 1985 ई.

88. (आर्यिका) सुपार्श्वमती माताजी : आचार्य शिवसागर स्तुति, प्रका. आ. महावीर कीर्ति सरस्वती प्रकाशन माला, सुजानगढ़, 1972 ई.

89. आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी : सागार धर्मामृत, प्रका. सौ भंवरीदेवी पाण्ड्या, सुजागढ़, 1972 ई.

90. महाकवि सुबन्धु : वासवदत्ता, प्रका. चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

91. सायण : तैत्तिरीय आरण्यक भाष्य

92. (आर्यिका) ज्ञानमती माताजी : आचार्य शान्तिसागर जन्म शताब्दी स्मृति

ग्रंथ प्रका. चारित्र चक्रवर्ती 108 आचार्य शांति सागर, जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था, फलटण (महाराष्ट्र) 1973 ई.

93. आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज : जिनगुण सम्पत्ति व्रत विधान, प्रका. दि. जैन महिला समाज, बारसोई, 2043 वि. स.

94. (आ.) ज्ञानसागर जी महाराज : जयोदय प्रका. श्री वीरसागर जी महामुनि सङ्घ, जयपुर, 2476 वी. नि.

95. (आ.) ज्ञानसागर जी महाराज : दयोदय चम्पू, प्रका. आचार्य ज्ञानसागर ग्रन्थमाला ब्यावर 1966 ई.

96. (आ.) ज्ञानसागर जी महाराज : वीरोदय प्रका. मुनि श्री ज्ञानसागर ग्रन्थमाला ब्यावर 1968 ई.

97. (आ.)ज्ञानसागर जी महाराज : श्री शिवसागर स्मृति ग्रन्थ

98. (आ.) ज्ञानसागर जी महाराज : सुदर्शनोदय, प्रका.-मुनि श्री ज्ञानसागर ग्रंथमाला, ब्यावर,1966 ई.

99. (आ.) ज्ञानसागर जी महाराज : श्री समुद्रदत्त चरित्र, प्रका.-समस्त दि. जैसवाल जैन समाज, अजमेर, 2495 वी. नि.

100. (क्षु.) ज्ञानभूषण महाराज : सम्यक्त्वसार-शतकम् प्रका.-श्री दि. जैन समाज, हिसार, 1956 ई.

101. अनुयोग-द्वार-वृत्ति : प्रका.-आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

102. (ब्र.पं.) चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ : प्रका.-ब्र. पं. चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, आरा

103. पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती अभिनन्दन ग्रन्थ : प्रका.-भा.दि. जैन महासभा, डीमापुर, नागालैण्ड, 2510 वी.नि.

104. संपा-तारानाथ तर्क वाचस्पति : शब्दस्तोम-महानिधि, प्रका.-चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

105. श्रुतबोध : प्रका. चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

106. ऋग्वेद : संपा.-एन.एस.सोनटक्के तथा सी.जी.काशीकर, प्रका. वैदिक संशोधन मण्डल, तिलक स्मारक, पूना, 1933 ई.



बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान

शोध–कर्ता : नरेन्द्र सिंह राजपूत

प्रकाशक/प्रकाशन
आचार्य ज्ञानासगर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी, सांगानेर (जयपुर)

"निओ" अजमेर